

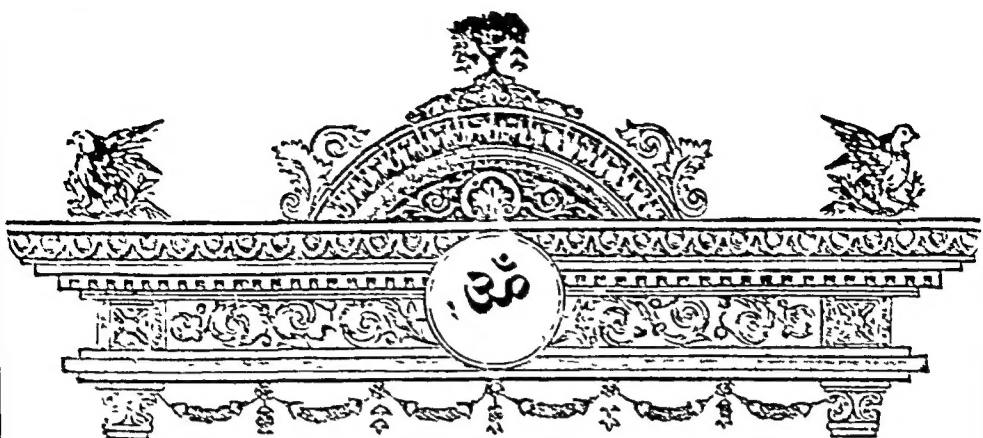
---

## सूचना.

---

पाठक गणों! इस पुस्तकका पठन श्रवण करते किसी भी तरहका संशय समुत्पन्न होवे तो उसका खुलासा ग्रन्थ कर्तासे कीजी. प्रसिद्ध कर्ता गुण दोष विषय जुम्मेदार नहीं हैं.

---



## मुक्तिसोपानकी-प्रस्तावना.

गाथा-काव्य

सो तव्वस्स सव्वस्स दुहस्स मुक्को । जंवाहइ सययंजन्तुमेयं ॥  
दीहामयं विप्पमुक्को पसत्थो । तो होइ अच्चन्त सुही कयत्थो ॥१॥

अणाइ काल पभवस्स एसो । सव्वस्स दुक्खस्स पमोख्वमग्गो  
वियाहि ओ जं समु विसत्तच्चा । कमेण अच्चन्त सुही भवन्ति ॥११॥

उत्तराध्यायन अ० ३२

इस जगतालय निवासी सब प्राणीयों उन्नति केही इच्छक हैं, उन्नति करो !  
२ ऐसा निर्धोष चारोंही तरफ हो रहा है. कोइ स्वयं शरीरकी उन्नति करने उद्यमी है.  
कोइ स्वयं कुटुम्बकी उन्नति करने पर्यन्वी है, कोइ स्वयं जातिकी ग्राम की देसकी उ  
न्नति करने पर्याप्त करते हैं. ऐत्तेही कितनेही विद्याकी, ज्ञानकी, धर्मकी, समाज-सम्प्र  
दायों की उन्नति करने कोसीश करते हुवें भी दृष्टि आते हैं. इत्यादि इन सर्व प्रकार  
की उन्नति करने का मुख्य उद्देश अत्मोन्नति करने काही है. अथात्-सर्व प्रकारकी  
उन्नतिके अन्तिम उन्नति जो करने की है, वो अत्मोन्नति ही है. इसलिये अन्य नव  
प्रकार की उन्नतियों है सो अत्मोन्नतिके सोपान पंक्तिये रूप है, अत्मोन्नति साथ है,

और अन्य उन्नतियों साधन है अर्थात् उपरोक्तादि उन्नतियों होनेसे ही आत्मोन्नति हो सकती है। और आत्मोन्नति करना येही साधको का मुख्य कृतव्यवह है। क्योंकि आत्मोन्नति हुवे बाद फिर किसीभी प्रकारकी उन्नति करना बाकी नहीं रहता है। आत्मोन्नति करवाने सर्व प्रकारकी उन्नति करली इसलिये वो कृत्या कृत्य कृतार्थ हो गये। अर्थात् वो सर्व दुःखों से मुक्त हों परमानन्दी परमसुखी बन जाते हैं ! !

ऐसी जो सर्व उन्नति मे अत्युत्तम शिखरी आत्मोन्नति है सो होनी बहुत ही मुश्किल है, क्योंकि सर्व से ऊंच है और सर्व के अन्तिम की है। जो सहजही होताहो तो हरेक कोइ कर सके, परन्तु आत्मोन्नति कर्ता महात्मा तो इस संपूर्ण जगत् के जन्तुओं की संख्या में से बहुतही थोड़े-बिरलेही निकलते हैं। जो कोइ आत्मोन्नति कर सके हैं वो आत्मोन्नति कर्ता—कि जो उत कृतव्य को साध्य कर उसके पुक्त भोभी-थें बन गये हैं, उनके सद्बोध को श्रवण मनन पूर्वक गृहण कर पालन किया है उसी से कर सके हैं। और जो अब आत्मोन्नति करना चाहते हैं वो भी जब उन पूर्वजोंके आत्मोन्नति कर्ताओं के फरमान पर चलेगें तबही कर सकेंगे। जहां तक सत्यमेव-तद्वा रूप वो फरमान न धिला, जयार्थ न जाना, यथा विधि न पाला वहांतक कदापि आत्मोन्नति होने वाली नहीं। जो-जो इत कार्य मे पश्चात पड रहे हैं उसका मुख्य येही सववहै, इसलिये आत्मोन्नति इच्छकोंको आत्मोन्नति कर्ताओंकी जाच करना अव्वल फरजहै। सो तो इम वक्त बन सकती मुशकिल है, क्योंकि इसकली कालमे इस वर्तमान जमाने-पञ्चम आरे में पूर्ण तोरसे आत्मोन्नति कर परमात्मा बन गये ऐसे महान पुरुष कोइ रहे नहीं। और बन सकेभी नहीं। तब तो यह सद्बोध सब व्यर्थ ही हुवा ! क्योंकि जो काम बनेही नहीं तो फिर कहनेसे-सुननेसे फायदाही क्या ? परन्तु ऐसा नहीं समझीए। क्योंकि कभी कोइ हीन शक्तिका धारक किसी दुरस्थल प्राप्त करनेका इच्छक एक दिनमें न पनोच सके तो भी मध्य में विश्राम ले उसे प्राप्त करता है। तै-भेही आत्मोन्नति का इच्छक आत्मोन्नतिके सख मार्ग मे लगा है वो कदापि इस जन्म में कार्यार्थ नहीं साध सके तो आगमिक भवमें तो जरूरही साध सकेगा। ऐसा जान आत्मोन्नति इच्छकों को आत्मोन्नतिके मार्ग में जरूरही प्रवर्त होना उचित है। वो आत्मोन्नति के मार्ग के प्रकाशक परमात्मा अभी नहीं हैं तोभी कुछ दूरकत नहीं, क्योंकि उनको ही फरमाये हुवे मत्वास्त्र अभि मोजूद है। उनमें आत्मोन्नतिका मार्ग बहुतही

खूबकी साथ कथा गया है। उस कथन प्रमाणे परवृत्त कर अनन्तात्मो ओं उन्नति दि-  
शा परमात्म पदको प्राप्त हुवे हैं। जिससे खातरी होती कि जिनेंद्र प्रणितही आत्मोन्न-  
तिका मार्ग तदा सत्य है निशांकित है, परमादरानिय है तबही उपरोक्त गाथामें फ-  
रमाया है:— “इत्त संनारका अति गहन दीर्घ पन्थ जिनमें जीवो अनादि कालसे  
परि भ्रमण कर रहे हैं। वो जीवो जो समय धर्म (जिन प्रणित मुद्रानुसार प्रवृत्तिका  
सम्यक् प्रकारसे) पालन करते हैं वो अनुक्रमसे सर्व दुःखो ने मुक्त हो अत्यन्त परम  
मुख के भुक्ता बनते हैं। यह आत्मोन्नति (मोक्ष) का मार्ग अनादि कालसे इस जगता-  
लय में प्रवृत्त रहा है जिसे आराध अनन्त जीवों मुक्ति प्राप्त करी है। वृत्तमान में महा-  
विदेह क्षेत्र से संख्याते जीवों इसी मार्ग को आराध कर मोक्ष प्राप्त कर  
रहे हैं। और आगमिक कालवे इसी मार्गके प्रभावसे निर्माण पावेंगे अर्थात्-मोक्ष के  
मार्ग दोनही हैं। एकही है ” बोही आत्मोन्नति (मुक्ति) का नव न्याय मार्ग इस “मु-  
क्ति-वोपान-गुणस्थानारोहण अदीशत द्वारी ” नामक ग्रन्थ में अनुक्रमसे चउदह गु-  
णस्थान द्वारा दर्शाया है। इने पठन श्रवण कर पूर्ण श्रद्धा पूर्वक यथाविधी आराध-  
पाल आत्मोन्नति के इच्छको इष्टार्थ सहज से साथ नके इसही उन्मेदमे इस ग्रन्थ को  
प्रमिट्टी में लाने की मुख्य फरज समझ। आत्मोन्नतिके इच्छको के कर कमलमे म-  
विनय समर्पण कर कृतज्ञता समझताहूँ।

लाला सुखदेव सहायजी—ज्वलाप्रसाद.

यह ग्रन्थ निमार्ण होने का मुख्य प्रयोजन.

परम पूज्य पण्डित राज कबीरचन्द श्रीनिलक अषिजी महागुरुके हस्त लिखित  
दो पत्रों (पाने) मुझे दक्षिण देशमे धर्म परिचार करने के मुख्य अधिकारिणी मतिम-  
रोमणी महानतीजी श्री राम कवरजी के पानने संवत् १९७८ में प्राप्त हुवे। जिनमे १४  
ही गुणस्थानों पर ७२ यथा दर्शाता हूँ:—द्वारों संज्ञोर्ण चक्र में लिखे थे। वो चक्र है-  
से ही रूपमें.



१.४ गुणस्थान.	१	२	३	४	५
१ नामद्वार	मिथ्यात्व	सांभवादन	मिश्र	अत्राति सम दृष्टि	देश विरति
२ लक्षणद्वार	३ तत्त्वखोटा माने	किंचित धर्म स्पर्श	भद्रिकभावी	७ प्रकृति उपशमावे	११ प्र. उपशमावे
३ स्थितिद्वार	३ प्रकारकी	ज.उ.६ आ वली ७ समे	ज. उ. अ- न्तर मूहूर्त	ज.अ.उत्कृ ६६ सागर	ज. अ. उ. क्रोड पूर्व
४ क्रियाद्वार	२४ इर्यावही टली	२३ मिथ्या त्वी. टली	२४ मिथ्या त्व वधी	२३ दूजापर	२२ अत्र तटली
५ कर्म की सत्ताद्वार	८ कीतत्ता	एवं	एवं	एवं	एवं
६ कर्म बन्ध द्वार	८ बन्धे	८ बन्धे	७ अऊटल	८ बन्धे	एवं
७ कर्म वेदे द्वार	८ वेदे	८	८	८	८
८ कर्म उदयद्वार	८ उदय	८	८	८	८
९ कर्म ऊदीरणा द्वार	७ तथा ८	एवं	७ आयुटला	७ तथा ८	एवं
१० कर्म निर्जरा द्वार	८ निर्जर	८	८	८	८
११ भाव ५ द्वार	३ उ. खे. प.	एवं	एवं	५	५
१२ कारण द्वार	५ मि अ. प्र. क. जो.	४ मि टला	५ पुर्वके	३ अत्रटला	३ एवं

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
प्रमत संयति	अप्रमत संयति	नियती वादर	अनियती वादर	सूक्ष्म सम्पराय	उप शा न्त मोह	क्षीणमोह	सयोगी केवली	अयोगी केवली
१५ प्रकृति उपशमावे	५ प्रमाद खपावे	अपूर्व करण करे	२१ प्र. क्ष योपशमा	२७ क्षयो प शमावे	२८ प्र. उ पशमावे	२८ प्र. खपावे	१० बो लपावे	७ बोल पावे
ज.अ.उ. क्रोडपूर्व	ज.१ समय उ. अन्तर	ज. समय उ.अन्तर	ज.१ समय उ.अन्तर	ज.१ समय उ.अन्तर	ज. एक उ. क्रोर	ज.उ.अंत मूहूर्त	ज.अंतर उ.क्रोडपूर्व	ज.उ.५ प्र.अक्ष.
२ आरंभी परिग्र	१ मायावती	१ एवं	१ एवं	१ एवं	१ एवं	१ इयार्वाही	१ एवं	०
एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	७ मोहटला	७ एवं	४ घनिटले	४ एवं
एवं	एवं	७ अगु टला	एवं	६ मोह टला	१ सता वेदनी	एवं	एवं	दन्वन्दी
८	८	८	८	८	७ मोह टला	७ एवं	४ घनिटले	४ एवं
८	८	८	८	८	७ मोहटला	७ मोहटला	१ घनिटले	१ एवं
एवं	७ अगुटला	एवं	एवं	५ तथा ६ मो.ट.	५ तथा २ अ. ट	एवं	२ नाम गोव	नहीं
८	८	८	८	८	७ मोहटला	एवं	४ घादी	४ एवं
६	६	६	६	६	७ मोहटला	३	३	३ एवं
३ एवं	२ प्रमाडला	२ एवं	२ एवं	२ एवं	१ योग	१ एवं	१ एवं	नहीं

	१४ गुणस्थान.	१	२	३	४	५
१३	मारगणा द्वार	४ ३-४ ५-७	नहीं	३ ४.५ ७	२ ५-७	२ ६-७
१४	उपमार्गणाद्वार	नहीं	१ १	१ १	३ ३-२ १	४ ४-३ २-१
१५	परिसहद्वार	२२ पाँच २० वेदे	एवं	एवं	एवं	एवं
१६	आत्माद्वार	६ ज्ञा. चाटली	७ ज्ञानटली	६ ज्ञा. चाटली	७ चारिटली	८
१७	जीवकाभेद द्वार	१४	६ ३ वी अ. अस २	१ सन्नीप्रज	२ मन्नी प्र. अ.	१ सन्नी प्र.
१८	जोगद्वार	१३ आहा २ नथी	१३ एवं	१० २वै. २ आ १ कार्य	१३ आहा २ नही	१२ कार नहीं
१९	उपयोगद्वार	६ अ. ३ द. ३	६ ज्ञ. ३ द. ३	६ अ. ३ द. ३	६ ज्ञा ३ द. ३	६ एवं
२०	लेख्याद्वार	६	६	६	६	६
२१	समाकित द्वार	नहीं	१ मेस्वा	नहीं	४ उ. ख वे. क्षा.	४ एवं
२२	चरित द्वार	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	संयमा संयम
२३	वेदद्वार	३	३	३	३	३

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
१ ७	१ ८	१ ९	१ १०	२ ११-१२	नहीं	१ १३	१ १४	मोक्ष
८-४ ३-२ १	२ ६-४	२ १-४	२ ८-४	२ १-४	२ १०-४	नहीं	नहीं	नहीं
एवं	एवं	एवं	एवं	१४ वे दे १२	एवं	एवं	११ वेदे १	११ वेदे १
८	८	८	८	८	७ कपाटली	७	७	३ जो गच्छी
१ एवं	१	१	१	१	१	१	१	नोननी नांथन
१४ कार नहीं	१४ ३ मि. १ का. नहीं.	४ मन ४ दत्त १ का	० एवं	१ एवं	१ एवं	१ एवं	१ एवं	नहीं
७ जा ४ द. ३	७ एवं	७ एवं	७ एवं	७ एवं	७ एवं	७ एवं	७ एवं	७ एवं
८	३ हृम	१ नक्त	१ एवं	१ एवं	१ एवं	१ एवं	१ एवं	नहीं
४ एवं	४ एवं	२ द. मा	२ एवं	२ एवं	२ एवं	२ एवं	२ एवं	२ एवं
३ मा. ह. प.	१ एवं	२ मा. ल.	२ मा. वे	१ नक्त	१ दत्त	१ एवं	१ एवं	१ एवं
३	३	३	३ या नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं

१४ गुणस्थान	१	२	३	४	५
२४ ध्यानद्वार	आ. ४ रौ ४	८ एवं	९ धर्म १	१० ध. २	११ ध. ३
२५ सज्ञाद्वार	४	४	४	४	४
२६ गतिद्वार	४	४	०	१ दव	१
२७ हेतुद्वार	५५ आहार २ टले	५० ५ मि टल	४३ ४ अनं ३ मि ६	४६ ३ मिश्र वहे	४० ४अ. १ का. वा. अ. ट.
२८ शाश्वता गुणस्थान	शाश्वता	अशाश्वत	एवं	शाश्वता	एवं
२९ शाश्वतायोगद्वार	१३ आ. २ टला	१२ टला	१० ३वे मि. ट.	१३ अमीर	११ उ.मि १का. टला
३० सनी असनीद्वार	२	२	१ सनी	२	१ सनी
३१ कर्म प्रकृति बन्ध	११६	१०१	७४	७७	६७
३२ कर्म प्रकृति उदय	११७	१११	१००	१०४	८७
३३ कर्म प्रकृति ऊदीरणा	११७	१११	१००	१०४	८७
३४ कर्म प्रकृति सत्ताद्वार	१४८	१४७	१४७	१४८	१४८
३५ आयुर्कर्म के भाडे	२८	२८	२६	२०	१२

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
१२ घं. ४	१ अ. ४ ५. ४ शु. १	१ एवं	१ एवं	१ एवं	१ एवं	१ शु. २	१ शु. ३	१ शु. ४
४	तो. सन्या.	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं
१	१	१	१	१	१	नहीं	नहीं	मोक्ष
२७. ४ प्र ११ अ. ८-२ आहाथ	२४ इनि. ८ ल.	२२. १ वं. १ आ.	१६. ६ वं. सादिदलि	१० इवेद मजा.	२ सं. लो. भट्टला	१ एवं	१ तथा ७ जोग.	नहीं
एवं	अशाश्वत	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	शाश्वत	अशाश्वत
१२ अहा. वाधा	१. ४ म. ४ व. १ का.	१ एवं	१ एवं	१ एवं	१ एवं	१ एवं	६. २ प्र. २ व. १ का.	नहीं
१ एवं	१ एवं	१ एवं	१ एवं	१ एवं	१ एवं	१ एवं	लोमना नना	एवं
६३	६२	६८-६६ २६	२२-२१ २०-१९ १८	१७	१	१	१	नहीं
८१	७६	७२	६६	६०	६५	६७-६६	६२	१२
८१	७३	६९	६३	६७	६६	६४-६३	६०	१० तथा नहीं
१४८	१४८	१४८	१४८	१४८	१४८	१४९ ६५	८५	८६-१३
६	६	२	२	२	२	१	१	१

१४ गुणस्थान	१	२	३	४	५
४८ गतिअगतिद्वार	४ गत ४ आगत	१ गत. ३ आ.	४ गत. ४ आ.	५ गत. १ आ.	६ गत. ३ आ.
४९ एकभवमे स्पर्शता	ज. १ उ. १००	ज. १ उ. २	ज. १ उ. प्र. हजार	ज. १ उ. प्र. संख्या	ज. १ उ. प्र. हजार
५० अगाभवमे स्पर्शता	ज. २ उ. असंख्य	ज. २ उ. ५	ज. २ उ. अ. संख्या	एवं	ज. २ उ. प्र. हजार
५१ कालद्वार	काल करे	एवं	काल नहीं	काल करे	एवं
५२ परमपलेजाने द्वार	जावे	जावे	नहीं	जावे	नहीं
५३ अवयवेगाद्वार	ज अंगु. अ. उ १ हजार यो	एवं	एवं	एवं	ज. १ अंगु. उ १ हजार यो
५४ इन्द्रिय द्वार	१-३-३-४ ५	२-३-४-५	१ पचेद्री	एवं	एवं
५५ देहक द्वार	२४	१२५ म्य. ट.	१६ अक्षि. टले.	१६ एवं	२ म. ती
५६ अल्पा बहुमद्वार	१० अनंत गुण	८ असंख्या त गुण	१ असंख्या	१० असं.	७ असं.
५७ एकजीव आर्थाध्वनर	ज. अनंत उ. ६६ ला.	ज. अं. उ. अर्थ पु.	एवं	एवं	एवं
५८ अगाजीव आर्थाध्वनर	अंतर नहीं	ज. एक. मम उ. पल्पक अ. भाग	एवं	अंतर नहीं	अंतर नहीं
५९ अर्पणिलोम आर्थाध्वनर	निजगनहीं	एवं	एवं	असंख्यात गुण	एवं





१४ गुणस्थान	१	२	३	४	५
४८ गतिअगतिद्वार	४ गत ४ आगत	१ गत. ३ आ.	४ गत. ४ आ.	२ गत. १ आ.	६ गत. ३ आ.
४९ एकभवे स्पर्शता	ज. १ उ. १००	ज. १ उ. २	ज. १ उ. प्र. हजार	ज. १ उ. प्र. संख्या	ज. १ उ. प्र. हजार
५० धनाभवे स्पर्शता	ज. २ उ. असंख्य	ज. २ उ. ५	ज. २ उ. अ. संख्या	एवं	ज. २ उ. प्र. हजार
५१ कालद्वार	काल करे	एवं	काल नहीं	काल करे	एवं
५२ परध्वलेजाने द्वार	जावे	जावे	नही	जावे	नहीं
५३ अव्येणाद्वार	ज अंगु. अ. उ १ हजार यो	एवं	एवं	एवं	ज. १ अंगु. उ १ हजार यों
५४ इन्द्रिय द्वार	१-२-३-४ ५	२-३-४-५	१ पचेद्री	एवं	एवं
५५ ढंडक द्वार	२४	१२५ स्थ. ट.	१६ ३ विक्रं. टले.	१६ एवं	२ म. ती
५६ अल्पा बहुमद्वार	१२ अनंत गुण	८ असंख्या त गुण	१ असंख्या-	१० असं.	७ असं.
५७ एकजीव आश्रीअन्तर	ज. अनंत उ. ६६ वा.	ज. अं. उ. अर्ध पु.	एवं	एवं	एवं
५८ पयाजीव आश्रीअन्तर	अंतर नहीं	ज. एक. सम उ. पल्पक अ. भाग	एवं	अंतर नहीं	अंतर नहीं
५९ कर्मनिर्जग आश्रीद्वार	निर्जरानहीं	एवं	एवं	असंख्यात गुण	एवं

[illegible]

१४ गुणस्थान.	१	२	३	४	५
६० निरन्त्र गुण द्वार	प्रत्यक असंख्या भाग	एवं	एवं	आवलकाके असं. भाग	एवं
६१ देवलोक २६ मर्यादा	२१ स्वर्ग	१२ स्वर्ग	मोनही	१२ देवलोक	१२ देव
६२ आयुष्यवन्ध द्वार	४ गतिके वंध	३ नर्कटली	नही वन्धे	२ गति म. दे.	१ देव गति
६३ चडपड ४ गति द्वार	१ दा दुर	१ परनाल	२ इलाड उलाल	४ ही	३ इलाड पर. नाल उलाल
६४ वन्धाके भाङ्गे ४ उकाल आश्री १२ क्रम प. ध०	२ भांग १२	२ भांगा १२	एवं	एवं	एवं
६५ वेदनी आश्री भाङ्गा	२ भांगा १२	एवं	एवं	एवं	एवं
६६ मोहनी आश्री भाङ्गा	२ भांगा १२	एवं	एवं	एवं	एवं
६७ आयुष्य आश्री	४ १-२-३-४	२ १-२-३-४	४ १-२-३-४	४ ३-४	४ १-२-३-४
६८ संवयण द्वार	६	६	६	६	६
६९ पही २ उद्धार	१९	११	७	११	२
७० भिद्ध स्पर्शना द्वार	निमा	भजना	एवं	नीमा	भजना
७१ आदममछटाणडीया द्वार	छटाण वडी.	छटा	छटा	छटा	छटा
७२ तीर्थंकर स्पर्श द्वार	नही	नही	नही	स्पर्श	नही
७३ तीर्थंकर गौत्रवन्ध	नही	नही	नही	बंधे	वन्धे
७४ पट्टी द्वार	१५, १४ रत्न १ मंड.	१५ एवं	१५	६ नी. च. वी. मा. म. मा.	२ आ. मा.
७५ भाव ५३ द्वार	३४	३३	३३	३५	३४

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
समय स्थिति तक	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं
२६ स्वर्ग	एवं	एवं	एवं	१ अनुत्त.	एवं	मेरे नहीं	मेरे नहीं	मोक्ष
एवं	एवं	अवन्ध	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं
एवं	एवं	एवं	एवं	४ ही	२ परनाल उलाल	१ इलड	एवं	गत नहीं
एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	१ चौथा	एवं
एवं	एवं	एवं	एवं	२ भांगा ३४	२ भांगा २४	१ भांगा चौथा	एवं	एवं
एवं	एवं	एवं	एवं	२ भांगा ३४	एवं	१ भांगा चौथा	एवं	४ एवं
३ १-२-४	३ १-३-४	२ ३-४	२ ३-४	२ ३-४	२ ३-४	१-४	१-४	१-४
६	६	३ प्रथम	३	३	३	१ प्रथम	१	१
२	२	२	२	२	२	२	४	४
नीमा	नीमा	एवं	एवं	एवं	भजना	नीमा	नीमा	नीमा
छठा	छठा	छठा	छठा	तुला	तुला	तुला	तुला	तुला
स्पर्श	स्पर्श	स्पर्श	स्पर्श	स्पर्श	नहीं.	स्पर्श.	स्पर्श	स्पर्श
वन्धे	गन्धे	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं.	नहीं	नहीं	नहीं
३ क्षी. ता. म.	एवं	एवं	एवं	एवं	३ ना.स	४ ती.मा. स.	४ एवं	४ एवं
३३	३०	२८	२२	२२	२१	१२	१४	१३

इस मुजब संक्षेपित ७५ द्वारोंका यन्त्र मिला मो कमाग्र कर लिया, परन्तु इस मेके तत्त्व गम्य गुढ ज्ञानकी मुझेपूरी समझ नहोनेसे मन बहुतही मुग्धाने लगा. सर्व तरहसे खुलासा जानने अति उत्कण्ठा जगी उसवक्त थोडेही अरमे वाढ प्रकरण र-वाकर 'ग्रन्थ का चौथा भाग मुझे मिला जिसमें रहे हुवे छेही ग्रन्थोका अद्यन्त प-ठन दत्त धित्त मे करने मे-कर्म बन्ध उदय उदीरणाकी प्रकृतियों का खुलासा कु-छ २ होने लगा. कुछ समझा और कुछ नहींभी समझा परन्तु उनको मार्ग रूप य-न्त्र एक पान पे लिख मेरेपास रक्खा और बारम्बार अणुमेढा युक्त पठनमनन कर-ते २ इच्छा हुईकी इस गुणढाण द्वार थोकडे के पुरे १०० द्वार होवे तो बहुतही अ-च्छा, इस विचार ही विचार मे बहुत वर्ष चले गये परमज्ञानुपेत हैद्राबाद आना हुवा. और सीकंद्राबाद वाले गणेशमलजी समदरीयाको धर्मके शोकीनजान समायिक प्र-तिक्रमण थोकडे सूत्रादिका अभ्यास कराया ज्ञानके शोकीन बनायेतव उनका भी क-हना हुवाकी इस गुणस्थानाद्वार के १०० द्वार तो पूर्ण जरूरही करना चाहिये ! ऐसा सुन मनमे निश्चय तो हुवा की कैसेभी कर १०० द्वार पुरे करूं. परन्तु ऐसा गहन ज्ञा-नका ग्रन्थ मेरे जैसे स्वल्प मतिवाले को बनाना बहुतही बीकट मालुम होने लगा तो भी निश्चय खण्डन नही किया ओर नवे २ ग्रन्थोका पठन मनन करते २ जो जो बात ध्यान मे जचती गई उसकी नोट करते २ ९० द्वार पूरे किये. उसवक्त वाघली (खानेदेश) के निवासी धर्म प्रिय ज्ञान रासिक मुकुण्ठी भाई रत्नचन्दजी चोरडीया द-शनार्थ हैद्राबाद आये. और यहां स्थापन हुवा "ज्ञान वृद्धि खाता" का अवलोकन कर ज्ञानवृद्धि करने की उत्कण्ठा जगी और रु १०० रत्नचन्दजी, दोलतरामजी चो-रडीय वाघलीवाले, रु.१०० संचालालजी ऊदारामजी मूथा जामडी वाले, रु. १०० इन्द्रचन्द्रजी वच्छराजजी रांका वाघलीवाले, रु. १०० रत्नचन्दजी रामचन्दजी कांक रीया वाघलीवाले और रु. १०० खेमचन्दजी हंसराजजी बम्ब वोर कुण्डे वाले. यों पांचो सह्र ग्रहस्थों मिल ५०० रुपये ज्ञानखाते मे अर्पण कर सविनय कहने लगे कि कोई आभनव अत्युत्तम ग्रन्थ इस खरचेसे प्रसिद्ध हुवा तो बडा उपकार होगा. उसव क्त मेरे मन मे घोटती हुई बात अनयास कहवा गई कि "गुणस्थाना रोहण शतद्वा शी" ग्रन्थ जो मे नवा बनानेका विचार कर रहाहूँ सो कहे तो इस खरचेसे प्रसिद्ध हो सकेगा. यह उजोने सहर्षे स्वीकार किया और उसी वक्त "परमात्म मार्ग दर्शक" ग्रन्थ प्रसिद्ध होने वाला था उसमे जाहीरात भी देवा गई वश फिरतो यह बात पुक्त

होगा तब मुझे बड़ाही फिकर हुआकी है प्रभु ! ऐसे गहन ज्ञानकी पुस्तकको मैं कैसे प्रसिद्धीमें धर सकुंगा. आगेक्या होगा इत्यादि.

उसवक्त सुयोगसे जिनके फरमानसे परमात्म मार्ग दर्शक ग्रन्थकी रचनाकी गयी और जो मुझे ज्ञान ब्रद्धि के काम में ग्रन्थों और सलहा द्वारा बारम्बार सहायता कर मेरपर महान उपकार करता कच्छ देश को पावन करने वाले आठकोटी मोटीपक्ष ससुदायके परम पूज्य श्री कर्म सिंहजी महाराजके शिष्यवर्य ज्ञानानंदी कवी श्वर श्री नागचन्द्रजी महाराजके करकमल मे 'परमात्म मार्ग दर्शक' ग्रन्थ गया उसमें 'गुणस्थानारोहण शतद्वारी' की खशखबर पढ़ते ही गुणस्थानाद्वारका एक ग्रन्थ मेरे पास भेजा. "भद्रपुरुषो विना मेरे स्वभाव सेही उपकार करते हैं" उसमें १०० द्वारोंका अवलोकन करतेही मेरे रोम २ विकश्वर हो गये और हिम्मत बन्धीकी अब १०० द्वार सहलाइये निम्न सकुंगा कच्छसे आये गुणस्थान द्वारमें १०४ द्वारथे जिसके नाम-१ नाम द्वार, २ लक्षणद्वार, ३ किरियाद्वार, ४ कारणद्वार, ५ हेतुद्वार, ६ इव्यप्रमाण ७ अकर्षा, ८ स्थिति, ९ कर्मबन्ध, १० कर्मउदय, ११ कर्मऊदीरणा, १२ कर्मसत्ता १३ कर्मवेदना, १४ कर्मनिर्जरा, १५ गति, १६ आगति, १७ दण्डक १८ अहारकअनाहारक, १९ मूर्खवादर, २० व्रमस्थार, २१ गति, २२ जाति, २३ दण्डक २४ भाषकऽभाषक, २५ परितऽपरित, २६ चर्मऽचर्म, २७ पदमऽपदम, २८ पञ्चत्वाणऽपञ्चत्वाण, २९ नरागीवीतरागी, ३० वीर्य, ३१ काल, ३२ परभवगमन, ३३ शाश्वतऽशाश्वत, ३४ विरहकाल, ३५ भेद, ३६ स्थानक, ३७ परिणाम, ३८ ध्यान, ३९ ध्यानकेपाये, ४० भव्य-भव्या, ४१ छद्मस्त केवली ४२ संयता-संयति ४३ समोह-समोह मरण, ४४ विग्रहा-विग्रगति, ४५ भवमंत्या, ४६ मिद्विजोव स्पर्शना ४७ एकममयमेजीव, ४८ एकममय में कितनेचचे, ४९ जीवकभेद, ५० गुणस्थान, ५१ जोग ५२ उपयोग, ५३ लेखा, ५४ पर्याप्ता-पर्याप्ता, ५५ छःप्रजा, ५६ सामान्यजोग ५७ सामान्यउपयोग, ५८ ज्ञान, ५९ अज्ञान, ६० दर्शन, ६१ तीर्थअतीर्थ, ६२ कल्प ६३ लिङ्ग, ६४ वेदीऽवेदी, ६५ शरीर, ६६ अवघेणा, ६७ भंगयण ६८ मंठाण, ६९ कपाय, ७० कपायप्रकृति, ७१ महा, ७२ इन्द्रिय, ७३ समुद्रयात्र ७४ वेद ७५ प्राण ७६ आहारदिशी, ७७ आहारओजादि, ७८ आहार नचेतादि, ७९ दृष्टि, ८० भाव ८१ प्रणामी, ८२ निद्राति, ८३ करण, ८४ पुण्यप्रकृतिबन्ध, ८५ पाप प्रकृतिबन्ध ८६ बन्धीकेभाङ्गे, ८७ भार्गवा, ८८ अरोह अवरोह, ८९ गति दृष्टिन्, ९० श्रेणी,

११ परस्पर फर्शना, १२ आत्मा, १३ सम्यक्त्व, १४ संयम, १५ नियंठा, १६ परि सह, १७ बन्धकी प्रकृति, १८ उदयकी प्रकृति, १९ ऊदीरणाकी प्रकृति, १०० सत्ताकी प्रकृति, १०१ पुण्यबन्ध पापबन्ध, १०२ पुण्यपापउदय, १०३ इर्वावहीकेभा-  
 ज्ञे, और १०४ मार्गणाद्वार. यह १०४ द्वार थे. पूर्व के ७५ और यह १०४ दोनोंमें से छाटकर १२५ द्वार के नाम लिखें और एकेक गुणस्थान पर १२५ द्वार उतारने शुरू किया १२५ पृष्ठका लेख होतें ही विचार बदल यह पद्धती पसन्द नहीं पडतेही उन १०० पृष्ठ रद्दी कर पुनः द्वितीया द्योति लिखनी शुरू करी उसके ५० पृष्ठ लिख, य कि उसी वक्त कच्छ देश से श्री नागचन्द्रजी महाराजकी तरफसे “ विचार सार प्रकरण ” नामक ग्रन्थकी प्रसादी प्राप्त हुई, उसमें किसी अन्यही ढव से चउदह गु-  
 णस्थानो ८ कर्मा की प्रकृतियों पर ९४ द्वारो उतारे थे जिनके नाम १ चारबन्धद्वार और २ मूलबन्धद्वार, ३ उत्तर बन्ध द्वार, ४ ज्ञानावरणीयबन्ध, ५ दर्शनावरणीयद्वार ६ वेदनयिबन्ध, ७ मोहनीयबन्ध, ८ आयुबन्ध, ९ नामबन्ध, १० गोत्रबन्ध, और ११ अन्तरायबन्ध. यह १० बन्ध के द्वार ऐसेही १० उदयके द्वार. ऐसेही १० ऊदीरणा के यह ३१, और ३२ मूलसत्ता, ३३ उत्तारसत्ता, ३४ आठकर्मकीसत्ता, ३५ जीव, केभेद, ३६ गुणठाणा, ३७ योग, ३८ उपयोग, ३९ लेख्या, ४० मूलहेतु, ४१ मि-  
 थ्यात्व हेतु, ४२ अविरत हेतु, ४३ कपायहेतु, ४४ योगहेतु, ४५ समुचय हेतु, ४६ अल्पावहुत, ४७ मूलभाव, ४८ उत्तरभाव, ४९ औदिकभाव, ५० औपशामिक भाव-  
 ५१ क्षयोप शामिकभाव, ५२ क्षायिकभाव, ५३ परिणामिक, ५४ सन्नावाइ, ५५ वि शेष जीवभेद, ५६ नर्कभेद, ५७ तिर्यचभेद, ५८ मनुष्यभेद, ५९ देवभेद, ६० समु-  
 चयभेद, ६१ समुदघातं, ६२ ध्यान, ६३ ध्यानके पाय, ६४ वेद, ६५ दण्डक, ६६ योनी, ६७ कुलकोडी, ६८ ध्रुवबन्ध, ६९ अध्रुवबन्ध ७० ध्रुवोदय ७१ अध्रुवोदय ७२ ध्रुवसत्ता ७३ अध्रुवसत्ता. ७४ सर्वघातिक, ७५ देशघातिक, ७६ अघातिक, ७७ पुण्यप्रकृति, ७८ पापप्रकृति, ७९ परावर्त, ८० अपरावर्त, ८१ क्षेववीपाक, ८२ भव विपाक ८३ जीवविपाक, ८४ पुद्गलविपाक, ८५ मोह नभिकेभाज्ञे, ८६ दर्शना वरणी के भाज्ञे, ८७ वेदनीकेभाज्ञे, ८८ गोवकेभाज्ञे, ८९ अन्तरायकेभाज्ञे, ९० नामकेभाज्ञे ९१ आश्रवकेभेद, ९२ संवरकेभेद, ९३ निर्जराकेभेद, ९४ बन्धतत्त्व, यह ९४ द्वारों य. अवलके द्वारोंके लिष्टमें इन १४ मेंसे छाटकर द्वारो मिलानेसे २२५ द्वार पूरे कि ये. और फिर कर्म ग्रन्थ में से कुछ गोमट सारके कर्म काण्ड से लिये हुवे कुछ स्वक-  
 लिप्त यों सब मिलाकर २५२ द्वारो हुवे. उनके नाम.

+	१	नामद्वार	६	२०	परस्पर मार्गणा
÷	२	अर्थद्वार	६	२१	परस्पर उपमार्गणा
०	३	प्रश्नोत्तरद्वार	६	२२	अरोह अवरोह
×	४	प्रवेशद्वार	×	२३	चडाचडगति
÷	५	लक्षणद्वार	×	२४	अन्तरकाल
०	६	दृष्टान्तद्वार	×	२५	विरहकाल
=	७	गुणद्वार	×	२६	एकभवमें स्पर्श
×	८	अवघेणाद्वार	×	२७	बहुत भवमें स्पर्श
६	९	उत्पत्तिद्रव्यप्रमाण	६	२८	परस्पर स्पर्श
६	१०	पावतीद्रव्यप्रमाण	×	२९	पदमापदम
६	११	खपतीद्रव्यप्रमाण	६	३०	शाश्वता शाश्वत
६	१२	क्षेत्रप्रमाण	६	३१	परभवगमन
६	१३	क्षेवस्पर्शना	६	३२	भवसंख्या
+	१४	काल (स्थिति)	+	३३	अल्पा बहुत
×	१५	कालप्राप्त	६	३४	किरिया
६	१६	भाव प्रमाण	×	३५	मूलहेतु कारण
×	१७	निरन्तरगुण	६६	३६	मिथ्यात्व हेतु
६	१८	मार्गणा	६६	३७	अविरत हेतु
६	१९	उपमार्गणाद्वार	६६	३८	कषाय हेतु



११	३९	योग हेतू	११	२८	देश घाति कर्म प्रकृति
+	४०	समुच्चय हेतू	०	२९	अनाति कर्म वन्ध
११	४१	चार वन्ध	११	३०	अनाति कर्म प्रकृति
११	४२	समुच्चय कर्म वन्ध	०	३१	पुण्य कर्म वन्ध
÷	४३	ज्ञानावरणीयबंध	११	३२	पुण्यकर्म प्रकृति वन्ध
११	४४	दर्शनावरणीयबंध	०	३३	पाप कर्म वन्ध
११	४५	वेदनीयबंध	०	३४	पाप कर्म प्रकृति वन्ध
११	४६	मोहनीय वन्ध	११	३५	परावर्तमान कर्म वन्ध
११	४७	आयुष्य वन्ध	११	३६	परावर्तमानकर्मप्रकृतिबंध
११	४८	नाम कर्म वन्ध	०	३७	अपरावर्तमानकर्म बंध
११	४९	गौत्र कर्म वन्ध	११	३८	अपरावर्तमानकर्मप्रकृति
११	५०	अन्तराय कर्म वन्ध	—	३९	भूयस्कार कर्म वन्ध
०	५१	ध्रुवकर्मवन्ध	÷	४०	भूयस्कार कर्म प्रकृति
११	५२	ध्रुवकर्म प्रकृति बंध	÷	४१	अल्पतर कर्म वन्ध
०	५३	अध्रुव कर्म वन्ध	÷	४२	अल्पतर कर्म प्रकृति
११	५४	अध्रुव कर्म प्रकृति बंध	—	४३	अवस्थित कर्म वन्ध
०	५५	सर्व घाति कर्म वन्ध	—	४४	अवस्थित कर्म प्रकृति
११	५६	सर्व घाति कर्म प्रकृति	÷	४५	अव्यक्त वन्ध
०	५७	देश घाति कर्म वन्ध	+	४६	समुच्चयकर्मप्रकृति वन्ध

≡	७७	कर्म बन्ध व्यछेद	०	९६	क्षेत्रविपाक कर्मोदय
≡	७८	कर्मप्रकृति बंध व्यछेद	६६	९७	क्षेत्रविपाककर्मप्रकृतिउ
÷	७९	समुच्चय कर्मोदय द्वार	०	९८	भव विपाक कर्मोदय
६६	८०	ज्ञानावरणी उदयद्वार	६६	९९	भवविपाक कर्म प्रकृति.
६६	८१	दर्शनावरणीय उदय	०	१००	जीवविपाककर्मोदय
६६	८२	वेदनी उदय द्वार	६६	१०१	जीवविपाककर्मप्रकृति
६६	८३	मोहनीय उदय द्वार	०	१०२	पुद्गलविपाक कर्मोदय
६६	८४	आयुज्य उदय द्वार	६६	१०३	पुद्गलविपाककर्मप्रकृतिउ
६६	८५	नाम उदय द्वार	०	१०४	सर्व व्याति कर्मोदय
६६	८६	गौत्र उदय द्वार	६६	१०५	सर्वव्यातिकर्मप्रकृतिउदय
६६	८७	अन्तराय उदय द्वार	०	१०६	देशव्यातिक कर्मोदय
०	८८	ध्रुवकर्मादय	६६	२०७	देशव्यातिकर्मप्रकृति उ.
६६	८९	ध्रुवकर्म प्रकृति उदय	०	१०८	अव्यातिकर्मोदय द्वार
०	९०	अध्रुव कर्मोदय द्वार	६६	१०९	अव्यातिकर्मप्रकृति उदय
६६	९१	अध्रुव कर्म प्रकृतिउदय	०	११०	समुच्चयकर्मप्रकृति उदय
०	९२	पुण्य कर्मोदय द्वार	०	१११	कर्मोदय व्यच्छेद
६६	९३	पुण्य कर्म प्रकृति उदय	≡	११२	कर्मप्रकृति उदयव्यछेद
०	९४	पाप कर्मोदय द्वार	=	११३	समुच्चय उद्दीरणा
६६	९५	पाप कर्म प्रकृति उदय	६६	११४	ज्ञानावरणी कर्म उद्दीर

ॐ	११५	दर्शनावरणीकर्म उदीर.	०	१३४	ध्रुवकर्म सत्ताद्वार
ॐ	११६	वेदनीय कर्म उदीरणा	ॐ	१३५	ध्रुवकर्म प्रकृति सत्ता
ॐ	११७	मोहनीयकर्म उदीरणा	०	१३६	अध्रुवकर्म सत्ताद्वार
ॐ	११८	आयुर्कर्म उदीरणा	ॐ	१३७	अध्रुवकर्मप्रकृति सत्ता
ॐ	११९	नामकर्म उदीरणा	०	१३८	सर्वघातिकर्म मत्ता
ॐ	१२०	गौत्रकर्म उदीरणा	ॐ	१३९	सर्वघातिकर्मप्रकृतिम-
ॐ	१२१	अंतरायकर्म उदीरणा	०	१४०	देशघातिक कर्म मत्ता
×	१२२	समुचयकर्मप्रकृति उदी.	ॐ	१४१	देशघातिकर्मप्रकृतिमत्ता
०	१२३	कर्मोदीरणा व्यच्छेद	०	१४२	अघातिकर्म सत्ता
=	१२४	कर्मप्रकृतिउदीरणा व्य	ॐ	१४३	अघातिकर्मप्रकृति मत्ता
×	१२५	समुचय कर्म सत्ताद्वार	×	१४४	समुचयकर्म प्रकृतिमत्ता
ॐ	१२६	ज्ञानावरणी सत्ताद्वार	०	१४५	कर्मसत्ताव्यच्छेद द्वार.
ॐ	१२७	दर्शनावरणी सत्ताद्वार	=	१४६	कर्मप्रकृति सत्ताव्यच्छेद
ॐ	१२८	वेदनीय सत्ता द्वार	-	१४७	समुचयकर्म भंग द्वार
ॐ	१२९	मोहनीय सत्ताद्वार	÷	१४८	ज्ञानावरणी भङ्ग द्वार
ॐ	१३०	आयुर्कर्म सत्ताद्वार	÷	१४९	दर्शनावरणी भङ्ग
ॐ	१३१	नामकर्मसत्ता द्वार	÷	१५०	वेदनीयभङ्गद्वार
ॐ	१३२	गौत्रकर्म सत्ताद्वार	÷	१५१	मोहनीय भङ्ग द्वार
ॐ	१३३	अन्तर्गयकर्म सत्ताद्वार	÷	१५२	आयु भङ्ग द्वार

-	१५३ नाव भङ्ग द्वार	X	१७२ पा-गाति द्वार
÷	१५४ गौवभंग द्वार	X	१७३ जागाति द्वार
-	१५५ अन्तराय भङ्ग द्वार	६	१७४ आज्ञातिद्वार
६	१५६ वान्तिके भाङ्गे	६	१७५ पाजातिद्वार
६	१५७ इयविके भाङ्गे	०	१७६ जा-जातिद्वार
६६	१५८ सुलु भाव द्वार	६	१७७ आकाया द्वार
६६	१५९ औदायिक भावद्वार	X	१७८ पाकाया द्वार
६६	१६० उपगमिक भाव	०	१७९ जाकाया द्वार
६६	१६१ क्षयोपगमिक	६	१८० आदंडक द्वार
६६	१६२ क्षायिकभाव	X	१८१ पादंडक द्वार
६६	१६३ परिणामिक भाव	०	१८२ जादंडक द्वार
६६	१६४ मनीपातिक भाव	X	१८३ सामान्य जीव भेद
६६	१६५ समुच्चय भाव द्वार	६६	१८४ विविध जीवभेद द्वार
६	१६६ श्रेणीद्वार	X	१८५ जीवयोगी द्वार
X	१६७ कर्मविदे द्वार	६६	१८६ कुलजोडी द्वार
X	१६८ कर्म विज्जिगद्वार	६	१८७ मूल्य द्वार द्वार
-	१६९ दमकरण द्वार	६	१८८ कर्म भाव द्वार
-	१७० सुखेद्वार	६	१८९ मर्म-मर्मद्वार
X	१७१ जा-गाति द्वार	६	१९० भाव-भावद्वार द्वार

×	१९१	आहारकऽनारक	×	२१०	स्वर्गकी मर्यादाद्वार
ॐ	१९२	ओजादि आहार	×	२११	पदस्थानहानीवृद्धि
ॐ	१९३	सचितादि द्वार द्वार	ॐ	२१२	मूल उपयोगद्वार
ॐ	१९४	दिशी आहार	+	२१३	अज्ञान द्वार
ॐ	१९५	पर्याप्त अपार्याप्त	+	२१४	ज्ञानद्वार
ॐ	१९६	पर्याद्वार	+	२१५	दर्शनद्वार
×	१९७	प्राणद्वार	+	२१६	समुचय उपयोग द्वार
ॐ	१९८	इन्द्रियद्वार	+	२१७	दृष्टि द्वार
ॐ	१९९	इन्द्रिय विषयद्वार	×	२१८	भव्या भव्यद्वार
×	२००	मज्ञाद्वार	ॐ	३१९	चरमा चरम द्वार
×	२०१	वेद द्वार	ॐ	२२०	परिता पति द्वार
+	२०२	कषाय द्वार	+	२२१	परिमह द्वार
+	२०३	लेख्याद्वार	+	२२२	आत्मा द्वार
ॐ	२०४	योगद्वार	×	२२३	ध्यान द्वार
×	२०५	दारी द्वार	ॐ	२२४	ध्यानके पापे द्वार
ॐ	२०६	संयम द्वार	ॐ	२२५	पट्टव्य द्वार
ॐ	२०७	संयमद्वार	ॐ	२२६	परिणामद्वार
ॐ	२०८	मरणद्वार	ॐ	२२७	दीर्घ द्वार
ॐ	२०९	विप्रदग्निद्वार	ॐ	२२८	वि द्वार

+	२२२	मन्यस्त्वद्धार	ॐ	२४८	निर्जरा भेद द्वार
ॐ	२३०	भयता संयति द्वार	०	२४९	करणी फल द्वार
ॐ	२३१	लिङ्ग द्वार	+	२५०	तीर्थकर गौवोपार्जे
+	२३२	चारित्र्य द्वार	+	२५१	तीर्थकर स्मर्ग
ॐ	२३३	नियता द्वार	०	२५२	पौन्यद्वार
ॐ	२३४	कल्पद्वार			
ॐ	२३५	परिमह द्वार			
ॐ	२३६	अमानन्द द्वार			
ॐ	२३७	भरागी वीतरागीद्वार			
ॐ	२३८	पडवाड अपडवाड			
ॐ	२३९	छद्मस्त केवलीद्वार			
ॐ	२४०	समुद्रयात द्वार			
ॐ	२४१	देवद्वार			
ॐ	२४२	पारिणामी द्वार			
×	२४३	कारण द्वार			
×	२४४	निघाति द्वार			
ॐ	२४५	आश्रव द्वार			
ॐ	२४६	मवरद्वार			
ॐ	२४७	निर्जराद्वार			

जिस द्वार के अंक की पीछे + ऐसा चिन्ह किया है वो द्वारों बहुतस्थान लिखें पाये. जिसके पीछे × ऐसा चिन्ह किया है 'श्री तिलोक ऋषिजी महाराजके हस्त लिखित पत्र में से लिये हैं. जिसके पीछे ÷ ऐसा चिन्ह किया है वो द्वारो श्री नागचन्द्रजी के भेजे हुये गुणठाणाद्वार " में से लिये हैं. जिसके पीछे \* ऐसा चिन्ह किया है वो द्वारो श्री नागचन्द्रजीके भेजे हुये 'चिचार सार प्रकरण " ग्रन्थ मेंसे लिये. जिसके पीछे = ऐसा चिन्ह किया वो द्वारों 'छे कर्मग्रन्थ " मेंसे लिये हैं. जिसके पीछे ० ऐसा चिन्ह किया वो द्वारो 'गोमठ सारके कर्मकाण्ड " से लिये हैं. जिसके पीछे - ऐसा चिन्ह किया है वो प्रकरण संग्रह मेंसे लिया. और जहां ० ऐसा चिन्ह किया है वो पूर्वापर अपेक्षासे स्वमति से लिखे हैं.

यों सब २५२ द्वारोंकी नोटकर ग्रन्थ लिखना फिर तीसरी वक्त थुरू किया. और ६०० पृष्ठ में पूर्ण कर पुनः शुद्धाष्टात्ति लिखनेका विचार करते संकल्प हुवा कि इस ग्रन्थको मूल काण्ड और अर्थ काण्ड में दो विभाग में विविक्षित कर २५२ द्वारों को गुणनिष्पन्न चारों त्रिं डों में अलग २ बाट लिखनेसे खुलासा अच्छा होगा. तदनुसारी शुद्धाष्टात्ति लिखी जिसके ८०० पृष्ठ हुवे.

जैन तत्त्व प्रकाश, परमात्म मार्ग दर्शक ध्यान कल्पतरु इत्यादि ग्रन्थों तो फक्त तीन चार महीने जितनी मुदत में ही लिख सकाथा परन्तु इस ग्रन्थको लिखने १॥ वर्षका मुम्मार लग गया जिसका मयव—अव्वल तो इस ग्रन्थ का विषय बहुतही गहन है. उ. में स्पष्ट करने जितनी इसमें मगज मारी करनी पड़ी वैसी अव्वल किसी भी पुस्तक लिखने नही करनी पड़ी थी. तोभी इसमें बहुतसे विषयोंको तीन २ चार २ वक्त लिखते ही मनकी पूर्ण ग्वानगी न हुइ तब फक्त मूल प्रमाणे उताग करनाही उचित समझा. वैसेही किया. और दूसरी जवर अन्तराय का उदय होनेमे मुझे आत्मसाधन में और ज्ञानवृद्धि और कार्य में पूर्ण मदायता के कर्ता-विघन विपत्ती के हर्ता परम पृज्य तपस्वीराज श्री केवल ऋषिजी महाराजके शरीरमें अमाता वेदनीयका प्रबल उदय होनेमे सब प्रकारकी मदायता वन्ध पड़ी और अन्य कार्यमें मन्वना भाग पडा, व्याख्यान आहारलाना और पत्रोपचार और आने वालोंके साथ वागतालाप वंग कार्य मेरेही करनेके होनेमे उधर लक्ष्मीकी प्रेरणा अधिक होने लगी. लिखते अपूर्ण विषय को छोड आठ, २ दिनतक उ. में अत्रलोकन करनेकाभी अवसर प्राप्त हुवा नजिममें उस विषयक अनुमन्थमेंकी विमृति होने से घोटाळा हो गया बहुत ग्वाधीयों गद्गड तब विचार होता है की महार

ज के आगम हुवे बाद द्वितीया व्रत्ति लिखकर कच्छ पंजाब मालवा काडीया वाडमे विचरते पाण्डित मुनिराजोंके निधानीचे निकला शुद्धि वृद्धि के साथ फिर हाथ से लिखे बाद छपवाऊंगा. इत्यादि विचार ही विचार में रहगया और भव्यतव्यता योग म हाराजश्रीका आयु अन्त हो गया. फिर बिना कारण एकस्थान रहना होवे नहीं. एक दिन पूर्ण चित्त की स्थिरता और अन्य अनेक ग्रन्थों सहायता नहीं. जिससे ज्ञान वृद्धि के कार्य में आगे बढ़ना अटका और जो बाकी ३॥ महिने का चौमास का काल बाकी रहाथा. उसमें लिखने और छपने प्रारंभ किये हुवे ग्रन्थो जपसेण बीजय सेण चरित्र, वीरसेण कुसुम श्री चरित्र, सम्मेलन मुग्ध चरित्र, नद्धर्म बोध मराठी पुस्तक की द्वितीया व्रत्ति इत्यादिको समप्त करना. पुरुष सुधारना. श्री केवल ऋषि महाराजका चरित्र रचना तथा व्याख्यान और साधुकी नियमित किरिया का करना व गैरा कार्यों ग्रन्थने से इस ग्रन्थ की यों त्यों समाप्ति करी. और अपना धर्मका प्रेस आजमेरे भेजनेका विचार था परन्तु अवल दिया हुवा जयसेण चरित्र के पांच महिने में कुल पांच ही फारम छापकर दिये बोभी बहुत अशुद्ध जितने मन हट गया. और सन्मुख ही यह काम होता अच्छा जान यहांके नवीन हुवे 'शारदाप्रेस' के उत्सा ही मैनेजरको जलदी और शुद्ध कार्य करने का करार कर दिया. पुस्तक मे करक्शन का रते भी कितनेक स्थान शुद्धि वृद्धि करी है तोभी इस ग्रन्थ में बहुत अशुद्धियों और खामीयों रह गइ है यह मैं निश्चय से कहता हूं. उसके लिये ऊपर दर्शाई हुड मेरी ला चारी पर रहम कर पाठक गणो क्षम वकसेंगे ? और जैनशास्त्रज्ञ पान्देत महान्मा ओ इसका शुद्धिपत्र बना कर जो वकसीस करेंगे तो सभार स्वीकार द्वितीया व्रत्ति छपानेका प्रसन्न हुवा तो योग्य सुधारा जरूर ही करना चाहता हूं जी.

मैं अल्पज्ञ बहुत दोषी हूं। यह ग्रन्थ है महान ॥

मिथ्यालाप दुष्कृत्य करूं। सुधार जो विद्वान ॥

उन्नत आत्म का दास.

अमोलख ऋषि.



## समर्पण पत्र.

स्वर्गस्थ-पूज्य पाद परमुपकारी तपस्वीराज श्री केवल ऋषिजी महाराज साहेब की परम पवित्र सेवामें.

जिनोके कुलमें समुत्पन्न हो जैन धर्म पाया, जिनकी वैराग्य मय सुत्र ने वैरागी बनाया. जिनोकी हरकत रह मे पूर्ण सहायता मिलने मे सदान प्राप्त कर्मका और उसका लाभ अन्यको देनेको जो मेरी फरज थी वो कुल बजा सका. इत्यादि जो जो कुछ योग्य कार्य कर जैनके चारों तीर्थका और अनेकोका कृपा पात्र जो मेरी पामर आत्मा बनीहै सो सब पुण्य प्रताप आपश्री काही है. इत्यादि सद्गुणों से मनाकर्षण हो यह 'मुक्तिसोपान गुणस्थानारोहण अदीशत द्वारी' नामक ग्रन्थ आप-श्री जी की सेवामें ही समर्पण कर कृतज्ञता समझता हूं.

शिक्ष-अमोल ऋषि.

## उपकार पत्र.



कच्छ देश पावन कर्ता आठकोटी मोटी पक्षी के परम पूज्य स्याद्वाभो निधी कर्म सिंहजी महाराज के शिष्य वर्य पाण्डित प्रवर कवीराज श्री नागचन्द्रजी महाराज की सेवा में:—

इस ग्रन्थ के पूर्ण १.०० द्वार भी लिखने अशक्त हुवे को २५२ द्वार लिखने । शक्ति की वकसीस आपके कृपा दान किये हुवे "गुणस्थान द्वार" और 'सार प्रकर्ण' ग्रन्थों के पठन मनन सेही हुईहै. ऐसे ही तंत्र आपने परुपकार आज ७ वर्ष से उत्साह और सहायता दान दे ज्ञान दान रूप परम साध सु दिला रहे हो. यह आपका उपकार अकल्प है जी.

कृपाभिलाषी-अमोलऋषि.

## ग्रंथ कर्ताका संक्षिप्त जीवन चरित्र.

मारवाड देशके मेड़ने शहरके रड़म, मंदरमार्गी चंडे नाथ ओसवाल कांसदीया  
गोतके, भाइ कस्तुरचंदजी व्यापार निमित्ते मालवाके आसरे (जोड़पूर) ग्राममें आर-  
हेथे. उनका अकस्मात आरुण्य पूर्ण होनेसे उनकी सुपत्नी जवारावाडने वैराग्य पाकर  
४ पूजाओंको छोड़ माधुमार्गी जैन पंथ में दिखी ली. और १८ वर्षतक संयम पाला.  
माता पिता व पत्नी के दियोगकी उदामीसे मेड़ केवलचंदजी भोपाल शहर में आये  
और पिताके धर्मानुसार गंडीर मार्गीयोंके पंच प्रतिक्रमण, नव स्मरण, पूजा आदि  
कंठाग्र किये. उसयुक्त श्री कंवर्जी ऋषिजी महागज भोपाल पधारे. उनका त्या-  
ग्यान मुक्तिको दाइ पूतचंदजी धांड़ीवाल केवलचंदजीको जबरदस्तीसे लेगये. महा  
राज श्रीने सयगहांगडी सूत्रके चतुर्थ उद्योगकी दण्डी गाथा अर्थ समझाया. जिन-  
से उनको व्याख्यान प्रतिष्ठित करनेकी इच्छा हुई. इनने: गने: प्रविराम, दन्तीन  
बोलका थोडा इत्यादि अभ्यास करते २ दिक्षा लेनेवा भाइ गोगरा पंथ भोपाल  
ली कर्मके जोरसे उनके मित्रोंने जबरदस्तीसे हुलामादाह के माध दण्डी अग्र १२  
दिया. दो पुत्र को छोड़ वो भी आरुण्य पूर्ण कर गए. एक पाण्डुरंग, मन्तराजी  
की प्रेरणामे तीसरी वत्त व्याव करनेके लिये मागदाह गते गने में पुनः श्री चंडे  
मागरजी महागज के दर्शन करने को गतनाम उतरे. वहा बहुत हासके जाल, भू  
पुत्रानी मे गजोट शीलव्रत धारण करने वाले भाइ कस्तुरचंदजी लगेष्ट केवलचंदजी  
को मिले. वो उनको बताने लगे कि, 'विपका प्यावा महज ही गिरग्या ले' पुनः उ  
सको भग्नेको यशो 'तयाग होने हो.' वो बताने उनको पूज्य श्रीके पास ले गये. पू-  
ज्य श्रीने वता:-'एव वत्ता वैरागी बने थे. अब बने (अब) दण्डको नेवार से  
यवा.' इत्यादि एतलो मुनबेचलचंदजी भास्वार्थन धारणकर लेदलाने दियेलेला  
दियार स्वल्नोको दर्शाया परंतु जगह नही मिलनेसे वह समयक दियारदर्शन भ्रष्ट  
मंदाउन बरी और समस्त ११४३ देव सूची-के राज श्रीदण्ड विहीन दण्डाद्वयक दियार  
ले पूज्यभी दूषापिजीमागजके सिप्यद्वय हीन दण्ड अस्वास्व २२३३ दण्डी दूष  
की १,२,३,४,५,६,७,८,९,१०,११,१२,१३,१४,१५,१६,१७,१८,१९,२०,२१,२२,२३,२४,२५,२६,२७,२८,२९,३०,३१,३२,३३,३४,३५,३६,३७,३८,३९,४०,४१,४२,४३,४४,४५,४६,४७,४८,४९,५०,५१,५२,५३,५४,५५,५६,५७,५८,५९,६०,६१,६२,६३,६४,६५,६६,६७,६८,६९,७०,७१,७२,७३,७४,७५,७६,७७,७८,७९,८०,८१,८२,८३,८४,८५,८६,८७,८८,८९,९०,९१,९२,९३,९४,९५,९६,९७,९८,९९,१००,१०१,१०२,१०३,१०४,१०५,१०६,१०७,१०८,१०९,११०,१११,११२,११३,११४,११५,११६,११७,११८,११९,१२०,१२१,१२२,१२३,१२४,१२५,१२६,१२७,१२८,१२९,१३०,१३१,१३२,१३३,१३४,१३५,१३६,१३७,१३८,१३९,१४०,१४१,१४२,१४३,१४४,१४५,१४६,१४७,१४८,१४९,१५०,१५१,१५२,१५३,१५४,१५५,१५६,१५७,१५८,१५९,१६०,१६१,१६२,१६३,१६४,१६५,१६६,१६७,१६८,१६९,१७०,१७१,१७२,१७३,१७४,१७५,१७६,१७७,१७८,१७९,१८०,१८१,१८२,१८३,१८४,१८५,१८६,१८७,१८८,१८९,१९०,१९१,१९२,१९३,१९४,१९५,१९६,१९७,१९८,१९९,२००,२०१,२०२,२०३,२०४,२०५,२०६,२०७,२०८,२०९,२१०,२११,२१२,२१३,२१४,२१५,२१६,२१७,२१८,२१९,२२०,२२१,२२२,२२३,२२४,२२५,२२६,२२७,२२८,२२९,२३०,२३१,२३२,२३३,२३४,२३५,२३६,२३७,२३८,२३९,२४०,२४१,२४२,२४३,२४४,२४५,२४६,२४७,२४८,२४९,२५०,२५१,२५२,२५३,२५४,२५५,२५६,२५७,२५८,२५९,२६०,२६१,२६२,२६३,२६४,२६५,२६६,२६७,२६८,२६९,२७०,२७१,२७२,२७३,२७४,२७५,२७६,२७७,२७८,२७९,२८०,२८१,२८२,२८३,२८४,२८५,२८६,२८७,२८८,२८९,२९०,२९१,२९२,२९३,२९४,२९५,२९६,२९७,२९८,२९९,३००,३०१,३०२,३०३,३०४,३०५,३०६,३०७,३०८,३०९,३१०,३११,३१२,३१३,३१४,३१५,३१६,३१७,३१८,३१९,३२०,३२१,३२२,३२३,३२४,३२५,३२६,३२७,३२८,३२९,३३०,३३१,३३२,३३३,३३४,३३५,३३६,३३७,३३८,३३९,३४०,३४१,३४२,३४३,३४४,३४५,३४६,३४७,३४८,३४९,३५०,३५१,३५२,३५३,३५४,३५५,३५६,३५७,३५८,३५९,३६०,३६१,३६२,३६३,३६४,३६५,३६६,३६७,३६८,३६९,३७०,३७१,३७२,३७३,३७४,३७५,३७६,३७७,३७८,३७९,३८०,३८१,३८२,३८३,३८४,३८५,३८६,३८७,३८८,३८९,३९०,३९१,३९२,३९३,३९४,३९५,३९६,३९७,३९८,३९९,४००,४०१,४०२,४०३,४०४,४०५,४०६,४०७,४०८,४०९,४१०,४११,४१२,४१३,४१४,४१५,४१६,४१७,४१८,४१९,४२०,४२१,४२२,४२३,४२४,४२५,४२६,४२७,४२८,४२९,४३०,४३१,४३२,४३३,४३४,४३५,४३६,४३७,४३८,४३९,४४०,४४१,४४२,४४३,४४४,४४५,४४६,४४७,४४८,४४९,४५०,४५१,४५२,४५३,४५४,४५५,४५६,४५७,४५८,४५९,४६०,४६१,४६२,४६३,४६४,४६५,४६६,४६७,४६८,४६९,४७०,४७१,४७२,४७३,४७४,४७५,४७६,४७७,४७८,४७९,४८०,४८१,४८२,४८३,४८४,४८५,४८६,४८७,४८८,४८९,४९०,

के आगारसे करी, और इसके सिवाय, छ; महीने तक एकान्तर उपनाम वगैरा बहुत तप किया. तथा पूर्व, पंजाब, मालवा, गुजरात, काठीयावाड, झालवाड, मोंचनाड, मेवाड, मारवाड, तेलंगाणा, दक्षिण, वगैरा बहुत देश स्पश

श्री केवलचंदजीके ज्येष्ठ पुत्र अमोलख चंदजी पिताकी साथ ही दिक्षा लेने-को तैयार हुवे, परन्तु बाल्यके सब्र से स्वजनोंने आज्ञा नहीं दी और मोमाल में पहुंचा दिया. एकदा कबीर श्री तिलोक ऋषिजी महाराजके पादवी शिष्य पंडित श्रीरत्नऋषिजी महाराज और तपस्वी श्रीकेवलऋषिजी महाराज इच्छानगर ग्राम पधारे. वहांसे दो कोस रेडी ग्राम में मामाके यहां अमोलख चंदजी थे वो पिताके दर्शनार्थ आये. दर्शन से वैराग्य पुनः जागृत हुआ, और ११ वर्ष जितनी छोटी दय में (स-म्वत् १९४४ फालगुण वदी २ को दिक्षा धारण करली. श्री अमोलख ऋषिजी श्री केवल ऋषिजी के शिष्य होने लगे, परंतु उन्होंने कहा कि मेरा अभी शिष्य करने का इरादा नहीं है. तब पूज्य श्री खुवाऋषिजी महाराज के पास लगये, पूज्य श्रीने अ-मोलख ऋषिजीको अपने ज्येष्ठ शिष्य श्री चेना ऋषिजी महाराजके शिष्य बनाये. थोड़े ही कालमें श्री चेनाऋषिजी और श्री खुवा ऋषिजीका स्वर्गवास होनेसे श्री अ-मोलख ऋषिजीने श्री केवल ऋषिजीके साथ तीन वर्ष विहार किया. फिर श्री केवल ऋषिजी एकल विहारी हुवे. और श्री रत्नऋषिजी दूर ग्राम रहे, इसलिये अमोलख ऋषिजी दो वर्षतक श्री भेरु ऋषिजी के साथ रहे, उसवत्त सं. १९४८ के फालगुन में ओसवाल जाती के पन्नालालजी नाम के ग्रहस्थने १८ वर्ष की उम्रमें दिक्षा धा-रन कर अमोलख ऋषिजीके चले हुवे. उनको साथ ले जावरा ग्राममें आये, वहां श्री कृपारामजी महाराजके शिष्य श्री रूपचंदजी गुरु के त्रियोगसे दुःखी हो रहे थे. उनको संतोष उपजाने पन्ना ऋषिजी को समर्पण कर दिये, देखिये! एक यह भी उ-दारता! पीछे श्री रत्नऋषिजीका मिलापहोनेसे उनके साथ विचरे. इन महापुरुषने उ-नको योग्य ज्ञान, बहुत खंतसे शास्त्रभ्यास कराया, जिसके प्रसादसे गद्य-पद्यमें कि-सनेक ग्रंथ बनाये, और बना रहे हैं. तथा अनेक स्वमति-परमतियों को सत्य धर्ममें द्रढ़ किये और कर रहे हैं.

श्री अमोलख ऋषिजी के, संवत् १९१५ में मोती ऋषिजी नाम के एक शि-ष्य हुए, कि जिनोने बंध में काल किया.

हमारे सुभाग्योदय से स० १९६२ से तपस्वीराज श्री केवल ऋषिजी महारा

ज रस्ते में छुट्टा बचा आदि अनेक दुःख परिसर सहन कर यह क्षेत्र पावन किया और वृद्ध अवस्थाके कारण से अशक्त शरीर होने से यहां विराजमान हुवे थे. और इनकी सेवामें पंडित प्रवर बाल ब्रह्मचारी श्री अमोलख ऋषिजी महाराज यहां विराजते थे. मुनि श्रीके सद्बोधसे आजतक ५४००० पुस्तके अमूल्य सर्व हिंदमें और ब्रह्मा अमेरिका, आफ्रिका, आदि देशोंतक दिये गये हैं. इससे खुला मालुम होता हैकि विद्वान् मुनिराजों और उदार प्रणामी श्रावकोका सम्बन्ध मिलनेसे समयानुसार प्रवृत्ति करने से जग जीवोंको कैसा लाभ मिलता है.

अब हम आत्यन्त अपसोस से कहते हैंकि-हमारे इस क्षेत्रको धर्म मार्ग में प्रसिद्ध लाने वाले और ज्ञान दान का अमूल्य दान दिला सर्व हिन्द के धर्मात्माओंको तोष ने वाले तपस्वीराज श्री केवल ऋषिजी महाराज वि. सं. १९७१ की चैत सुदी प्रति पदासे बीमारी बहुत ही बड़गड़ तब सावण वद्य २ को सर्व साथ अत्यन्त नम्र भावने खमनखमना करीये. और नवमीके दिन आलोचना निन्दना कर अन्नाहारक त्याग किये और १३ मंगलवार के दिन १०॥ बजे अपने मुखसे संयारा कर १॥ बजे देहोत्सर्ग हुवा !! और श्री अमोलख ऋषि जी उग्रह विहारी हुवे. जिसमे जैसे राजा बिना रइयत मुनि तैसेही सब यहां का होकर ज्ञान खाता वन्य पदा है जी.

हमारी नम्र विनंती हैकि जैसा प्रयास ज्ञान वृद्धि का बाल ब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलख ऋषिजी ओर इन के सद्बोध से यहां के तथा अन्यग्राम के श्राव कोने किया हैं. इससे भी अधिक सर्व हिन्दके साधु मार्गीयों से होने की अत्यन्त आ वश्यकता है, जो सर्व मंघ इस प्रत्यक्ष दाखले को ध्यान में लेकर, ज्ञान वृद्धि-सम्प-वृद्धि बनैरा साधुमार्गी धर्मोन्नति के एकेक कामों का स्वीकार कर यथा शक्ति प्रवृत्ति करेंतो यह पूर्ण शुद्ध धर्म पुनः पूर्ण प्रकाश मय होवे !

धर्मोन्नति इच्छक,

राजा बहादुर लाल-सुखदेव सहायजी ज्वालाप्रशाद.

के आगारसे करी, और इसके सिवाय छः महीने तक एकान्तर उपवास वगैरा बहुत तप किया। तथा पूर्व, पंजाब, मालवा, गुजरात, काठीयावाड, झालवाड, सोनवाड, मेवाड, मारवाड, तेलंगाणा, दक्षिण, वगैरा बहुत देश स्पश

श्री गेवलचंदजीके ज्येष्ठ पुत्र अमोलख चंदजी पिताकी साथ ही शिक्षा लेने-को तैयार हुवे, परन्तु बाल्यके सबब से स्वजनोंने आज्ञा नहीं दी और मोमाल में पहुंचा दिया। एकदा कबीर श्री तिलोक ऋषिजी महाराजके पाटवी शिष्य पंडित श्रीरत्नऋषिजी महाराज और तपस्वी श्रीकेवलऋषिजी महाराज इच्छावर ग्राम पधारे। वहांसे दो कोस खेडी ग्राम में मामाके यहां अमोलख चंदजी थे वो पिताके दर्शनार्थ आये। दर्शन से वैराग्य पुनः जागृत हुआ, और ११ वर्ष जितनी छोटी दय में (संवत् १२४४ फालगुण वदी २ को शिक्षा धारण करली। श्री अमोलख ऋषिजी श्री केवल ऋषिजी के शिष्य होने लगे, परंतु उन्होंने कहा कि मेरा अभी शिष्य करने का इरादा नहीं है। तब पूज्य श्री खुवारूपिजी महाराज के पास लेगये, पूज्य श्रीने अमोलख ऋषिजीको अपने ज्येष्ठ शिष्य श्री चेना ऋषिजी महाराजके शिष्य बनाये। थोड़े ही कालमें श्री चेनाऋषिजी और श्री खुवा ऋषिजीका स्वर्गवास होनेसे श्री अमोलख ऋषिजीने श्री केवल ऋषिजीके साथ तीन वर्ष विहार किया। फिर श्री केवल ऋषिजी एकल विहारी हुवे। और श्री रत्नऋषिजी दूर ग्राम रहे, इसलिये अमोलख ऋषिजी दो वर्षतक श्री भेरु ऋषिजी के साथ रहे, उसवक्त सं. १२४८ के फालगुन में ओसवाल ज्ञाती के पन्नालालजी नाम के ग्रहस्थने १८ वर्ष की उम्रमें शिक्षा धारण कर अमोलख ऋषिजीके चले हुवे। उनको साथ ले जावरा ग्राममें आये, वहां श्री कृपारामजी महाराजके शिष्य श्री रूपचंदजी गुरु के त्रियोगसे दुःखी हो रहे थे। उनको संतोष उपजाने पन्ना ऋषिजी को समर्पण कर दिये, देखिये! एक यह भी उदाहर्ता! पीछे श्री रत्नऋषिजीका मिलापहोनेसे उनके साथ विचरे। इन महापुरुषने उनको योग्य ज्ञान, बहुत खतसे शास्त्रभ्यास कराया, जिसके प्रसादसे गद्य-पद्यमें कितनेक ग्रंथ बनाये, और बना रहे हैं। तथा अनेक स्वमति-परमतियों को सत्य धर्ममें द्रढ़ किये और कर रहे हैं।

श्री अमोलख ऋषिजी के, संवत् १२६५ में मोती ऋषिजी नाम के एक शिष्य हुए, कि जिनोंने बच्यह में काल किया।

हमारे सुभाग्यादेय से स० १२६२ से तपस्वीराज श्री केवल ऋषिजी महारा

ज रस्ते में छुट्टा घषा आदि अनेक दुःखर परिसह सहन कर यह क्षेत्र पावन किया और वृद्ध अवस्थाके कारण से अशक्त शरीर होने से यहां विराजमान हुवे थे. और इनकी सेवामें पंडित प्रवर बाल ब्रह्मचारी श्री अमोलख ऋषिजी महाराज यहां विराजते थे. मुनि श्रीके सद्बोधसे आजतक ५४००० पुस्तके अमूल्य सर्व हिंदमें और ब्रह्मा अमेरिका, आफ्रिका, आदि देशोंतक दिये गये हैं, इससे खुला मालुम होता हैकि विद्वान मुनिराजों और उदार प्रणामी श्रावकोका सम्बन्ध मिलनेसे समयानुसार प्रवृत्ति करने से जग जीवोंको कैसा लाभ मिलता है.

अब हम आत्यन्त अपसोस से कहते हैंकि हमारे इस क्षेत्रको धर्म मार्ग में प्रसिद्ध लाने वाले और ज्ञान दान का अमुल्य दान दिला सर्व हिन्द के धर्मात्माओंको तोष ने वाले तपस्वीराज श्री केवल ऋषिजी महाराज वि. सं. १९७१ की चैत सुदी प्रति पदासे बीमारी बहुत ही बडगड़ तब सावण वद्य २ को सर्व साथ अत्यन्त नम्र भावसे खमतखमता करीये. और नवमीके दिन आलोयणा निन्दना कर अन्नाहारक त्याग किये और १३ मंगलवार के दिन १०॥ वजे अपने मुखसे संथारा कर १॥ वजे देहोत्सर्ग हुवा !! और श्री अमोलख ऋषि जी उग्रह विहारी हुवे. जितसे जैसे राजा विना रइयत मुनि तैसेही सब यहां का होकर ज्ञान खाता वन्ध पदा है जी.

हमारी नम्र विनंती हैकि जैसा प्रयास ज्ञान वृद्धि का बाल ब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलख ऋषिजी ओर इन के सद्बोध से यहां के तथा अन्यग्राम के श्राव कोने किया हैं. इससे भी अधिक सर्व हिन्दके साधु मार्गीयों से होने की अत्यन्त आवश्यकता है, जो सर्व संघ इस प्रत्यक्ष दास्तले को ध्यान में लेकर, ज्ञान वृद्धि-सम्प-वृद्धि वमैरा साधुमार्गी धर्मोन्नाते के एकेक कार्यों का स्वीकार कर यथा शक्ति प्रवृत्ति करेंतो यह पूर्ण शुद्ध धर्म पुनः पूर्ण प्रकाश मय होवे !

धर्मोन्नाति इच्छक,

राजा बहादुर लाला-सुखदेव सहायजी ज्वालाप्रशाद.

# द्वी मुक्ति सोपान-गुणस्थान रोहण अदीशतद्वारीका

❀ शुद्ध पत्रम्. ❀

पाठक गणों! प्रथम निम्न लिखित अशुद्धियोंको शुद्धकर फिर यन्नासे पढ़ीये.  
पृष्ठ. ओली. अशुद्ध. शुद्ध. | पृष्ठ. ओली अशुद्ध. शुद्ध.

३	२६	नतव्य	भन्यतव्य
७	१३	चिविक्षित	विविक्षित
८	४	अवघण	अवघेणा
११	१७	गौत्रकर्मद्वार	गौत्रकर्मभंगद्वार
१२	२५	समुठ घाए	समुघाए
२३	९	सयय	संजय
१७	११	दोस्थानीरसका	०
२२	२६	रणघात	रसघात
२५	२५	सज्वला	संज्वल
२६	६	लाभ	लोभ
२६	२८	रण	करण
२८	१०	सम	समय
३६	३	करीना	करना
३९	१५	विराय	विराम
४१	२३	ल	लृ
४२	७	संघयण	संघयण
४३	२२	अटक	अटक
४४	२०	शास्त्रवसे	शास्त्रसे व
४५	३	जीवोंगे	जीवोंने
४५	४	में	०
४५	१७	मा	मारे
४५	१८	देवोंगे	देवोंगे
५०	१	मिथ्यात्व	मिथ्यात्व
५०	१५	दी	दीप
५०	२५	रीतराग	दीतराग
५१	१८	पात्र	मात्र
५२	१३	गुड	गुड
६०	४	मुया	भूया
६०	१६	मरमणान	में रमणता

६४	३	प्रमाणउ	प्रमाण
६५	२	आश्रय	आश्रव
६६	८	परम तु	पु खलु
६९	२	तंत्र	त्रन
७१	३	भागवन	भोगवने
७४	१२	भोजन	भाजन
८१	९	व्रतिमा	परतिमा
८१	१८	वाम	वाङ्ग
८४	२५	चारिक	उपचारिक
९२	११	आयुष्य	आयुष्य
९२	१२	सुखस्वस्थान	मुखस्थान
९४	२६	रूप और	पारम क.मु.कि
९५	१	पत	तप
९७	२७	का	कर
९९	२५	को	की
१००	२४	को को	की
१०३	३	त्व(छाल)चा	त्वचा(छाल)
१०५	२	में	०
१११	८	वोटाणावाकरहाजावे	०
"	१४	कालका	शालाका
११४	२३	परिता	परिता
११८	४	को	क्रोड
१२१	१८	नड	इन
१२२	१०	परिवार	परिवारमे
१२३	३-४	दक्षिण	उत्तर
१२४	४	भोजन	भोजन
"	१२	घात	घात
"	२१	प्रवर्ष	वर्षत
१२८	१६	७ और	और ७

१३१	१४ कथनयाकरे	कथनकर	१६ वर्वणा	वर्गणा
१३२	२० न्यय	अन्य	१९० १ अनाति	अनन्ति
१३३	२२ रूप	रूपी	१८ वर्गणा	०
१३५	११ और	सो	१९३ ५ धंवाता	बंधाता
१३८	३ उपावसे	उपावसे	१९५ १५ सो	यों
१४१	१६ मान	मन	१९६ ६ धीणद्ध	धीणद्धी
१४२	८ स्वभा	स्वभाव	१३ मिलेता है	मिलता है
१४३	१२ ऐपिन्ह	ऐसे पिंड	२४ वस	सव
१४४	१२ ओ	और	१९९ २८ अद्वैत	अद्वैत
१४५	१५ डर्म-सूर्य	डर्म-सूर्य	२०० ५ वत	तव
१४६	११ चडे	जडे	२०१ १० गार्विकमे	गौव कर्म
१४७	१६ आताम	आताप	२०२ १९ प्रति	प्रकृति
१५५	१२ (धूल)	(धूल)	२१२ पृष्ठांक २०२	२१२
१६२	९ संयमा	संयम	२१२ १६ तथा	तया
१६४	८ वोध	वन्ध	२१४ १० सोने से	होनेसे
१६५	२५ होवाहै	होताहै.	१२ वो	वे
१६६	५ का	०	२५ सूयकीप्रभाव	सूर्यकी प्रभा
१६८	१४ अंतिप	अतिम	२१५ १६ सो	स
१६९	११ हारय	हांस्य	२१७ १२ ड्यावर	स्यावर
१७०	नोट भी केए	भी एक	११ नोट और भी	और कभी
१७१	४ स्थानवर	स्थावर	२२० ११ पमश	उपशम
१७२	१४ शुभ	०	२२१ ११ धय	धय
१७३	१५ संतोष	संतोष	११ फेवल	केवल
१७४	१७ अस्थिपटक	अस्थिर पटक	२२३ ३ संयोग	संयोगी
१७५	५ वेधन	बंधन	२२५ नोट संगव	संभव
१७६	१८ प्रकृति	प्रकृति का	११ शक्तका	शक्ता
१७७	१८ वत	तव	२२६ पृष्ठांक १३६	२२६
१७८	२१ ख्यानी	०	११ कर्मक	कर्मके
१७९	२ धीण विक	धीणद्धी विक	१८ असाताक्षयका	आसाताकाक्षय
१८०	१४ नरगाति	नरकगाति	२२७ ४२२का२२का, २२का२१का	२७का, १७का,
१८१	१७ अध्यायसाय	अध्यवसाय	११ और २	और २ में का
१८२	१२ संघयण	संघयण	११ नोट विवमन्न	विमान
१८४	८ इस	०	२२८ इस पृष्ठमें गडबडबहुतही होगई है	
२८१	१ जयस्य	जयन्त्य		



२२९

५ गपावे

सपावे

"

१० सत्तान

सत्ता

"

१९ वाकीकेके

वाकी के

२३०

नो६ प्रत्याख्यानी

अप्रत्याख्यानी

२३१

२ जनन्ता

अनन्तान

"

५ पूवाक्त

पूर्वोक्त

२३२

२ २ स्य

२ हांस्य

"

४ हांडन

इन

२३५

१८ और दे

और दो

२३६

१४ सन्त

सत्ता

२४१

४ संज्वसल

संज्वल

२४३

६ तिर्यचायु

तिर्यचायु

"

१३ सात ७

सत्ता ७

२४४

१३ जानवाले

जानेवाले

२४७

७ नद्योत

उद्योत

२४७

२६ अस्ति

आस्थिर

२५०

२ सूक्ष्मपर्याप्ता

सूक्ष्म अपर्याप्ता

"

नो४ जितन

जितनी

२५१

१७ का, का,

का,

"

नो१ कायसे

कायसे

"

१ और

और

२५२

२ अयः

अयशः

"

७ सति

रति

"

१० उदमें

उदय में

२५५

४ योते है.

होते है.

"

नोट दौर्भाग्य

दौर्भाग्य

२५७

६ इस ओलीपेंभी गडवड होगया

"

"

१५ सनुष्य

मनुष्य

"

२१ १-भाया

१ भाङ्गा

"

२४ तीर्थकर के

तीर्थकर के

२५८

२ और २२

और १२

"

१९ २ पचेन्द्रिय

३ पचेन्द्रिय

"

२२ यह

यहां

"

८ वैक्रय

२ वैक्रय

"

३४

२५२

२ नक में

नर्क में

"

२७ और ३१ का और ३१

२६०

१७ ८ नरक

२ नर्क

२६१

७ स्थान नहीं

स्थानही

२६२

१२ स्थार

स्थान

२६३

१० लत्ता

मत्ता

२६५

१० चनुष्य

मनुष्य

"

१६ नका

इनको

"

१७ ७८ मत्ता

७८ की मत्ता

२६६

१२ व्रतनते

प्रवर्तते

"

नो५ यनके

इनके

"

१० मोव्य

योग्य

२६७

१९ करो

कर

२६८

१४ यदय

उदय

२६९

नो१ भांह

भाङ्गे

"

१८ वावीके

वाकी के

१७२

१८ जिनन्त

जितना

१७३

६ एकेद्रियान्हक एकेद्रियादिक

१७४

१९ जैसा शमिक

ओपशमिक

१८१

३ गात्र

गौत्र

"

५ कर्म होतेहै

कर्मके होते हैं

१८३

४ पशु

पञ्च

१८७

७ उदयावसी

उदयावली

"

१७ नने

होने

२८२

२ परिमाण

परिणाम

२८१

१० खुसासा

खुलासा

"

१६ उत्कृष्ट

उत्कृष्ट

२९२

२५ अपकर्षण

अपकर्षण

२९३

२ कर्णों

कर्णों

"

५ इही

दोही

२९३

७ चपकर्ष

अपकर्ष

"

११ झूलासा

खुलासा

११

१४ फरसीफरसी

फरसी

१५

१५ यथा

तथा

"

२९३	१२ सम्दग	सम्यग	३३६	७ टासस्म	ठाणस्म
"	२३ निर्जरा	निर्जरा	३४६	१५ औदायिक	कुछ औदायिक
२९६	७ कर	०	३५०	६ गुरुमिथ्यात्व	पुरुगर्नामिथ्यात्व
२९७	१५ नन	मन	३५४	४ (अचारी)	(अचौरी)
२९८	१४ निर्यच	तिर्यच	"	१५ प्रका	प्रकार
"	१८ कैशल्यता	कौशल्यता	"	१९ ८	२
३०१	१२ पुष्क	पुष्प	३५६	१५ पूर्य	पूर्ण
"	१७ सति	सात	३५७	१३ गमन गमन	ममनागमन
"	२७ काले	वाले	३५८	१० सो मोह	सो क्षीण मोह
३०२	४ आद्रय	कण्डया	३६०	१३ मिथ्यात्व	मिथ्यात्व
"	६ रत्नारसया	रसया-रत्नमें	३६७	१६ वीसरे	तीसरे
३०३	१७ वर्व	पूर्व	३६९	१६ जयस्य	जयन्य
३०५	१४ क वित	कषायला	३७०	२ औ	और
"	१७ मनुष्य	धनुष्य	"	३ तथा	तथा
३०७	२८ जुड	जुडे	"	६ अनन्तांत	अनन्तानन्त
३०८	५ एणधर	गणधर	"	१० क्रोड	क्रोड
"	७ आदारिक	औदारिक	३७१	५ अनन्तात	अनन्तानन्त
"	७ सूत्र	शूत्र	३७२	२० तिजय	विजय
"	१८ हडीयों	हडीयों	३७४	९ मुहुर्त	०
३१२	७ वड	पड	"	१० गमत	प्रमत
३१४	८ ययार्थ	ययार्थ	३७५	३ मुदूर्त	मुहुर्त
३१७	४ व्युच्छिन्नकिरिचव्युच्छिन्नकिरिय		३७६	पृष्ठांक ७६६	३७६
३१८	६ पढते	०	"	१८ जाम	जाय
३२१	५ जयन्य	जयन्य	३७७	१२ वेजावे	वेजावे, और
३२३	४ अतिवार	अतिचार			वारवे जावे.
"	२८ "	"	३८३	१० होता है	तेहै
३२५	इसपृष्ठी पांचवी ओलीभीवडेअन्नमें		"	१८ १ जयन्य	जयन्य १
"	१२ ८	८ स्त्रीपरिसह	३८४	१७ अडातीसवा	अडतीसवा
३२७	५ दूर	दूर	३८५	१ कौर	और
"	१७ मुप्य	युप्य	"	९ मिथ्यात्व	०
३२८	५ ३३ सागर	३ पल्योपम	३८८	१० संयनि	संपति
"	१२ क्रोड पूर्व	देशगणाक्रोडपूर्व	३८९	५ प्रयम	द्वितीय
३३०	२० (इन वचन	(इन मन वचन	३९१	३ १९ अण्वर०	१९ अणाभोगव
३६२	४ कुद्धि	कुद्धि		अनाभोगा	तिया; २० अणव
				पंकवतीया.	कंववतीया.

३९६	११ बन्ध	बध	४६५	१२ इक्कासवाकर्म	इक्कीसवाकर्मसता
३९९	३ ६	०	४६६	४ अविरतिमें	अविरति मे
४०४	१५ आगे पाग	अड्डोपाङ्ग	४६८	१२ सत्ता	साता
४०५	८ होता है.	होतहै.आगे गौ	४६९	१८ सत	सत्ता
		व कर्मका बंधनहीं	४७३	९ तिर्यचाकायु	तिर्यचायुका
४०६	१४ का ३१	३१ का	"	१४ तिर्यचु	तिर्यचायु
४०७	१३ प्रकृति	प्रकृति बन्ध	४८२	९ ३ ज्ञान	३ अज्ञान
४०९	८ ११	१२	"	११ ३ दर्शन	३ ज्ञान ३ दर्शन
४१०	७ अठाय	अठारा	४८४	१३ हेडिगरहगया	समुचयभावद्वार
४११	८ कर्म बन्ध	कर्मप्रकृतिबन्ध	४८८	४ नेलवान्धि	न वन्धि
४१५	५ २	१	४८९	१४ और भी	और ४१ वा
"	२१ १	२	४९१	११ साववा	सातवा
४१७	५ ८	७	४९३	२० श्रमी	मिश्र
४१९	१६ ५३	५३में	४९४	१० अपर्माप्ते	अपर्याप्त
४३०	३ नस्कात	नरकानु	४९५	इस पृष्ठ में दोद्वार	छापने रहंगये
४३३	१ क्षीण	क्षीण	५००	८ हेडिगके नीचेके	ओली उपरचाहि
४३७	३ लोभ ३ विनका	लोभविना ३ ३का	५०१	१० लेश	लेशा
४४०	८ ३६१	३६	५०३	११ मरणद्वार	स्वर्गमर्यादद्वार
४४२	२२ अघाति	०	५०६	१३ सयरेगी	सयोगी
४४५	१६ केवली केवली केवली के		५०९	१० पायेचा	पायेचार
४४७	१२ ११२	११३	५११	४ तृतीतीर्था	तीर्थातीत
४५८	नोट स्य	स्वर्ग	५१४	७ प्रमाद	प्रमाद
४५९	७ और	०	५१८	७ ३	६
४६१	८ चउदवा	चउदवा	५२१	१५ निर्जरा	निर्जरा
"	२१ संयोगी	संयोगी		इस सिवाय औरभी बहुतसी अंशुद्धियों इ-	
"	२२ सालवा	सोलवा		स पुस्तक में रहगइ है. जिसका मुख्य सब	
४६२	२१ सत्तापाती	सत्ताद्वार		व विहार करने से प्ररूपका करक्सन बरोबर	
४६३	१३ १ अं	५ अं-		र न होना तथा बहुतही जलदी से काम पू	
४ ५	८ भागमें	भागमें		रा कराने का है इसलिये नम्र विनती है-	

कि जो जो अंशुद्धिया दृष्टि आवे उसे जानावोगे तो संभार स्वीकार द्वितीया वृत्ति छ  
पने के प्रसंग आनेसे सुधारा किया जायगाजी.

अमोल ऋषि.

# श्री मुक्ति-सोपानका अनुक्रमणी.

मङ्गला चरणम्	१/अवघेणा, उसति, पावति, क्षपति. औ
परिशिष्ट	२/द्रव्य परिमाण इन द्वारो के खुलासे
प्रवेगीका	७/के लिये प्रमाण बोध क हा है जिसमें
नाम खण्डानुक्रमणी और अर्थद्वार अर्थ	१३/डाला पाला के दृष्टांत से गणित वि-
प्रश्नोत्तर और प्रवेश द्वार अर्थ.	१५/भाग दर्शाया है
उपशम श्रेणिका खुलासा.	१६/क्षेत्र स्पर्शना और क्षेत्र प्रमाण के खु-
खपक श्रेणिका खुलासा.	३२/लासे के लिये अलोक का और लो-
लक्षणद्वार और ३४ मिथ्यात्व.	४४/कमे रहे मुरख क्षेत्रों का स्वरूप बताया
बोध दर्शन का स्वरूप.	५०/
नैयायिक दर्शन का स्वरूप	५३/द्वितीय खण्डानु क्रमणी
वैशानिक और सांख्य दर्शन	५३/जीव कर्म का स्वरूप और सन्वध १२८
मीमांसा दर्शन का स्वरूप	५४/ज्ञाना वरणी कर्म और ५ ज्ञानका , १२९
चार्वाक दर्शन का स्वरूप	५७/दर्शना वरणी कर्म और ९ प्रकृति १३४
चौथा गु. का अर्थ नवतत्त्व.	५९/वेदनी और मोहनी कर्म २८ प्रकृति १३६
पांचवे गु. का लक्षण ११ प्रतिमा.	६३/आयुष्य कर्म बन्ध के १६ कारण १४०
व्रत और अतिचार	६६/नाम कर्म की ९३ प्रकृति अर्थ युक्त १४१
छठे गु. लक्षण ५ महाप्रत	६९/गोत्र कर्म और अन्तराय कर्म १५१
सातवे गु. लक्षण ५ प्रमाद	८१/आठो कर्म की १४८ प्रकृति का यंत्र १५२
छठे दृष्टान्त द्वारका खुलासा	८५/किरिया द्वार का अर्थ २५ क्रिया १५५
३६३ पाखंडी ५ समवाय	८६/हेतुद्वार ५७ हेतुका खुलासा १५७
कृष्ण वासुदेव श्रेणिक महाराज	८६/प्रकृति बन्ध कर्म बन्ध के कारण १६१
दश श्रावको का यंत्र विवेचन	८९/कर्म बन्धके ४ प्रकार ८ ही कर्मोपर १६४
धन्नावा सार्थ दाही की कथा	९१/उत्तर प्रकृतियों पर ४ ही बन्ध १६५
आचार्य धर्म घोषजी की कथा	९३/स्थिति बन्ध के ४ भांडे आठों ही क
धन्ना अणगारवी कथा	९४/मकी और १४८ प्रकृति की ज उ.
मेघ कुमार की कथा.	९४/स्थिति. १७१
प्रमन्न चन्द्र राज ऋषिजी की कथा	९६/उन्मृष्ट स्थिति बन्ध के भ्रामि १७७
हरकेशी बल ऋषि की कथा	९६/अनुभाग (गम) बन्ध चौटाणी आदि १७८
गोतम गणधरका कथा	१००/जयन्त्य गम बन्ध के भ्रामि १७८
कुडरिक पुंडरिक की कथा	१०१/उन्मृष्ट गम बन्ध के भ्रामि १८१
खन्धक मुनि की कथा	१०२/गम बन्ध के चार प्रकार १८४
माद्यवीर भ्रामि कथा	१०३/नदेष बन्ध कर्म वर्णना का खुलासा १८६
गजमुकुमालजी की कथा	१०४/कर्मोंकी दालिखकी अल्पा बहुत १८६
सातवा गु. का अर्थ पुद्गल परावर्त	१०५/द्वय बन्ध की प्रकृति का अर्थ २००
	अश्रुव बन्धकी कर्म प्रकृतिका अर्थ २०१

धातिक अघातिक प्रकृतिका अर्थ	२०३	भरण, विग्रहगति, स्वर्ग मर्यादद्वार	३११
पुन्य पाप प्रकृति का अर्थ	२०५	चतुर्थ खण्ड.	
परावर्तमान, अपरावर्तमान प्रकृति	२०६	धर्मरोहणके ३३ द्वारों का खुलासा	३१३
भूयस्कारादि चारों वन्धका अर्थ	२०८	१२ उपयोगका खुलासा	३१३
उदय द्वारों और चारों विपाकका अर्थ	२१४	दृष्टि, भव्याभव्य, चरमाचरम, परिता	
ध्रुवोदय अध्रुवोदय की प्रकृति	२१६	परित, पट्टीद्वार, इनका खुलासा	३१४
उदीरणाके द्वारों का अर्थ	२१७	आत्मा, ध्यान ध्यान के पाये	३१६
मत्ताके द्वार और ध्रुवाध्रुव सत्ता	२१८	पट द्रव्य द्वार	३१७
कर्मोंके भङ्ग द्वारों का अर्थ	२१९	परिणाम, वीर्य, तीर्थ, सम्यक्त्व द्वार	३१८
ज्ञानावरणी-दर्शनावरणी के भाग	२२३	संयति, लिंग, चारित्र्य द्वार	३१९
वेदनीय कर्म के भाङ्ग	२२६	नियंठा द्वार ६ निग्रथार्थ	३२२
मोहनीय कर्म के भाङ्गादि	२२७	कल्प और परिसह द्वार	३२४
भाग्युप्य कर्म के भाङ्गादि	४२१	प्रमाद द्वार ९ प्रमाद	३२५
नाम कर्म के भाङ्गे १४ गुणस्थानपर	२६०	सरणी वीतरागद्वार	३२६
गौत्र कर्म के भाङ्ग	२८०	पडवाइ, छगस्त, समुत्थातद्वार	३२७
अनगय कर्म के भाङ्ग	२८१	देवद्वार ५ देवोंके बोल	३२८
वन्धी के और ड्योही के भाङ्गे	२८१	परिणामी, करण, निवृत्तिद्वार	३२९
पाँच भावोंका मुखामा	२८२	आश्रय और संवर के भेद	३३०
पाँच भावोंके भेद मुख से	२८४	निर्जरा और करणी फल द्वार	३३१
दशकरण द्वार का मुखामा	२९१	देयादि, तीर्थकर गौत्र वन्ध २० बोल	३३२
गुणश्रेणीका मुखामा	२९३	तीर्थकर स्पष्ट और मोक्ष द्वार	३३३
तृतीय खण्ड.		इति अर्थकांडानु क्रमणी.	
संसागरोहणके ४१ द्वारोंका मुखामा	२९९	अथ मूल खंडानुक्रमणी.	
सामान्य १४ विधेर ५६३ जीव भेद	२९९	प्रवेशिका	३३५
जीवायामी और कुल कोटी	३०१	मूल ३२ द्वारोंके नाम, १ नाम	३३६
वस व्यावर और मन्त्री अमन्त्री	३०२	दुमगार्थद्वार	३३७
भाषक, आह्वक-आज्ञादि-मचिनादि-	३०३	तीमग प्रश्नोत्तर द्वार	३३९
दिशी आहार, पर्याप्ताहारार्थ	३०४	चाथा प्रवेश द्वार	३४४
प्राणाद्वार, इन्द्रियद्वार	३०५	पाँचवा-लक्षण द्वार	३४५
इन्द्रिय विषयद्वार मुखामा	३०६	छटा-दृष्टान्तद्वार	३५९
संज्ञा-वेद-कपाय द्वार मुखामा	३०७	मानवा-गुणद्वार	३६५
वेद्याद्वार और ज्ञान द्वार मुखामा	३०८	आठव अवस्था द्वार	३६८
अग्नि द्वाका विशेषार्थ	३०९	नववा उत्पत्ति द्रव्य परिमाण	३६९
मन्त्रद्वार द्वाका मुखामा			

दृग्वा पावति द्रव्य परिमाण	३७०	६० अघातिक कर्म प्रकृति बन्ध	४११
ङ्ग्यारवा खपति द्रव्य परिमाण	३७१	६१ पुण्यकर्मबन्ध ६२ पुण्यप्रकृति	४१२
चारवा क्षेत्र परिमाण तेषां स्पर्शना	३७२	६३ पाप कर्म बन्ध द्वार	४१३
चन्द्रवा कालपरिमाण (स्थिति) द्वार	३७३	६४ पाप कर्म प्रकृति बन्ध	४१४
पन्द्रवा काल प्राप्त द्वार	३७५	६५ परावर्तमान कर्म प्रकृति बन्ध	४१५
मोलवा भावपरिमाण सतरावा निरं-	३७६	६६ परावर्तमान कर्म प्रकृति बन्ध	४१६
तर गुण, अठरावा मार्गणा द्वार	३७६	६७ अपरावर्तमान कर्म और ६८ अ	
उन्नीसवा उपमार्गणा द्वार	३७७	परावर्तमान कर्म प्रकृति बन्ध द्वार	४१७
वीसवा परस्पर मार्गणा द्वार	३७८	६९ भूयस्कार कर्म बन्ध और ७० भू	
इक्कीसवा परस्पर उपमार्गणा द्वार	३७९	यस्कार कर्म प्रकृति बन्ध द्वार	४१८
२२ उवरोह अवरोह, २३ चडाचडगाति	३७४	७३ अन्यतर कर्म बन्ध, ७२ अल्पतर	
चौबीसवा अन्तरकाल द्वार	३८२	कर्म प्रकृति बन्ध, ७३ अवास्थित कर्म	
२५ विरह २६ एकभवे स्पर्शना	३८३	बन्ध.	४२१
२७ बहुतभवे स्पर्शना २८ परस्पर	३८४	७४ अवास्थित कर्म प्रकृति बन्ध, ७१	
२९ पदमापदन, ३० शाश्वताशाश्वत	३८६	अव्यक्त कर्म बन्ध ७६ ममुचय कर्म	
३१ परभङ्गमन ३२ भवमंख्या और		प्रकृति बन्ध.	४२२
तेतीसवा अल्पा बहुतद्वार	३८७	७७ कर्म और ७८ कर्म प्रकृति बन्ध	
चौतीसवा किरियाद्वार	३९०	बुच्छति.	४२४
पैंतीसवा मूलहेतु (कारण) द्वार	३९१	७९ कर्मोदय ३४ द्वारोंके नाम	४१६
३६ मिथ्यात्व हेतु ३७ अविरत हेतु	३९२	ममुचयकर्मोदय, ८० ज्ञानावरणादय	४१७
३८ कपायहेतु, १९ योग हेतु	३९३	८१ दर्शनावरणी उदय, ८२ वेदनी	
४० ममुचय हेतुद्वार	३९५	उदय, ८३ मोहनीयोदय द्वार	४१८
४१ चार बन्ध ४२ ममुचय बन्ध	३९९	८४ आयुष्योदय ८५ नामोदय द्वार	४१९
४३ ज्ञानावरणी ४४ दर्शनावरणी	४००	८६ गोव कर्मोदय द्वार	४२१
४५ वेदनीय, ४६ मोहनीय बन्ध	४०१	८७ अन्तगयो दय ८८ ध्रुवकर्मोदय	
४७ आयुष्य कर्म प्रकृति बन्ध	४०२	८९ ध्रुवकर्म प्रकृतियों द्वार	४२२
४८ नाम कर्म प्रकृति बन्ध द्वार	४०३	९० अध्रुव कर्म, ९१ अध्रुव प्रकृति	४२३
४९ गोवकर्मबन्ध, ५० अन्तगयबन्ध	४०४	९२ पुण्य कर्मोदय द्वार	४२४
५१ ध्रुवकर्मबन्ध ५२ ध्रुवप्रकृतिबन्ध	४०५	९३ पुण्य कर्म प्रकृतियों दय	४२५
५३ अध्रुवकर्मबन्ध ५४ अध्रुवप्रकृति	४०६	९४ पाप कर्मोदय द्वार	४२६
५५ सर्व धातनिक कर्म बन्ध द्वार	४०८	९५ पाप कर्म प्रकृतियों दय	४२७
५६ सर्व धातनिक कर्म प्रकृति बन्ध	४०९	९६ क्षेत्र विनाक कर्मोदय, ९७ क्षेत्र	
५७ देशधायनिक कर्म बन्ध, ५८ देश-		विनाक प्रकृति, ९८ भवविनाक कर्म	४२८
धातनिक कर्मप्रकृति बन्ध ५९ अघाति	४१०	९९ भवविनाक कर्म प्रकृतियों दय	४२९

१०० जीवविपाक कर्मोदय द्वार	४३८	१३९ सर्वघातिकर्म प्रकृतिसत्ताद्वार	४६१
१०१ जीवविपाक प्रकृतियोदय	४३८	१४० देशघातिक कर्म सत्ताद्वार	४६१
१०२ पुद्गल विपाक कर्मोदय द्वार	४३९	१४१ देशघातिक कर्मप्रकृतिनत्ताद्वार	४६२
१०३ पुद्गल विपाक कर्मप्रकृतियोदय	४३९	१४२ अघातिक कर्म सत्ताद्वार	४६२
१०४ सर्व घातिक कर्मोदय द्वार	४४०	१४३ अघातिकर्म प्रकृति सत्ताद्वार	४६२
१०५ सर्व घातिक कर्म प्रकृतियोदय	४४१	१४४ समुचय कर्म प्रकृति सत्ताद्वार	४६३
१०६ देशघातिक कर्मोदय द्वार	४४१	१४५ कर्म सत्ता व्युच्छतिद्वार	४६५
१०७ देशघातिक कर्म प्रकृतियोदय	४४२	१४६ कर्म प्रकृति सत्ता व्युच्छति	४६५
१०८ अघातिक कर्मोदय द्वार	४४२	कर्म भङ्गादि १२ द्वार.	
१०९ अघाति कर्म प्रकृतियोदय	४४२	१४७ समुचय कर्म भंग द्वार	४६७
११० समुचय कर्म प्रकृतियोदय	४४५	१४८ ज्ञानावरणीय कर्म भंग द्वार	४६८
१११ समुचय कर्मोदय व्युच्छति द्वार	४४५	१४९ दर्शनावरणीय कर्म भंग द्वार	४६९
११२ समुचयकर्मप्रकृतियोदयव्युच्छति	४४५	१५० वेदनीय, १५१ मोहनीय भंग	४७०
कर्म उदीरणाके १२ द्वारो.		१५२ आयुर्कर्म भंग द्वार	४७२
११३ समुचय कर्म उदीरणा द्वार	४४७	१५३ नाम कर्म भंग द्वार	४७५
११४ ज्ञानावरणी, ११५ दर्शनावरणी	४८४	१५४ गोत्रकर्म भंग द्वार	४७६
११६ वेदनीय, ११७ मोहनीय उ०	४४९	१५५ अन्तराय कर्म भंग द्वार	४७७
११८ आयुर्कर्म, ११९ नामकर्म उ०	४५०	१५६ बन्धी के भंग द्वार	४७८
१२० गोत्रकर्म, १२१ अन्तरायकर्म उ.	४५१	१५७ इयविही के भंग द्वार	४७९
१२२ समुचयकर्म प्रकृति उदीरणा	४५१	भावादि १३ द्वार.	
१२३ कर्म उदीरणा व्युच्छति द्वार	४५३	१५८ मूल भाव द्वार	४८०
१२४ कर्म प्रकृति उदीरणा व्युच्छति	४४३	१५९ औदयिक भाव द्वार	४८१
कर्म सत्ताके १२ द्वार.		१६० ओपशमिक भाव द्वार	४८१
१२५ समुचय कर्म सत्ताद्वार	४५५	१६१ क्षयोपशमिक, १६२ क्षायिक भा	४८२
१२६ ज्ञानावरणी कर्म सत्ता द्वार	४५५	१६३ परिणामिक भावद्वार	४८३
१२७ दर्शनावरणीय, १२८ वेदनीयस	१५६	१६४ सत्री पातिक भावद्वार	४८३
१२९ मोहनीय कर्म सत्ताद्वार	४५६	१६५ समुचय भाव भेद द्वार	४८४
१३० आयुष्य कर्म सत्ताद्वार	४५७	१६६ श्रेणीद्वार	४८६
१३१ नाम, १३२ गोत्र, १३३ अन्तराय	४५८	१६७ कर्मवेद, १६८ कर्म निर्जरा	४८७
१३४ ध्रुव कर्म सत्ता द्वार	४५९	१६९ दशकरण, १७० गुणश्रेणीद्वार	४८७
१३५ ध्रुव कर्म प्रकृति सत्ताद्वार	४५९	१७१ आगतिद्वार	४८९
१३६ अद्रुव कर्म सत्ता द्वार	४६०	१७२ पागति, १७३ जागति १७९ आ-	
१३७ अद्रुव कर्म प्रकृति सत्ताद्वार	४६०	जाति, १७५ पाजाति	४९८
१३८ सर्व घातिक कर्म सत्ताद्वार	४६१	१७६ जाजाति, १८७ आकाया, १७८	

कायाद्वार	४९१	२१७ दृष्टि, २१८ भव्याभव्य, २१९
१७९ जाकाया, १८० आदंडक.		चरमाचरम, २२० परितापरित, २२१
१८१ पादंडकद्वार-	१९२	पद्मी द्वार ५०६
१८२ जाडंडक, १८३ जीवभेद,	१९३	२२२ आत्मा, २२३ ध्यानद्वार, ५०८
१८४ विशेष जीव भेदद्वार	४९४	२२४ ध्यानके पाये द्वार, ५०९
१८५ जीवायोनी, १८६ कुलकोडी,	४९५	२२५ द्रव्य, २२६ परिणाम, २२७
१८७ सूक्ष्म वादर, १८८ वसस्थार,		वीर्य द्वार, ५१०
१८९ सन्नीअसन्नी द्वार	४९६	२२८ तीर्यतीर्थ, २२९ सम्यक्त्व,
१९० भाषक अभाषक, १९१ अहारक		२३० संयतासंयति, २३१ लिंगद्वार ५११
अनारक, १९२ ओजादि आहार	४९७	२३२ चारित्र, २३३ भव्याभव्यद्वार ५१२
१९३ सचितादि आहार द्वार, १९४		२३४ कल्प, २३५ परिसह, ५१३
दिशी आहार द्वार,	४९८	२३६ प्रमाद, २३७ सरागी, वीतरागी
१९५ पर्याप्ता अपर्याप्ता द्वार		२३८ पडवाइ अपडवाइ ५१४
१९६ पर्याद्वार	४९८	२३९ छन्नस्त केवली, २४० समुदया
१९७ प्राणद्वार	४९९	त, २४१ देवद्वार, ५१५
१९८ इन्द्रिय, १९९ इन्द्रिय विषय,		२४२ परिणामी द्वार, ५१६
२०० सज्ञाद्वार,	५००	२४३ करण द्वार ५१७
२०१ वेदद्वार, २०२ कषाय द्वार,		२४४ निवृत्ति द्वार ५१८
२०३ लेशाद्वार, २०४ योग द्वार, ५०१		२४५ आश्रव द्वार ५१९
२०५ शरीर, २०६ संघयण, २०७		२४६ संवर द्वार ५२०
संठाण २०८ मरण द्वार	५०२	२४७ निर्जरा, २४८ निर्जरा भेद
२०९ विग्रहगति, २१० स्वर्गकी मर्या		द्वार, २४९ करणी फल द्वार ५२१
दा, २११ षटस्थान	५०३	२५० तीर्थकर गोत्रोपार्जना, ५२१
२१२ मूल उपयोग द्वार	५०५	तीर्थकर स्पर्शना, और २५२ मोक्ष ५२२
२१३ अज्ञान, २१४ ज्ञान, २१५ द-		इनके २५२ द्वारों के संक्षेपित यंत्र,
शन, २१६ समुचे उपयोग,	५०६	इति मुक्तिसोपानकी अनुक्रमणी.



## ग्रंथ प्रसिद्ध कर्ताका संक्षिप्त

## जीवन चरित्र.

[illegible]

୧. ଯଦି ଏକ ବସ୍ତୁର ଗତିର ସମ୍ବନ୍ଧରେ କେହି କିଛି ଜାଣନ୍ତି ନାହିଁ, ତେବେ ଏହାକୁ ଗତିର ସମ୍ବନ୍ଧରେ କେହି କିଛି ଜାଣନ୍ତି ନାହିଁ ବୋଲି କହିବାକୁ ହେବ ।  
 ୨. ଯଦି ଏକ ବସ୍ତୁର ଗତିର ସମ୍ବନ୍ଧରେ କେହି କିଛି ଜାଣନ୍ତି, ତେବେ ଏହାକୁ ଗତିର ସମ୍ବନ୍ଧରେ କେହି କିଛି ଜାଣନ୍ତି ବୋଲି କହିବାକୁ ହେବ ।  
 ୩. ଯଦି ଏକ ବସ୍ତୁର ଗତିର ସମ୍ବନ୍ଧରେ କେହି କିଛି ଜାଣନ୍ତି, ତେବେ ଏହାକୁ ଗତିର ସମ୍ବନ୍ଧରେ କେହି କିଛି ଜାଣନ୍ତି ବୋଲି କହିବାକୁ ହେବ ।

१. ... ..  
 २. ... ..

[illegible][illegible]

... ..  
 ... ..  
 ... ..

... ..  
... ..

१४ अप्रैल १९१३ को सिकन्द्राबादमें भाराई जिसमें रु. २१-०० का सद्व्यय किया, और ७४०० रुपये देकर स्या. कान्फरन्स आफिस को बतौर दान पत्र सामाग्री युक्त बना दिया. और भी हजारों रूपका सद्व्यय कर हैदराबाद में एकही वक्त चारों सत्पूरुषोंकी दिक्षा उत्सव किया. तैसे ही प्रथम अपने देशमें भी केइयोके दिक्षा दिराइ है. ऐसे और भी गुप्त दान अवसर उचित कर यथा अवसर यथा उचित द्रव्य व्यय कर रहे हैं. यों तन धन मन कर यथा शक्ति धर्म दीपा रहे हैं, यह लालाजी साहेब की धर्म फैलाव की उत्कंठा हरेक श्रीमंतोंको अनुकरण करने जैसी है. ऐसे उदार कृत्यों से धर्म दीपता है, सदज्ञान के प्रसारसे अपने भी ज्ञान वर्णीय कर्म क्षय होते हैं. और पढ़नेवाले को सुगने वालेको, यों एकेकसे आगे अनेक जीवों को महा लाभ मिलता है. इसलिये यह बात सब ध्यान में ले यथा शक्ति धर्मी वृद्धि करेंगे. इस हेतुसे ही यह संभिन्न जीवन चरित्र यहां दिया है.

गुणानुरागी,  
सेक्रेटरी-ज्ञान वृद्धि खाता.



(अ.)

इस ग्रन्थके प्रसिद्ध कर्ता सदग्रहस्थोंका संक्षिप्त जीवन चरित्र.

१ दक्षिण (खानदेश) के 'बाधली' ग्राममें कूचेरे (मारवाड) से आकर निवाम करने वाले शेट दोलतरामजी चोरडीया की सुपत्नी गुलाब कवरवाइ की कूख से संवत् १९३१ के कार्तिक शुद्ध १ भंगलवारको रत्नचन्द्रजी नामक पुत्र की प्राप्ति हुई. अन्तरायोदय से रत्नचंद्रजी की ४ वर्ष की उम्र में माताका और आठ वर्ष की उम्र में पिता का विजोग होनेसे इनकी दुसरी माताने इनको मदर से में बैठकर विद्याभ्यास कराया. तेज वृद्धि कर इनने कूल १५ वर्ष की उम्र में मराठी, गुजराती, उर्दू, इंग्रजी और मारवाडी लिखने का अच्छा अभ्यास कर अपने व्यापार कार्य में संलग्न हो संसार व्यवहार साथ ने लगे.

सं० १९५२ का चातुर्मास-प्रसिद्ध वृत्त श्री चम्पालालजी महाराजका मनमाड (नाशीक) में था तब रत्नचन्द्रजीको इन महात्माका व्याख्यान श्रवण का लाभ होते ही धर्म के ऐसे शोकीन बनगये कि-सामायिक प्रति क्रमण स्तवनादि कण्ठाग्र कर व्याख्यातादि प्रसंग में एकत्र हुये जन समूह में खुल्ले दिलमें मुनाने, लगे इनका मञ्जुल स्वर होनेसे श्रोतागण इनकी वाणी को प्रेम पूर्वक ग्रहण करने लगे. = और यह साथ आर्जिजाजी जी अत्याग्रह विनंती कर अपने ग्राम में चातुर्मास भी कराने लगे. सं. १९६१ के चातुर्मास में सतीजी श्री जडावांजीने ६१ उपवास किये. और सं. १९६२ के चातुर्मास में तपस्वीजी श्री केशरीमलजी महाराजने ७१ उपवास किये इनके दर्शनार्थ हजारों नरनारी आये जिनकी बड़े उत्साहमें भक्तिकर सर्वप्रिय वने.

सं. १९६२ का चातुर्मास तपस्वीजी श्री केवल ऋषिजी माहाराज का इगत पुरी (नाशीक) था तब भाई रत्नचंद्रजी कितनेक भाइयों के साथ दर्शनार्थ गये थे. वहां वाल ब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलख ऋषिजीका व्याख्यान सुन मोहित हुये जिम प्रेम के आकर्षण हुये पुनः सं. १९६९ के चातुर्मासमें कितनेक भाइयों के साथ यहाँ हैदराबाद आये और यहां के ज्ञान वृद्धि खाने का काम देख इनका मन आकर्षाया तब आप खुदने रु. १००) और चार भाइयों के (जिनका जीवन चरित्र आगे लिख

= अबभी यह भाई अपने ग्राम में मायुका चातुर्मास न होवे तब या लग्न खर्च आदि अन्य ग्राममें जाते हैं तब अनेक नर नारी यों की परिपदा में अनेक छंद स्तवन लावणी चोपाइ कथा आदि मुनाकर श्रोतागण को मोहित करते हैं.



जीवों श्री आचारांग सूत्र के प्रथमाध्याय के कथनानुसार 'महसम्भी मइयाए' अर्थात् स्वानुभव (जाति स्मरणादि ज्ञान) से जानकर, या 'परवागरणाणं' अर्थात्-तत्त्वज्ञोद्वारा श्रवण कर, 'अन्नेसिं अन्ति एवा सोचा' अर्थात्-किसी का सहज वचन श्रवणकर या ग्रन्थों में पठन कर इत्यादि सम्बन्ध से परमात्माके परम सुख के ज्ञाता-जान कार हुवे हैं, उन को परम सुख प्राप्त कर ने की जिज्ञासा-अभिलाषा होवे यह स्वभाविक ही है, उनकी जिज्ञासा-इच्छा पूर्ण कर ने जो आत्मा सर्वज्ञ-सकार परमात्मा पद को प्राप्त हुवे हैं उनोने स्वानुभव द्वारा निश्चयात्म पूर्वक परम परमात्मा पद को प्राप्त कर ने के अन्तान्त गुणों को ज्ञान कर जाने हैं, परन्तु वचन द्वारा अनुक्रम से वागर ने - समझाने और उन गुणों में जीवों को लगा कर मार्ग में प्रवर्त कर परमपद प्राप्त करने जितना काल - समय निज पर का न होने से कार्य को असाध्य जान परम कृपालु अर्हत - सर्वज्ञ देव ने मुमुक्षुओंपर अत्यंत करुणा दृष्टि कर परमात्म पद प्राप्ति के कार्य को सहज साध्य बना ने -स्वल्पज्ञों को समझा ने उन परमात्मा पद प्राप्ति के अन्तान्त गुणों का समावेश कुछ स्वल्प (थोड़ी) संख्या में करना उचित समझा कि जिन से सर्व मुमुक्षुओं - परमात्म पद के इच्छकों महज में ममज्ञ और परमात्म पद प्राप्ति के मार्ग में प्रवृत्ति कर परमात्म के परम सुख के भुक्ता बनें, इस हेतु से उन अनेक गुणों का शिर्फ चउदह (१४) बातों मेंही समावेश कर दिया और उनका नाम 'चउदह गुणस्थान' या 'चउदह जीवस्थान' स्थापन किया, इतनी थोड़ी संख्या में होने से मुमुक्षुओं शीघ्र नमज जावे परमात्म स्थान को प्राप्त कर ने, उत्ताही बने, प्रयत्न शील हो पर्याप्त करें, और परमात्मा बन अनन्त सुख को भुक्ते,

उन १४ गुणस्थान के नाम इस प्रकार हैं:—

मिच्छे सासण मिस्से । अविरय देसे पमत्त अपमत्ते ॥

निअट्ठि अनिअट्ठि सुहुम । व सम खीण सजोगी अजोगी गुण ॥

अर्थ—“प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान”—जगत निवामी प्रायः मनीषी जीवों का मूलस्थान अज्ञान में यही है, कर्मों रयी मत्ता मेव यथा मे अच्छादित हुवा चैतन्य चंद्र मूर्छित - वे भान दिशा में पड़ा हुवा काल लब्धि पति पक होने-व्याधि वेदनादि सहने में - कुछ कर्मों पतने पडने में - स्व स्वभाव में - अनन्य ताके योग्य महज ही ऊंचा आता है - वो पुण्यांश की प्रवृत्ति कर अज्ञान तपश्चरणादि के प्रभाव में इकीमत्ता स्वर्ग (नववी प्रपेक्षक तक चले जाता है, इस स्थान में नहीं हट आता उन

र चारित्र्य इन तीनों सार पदार्थ रत्नों समान धर्मका प्रति पूर्ण पनें—यथातथ्य (जैसी तरहसे करना चाहिये वैसीही तरहसे) आराधना-पालना-स्पर्शना-अन्त तक करने से प्राप्त हुवा है. इसलिये, उस सुख का 'अन्यिण'—अर्थात् कदापि नाश नहीं होता है—अन्त नहीं आता है—ऐसा अनन्त है. और 'मन्वावाह'—अर्थात् उस सुख में कदापि किसी प्रकार की किञ्चित् मात्र ही व्याधी, विकल्पता मिश्रता या किञ्चित् मात्र नुन्यता-कभी पता होताही नहीं है. ऐसे परम सुख को जो “अणु ह्वांति”—अर्थात् अनुभव लेते हैं—भोगवते हैं, उन सिद्ध परमात्मा को मेरा त्रि-करण त्रियोगकी विशुद्धि से वारम्बार वन्दना नमस्कार होवो!

### ❀ परिशिष्ट ❀

यह विश्व अनन्तान्त जीवों से प्रति पूर्ण भरा हुआ है, वे सब जीव गुणकी अपेक्षा से अनन्त प्रकार के हैं, जैसे-ज्ञानादि गुणों में सब से हीन गुण के धारक-और चैतन्यतादि लक्षणों में सब से हीन शक्ति के धारक सूक्ष्म निगोद के जीवों हैं उन जीवों में से कभी कोई एक जीव एकार्थ अंश अधिक गुणकी वृद्धि होने से ऊंच दिशाको प्राप्त होता है, यों अन्त गुण पुण्याधिक होते सूक्ष्म निगोद से निकल बाहर (बड़े) निगोद मय शरीर को प्राप्त होता है, वहां भी अनन्त गुणाधिक पुण्य होने से प्रत्येक एकेन्द्रिय-पृथ्व्यादि स्थावर काय में आता है, यों अनुक्रम से अन्तान्त गुण पुण्याधिक होते वेन्द्रिय-तेन्द्रिय-चौरिन्द्रिय-असंज्ञीय पचेन्द्रिय-संज्ञीय पचेन्द्रिय-नरक-देव मनुष्य-पर्याय तक प्राप्त करता है. यहां तक आकर कोईक जीव सर्व दुर्गुणों का सर्वांश नाश कर संपूर्ण गुण मय जब आत्मा बन जाता है तब सर्वज्ञतादि गुण प्रगट होते हैं, उस आत्मा को साकारी (शरीर धारक) परमात्मा कहते हैं. और कुछ काल सकार रहेबाद शरीरादि सर्व संयोगों का सर्वांश त्याग होते निजात्म के खास निज एकही स्वरूप मय जब आत्मा हो सिद्ध स्थान को प्राप्त करता है, उस आत्मा को परम परमात्मा कहा जाता है. वोही आत्मा मंगलाचरण में कथन किये मुजब अनोपम निराबाध परम सुखका अनुभव करता है, सुख भुक्तता है. और उपरोक्त कथन मुजब जो जीवों सहज स्वभाव से निपजते हुवे पुण्याधिकतासे आकर्षा कर सज्ञी पर्याय तक आये हैं ज्ञानादि गुण कुछ विशेषांम जिनकी आत्मा में प्रकाश हुवे हैं, वो-

जीवों श्री आचारांग सूत्र के प्रथमाध्याय के कथनानुसार 'महसम्भी मइयाए' अर्थात् स्वानुभव (जाति स्मरणादि ज्ञान) से जानकर, या 'परवागरणाणं' अर्थात्-तत्त्वज्ञोद्धारा श्रवण कर, 'अन्नेसिं अन्ति एवा सोच्चा' अर्थात्-किसी का सहज वचन श्रवणकर या ग्रन्थों में पठन कर इत्यादि सम्बन्ध से परमात्माके परम सुख के ज्ञाता-जानकार हुवे हैं. उन को परम सुख प्राप्त करने की जिज्ञासा-अभिलाषा होवे यह स्वभाविक ही है. उनकी जिज्ञासा-इच्छा पूर्ण करने जो आत्मा सर्वज्ञ-सकार परमात्मा पद को प्राप्त हुवे हैं उनोंने स्वानुभव द्वारा निश्चयात्म पूर्वक परम परमात्मा पद को प्राप्त करने के अन्तान्त गुणों को ज्ञान कर जाने हैं, परन्तु वचन द्वारा अनुक्रम से वागर्तने - समझाने और उन गुणों में जीवों को लगा कर मार्ग में प्रवर्तित कर परमपद प्राप्त करने जितना काल - समय निज पर का न होने से कार्य को असाध्य जान परम कृपालु अर्हत - सर्वज्ञ देव ने मुमुक्षुओंपर अत्यंत करुणा दृष्टि कर परमात्म पद प्राप्ति के कार्य को सहज साध्य बना ने -स्वल्पज्ञों को समझा ने उन परमात्मा पद प्राप्ति के अनंतान्त गुणों का समावेश कुछ स्वल्प (थोड़ी) संख्या में करना उचित समझा कि जिन से सर्व मुमुक्षुओं - परमात्म पद के इच्छकों महज में समझें और परमात्म पद प्राप्ति के मार्ग में प्रवृत्ति कर परमात्म के परम सुख के भुक्ता बनें. इस हेतु से उन अनंत गुणों का शिर्फ चउदह (१४) बातों में ही समावेश कर दिया और उनका नाम 'चउदह गुणस्थान' या 'चउदह जीवस्थान' स्थापन किया. इतनी थोड़ी संख्या में होने से मुमुक्षुओं शीघ्र समझ जावें परमात्म स्थान को प्राप्त करने, उल्लाही बने, प्रयत्न नील हो पर्याप्त करें, और परमात्मा बन अनन्त सुख को भुक्ते.

उन १४ गुणस्थान के नाम इस प्रकार हैं:—

मिच्छे सासण मिस्ते । अविरय देसे पमत्त अपमत्ते ॥

निअट्टि अनिअट्टि सुहुम । व सम खीण सजोगी अजोगी गुण ॥

अर्थ—“प्रथम निव्यात्त्व गुणस्थान”—जगत निवामी प्रायः मर्त्री जीवों का मूलस्थान अनादि ने यही है. कर्मों स्वी मत्ता मेघ घटा में अच्छादिन हुवा चैतन्य चंद मूर्छित - वे भान दिशा में पड़ा हुवा जाल लब्धि पनि पक होने-व्याधि वेदनादि सहने में - कुछ कर्मज पतने पडने में - स्व स्वभाव में - अतन्य ताके योग्य मन्त्र ही ऊंचा आता है - वो पुण्यांश की प्रवृत्ति कर अज्ञान तपश्चर्यादि के प्रभाव में इकीमवा स्वर्ग (नववी ग्रयेवक तक चले जाता है. इस ग्यान में गरी हूट आन्ना इनने



र चारित्र्य इन तीनों सार पदार्थ रत्नों समान धर्मका प्राप्ति पूर्ण पनें—यथातथ्य (जैसी तरहसे करना चाहिये वैसीही तरहसे) आराधना-पालना-स्पर्शना-अन्त तक करने से प्राप्त हुवा है। इसलिये उस मुख का 'अनियण'—अर्थात् कदापि नाश नहीं होता है—अन्त नहीं आता है—ऐसा अनन्त है। और 'मच्चावाह'—अर्थात् उस मुख में कदापि किसी प्रकार की किञ्चित मात्र ही व्याधी, विकल्पता मिश्रता या किञ्चित मात्र नुन्यता-कभी पता होताही नहीं है। ऐसे परम मुख को जो “अणु ह्वन्ति”—अर्थात् अनुभव लेते हैं—भोगवते हैं, उन सिद्ध परमात्मा को मेरा त्रि-करण त्रियोगकी विशुद्धि से बारम्बार वन्दना नमस्कार होवो!

### ❀ परिशिष्ट ❀

यह विश्व अनन्तान्त जीवों से प्राप्ति पूर्ण भरा हुआ है, वे सब जीव गुणकी अपेक्षा से अनन्त प्रकार के हैं, जैसे-ज्ञानादि गुणों में सब से हीन गुण के धारक-और चैतन्यतादि लक्षणों में सब से हीन शक्ति के धारक सूक्ष्म निगोद के जीवों है उन जीवों में से कभी कोई एक जीव एकार्थ अंश अधिक गुणकी वृद्धि होने से ऊंच दिशाको प्राप्त होता है, यों अन्त गुण पुण्याधिक होते सूक्ष्म निगोद से निकल बाहर (बड़े) निगोद मय शरीर को प्राप्त होता है, वहां भी अनन्त गुणाधिक पुण्य होने से प्रत्येक एकेन्द्रिय-पृथ्व्यादि स्थावर काय में आता है, यों अनुक्रम से अन्तान्त गुण पुण्याधिक होते वेन्द्रिय-तेन्द्रिय-चौरिन्द्रिय-असंज्ञीय पचेन्द्रिय-संज्ञीय पचेन्द्रिय-नरक-देव मनुष्य-पर्याय तक प्राप्त करता है। यहां तक आकर कोईक जीव सर्व दुर्गुणों का सर्वांश नाश कर संपूर्ण गुण मय जब आत्मा बन जाता है तब सर्वज्ञतादि गुण प्रगट होते हैं, उस आत्मा को साकारी (शरीर धारक) परमात्मा कहते हैं। और कुछ काल सकार रहेवाड शरीरादि सर्व संयोगों का सर्वांश साग होते निजात्म के खास निज एकही स्वरूप मय जब आत्मा हो सिद्ध स्थान को प्राप्त करता है, उस आत्मा को परम परमात्मा कहा जाता है। वोही आत्मा मंगलाचरण में कथन किये मुजब अनोपम निरावाध परम मुखका अनुभव करता है, मुख भुक्तता है। और उपरोक्त कथन मुजब जो जीवों सहज स्वभाव से निपजते हुवे पुण्याधिकतासे आकर्षा कर सज्ञी पर्याय तक आये हैं ज्ञानादि गुण कुछ विशेषांस जिनकी आत्मा में प्रकाश हुवे हैं, वो-

जीवों श्री आचारांग सूत्र के प्रथमाध्याय के कथनानुसार 'सहस्रम्भी मझ्याए' अर्थात् जानुभव (जाति स्मरणादि ज्ञान) से जानकर, या 'परवागरणाणं' अर्थात्-तत्त्वज्ञोद्घा-  
त श्रवण कर, 'अन्नेसिं अन्ति एवा सोच्चा' अर्थात्-किसी का सहज वचन श्रवणकर  
या ग्रन्थों में पठन कर इत्यादि सम्बन्ध से परमात्माके परम मुख के ज्ञाता-जान  
हार हुवे हैं. उन को परम मुख प्राप्त कर ने की जिज्ञासा-अभिलाषा होवे यह स्वभा-  
वेक ही है. उनकी जिज्ञासा-इच्छा पूर्ण कर ने जो आत्मा सर्वज्ञ-सकार परमात्मा पद  
को प्राप्त हुवे हैं उनोंने स्वानुभव द्वारा निश्चयात्म पूर्वक परम परमात्मा पद को प्राप्त  
कर ने के अन्तान्त गुणों को ज्ञान कर जाने हैं, परन्तु वचन द्वारा अनुक्रम से वागर  
ने - समझाने और उन गुणों में जीवों को लगा कर मार्ग में प्रवर्त कर परमपद प्रा-  
प्त करने जितना काल - समय निज पर का न होने से कार्य कों असाध्य जान परम  
रूपालु अर्हत - सर्वज्ञ देव ने मुमुक्षुओंपर अत्यंत करुणा दृष्टि कर परमात्म पद प्रा-  
प्ति के कार्य को सहज साध्य बना ने -स्वल्पज्ञों कों समझा ने उन परमात्मा पद प्रा-  
प्ति के अनंतानंत गुणों का समावेश कुछ स्वल्प (थोड़ी) संख्या में करना उचित स-  
मझा कि जिस से सर्व मुमुक्षुओं - परमात्म पद के इच्छकों सहज में समझें और पर-  
मात्म पद प्राप्ति के मार्ग में प्रवृत्ति कर परमात्म के परम मुख के भुक्ता बनें. इस  
हेतु से उन अनंत गुणों का शिर्ष चउदह (१४) बातों मेंही समावेश कर दिया और  
उनका नाम 'चउदह गुणस्थान' या 'चउदह जीवस्थान' स्थापन किया. इतनी थो-  
ड़ी संख्या में होने से मुमुक्षुओं शीघ्र समझ जावें परमात्म स्थान को प्राप्त कर ने,  
उत्ताही बने. प्रयत्न शील हो पर्याप्त करें, और परमात्मा बन अनन्त मुख कों भुक्ते.

उन १४ गुणस्थान के नाम इस प्रकार हैं:—

मिच्छे सासण मिस्से । अविरय देसे पमत्त अपमत्ते ॥

निअट्ठि अनिअट्ठि सुहुम । व सम खीण सजोगी अजोगी गुण ॥

अर्थ—“प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान”—जगत निवासी प्रायः सभी जीवों का  
मूलस्थान अनादि से यही है. कर्मों रूपी महा मेघ घटा से अच्छादित 'हुवा' चैतन्य  
चंद्र मूर्छित - वे भान दिशा में पड़ा हुवा काल लब्धि परि पक होते-व्याधि वेदनादि  
सहने से - कुछ कर्मोंग पतले पडने से - स्व स्वभाव से - मतव्य ताके योग्य मज्ज-  
ही ऊंचा आता है - वो पुण्यांश की प्रवृत्ता कर अज्ञान तपश्चरणादि के प्रभाव से  
इक्कीसवा स्वर्ग (नववी ग्रन्थेक तक चले जाता है. इस स्थान में रही हुइ आत्मा इनने

ऊँचे दरजे को प्राप्त कर सकती है इसलिये इसे प्रथम गुण का स्थान - गुणस्थान कहा है।

२ 'सा स्वादन गुणस्थान'—मिथ्यात्व गुणस्थान को छोड़ ऊँचा जाकर फिर वो आत्म कर्मों के धक्के से गिर कर-पड़कर मिथ्य गुणस्थान को आता है परंतु मिथ्यात्वी नहीं बनता है वहां तक मिथ्यात्व से कुछ-उज्ज्वल-अच्छाही होता है इसलिये इसे दूसरे दरजे के गुणस्थान में स्थापन किया है।

३ तीसरा " मिश्र गुणस्थान " इस स्थान को प्राप्त हुवा जीव सत्य को और असत्य को दोनों को एक रूप-एकसा जान ने लगता है, सद्गुणों दुर्गुणों की गड़बड़ होजानेसे इसे मिश्र-मिश्रित कहा है। परन्तु प्रथम गुणस्थान वाला तो असत्य को सत्य, और सत्य को असत्य मानता था, और यह दोनों को एक सा जान ने लगा इतने गुणों की इस में अधिकता होने से इसे तीसरा दरजा मिला है।

४ चौथा "अविरति-सम्यग् दृष्टि गुणस्थान"-इस स्थानको प्राप्त हुवा जीव सम्यग् दृष्टि बन जाता है अर्थात् यह आत्म सत्य को सत्य और असत्य को असत्य यों यथातथ्य (जैसा होवे वैसाही) जान ने लगता है इस महान गुण की अधिकता होने से इसे चौथा दरजा मिला है। (परन्तु यह कर्मोदय की प्रबलता से कुछ व्रत नियम कर सकता नहीं है)

५ पांचवा 'देश विरति गुणस्थान' को प्राप्त हुवा जीव सम्यग् दृष्टि युक्त कुछ देश से-थोड़े व्रत-नियम धारण कर सकता है, सो श्रावक कहा जाता है। इस गुणकी अधिकता होने से इसे पांचवा दरजा मिला है।

६ छठा 'प्रमत्त संयति गुणस्थान'-इस गुणस्थानको प्राप्त हुवा जीव सर्व विरति-संयति-साधु होता है। इस गुण की अधिकता होने से इसे छठा दरजा मिला है। (परंतु यह प्रमादी आलसी होता है जिस से सर्व विरति पने में बहुधा अनेक प्रकार के सूक्ष्म वादर (छोटे बड़े) लगते हैं उनका मुक्ति नहीं है)

७ सातवा 'आत्म-प्रमाद का त्याग' इस गुण को प्राप्त हुवा जीव सर्वथा आत्म-प्रमाद का त्याग करने में सफल होता है इस गुण की

त्यक्त मे देखाती हुई विषय कषाय से निवृत्ति पाता है, इस गुण की अधिकता होनेसे इसे आठवा दरजा दिया गया है.

९ नववा "अनयष्टी वादर गुणस्थान"—इस स्थान में आया आत्मा सूक्ष्म वादर सर्व विषयों से और तीनांश कषाय से निवृत्ताता है, इस गुणकी अधिकता होनेसे इसे नववा दरजा मिला है.

१० दशवा—"सूक्ष्म संपराय गुणस्थान" इस स्थान को प्राप्त हुवा आत्मा सूक्ष्म किञ्चित लोभके सिवाय सर्वथा विषय कषाय से निवृत्ताता है इस गुणकी अधिकता होनेसे इसे दशवा दरजा दिया गया है.

११ इग्यारवा—"उपशांत मोह गुणस्थान"—इस स्थानमें आने वाद सूक्ष्म लोभरूप शल्य रहाथा सो भी सर्वथा दवजाता है-वीतराग अवस्था को प्राप्त होता है, इस गुण की अधिकता होनेसे इसे इग्यारवा दरजा दिया है ( इसने मोह-कषाय को दवाया है, पन्तरु क्षय नहीं किया है जिससे पडवाइ होता है. )

१२ बारवा—"क्षीणमोह गुणस्थान"—इस गुणस्थान मे आया हुवा आत्मा सर्वथा मोह-कषायका जड मूलसे नाश करता है. यह पीछा पडता नहीं है, इस गुणकी अधिकता होनेसे इसे बारवा दरजा दिया गया है.

१३ तेरवा—"सयोगी केवली गुणस्थान"—इस स्थान को प्राप्त होनेसे आत्मा सर्वज्ञ सर्व दर्शी साकारी परमात्मा बन जाता है इस गुणकी अधिकात होनेसे इसे तेरवा दरजा दिया गया है.

१४ चउदवा 'अयोगी केवली गुणस्थान'—इस गुणस्थान को प्राप्त हुवे वाद आत्म परम परमात्मा बनजाता है-सिद्ध अवस्था को प्राप्त होता है. यहां सर्व गुणों संपन्न होने से-फिर कोई भी कार्य बाकी नहीं रहने से इमे अन्तिम-सर्व से ऊंचा चउदवा दरजा दिया गया है.

मुमुक्षुओं! ऊपरोक्त चउदह बातों का जरा दीर्घ दृष्टि मे ख्याल कीजिये कि महान तत्ववेत्ता सर्वज्ञ परमात्माने अपने ऊपर कैसा जबर प्रगाढ़ किया है अति गुढ़-गहन विषय को कैसा सुलभ सहज कर मसझाया है. इस में अल्पज्ञभी तुरन्त समझजाय और ऐसा सहज काम जान इस में प्रवर्त ने उत्सुक बनें!

परन्तु मुझे यहां संशय होता है कि-ऊपरोक्त चउदह गुणस्थान का ऐसे कुट्टे-सहज अर्थ को पढ़कर कदाचित कोई स्वल्पज्ञ विचार करेंगे कि अहो इसमें क्या. यह

हीशतद्वारी” नामक ग्रंथ को दो काण्ड और चारों खंड के २५२ द्वारो कर कहता हूं सो दत्त चित्त से पठन कर मोक्षानु गाभी वानिये.

गाथा—नामऽस्थ पणवागरणा । पव्वेसा लक्खण दिठन्त ॥

गुण अवघेण दव्व । लद्ध खय खेत्त खेत्त पम्माण ॥२॥

ठीइ काल भाव गुण - सया मग्ग चउ अवरोह गइ दिठन्ते।

अन्तर विरह फासा - तीओ पढम सासय गमण भव अप्पा बहु॥३॥

अर्थ—प्रथम मूल खंड के ३३ द्वारो के ‘नाम’ कहताहूं -प्रथम नाम द्वार ‘ऽस्थ-  
केहतां दूसरा अर्थ द्वार, ‘पण वागरणा’-कहतां तीसरा प्रश्नोत्तर द्वार, ‘पव्वेसा’ कह-  
तां-चौथा प्रवेश द्वार, ‘लक्खण’ कहतां पांचवा लक्षणद्वार, ‘दिठन्त’ कहतां छठा दृष्टां-  
त द्वार. ‘गुण’ क० सातवा गुणद्वार, ‘अवघेणा’ क०-आठवा अवघेणा द्वार, ‘दव्व’  
क० नववा द्रव्य (जीव) प्रमाण द्वार, लद्ध’ क० दशवा द्रव्य पावती द्वार ‘खय’ क०  
इग्यारवा जीव खपती द्वार, ‘खेत्त’ क० बारवा क्षेव परिमाण द्वार, ‘खेत्त पसणा’  
क० तेहरवा क्षेव स्पर्शना द्वार, ‘ठीइ’ क० चउदवा स्थिती द्वार, ‘काल’ क० पंदरव  
काल प्राप्त द्वार, ‘भाव’ क० सोल्लवा-भाव परिमाण द्वार, ‘गुणसया’ क० सत्तरवा-नि  
रंतर गुण द्वार, ‘मग्गचउ’ क० मार्गणा के चार द्वारः-अठारवा-मार्गणा द्वार, उन्नीसवा  
उपमार्गणा द्वार, बीसवा-परस्पर मार्गणा द्वार, ‘इक्कीमवा’-परस्पर उपमार्गणा द्वार.  
अवरोह’ क० बावीसवा-उवरोह अवरोह द्वार ‘गइ दिठन्त’ क० तेवीसवा-गतिदृष्टांत  
द्वार, ‘अंतर’ क. चौंशीमवा-अंतर द्वार, ‘विरह’ क. पच्चीवा-विरह द्वार, ‘फामनीओ’ क०  
स्पर्शना के तीन द्वारः--छत्वीमवा-एक-भव आश्रिय स्पर्शना द्वार, सत्तीवीमवा -बहुत  
भव आश्रिय स्पर्शना द्वार, अट्ठावीमवा-परस्पर स्पर्शना द्वार, ‘पढम’ क. उन्ननीमवा  
प्रथमा प्रथम द्वार, ‘सासय’ क. तीसवा शाश्वता शाश्वत द्वार ‘गमण’ क. इक्कीमवा  
पर भव गमन द्वार. ‘भव’ क. वन्नीमवा भव भंग्या द्वार, और ‘अप्पाबहु’ कहतां-ते-  
नीमवा अन्पा बहुत द्वार

गाथा—किगिया काण्ण हेउ-पंच चउवन्ध नव कम्म वन्ध ओ ॥

धुव चउ वाइ लक्क, पुण्ण पाव दुग्ग परावत्त चउ ॥४॥

भूयकार अप्प अवट्ठि दुग्ग अवक वन्ध विच्छह दुग्गे ॥

कम्मादय नव ओ, धुव्व चउ पुण्ण पाव दुग्गे ओ ॥५॥

विवाग अट्टघाड - छक्क - उदय विच्छ हो दुग्गे ॥

ऊदीरणा दह विच्छोहदु, धुव्वचउ सत्तानव घाड छक्क विच्छोह दुग्गे।

भङ्ग नव वन्ध इरिया । भावदु सेणी वेए निज्जरा ॥

करण गुग सेणीओ । कम्म सत्त भाग ती सत्त सत्तद्वारा॥७॥

अर्थ-कम्म सत्त भाग तीअठ सत्तद्वारा' कहतां-दूमरा कर्मोरोहण खंड के सा-  
तों प्रकरण के मिल १३७ द्वारः—(१) कर्मोत्पत्ति प्रकरण के ७ द्वारः—'किरिया'  
कहतां प्रथम-किरिया द्वार. 'कारण' क० दूमरा मूळहेतु (कारण) द्वार. 'हेडपंच'  
क० हेतुके पांच द्वारः-तीमरा-मिथ्यात्व हेतु द्वार. चौथा अविरत हेतु द्वार. पांचवा कपाय  
हेतु द्वार. छठा-जोग हेतु द्वार. सातवा-ममुचय हेतु द्वार. (२) कर्म बंध प्रकरण के  
३८ द्वारः—'चउ बंध' क० प्रथम चार बंध द्वारः- "नव कम्म बंध ओ" क० कर्म  
बंध के ९ द्वारः - दूमरा-ममुचय कर्म बंध द्वार. तीमरा-ज्ञानावरणीय कर्मबंध द्वार-  
चौथा दर्शनावरणीय कर्मबंध द्वार. पांचवा वेदनीय कर्मबंध द्वार. छठा-मोदनीय क-  
र्म बंध द्वार. सातवा आयु कर्मबंध द्वार. आठवा नाम कर्मबंध द्वार. नववा-गोव कर्म  
बंध द्वार. दशवा अंतराय कर्म बंध द्वार. 'धुव्व चउकं' ध्रुव बंध के चार द्वारः-दग्गा  
रवा-ध्रुवकर्म बंध द्वार. बारवा-ध्रुव कर्म प्रकृति बंध द्वार. तेरवा-अध्रुव कर्म बंध द्वार.  
चउदवा-अध्रुव कर्म प्रकृति बंध द्वार. 'घाड छक्क' क० धातिक कर्म के छे द्वारः- पंद-  
रवा-मर्व धातिक कर्म बंध द्वार. सोलवा-नर्व धातिक कर्म प्रकृति बंध द्वार. सतरवा  
देश धातिक कर्म बंध द्वार. अठारवा-देश धातिक कर्म प्रकृति बंध द्वार. उन्नीसवा-अ-  
धातिक कर्म बंध द्वार. 'पुण्य पाव दुग्गे' क० पुण्यके दो और पापके दो द्वार-इक्कीस-  
वा-पुण्य कर्म बंध द्वार. बाबीनवा-पुण्य कर्म प्रकृति बंध द्वार. तेवीनवा-पाप कर्म बंध  
द्वार. चौवीनवा-पाप कर्म प्रकृति बंध द्वार. 'पगवत्त चउ' क० पगवर्त मान कर्म बंध  
के चार द्वारः—पद्दीनवा-पगवर्त मान कर्म बंध द्वार. छन्दीनवा-पगवर्तमान कर्म  
प्रकृति बंध द्वार. सत्तावीनवा-अपगवर्त मान कर्म बंध द्वार. अष्टावीनवा-अपगवर्तमान  
कर्म प्रकृति बंध द्वार. "भुयकार अप्प अवदी दुग्गे" क० भुयस्कार के दो. अप्पन्कार  
दो. और अवस्थित के दो यों छे द्वारः—इक्कीनवा-भुयस्कार कर्म बंध द्वार. तीस-  
वा-भुयस्कार कर्म प्रकृति बंध द्वार. इक्कीनवा - अप्पन्कार कर्म बंध द्वार. दसवीनवा  
अप्यन्तर कर्म प्रकृति बंध द्वार. तेवीनवा अवस्थित कर्म बंध द्वार. चौवीनवा-अवस्थित

= कर्म प्रकृति बंध द्वार, पेंतीसवा अन्यक्त कर्म बंध द्वार, 'बन्ध' क० छत्तीसवा-समु-  
 चय कर्म बंध द्वार, 'विच्छेद दुगे' क० विच्छेदके दो द्वारः-सैंतीसवा कर्म बंध विच्छेद  
 द्वार, पैंतीसवा कर्म प्रकृति बंध विच्छेद द्वार, (३) कर्मोदय प्रकरण के ३६ द्वार  
 "तत्त्वोदय नमः" क० कर्मोदय के १ द्वारः-प्रथम-मुक्त कर्मोदय द्वार, दूसरा-ज्ञानावर-  
 नीय कर्मोदय द्वार, तीसरा-दर्शनावर्णीय कर्मोदय द्वार, चौथा-वेदनीय कर्मोदय द्वार,  
 पांचवा-सैंतीसवा कर्मोदय द्वार, छठा-आयु कर्मोदय द्वार, सातवा- नाम कर्मोदय द्वार,  
 आठवा-गोचर कर्मोदय द्वार, नववा-भोग्य कर्मोदय द्वार, 'ध्रुव चउ' क० ध्रुव क-  
 र्मोदय के चार द्वारः—दशवा-भार कर्मोदय द्वार, इग्याग्या ध्रुव कर्म प्रकृतियोदय  
 द्वार, इग्याग्या ध्रुव कर्मोदय द्वार, तेरावा-अध्वर कर्म प्रकृतियोदय द्वार, "पुण्य पाव-  
 न" क० पाप पाव के दो और पापके दो गों चार द्वार-चण्डवा-पुण्य - कर्मोदय द्वार,  
 दसवा-पाप कर्म प्रकृतियोदय द्वार मोल्ला-पाप कर्मोदय द्वार, सत्तग्या- पाप क-  
 र्म प्रकृतियोदय द्वार, 'चउ विवाग अद्र' क० चार विपाको के ८ द्वारः—अठार-  
 वा-विवाग कर्मोदय द्वार, उन्नीसवा-देव विपाक कर्म प्रकृतियोदय द्वार, बीसवा  
 वा-विवाग कर्मोदय द्वार उन्नीसवा-भर विपाक कर्म प्रकृतियोदय द्वार, बाबीसवा  
 वा-विवाग कर्मोदय द्वार, तेतीसवा - जीव विपाक कर्म प्रकृतियोदय द्वार,  
 सैंतीसवा-विवाग कर्मोदय द्वार, पैंतीसवा - पुद्गल विपाक कर्म प्रकृतियोदय द्वार,  
 छत्तीसवा-विवाग कर्मोदय के ३ द्वारः उन्नीसवा-मर्त्य धार्मिक कर्मोदय द्वार, स-  
 त्तासवा-मर्त्य धार्मिक कर्म प्रकृतियोदय द्वार, अष्टासीसवा - देव धार्मिक कर्मोदय  
 द्वार, दसवा-देव धार्मिक कर्म प्रकृतियोदय द्वार, बीसवा - अर्वाधार्मिक कर्मोदय  
 द्वार, उन्नीसवा-अर्वाधार्मिक कर्म प्रकृतियोदय द्वार, 'उदय' क० वर्त्तीसवा- समुचय क-  
 र्म प्रकृतियोदय द्वार, 'विच्छेद दुगे' कर्मोदय विच्छेद के दो द्वारः—पैंतीसवा कर्मो-  
 दय विच्छेद द्वार, सैंतीसवा-कर्म प्रकृतियोदय विच्छेद द्वार, (४) कर्म उद्दीगणा प्र-  
 करण के १० द्वारः— 'उद्दीगणा दश' क० कर्मोद्दी उद्दीगणा के १० द्वारः—म-  
 ०-उद्दीगणा कर्मोद्दीगणा द्वार दुसरा - आठवर्णीय कर्म उद्दीगणा द्वार, तीसरा-दर्श-  
 नावर्णीय कर्म उद्दीगणा द्वार, चौथा-वेदनीय कर्म उद्दीगणा द्वार, पांचवा - सैंतीसवा  
 कर्म उद्दीगणा द्वार, छठा-आयु कर्म उद्दीगणा द्वार, सातवा-नाम कर्म उद्दीगणा द्वार,  
 आठवा-गोचर कर्म उद्दीगणा द्वार, नववा-भोग्य कर्म उद्दीगणा द्वार, दसवा - समुचय  
 कर्म उद्दीगणा द्वार, 'विच्छेद दुगे' क० विच्छेद के दो द्वारः-पैंतीसवा कर्मो-  
 दय विच्छेद द्वार, सैंतीसवा-कर्म प्रकृतियोदय विच्छेद द्वार, (५) कर्म उद्दीगणा प्र-

उदीरणा व्यच्छेद द्वार, वारवा-कर्म प्रकृति उदीरणा व्यच्छेद द्वार. (५) कर्म सत्ता प्रकरण के २२ द्वारः—'सत्तानव' क.कर्म सत्ता प्रकरण के ९ द्वारः—पाहिला समुचय कर्म सत्ताद्वार, दूसरा-ज्ञानावरणीय कर्म सत्ताद्वार, तीसरा-दर्शनावरणीय कर्म सत्ताद्वार, चौथा-वेदनीय कर्म सत्ताद्वार, पांचवा - मोहनीय कर्म सत्ताद्वार छठा-आयु कर्म सत्ताद्वार, सातवा-नाम कर्म सत्ताद्वार, आठवा-गोव कर्म सत्ताद्वार, नववा अंतराय कर्म सत्ताद्वार, 'ध्रुवचड' क. ध्रुव कर्म सत्ताके ४ द्वारः-दशवा ध्रुव कर्म सत्ताद्वार, इग्यारवा-ध्रुव कर्म प्रकृति सत्ता द्वार, बारवा अध्रुव कर्म सत्ता द्वार, तेरवा अध्रुव कर्म प्रकृति सत्ता द्वार "घाड छक्क" क. घातिक कर्म प्रकृति सत्ता के ६ द्वारः—'चउदवा सर्व घातिक कर्म प्रकृति सत्ता द्वार, पंदरवा - सर्व घातिक कर्म प्रकृति सत्ताद्वार, अठारवा-अघातिक कर्म सत्ताद्वार, उन्नीसवा - अघातिक कर्म प्रकृति सत्ताद्वार, 'सत्त' क. बीसवा - समुचय कर्म प्रकृति सत्ताद्वार, "विच्छेद दुग्गे" क. कर्म सत्ता विच्छेद के दो द्वारः—इक्कीसवा - कर्म सत्ता विच्छेद द्वार, बा-बीसवा-कर्म प्रकृति सत्ता विच्छेद द्वार, (६) कर्म भंग प्रकरण के ११ द्वारः—'भंग नव' कर्मों के भांगके ९ द्वार-पाहिला - समुचय कर्म भंग द्वार, दूसरा-ज्ञानावरणीय कर्म भंग द्वार, तीसरा 'दर्शनावरणीय कर्म भंग द्वार, चौथा वेदनीय कर्म भंग द्वार पांचवा मोहनीय कर्म भंग द्वार, छठा आयु कर्म भंग द्वार सातवा नाम कर्म भंग द्वार, आठवा गोव कर्म द्वार, नववा अंतराय कर्म भंग द्वार, 'वारी' क. दशवा बंधी भंग द्वार, 'इरिया' क. इग्यारवा इर्याही भंग द्वार, (७) भावादि प्रकरण के १३ द्वारः—'भवट' भाव के ८ द्वारः—पाहिला-सुख भावद्वार, दूसरा-उदय भाव द्वार, तीसरा उपमन भावद्वार, चौथा क्षयोपमन भाव द्वार, पांचवा - शादिक भाव द्वार, छठा पाणिनामिक भाव द्वार, सातवा सन्निपातिक भाव द्वार, 'श्रेणी' क. आठवा श्रेणीद्वार, 'वेड' क. नववा कर्म वेडे द्वार, 'निज्जरा' दशवा कर्म निजरा द्वार, 'करण' क. इग्यारवा दश करण द्वार, 'सुन्नेप्पी' क. बारवा सुन्नेप्पी द्वार पर मय कर्मगोहण खंडके १३७ द्वार हवे.

गाथा—गइ जाइ काय दण्डग । नित्तिओ जीव दुय येनी कुलओ॥

सुहुम तस्त सत्ती । भानग आहारनिय पयाय दुग्गे ॥५॥

पाण इन्द्रियट्ट नत्ता । वेण कमाय लेमा योग म्मिग ॥



मंथयण मंथण मन्थु । विग्गह सग्ग दब्ब संसार दारा ॥९॥

अर्थ—तीनम-मंथनगरोहण पाठ के ४१ द्वारः—'गइ जाइ काय दण्डग चित्तिओ' मन्थनं गतिं जाति काया और दंडक इन चारों के तीन तीन द्वार होनेते १. २ द्वार होते हैं :—प्राय-पागति द्वार, दुमरा-पागति द्वार, तीमरा-जागति द्वार, चौथी-पागति द्वार, पावरा-पागति द्वार, छया - जाजाति द्वार, मातवा- आकाया द्वार, जरा-परापागति, नरा-आकायागति, दशरा आदण्डकद्वार, इग्यारवा-पादंडकद्वार, द्वादश-पादंडक द्वार, 'जीव दग्गे' जीवते दो द्वारः—तेररा-वामान्य जीवके भेद द्वार, जगह विमल जीवभेद द्वार, पंदररा योनी' क० जीवा योनी द्वार; सोल-रा-रा-योनी द्वार 'मम्म' क० मत्तमा - मृग गार्ग द्वार; 'तम्म' क० अठार-रा-रा-राग द्वार; 'मन्नी' क० उन्नीमरा मन्नी अवन्नीद्वार; 'भाज्ज' धीमवा-भापक उन्नीमरा 'सागरा दग्गे' - आहारक द्वार द्वारः—पञ्चीमवा-आहारक अगाहारक द्वार, इन्दीमरा भोजादि आहार द्वार; नेतीमरा-परित्यादि आहारद्वार; चौथीमरा दि-मरा-आहार द्वार 'पण्य दग्गे' पर्या के दो द्वारः—पञ्चीमवा-पर्या द्वार; छथीमवा-पर्या द्वार 'पाण' क० मन्नीमरा-पाणद्वार 'इन्दिय दग्गे' इन्दियते दो द्वार उन्नीमरा इन्दियद्वार उन्नीमरा इन्दिय द्वार, 'मन्ना' क० तीनरा-मन्नाद्वार द्वार के द्वार उन्नीमरा वेदद्वार, 'कपाय' क० वन्नीमरा-कपायद्वार, 'ल्लवा' क० मं-नरा-वेदद्वार 'योग' चौथीमरा - योग द्वार, 'मरीर' क० पेंतीमरा-मरीरद्वार 'अयय' क० छथीमरा-मंथयणद्वार, 'मंथण' क० मंथीमरा-मंथ्या-द्वार द्वार के द्वार उन्नीमरा-मंथोयायधाय मग्ग द्वार, 'मइ' क० उन्नीमरा-मंथोयायधाय द्वार 'मग्ग' क० वन्नीमरा-मग्ग की पर्यादा द्वार, और 'दब्ब' एक चारमरा-मंथुद्वार द्वार

अग्ग-इदमेण सच्च दिट्ठी । भव चम्म पग्नि पयथी आया ॥

अग्ग-अग्गे दब्ब । पग्निमग्ग वीय निव्व मम्मन मंज्जाय ॥१०॥

निट्ठ चग्नि निव्वद । कम्म पग्निमग्ग पग्गमाय मग्गीय ॥

पग्नि दब्ब मन्थुद्वार । देव पग्निमग्ग कम्म निव्वानि ॥११॥

अग्ग-अग्ग निज्जाइ । अग्ग निव्व मग्ग निव्व पग्गे ।

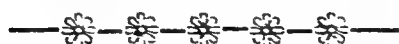
## मोक्षस कारण ओ । ए एक चालीस धम्मदारा ॥१२॥

अर्थ-धर्मारोहण खण्डके ४१. द्वारः—‘उवओग पंच’ क० उपयोग के पांच द्वारः—प्रथम-मूल उपयोग द्वार, दुसरा-अज्ञान द्वार, तीसरा-ज्ञान द्वार, चौथा-दर्शन द्वार, पांचवा-समुच्चय उपयोग द्वार, ‘दिंठी’ क० छटा दृष्टिद्वार, ‘भव’ क० सातवा न-व्याभव्य द्वार ‘चरम’ क० आठवा-चरमाचरम द्वार, ‘परीत’ क० नववा-परितापरित द्वार, ‘पयवी’ क० दशवा-पदवीद्वार, ‘आया’ क० इग्यारवा-आत्मा द्वार ‘ज्ञाण’ क० बारवा-ध्यान द्वार, पाय क० तेरवा-ध्यान के पाये द्वार ‘दव्व’ क० चउदवा-पट द्रव्य द्वार, ‘परिणाम’ क० पंदरवा-परिणाम द्वार, ‘वीय’ क० सोलवा वीर्य द्वार, ‘तित्थ’ क० सत्तरवा-तीर्थातीर्थ द्वार, ‘समत्त’ क० अठारवा-सम्पक्त्वद्वार, ‘सयय’ क० उन्नी-सवा-संयता संयति द्वार, ‘लिंग’ क० बीसवा-लिंगद्वार, ‘चारित्त’ क० इक्कीसवा-चरित्र द्वार, ‘नियंठे’ क० बावीसवा - नियंठा द्वार, ‘कल्प’ क० तेवीसवा-कल्पद्वार, ‘परिसह’ क० चौवीसवा-परिसह द्वार, पम्माय’ क० पच्चीसवा-प्रमाद द्वार, ‘रागी’ क० छव्वीस वा-सरागी वीतरागी द्वार, पडित’, क. सत्तावीसवा-पडवाइ अपडवाइ द्वार ‘छउम’ क० अठावीसवा-छन्नस्त वीतरागी द्वार० ‘समुधा’ क० उन्नतीमवा-समुद घात द्वार, ‘देव’ क० तीसवा-पांच देव द्वार, ‘परिणामी’ क० इकतीसवा-परिणामद्वार, ‘करण’ क० वत्तीसवा-करण द्वार, ‘निवत्ती’ क० तेंतीसवा-निवृत्ति द्वार, ‘आसव’ कहतां चो-तीसवा-आश्रव द्वार, ‘संवर’ क० पेंतीसवा-संवर द्वार, ‘निज्जरादु’ क० निज्जरा के दो द्वारः—छत्तीसवा-निज्जरा द्वार सेंतीसवा-निज्जरा भेदद्वार, ‘फल’ क० अडतीसवा फल द्वार, ‘तित्थगोय’ क० उन्नचालीसवा-तीर्थकर गोव वन्ध द्वार, ‘तित्थ फास’ चालीस वा- तीर्थकर स्पर्शना द्वार, और ‘मोक्ख’ कहतां इकतालीसवा-मोक्ष द्वार.

गाथा—इमाओ चउ खण्डे । सव्वे दारा भवन्ति अदीसत ॥

चउदहस्स गुणठाणे । मूल मूल अत्थ अत्थओ ॥११॥

अर्थ—ऐसी तरह से चारों खण्ड में सर्व २५२ द्वारों की रचना कर इसका मूल मतलब तो मूल काण्ड में चउदेही गुणस्थानोपर वत-या है. और उसका विस्तार के साथ अर्थका खुलासा समझाने अर्थ कान्ड किया गया है.





# “श्री गुणस्थाना रोहण अष्टाशतद्वारी”

## प्रथम-“अर्थ काण्ड.”

### प्रथम-खण्ड-“मूलद्वारारोहण का अर्थ”



#### प्रथम नाम द्वारका-अर्थ.

इस सम्पूर्ण विश्वालय में रूपी अरूपी द्रव्य मय सचेतन अचेतन अनन्त पदार्थ गुण और पर्याय कर के अनेक भाव में परिणमते हैं. उन सर्वोंकी पहिचान नाम स-ज्ञा सेही होती है. इसलिये प्रथम नाम द्वार कहा, और उस में अनुक्रम से गुणों की बुद्धि होते जीवों चडते हैं जिनके चौदह मुख्य भेद कर अनुक्रमसे १४ ही गुणस्थानोंके नाम और अपर नाम बताये हैं.

#### २ दुसरा-अर्थद्वार का अर्थ.

नाम ३ प्रकार के होते हैं:—(१) यथार्थ नाम (२) अयथार्थ नाम और (३) अर्थ शुन्य नाम. (१) जो गुण निष्पन्न नाम होवे, अर्थात् जैसा जिस पदार्थका नाम होवे वैसाही उसमें गुण पाता होवे - जैसे जीवका नाम - तीनों ही काल में अमर होनेसे-जीवता रहने से जीव कहते हैं. चैतन्यता युक्त होनेसे चैत्यन्य कहते हैं, द्रव्य प्राण और भाव प्राणका धारक होने से प्राणी कहा जाता है. इत्यादि नाम रक्खें सो यथार्थ नाम. (२) जिस वस्तु का जैसा नाम होवे वैसा उस में गुण नहीं पावे. जैसे जीवका नाम धूला, कचरा, हीरा, मोती इत्यादि रक्खे सो अयथार्थ नाम.

(३) जिसका कुछ अर्थ नही होवे जैसे-हँसने का अवाज, छींकनेका शब्द, वज्रित्र का अवाज इत्यादि अर्थ शुन्य नाम. इन तीनों प्रकार के नामों में से यथार्थ नामही प्रमाण भूत सर्व मान्य होता है. सोही चतुर्दश गुणस्थान के जो प्रथम द्वार में नाम कहे सो यथार्थ नाम हैं. अर्थात् जैसा जिनका नाम है वैसेही उनमें गुण पाते हैं सो दूसरे द्वार में बताया है.

### ३—तीसरा-प्रश्नोत्तर द्वारका अर्थ.

किसी वस्तु के नाम के अर्थ दो तरह के होते हैं:— १. व्यवहारिक सो लोक रूढी प्रमाणे, और २. निश्चयिक सो परमार्थिक:—व्यवहारिक से अधिक मान-निय निश्चयिक नामार्थ होता है. इसलिये १४ ही गुणस्थानों के निश्चयिक नाम हैं. इन का व्यवहारिक रीति से कोई उलट अर्थ भाप होवैतो उसका निर्णय तीसरे प्रश्नोत्तर द्वार में किया गया है.

### ४—चौथा-प्रवेश द्वार का अर्थ.

ऐसे जो गुणों के भंडार रूप जो शुभस्थान है. उन में प्रवेश कर ने गुणज्ञ और गुण वृद्धिक जरूर ही इच्छेगे. उनकी इच्छानुसार कार्य भिन्न कर ने की रीति-अर्थात् उन गुणस्थानों में प्रवेश करनेका उपाय चौथे प्रवेश द्वार में कहा है.

इस द्वार का सम्पूर्ण खुलामा चार स्वरूप समझाने के लिये उपगमश्रेणी और क्षपक श्रेणी दोनों श्रेणीयों का स्वरूप समझाने की बहुतही आवश्यकता है. इस लिये 'सप्तातिका' नामक षष्ठम् कर्म ग्रंथानुसार जरा विस्तार में दोनों श्रेणीयोंका स्वरूप यहां दर्शाया जाता है:—

"उपयोगो लक्षणम्"—इस तत्त्वार्थ सूत्र के फरमान मुझव जीवका जो निज स्वाम लक्षण-गुण है सो "उपयोग" है. अर्थात् अनादि काल में आत्मा ज्ञान दर्शन रूप मत् लक्षणों की धारक है. परंतु यह दोनोंही गुणों अनादि में अपने स्वभाव में कर्मों कर अठादिन हो रहे हैं टका रहे हैं. जिन के योग में यह आत्मा भ्रमिन् हुवा निगोद तिर्यच नरक देव और मनुष्यों की गति मैनाना मन्त्रा का रूप धारण कर-बंध-निकाचित-उदय तथा निर्जग की मत्ता गव ने वाले पुन्य पाप के फलों का अनेक प्रकार में अनुभव लेता. वो उपयोगेक ज्ञान दर्शन रूप उपयोगों के स्वभावों में



कर के, दमरा स्थिति बंध करना मुरु करे, मो पीहले २ के स्थिति बंध की आपेक्षा से पल्योपम के संख्याते भाग कमी स्थिति को कर के बंधता है, ऐसीही तरह जो जो आगेको स्थिति बंध करे वो वो पहिले २ के स्थिति बंध से पल्योपम के असंख्यातने भाग कमी २ करता हुआ स्थिति का बंध करता है.

यों करण काल के अंतर मुहूर्त पर्यंत रहकर फिर अनुक्रम से अलग २ अंतर मुहूर्त प्रमाण के तीन करणों करता है. जिनके नाम—१ यथा प्रवृत्ति करण, २ अपूर्व करण, ३ अनिवृत्ति करण, और चौथा उपशान्त अथा होता है. मोभी अंतर मुहूर्त का ही जानना

१. प्रथम-यथा प्रवृत्ति करण का स्वरूप:—यथा प्रवृत्ति करण में प्रवेश कर ता हुआ प्राणी प्राणि समय अनंत गुण विशुद्धि की वृद्धि को करता है, और जगत्प्रकृतियों में से शुभ प्रकृतियों के बन्धादि दो ग्यानी रम का चौग्यानीये रम को दो स्थानीयां कर बंध करता है. परंतु यथा तथा विधी तन्वयोग्य विशुद्धि के प्रभाव कर

१ स्थिति घात २ रमघात, ३ गुणश्रेणी और ४ गुण भ्रम इन चारों कामों में ता प- का भी काम नहीं कर सकता है अनेक जीवों की अपेक्षा कर इन वर्ण में प्रवृत्ति गाले जीवोंके अंतर्ग्यात लोकावगा प्रवेश प्रमाण अध्यवसाय के स्थानक प्रथम रम में होते हैं वो भी छेस्थान पतित होते हैं, और पहिले समय के अध्यवसाय स्थानक में दूसरे समय के अध्यवसाय स्थानक विशेषाधिक होते हैं, चौथी दूसरे समय के अध्यवसाय स्थानक से तीसरे समय के अध्यवसाय स्थानक अधिक होते हैं और तीसरे में चौथे समय के अधिक होते चो पहिले २ के समय में आगे २ के समय के अध्यवसाय स्थानक विशेषाधिक होते हैं, जिनकी जो बढावि स्थानक की बढावि करे तो रिपम पत्ररख क्षेत्र का निर्माण होता है, ऐसी तरह यथा प्रवृत्ति वर्ण के अन्तिम समय तक आता है वहां तक बढता चौथाये चारों अध्यवसाय के स्थानको विशुद्धि की अपेक्षा कर के-एक में सम्मान वृद्धिजन होते हैं जो ऐसी तरह—यथा गुणान्त-दो पक्षों में एक मासी यथा प्रवृत्ति वर्ण में प्रवेश किया, इनमें से एक को सर्व जगत् विशुद्धि की अपेक्षा प्रत्येक गुण और दूसरा सर्वजगत् विशुद्धि के अध्यवसाय स्थानक में प्रत्येक गुण इन दोनों की निवृद्धि का तन्वयोग्य रूप रूप होता है—प्रथम जीव के प्रथम समय में सर्व में जगत् में निवृद्धि सर्व में प्रवेश होता

है, उस से उसही पुरुष के फिर दूसरे समय की जघन्य विशुद्धि अनन्त गुणी अधिक होती है। उस से तीसरे समय की जघन्य विशुद्धि अनन्त गुणी, यों अनन्तानन्त विशुद्धि की वृद्धि करता हुआ इस यथा प्रवृत्ति करण के असंख्याते भाग व्यतिक्रान्त करता है। तब जघन्य पद विशुद्धि वाले पुरुष की जो अंतिम जघन्य विशुद्धि हुई उस से दूसरे पुरुषकी प्रथम समय की उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्त गुणी अधिक होती है। और उस से भी जघन्य विशुद्धि के स्थानक से निवृत्तता था उसकी उपरीतन जघन्य विशुद्धि अनन्त गुणी, उस से दूसरे समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्त गुणी, उस से तीसरे समय की जघन्य विशुद्धि अनन्त गुणी, उस से भी उसके आगेके समय की उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्त गुणी अधिक। यों ऊपर के और नीचेके एकांतर विशुद्धि के स्थानक अधिक २ करते दोनों जीवोंके यथा प्रवृत्ति करण के अंतिम समय में जघन्य स्थान होवे वहां तक कहना। उसके बाद उत्कृष्ट विशुद्धि के स्थानक निरन्तर अन्तिम समय पर्यन्त अनन्त गुण वृद्धि लिये कहना। यह यथा प्रवृत्ति करण जान ना।

२ दूसरे अपूर्व करण का स्वरूप:-अपूर्व करण के प्रति समयोंमें जो अध्यवसाय के स्थानक होते हैं वो असंख्यात लोकों के जितने आकाश प्रदेश होते हैं; उतने होते हैं और प्रति समय छः स्थान वृद्धि तथा छः स्थान हानी युक्त होते हैं, सोही कहते हैं:-

१ प्रथम के उत्कृष्ट विशुद्धि के स्थानक से दूसरा विशुद्धिका स्थानक विशुद्धि की अपेक्षा कर जो हीन (कमी) होवे तो-१ अनन्त भाग हीन होवे, २ असंख्यात भाग हीन होवे, और ३ संख्यात भाग हीन होवे। यह भाग आश्रित्य तीन स्थान हीनता के कहै। तैसेही-१ संख्यात गुण हीन होवै, २ असंख्यात गुण हीन होवै, और ३ अनन्तगुणहीन होवे यह तीनों स्थानों गुण आश्रित्य हीनता के जानना यों ६ हानी के स्थानों होते हैं। और जो प्रथम के अध्यवसाय का स्थानक से विशुद्धि की अपेक्षा दूसरा अध्यवसाय का स्थानक वृद्धिलिये होवे तो-१ अनन्त भागाधिक होवे, २ असंख्यात भागाधिक होवे और ३ संख्यात भागाधिक होवे। तैसेही-१ संख्यात गुणाधिक होवे, २ असंख्यात गुणाधिक होवे, और ३ अनन्त गुणाधिक होवे। यो परस्पर (आपस में) ६ वृद्धि के और ६ हानी के मिले १२ अध्यवसायके स्थानक होते हैं, यहां अपूर्व करण के प्रथम समय में जघन्य विशुद्धि सब से कमी होती है, वोभी यथा प्रवृत्ति करण के चरम (अन्तिम) समय की उत्कृष्ट विशुद्धि स्थानक से अनन्त गुण अधिक जानना। उस से प्रथम समय की उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्त गुण अधिक जानना। उस से दूसरे समय की जघन्य

विशुद्धि अनंत गुण अधिक होती है, और उससे भी दुसरे समय की उत्कृष्ट विशुद्धि अनंत गुण अधिक होती है, ऐसे अपूर्व कारण के अतिन समय लग कहना, इस अपूर्व कारण में प्रवेश करने वाला प्रथम समय भेड़ी:-स्थिति घात, २ रसघात, ३ गुण-श्रेणी, ४ गुण संक्रम, और ५ अन्यस्थिती बंध, यह ५ कामों एकही वक्त इकट्ठे करता है, इनका स्वरूप खुलासा बार कहते हैं:-

(१) स्थिति घात का स्वरूप:-जो क्रोधादि कषाय की स्थिती भोगवनी वाली रही होवे, उसे सत्ता में ने अग्रभाग की स्थिति को उकड़े अर्थात्-उनकी स्थिति भाग का अग्रस्थान उत्कृष्ट तो बहुत नागरोपम प्रमाण होता है, और जयन्त्य में पल्योपम के अग्रस्थान वे भाग प्रमाण होता है, उन स्थिति के खंड (टुकड़े) करें, उसे उकेरना कहते हैं, ऐसी तरह उकेर कर उन के दलिये (जग) जो नीचेकी आय स्थिति खंड करने की रही है उन दल में उन दलियों को प्रवेश करें, यों अंतर सुदूर्त कालतक उस स्थिति खंड को उकेर, योंती जो फिर बाकी स्थिति रहे उन के अग्रभाग में पल्योपम के अग्रस्थानवे भाग प्रमाण स्थिति कर के उसकादल पालि की तरेरी अंतर सुदूर्त बाकी रौ उसे नीचे की स्थिति में मिलावे, यों अंतर सुदूर्त २ की स्थिति में उसका दल मिलावे २ अपूर्व कारण के काल में अनेक हजारों स्थिति खंड खप जाते हैं, तब जो अपूर्व कारण के प्रथम समय में जितनी कर्म की स्थिति सत्ता थी उस में संख्यात गुण कम स्थिति सत्तागी सो स्थिति घात,

(२) रस घातका स्वरूप:-जो अनुभ कर्म का रस दिन भोगवा हुना रहा है, उस रस का अनंतदा भाग छोड़कर, बाकी रौ अनुभाग के भाग अंतर सुदूर्त में रखावे - दितारा कर, फिर जो अनंतदा भाग बाकी रहा उसका अनंत का भाग छोड़ कर बाकी रौ अनुभाग के सब भागों को अंतर सुदूर्त में रखावे, फिर पल्योपम को अनंतदा भाग उसका भी अनंतदा भाग छोड़ कर बाकी रौ अनुभाग के भागों को अंतर सुदूर्त में रखावे, सो अनुभाग, खंड के अनेक मात्र एक स्थिति रस में स्थिति प्रमे, और उन स्थिति रस के अनेक मात्र में अपूर्व कारण समझ होवे, इस रस के काल में स्थिति रस का काल संख्यात गुण अधिक और स्थिति रस में अपूर्व कारणका काल संख्यात गुण अधिक जानना,

(३) गुण श्रेणी का स्वरूप:- अंतर सुदूर्त प्रमाण वर्त स्थिति में जो अनेक कर्म स्थिति वर्त रही है उन में ने दलिये गुण कर अनेक इतरादिकारों का



की स्थिति में समय २ में असंख्यातगुण २ चढता हुआ दलिक सक्रमावे - मिलावे-  
 वो ऐसी तरह कि-प्रथम समय-स्तोक, उससे दुसरे समय में असंख्यात गुण अधिक,  
 उस से तीसरे समय में असंख्यात गुण अधिक, यों जावत अंतर मुहूर्त के अंतिम स-  
 मय पर्यंत कहना. यह अंतर मुहूर्त अपूर्व करण और अनिवृत्ति करण के काल से  
 कुछ अधिक काल जानना. यह तो पहिले समय में गृहण किया उस दल का निक्षेप  
 करने की विधि बताइ. यों दुसरे समय से लगा कर अंतिम समय पर्यंत समय २  
 गृहित दलका भी निक्षेप करने की विधि-रीति जाणना. अर्थात्-जो समय २ में  
 दलिक गृहण करे वो सब अलग २ अंत मुहूर्त के सब अलग २ समय के दल में  
 मिलावे, यों अपूर्व करण के समय अनिवृत्ति करण के समय अनुक्र में कम होते २  
 बाकी रहे उन में गुण श्रेणि दलिक का निक्षेप शेष बाकी रहे उस में होवै. उस से  
 अधिक - बढ़ें नहीं.

(४) गुण संक्रम का स्वरूप:—जो अपूर्व करण के प्रथम समय में बिना बंधा-  
 धाती ऐसी जो अनंतान बंधि आदिक अशुभ प्रकृति यों है उनका दल बंधती हुई  
 ऐसी जो संज्वलादि प्रकृति उस में समय २ में असंख्यात गुण अधिक मिलावै, मिला  
 कर फिर पर प्रणति रूप में परिणमावे, उसे गुण संक्रम कहते हैं. सो पहिले समय  
 सर्व स्तोक (सब से थोडा) संक्रमावे उस से दुसरे समय असंख्यात गुण अधिक संक्र-  
 मावै, यों समय २ में असंख्यात गुणाधिक २ वृद्धि पाता हुआ दलका संक्रमण करै.

(५) अन्य स्थिति बंध का स्वरूप:—अपूर्व करण के पहिले समय में जो कर्म  
 का स्थिति बंध कहा उसकी अपेक्षा से अपूर्व करण के दुसरे समय में जो दुसरा स्थि-  
 ति बंध का प्रारंभ करे वो स्तोक (कमी) जाणना. इसलिये इसे अपूर्व स्थिति बंध  
 कहते हैं. यहां स्थिति बंध और स्थिति बंध का काल बरोबर ही जानना. इन  
 दोनों का एकही वक्त प्रारंभ होता है. और एकही वक्त में पूरा करते हैं.

यों ऊपारोक्त पांचोही कामें अपूर्व करण में होते हैं.

३. अनिवृत्ति करण का स्वरूप:—अनिवृत्ति करण में एकही वक्त प्रवेश  
 करने वाले सब जीवोंके प्रथम समय में एकसाही अध्यवसाय का स्थान होता है.  
 अर्थात्-अपूर्व करण के प्रथम समय में जो जीव वर्तता है और जो पहिले वर्ते हैं औ-  
 र जो आगे को वर्तेंगे, उन सबोंका अध्यवसाय स्थानक एकसा-एक रूपीही होता है  
 और प्रथम समय के अध्यवसाय स्थानक से दूसरे समय के अध्यवसाय स्थान अनंत

गुणे अधिक विशुद्धि लिये होते हैं. यों जितने समय अनिवृत्ति करण के हैं उतने समय के अध्यवसाय स्थानक पीछे के अध्यवसाय स्थानक से आगे के अध्यवसाय स्थानक विशुद्धि की अपेक्षा अनंत गुणें अधिक होते हैं- इसका अनिवृत्ति करण ऐसा नाम देने का मतलब यह है कि-जो इसमें प्रवेश करते हैं. उन सबोंके अध्यवसाय स्थानक का परस्पर निवृत्ति और व्यवृत्ति न होती है. इसकी अपेक्षा से अर्थात्-भेदन होवे सबोंके एकसे अध्यवसाय होवे इसलिये अनिवृत्तिकहा है. यहां समय २ प्रति एकएक अध्यवसाय स्थानक उसके होतेहैं उसकी स्थापना मुक्तावलीकी माफिक(०-०-०-०)ऐसी करना. और यहां भी प्रथम समयसे ही स्थिति घातादि पांचोही काम एक ही वक्तमे अपूर्व करणके जैसेही होते हैं. यों अनिवृत्ति करणका असंख्यातवा भाग गये बाद बाकी एक भाग रहे तब अनंतान बंधीकी नीचेकी उदयावली की माव स्थिति को छोड़ कर बाकी अंतर मुहूर्त प्रमाणसे संक्रमा कर भोगवताहै. जैसे मनुष्य गति मे बाकी की तीनों गति को संक्रमा कर अजोगी केवली भोगवते हैं. उमेही स्तिबुक संक्रम कहते हैं. अन्त करण को अभिनव स्थिति बंध के काल प्रमाणको अंतर मुहूर्त का कहते है. अर्थात् वो अंतर मुहूर्त नवीन स्थिति बंधाद्वा ममान जानना. वो अंतकरण के दलिक को उकरे कर पर प्रकृति बंधाती है उममें संक्रमावे और प्रथम स्थिति का दलिक आवलिका माव मो वेद्यमान उदयावत्ति पर प्रकृति में स्तिबुक संक्रम कर संक्रमावे. ✕

अब अन्तकरण किये बाद दूसरे समय में अनंतान बंधि की ऊपर की स्थितिका दलिया उपशमाना शुरू करे. वो ऐसी तरह कि-पहिले समय में स्तोक उपशमावे. दुसरे समय उस मे असंख्यात गुणा उपशमावे. उमे संक्रमा कर भोगवे. जैसे मनुष्यगति मे बाकी की तीनों गति को संक्रमा कर अजोगी केवली द्विचरम समय में भोगवते हैं. तैमे यहां भी जानना यों समय २ में असंख्यात २ गुण अधिक चढता हुवा उपशम करता हुवा अंतर मुहूर्त के अंतिम समय अनंतान बंधिका सर्वदल उपशमित होता है. जैसे धूल के पुंज को पाणी की झुंडों मे मीच २ कर घनादिक मे कूट २ कर सूक्ष्म-(वारीक.) करे. वो ऐना वारीक करे कि उमे कोट ग्रहण

+ जो अनुदयी प्रकृतिका दल है उन को उदयवत्ति प्रकृति में लिखने है. उमे ही लि-

हुक संक्रम कहते है.

की स्थिति में समय २ में असंख्यातगुण २ चढता हुआ दलिक संक्रमावे - मिलावे- वो ऐसी तरह कि-प्रथम समय-स्तोक, उससे दूसरे समय में असंख्यात गुण अधिक, उस से तीसरे समय में असंख्यात गुण अधिक, यों जावत अंतर मुहूर्त के अंतिम समय पर्यंत कहना. यह अंतर मुहूर्त अपूर्व करण और अनिवृत्ति करण के काल से कुछ अधिक काल जानना. यह तो पहिले समय में गृहण किया उस दल का निक्षेप करने की विधि बताइ. यों दूसरे समय से लगा कर अंतिम समय पर्यंत समय २ गृहित दलका भी निक्षेप करने की विधि-रीति जानना. अर्थात्-जो समय २ में दलिक गृहण करे वो सब अलग २ अंत मुहूर्त के सब अलग २ समय के दल में मिलावे, यों अपूर्व करण के समय अनिवृत्ति करण के समय अनुक्रम में कम होते २ बाकी रहे उन में गुण श्रेणि दलिक का निक्षेप शेष बाकी रहे उस में होवे. उस से अधिक - वढें नहीं.

(४) गुण संक्रम का स्वरूप:—जो अपूर्व करण के प्रथम समय में बिना बंधाती ऐसी जो अनंतान बंधि अदिक अशुभ प्रकृति यों है उनका दल बंधती हुई ऐसी जो संज्वलादि प्रकृति उस में समय २ में असंख्यात गुण अधिक मिलावे, मिला कर फिर पर प्रणति रूप में परिणमावे, उसे गुण संक्रम कहते हैं. सो पहिले समय सर्व स्तोक (सब से थोडा) संक्रमावे उस से दूसरे समय असंख्यात गुण अधिक संक्रमावे, यों समय २ में असंख्यात गुणाधिक २ वृद्धि पाता हुआ दलका संक्रमण करे.

(५) अन्य स्थिति बंध का स्वरूप:—अपूर्व करण के पहिले समय में जो कर्म का स्थिति बंध कहा उसकी अपेक्षा से अपूर्व करण के दूसरे समय में जो दूसरा स्थिति बंध का प्रारंभ करे वो स्तोक (कमी) जानना. इसलिये इसे अपूर्व स्थिति बंध कहते है. यहां स्थिति बंध और स्थिति बंध का काल बरोबर ही जानना. इन दोनों का एकही वक्त प्रारंभ होता है. और एकही वक्त में पूरा करते हैं.

यों उपरोक्त पांचोंही कामें अपूर्व करण में होते हैं.

३. अनिवृत्ति करण का स्वरूप:—अनिवृत्ति करण में एकही वक्त प्रवेश करने वाले सब जीवोंके प्रथम समय में एकसाही अध्यवसाय का स्थान होता है. अर्थात्-अपूर्व करण के प्रथम समय में जो जीव वर्तता है और जो पहिले वर्ते हैं और जो आगे को वर्तेंगे. उन सबोंका अध्यवसाय स्थानक एकसा-एक रूपीही होता है और प्रथम समय के अध्यवसाय स्थानक से दूसरे समय के अध्यवसाय स्थान अनंत

गुणे अधिक विशुद्धि लिये होते हैं। यो जितने समय अनिवृत्ति करण के हैं उतने समय के अध्यवसाय स्थानक पीछे के अध्यवसाय स्थानक से आगे के अध्यवसाय स्थानक विशुद्धि की अपेक्षा अनंत गुणों अधिक होते हैं- इसका अनिवृत्ति करण ऐसा नाम देने का मतलब यह है कि-जो इसमें प्रवेश करते हैं, उन सबोंके अध्यवसाय स्थानक का परस्पर निवृत्ति और व्यवृत्ति न होती है, इसकी अपेक्षा से अर्थात्-भेदन होवे सबोंके एकसे अध्यवसाय होवे इसलिये अनिवृत्ति कहा है, यहां समय २ प्रति एकएक अध्यवसाय स्थानक उसके होते हैं उसकी स्थापना मुक्तावलीकी माफिक (०-०-०-०-०) ऐसी करना, और यहां भी प्रथम समयसे ही स्थिति घातादि पांचोही काम एक ही वृत्तमें अपूर्व करणके जैसेही होते हैं, यो अनिवृत्ति करणका असंख्यातवा भाग गये वाद बाकी एक भाग रहे तब अनंतान बंधीकी नीचेकी उदयावली की मात्र स्थिति को छोड़ कर बाकी अंतर मुहूर्त प्रमाणसे संक्रमा कर भोगवता है, जैसे मनुष्य गति में बाकी की तीनों गति को संक्रमा कर अजोगी केवली भोगवते हैं, उसेही स्तिबुक संक्रम कहते हैं, अन्त करण को अभिनव स्थिति बंध के काल प्रमाणको अंतर मुहूर्त का कहते हैं, अर्थात् वो अंतर मुहूर्त नवीन स्थिति बंधाद्वा समान जानना, वो अंतकरण के दलिक को उकेर कर पर प्रकृति बंधाती है उमें संक्रमावे और प्रथम स्थिति का दलिक आवलिका मात्र सो वेद्यमान उदयावत्ति पर प्रकृति में स्तिबुक संक्रम कर संक्रमावे, ✕

अब अन्तकरण किये वाद दूसरे समय में अनंतान बंधि की ऊपर की स्थितिका दलिया उपगमाना शुरु करे, वो ऐसी तरह कि-पहिले समय में स्नोक उपगमावे, दुसरे समय उस से असंख्यात गुणा उपगमावे, उमे संक्रमा कर भोगवे, जैसे मनुष्यगति में बाकी की तीनों गति को संक्रमा कर अजोगी केवली द्विचरम समय में भोगवते हैं, तैमे यहां भी जानना, यों समय २ में असंख्यात २ गुण अधिक चढता हुवा उपगम करता हुवा अंतर मुहूर्त के अंतिम समय अनंतान बंधिका सर्वदल उपशमित होता है, जैसे धूल के पुंज को पाणी की बूंदों में मीच २ कर घनादिक से कूट २ कर सूक्ष्म-(वारीक.) करे, वो ऐना वारीक करे कि उमे कोइ ग्रहण

+ जो अनुदयी प्रकृतिजा दल है उस को उदयावत्ति प्रकृति में लिखते हैं, उमे ही नि-

हुक संक्रम कहते हैं.

की स्थिति में समय २ में असंख्यातगुण २ चढता हुआ दलिक संक्रमावे - मिलावे- वो ऐसी तरह कि-प्रथम समय-स्तोक, उससे दूसरे समय में असंख्यात गुण अधिक, उस से तीसरे समय में असंख्यात गुण अधिक, यों जावत अंतर मुहूर्त के अंतिम समय पर्यंत कहना. यह अंतर मुहूर्त अपूर्व करण और अनिवृत्ति करण के काल से कुछ अधिक काल जानना. यह तो पहिले समय में गृहण किया उस दल का निक्षेप करने की विधि बताइ. यों दूसरे समय से लगा कर अंतिम समय पर्यंत समय २ गृहित दलका भी निक्षेप करने की विधि-रीति जानना. अर्थात्-जो समय २ में दलिक गृहण करे वो सब अलग २ अंतर मुहूर्त के सब अलग २ समय के दल में मिलावे, यो अपूर्व करण के समय अनिवृत्ति करण के समय अनुक्रम में कम होते २ बाकी रहे उन में गुण श्रेणि दलिक का निक्षेप शेष बाकी रहे उस में हेवै. उस से अधिक - बढ़ें नहीं.

(४) गुण संक्रम का स्वरूप:—जो अपूर्व करण के प्रथम समय में बिना बंधाती ऐसी जो अनंतान बंधि आदिक अशुभ प्रकृति यों है उनका दल बंधती हुई ऐसी जो संज्वलादि प्रकृति उस में समय २ में असंख्यात गुण अधिक मिलावै, मिला कर फिर पर प्रणति रूप में परिणमावे, उसे गुण संक्रम कहते हैं. सो पहिले समय सर्व स्तोक (सब से थोडा) संक्रमावे उस से दूसरे समय असंख्यात गुण अधिक संक्रमावै, यों समय २ में असंख्यात गुणाधिक २ वृद्धि पाता हुआ दलका संक्रमण करै.

(५) अन्य स्थिति बंध का स्वरूप:—अपूर्व करण के पहिले समय में जो कर्म का स्थिति बंध कहा उसकी अपेक्षा से अपूर्व करण के दूसरे समय में जो दूसरा स्थिति बंध का प्रारंभ करे वो स्तोक (कमी) जानना. इसलिये इसे अपूर्व स्थिति बंध कहते हैं. यहां स्थिति बंध और स्थिति बंध का काल बरोबर ही जानना. इन दोनों का एकही वक्त प्रारंभ होता है. और एकही वक्त में पूरा करते हैं.

यों ऊपरोक्त पांचोंही कामें अपूर्व करण में होते हैं.

३. अनिवृत्ति करण का स्वरूप:—अनिवृत्ति करण में एकही वक्त प्रवेश करने वाले सब जीवोंके प्रथम समय में एकसाही अध्यवसाय का स्थान होता है. अर्थात्-अपूर्व करण के प्रथम समय में जो जीव वर्तता है और जो पहिले वर्तें हैं और जो आगे को वर्तेंगे, उन सबोंका अध्यवसाय स्थानक एकसा-एक रूपीही होता है और प्रथम समय के अध्यवसाय स्थानक से दूसरे समय के अध्यवसाय स्थान अनंत

गुणे अधिक विशुद्धि लिये होते हैं। यो जितने समय अनिवृत्ति करण के हैं उतने समय के अध्यवसाय स्थानक पीछे के अध्यवसाय स्थानक से आगे के अध्यवसाय स्थानक विशुद्धि की अपेक्षा अनंत गुणें अधिक होते हैं- इसका अनिवृत्ति करण ऐसा नाम देने का मतलब यह है कि-जो इसमें प्रवेश करते हैं, उन सबोंके अध्यवसाय स्थानक का परस्पर निवृत्ति और व्यवृत्ति न होती है, इसकी अपेक्षा से अर्थात्-भेदन होवे सबोंके एकसे अध्यवसाय होवे इसलिये अनिवृत्तिकहा है, यहां समय २ प्रति एकएक अध्यवसाय स्थानक उसके होतेहैं उसकी स्थापना मुक्तावलीकी माफिक(०-०-०-०)ऐसी करना, और यहां भी प्रथम समयसे ही स्थिति वातादि पांचोही काम एक ही वक्तमे अपूर्व करणके जैसेही होते हैं, यों अनिवृत्ति करणका असंख्यातवा भाग गये वाद बाकी एक भाग रहे तब अनंतान बंधीकी नीचेकी उद्यावली की मात्र स्थिति को छोड़ कर बाकी अंतर मुहूर्त प्रमाणसे संक्रमा कर भोगवता है, जैसे मनुष्य गति में बाकी की तीनों गति को संक्रमा कर अजोगी केवली भोगवते हैं, उसेही स्तिवुक संक्रम कहते हैं, अन्त करण को अभिनव स्थिति बंध के काल प्रमाणको अंतर मुहूर्त का कहते हैं, अर्थात् वो अंतर मुहूर्त नवीन स्थिति बंधाद्वा समान जानना, वो अंतकरण के दलिक को उकरे कर पर प्रकृति बंधाती है उसमें संक्रमावे और प्रथम स्थिति का दलिक आवालिका मात्र सो वेद्यमान उद्यावत्ति पर प्रकृति में स्तिवुक संक्रम कर संक्रमावे, ✕

अब अन्तकरण किये वाद दूसरे समय में अनंतान बंधी की ऊपर की स्थितिका दलिया उपशमाना शुरू करे, वो ऐसी तरह कि-पहिले समय में स्तोक उपशमावे, दूसरे समय उस से असंख्यात गुणा उपशमावे, उसे संक्रमा कर भोगवे, जैसे मनुष्यगति में बाकी की तीनों गति को संक्रमा कर अजोगी केवली द्विचरम समय में भोगवते हैं, तैसे यहां भी जानना, यों समय २ में असंख्यात २ गुण अधिक चढ़ता हुआ उपशम करता हुआ अंतर मुहूर्त के अंतिम समय अनंतान बंधिका सर्वदल उपशमित होता है, जैसे धूल के पुंज को पाणी की बून्दों में मीच २ कर घनादिक से कूट २ कर सूक्ष्म-(वारीक.) करे, वो ऐसा वारीक करे कि उसे कोड ग्रहण

+ जो अनुदयी प्रकृतिका दल है उस को उद्यावत्ति प्रकृति में मिलने हैं, उसे ही स्ति-

\* वुक संक्रम कहते हैं.

की स्थिति में समय २ में असंख्यातगुण २ चढता हुआ दलिक संक्रमावे - मिलावे- वो ऐसी तरह कि-प्रथम समय स्तोक, उससे दूसरे समय में असंख्यात गुण अधिक, उस से तीसरे समय में असंख्यात गुण अधिक, यों जावत अंतर मुहूर्त के अंतिम समय पर्यंत कहना. यह अंतर मुहूर्त अपूर्व करण और अनिवृत्ति करण के काल से कुछ अधिक काल जानना. यह तो पहिले समय में गृहण किया उम ढल का निक्षेप करने की विधि बताइ. यों दूसरे समय से लगा कर अंतिम समय पर्यंत समय २ गृहित दलका भी निक्षेप करने की विधि-रीति जानना. अर्थात्-जो समय २ में दलिक गृहण करे वो सब अलग २ अंत मुहूर्त के सब अलग २ समय के दल में मिलावे, यों अपूर्व करण के समय अनिवृत्ति करण के समय अनुक्रम में कम होते २ बाकी रहे उन में गुण श्रेणि दलिक का निक्षेप शेष बाकी रहे उस में होवे. उस से अधिक - वहे नहीं.

(४) गुण संक्रम का स्वरूप:—जो अपूर्व करण के प्रथम समय में बिना बंधाती ऐसी जो अनंतान बंधि आदिक अशुभ प्रकृति यों है उनका दल बंधती हुई ऐसी जो संज्वलादि प्रकृति उस में समय २ में असंख्यात गुण अधिक मिलावे, मिला कर फिर पर प्रणति रूप में परिणमावे, उसे गुण संक्रम कहते हैं. सो पहिले समय सर्व स्तोक (सब से थोडा) संक्रमावे उस से दूसरे समय असंख्यात गुण अधिक संक्रमावे, यों समय २ में असंख्यात गुणाधिक २ वृद्धि पाता हुआ दलका संक्रमण करे.

(५) अन्य स्थिति बंध का स्वरूप:—अपूर्व करण के पहिले समय में जो कर्म का स्थिति बंध कहा उसकी अपेक्षा से अपूर्व करण के दूसरे समय में जो दूसरा स्थिति बंध का प्रारंभ करे वो स्तोक (कमी) जानना. इसलिये इसे अपूर्व स्थिति बंध कहते है. यहां स्थिति बंध और स्थिति बंध का काल बरोबर ही जानना. इन दोनों का एकही वक्त प्रारंभ होता है. और एकही वक्त में पूरा करते हैं.

यों ऊपरोक्त पांचोंही कामे अपूर्व करण में होते हैं.

३. अनिवृत्ति करण का स्वरूप:—अनिवृत्ति करण में एकही वक्त प्रवेश करने वाले सब जीवोंके प्रथम समय में एकसाही अध्यवसाय का स्थान होता है. अर्थात्-अपूर्व करण के प्रथम समय में जो जीव वर्तता है और जो पहिले वर्ते हैं और जो आगे को वर्तेंगे, उन सबोंका अध्यवसाय स्थानक एकसा-एक रूपीही होता है और प्रथम समय के अध्यवसाय स्थानक से दूसरे समय के अध्यवसाय स्थान अनंत

अब दर्शन मोहनीय विकको उपशमाने की रीति कहते हैं:—

मिथ्यात्वकी उपशमना तो मिथ्यात्वी के तथा क्षयोपशम सम्यक्त्वी के इन दोनों केही होती है, और सम्यक्त्व तथा मिश्र मोहनीय की उपशमना क्षयोपशम सम्यक्त्वी के ही होती है इसमें मिथ्यात्वी के तो ग्रन्थिभेद करते प्रथम उपशमसम्यक्त्वा की प्राप्ति करने वालेके मिथ्यात्व की उपशमना जैसे होती है उसकी रीति कहते हैं:—  
कोई मन्त्री पंचान्द्रिय पर्याप्ता करण काल के पहिले अन्तर मुहूर्त काल पर्यन्त समय २ में अनन्त गुणावृत्ती गत विशुद्धि में प्रवर्तता ऐसा अभव्य भाँधिक जीवकी विशुद्धि की अपेक्षा अनन्त गुण विशुद्धिबन्त ऐसा मति अज्ञान, श्रुति अज्ञान और विभंगज्ञान इन में के किसी भी माकार उपयोग युक्त और मनादि तीनों जोगों में से किसी भी जोग युक्त प्रवर्तता जयन्य परिणाम से-तेजुल्लेख्या में, मध्यम परिणाम में पद्मल्लेख्या में और उत्कृष्ट परिणाम में शुक्लल्लेख्या में प्रवर्तता, मिथ्यात्व दृष्टि चारों गतिमें से किसी भी गति वाला, कुछ कम एक कोड़ाकोड़ी नागरोपम की स्थिति मानों कर्मोंकी बाकी रहे, इत्यादि सर्व पहिले कीती तरह जहाँ तक यथा प्रवृत्ति करण और अपूर्वकरण यह दोनों मिथ्यात्व उपशमाने को पूर्ण करे तहाँ तक कहना, परन्तु यहाँ इतना विशेष कि-अपूर्वकरण में गुण संक्रमण करना नहीं है, फल-मिथितान, रमयान गुणश्रेणी, और अन्यस्थिति बन्ध यह चारों कामों प्रथम में प्रारंभ करना है, और गुणश्रेणी दालिक रचना भी उदय समय में लगाकरही जानाना, और फिर अनिवृत्ति करण में भी ऐसीही कहना, फिर अनिवृत्ति करणका के भंगवाने भाग गये बाद और फल एकही संख्यातवा भाग रहे तब मिथ्यात्व की नीचे की प्रथम स्थिति आतना न बन्ध की तरह अन्तर मुहूर्त मात्र नीचे छोड़ कर, ऊपर अन्तर मुहूर्त मात्र आनि-नव स्थिति बन्ध के अन्तर मुहूर्त जितनी ( पहिली स्थिति के अन्तर मुहूर्त में कुछ अधिक ) आधिन स्थिति के बन्ध के बाद जैसी, ऐसी मिथ्यात्वकी अन्तर्वर्णाका करे, वो अन्तर्वर्णा वाला कर्मद्वय वृत्त उदय के पहिले की स्थिति में भिन्न, और कुछ दूसरी उपरकी स्थितिमें भिन्न, वहाँ पहिले की स्थिति में वर्तना जीव उदीरणमा प्रयोग कर प्रथम स्थितिका दण उदय बारिका के उपरका है उसे आकर्ष कर उदया बलिवा में भिन्ने-उने उदीर्णा करते हैं, और जो दूसरी स्थिति के मजदूरीवे उदीर्णा प्रयोग करके उसमें वा दण आकर्ष, मजदूरी कर उदया बलिवा में भिन्ना-भोगवे, अब उदय और उदीर्णा करके प्रथम स्थितिका दण मो-



तक अप्रत्याख्यानी और प्रत्याख्यानी मान का उपगम न होवे वहां तक संज्वल के मान का उदय पावे. ऐसीही संज्वल की माया के उदय में श्रेणी का आरंभ करे उस के जहां तक अप्रत्याख्यानी और प्रत्याख्यानी माया का उपगम न होवे वहां तक संज्वल की माया का उदय होवे. और ऐसीही संज्वल के लोभ के उदय में श्रेणी आरंभ करे उस के अप्रत्याख्यानी प्रत्याख्यानी और संज्वल के लोभ का उपगम न होवे वहां तक वादर संज्वल के लाभका उदय पावे. यों अपने २ उदय काल की अपेक्षा से उस के उदय में प्रवर्तता श्रेणीका आरंभ करे वो जो कपाय अथवा जो वेद के उदय में श्रेणी का आरंभ करे वो कपाय अथवा वो वेदका उदय काल थाकता हुआ उस के उतने काल की उतनी प्रथम स्थिति होती है. और दुसरे सब की आवलिका मात्र स्थिति प्रथम स्थिति होती है. यहां जितने काल में स्थिति घात करे तथा दुसरे काल का अन्त स्थिति बंध करे उतने काल में अन्त करण भी करे. यह तीनों ही साथ करे अर्थात् एकही वक्तमें आरंभ करे और एकही वक्तमें पूर्ण करे. परंतु उसका काल प्रथम स्थिति से असंख्यात गुणा अधिक होता है. अब अंतकरण का दल प्रक्षेपने की विधि लिखते हैं:—जिस प्रकृति का जहां बंध और उदय दोनों हैं, उस प्रकृति का अंतकरण सत्कदल कुंछेकतो प्रथम स्थिति में मिलाना और कुंछेक दूसरी स्थिति में मिलाना. जैसे पुरुष वेद के उदय में श्रेणी का आरंभ करे, उस के पुरुष वेदका बंध होवे और उदयतो हेही, इसलिये पुरुष वेद का अन्तकरण दल दोनों स्थिति में मिलाना. और जिस प्रकृति का उदय तो है परंतु बंध नहीं है. उसका अंतकरण का दल प्रथम स्थिति में ही मिलाना. जैसे स्त्री वेदका तो उदय है परंतु बंध नहीं है, उस न स्त्रीवेद के उदय में जो श्रेणी प्रारंभी वो अंतकरण सत्कदल अपनी प्रथम स्थिति में ही मिलावे. और जिस प्रकृति का जहां उदय नहीं है, और बंध है. उसका अंतकरण दल दूसरी स्थिति में मिलावे परंतु प्रथम स्थिति में नहीं मिलावे. जैसे संज्वल क्रोध के उदय में श्रेणी आरंभी वो बाकी तीन संज्वल की कपाय का बन्ध करता है, वो उसका अन्तकरणदल दूसरी स्थिति में मिलावे. और जिस प्रकृति का बंध तथा उदय दोनों नहीं है, उस का अन्तकरण दल अन्य प्रकृति में मिलावे. जैसे दुसरी अप्रत्याख्यानीय और तीसरी प्रत्याख्यानीय कपाय का अंतकरण दल संज्वल अन्य प्रकृति है उस में मिलावे. वो अंतकरण कियेवाद् प्रथम नपुंसक वेदका उपशम करे. वो प्रथम समय में थोड़ा दल उपश-

मात्रे. दुसरे समय उस मे असंख्यात गुणा यों समय २ मे असंख्यात गुणा वधता उ  
पगमता हुवा अन्तिम समय में सर्व उपशांत होवे. वहां प्रथम समय मे लगाकर द्वि  
चरम समय पर्यंत जो दल उपगमाया है उस मे असंख्यात गुणा दल अन्य प्रकृति  
में मिलावे; और अन्तिम समय मे जिस प्रकृति में मिलावे उस मे असंख्यात गुण उ-  
पगमावे. यो नपुंसक वेद उपगमाने मे पहिले की अनंतान बंधि चौकडी तथा दर्श-  
न त्रिक इन नातो सहित आठो मोहनीय की प्रकृति का उपशांत होवे. फिर उप-  
रोक्त विधि मे अंतर मुहूर्त पर्यंत स्त्रीवेदको उपगमावे. फिर हांस्यादि छेओ प्रकृति  
योको अन्तर मुहूर्त पर्यंत उपगमावे. फिर सब माथी मोहनीयकी बाकी रही १५  
प्रकृति का उपशांत होवे. उस वक्त पुरुष वेदका बंध उदय और उदीगणा का वि-  
च्छेद होवे. और उनकी प्रथम स्थिति का भी विच्छेद होवे. जब पुरुष वेद की प्रथम  
स्थिति दो आवलि बाकी रहे पूर्वोक्त आगे न होवे उस वक्त मार्गदल विशेषदल  
हुवा इसलिये वहां हांस्यादिक छेओ प्रकृति का दल पुरुष वेद मे तो मिले नही, तब  
उन हांस्यादि छेओका दल संज्वल के क्रोधादिक मे मिलावे. यों हांस्यादि छेओ  
प्रकृति उपगमाये बाद एक समय कम दो आवलि पुरुष वेद उपगमावे. बोधी, प्रथम  
समय मे सब मे थोडा. उस मे दुसरे समय असंख्यात गुणा अधिक उपगमावे' यों  
समय २ मे असंख्यात २ गुणा अधिक २ उपगमता हुवा. एक समय कम दो आव-  
लिका रहे बर्तक कहना. और कितनाक दल दुसरी प्रकृति मे यथा प्रवर्त भंक्रम  
कर भंक्रमावे परंतु प्रथम समय मे विशेष हीन दुसरे समय में भंक्रमावे यों  
समय २ कम २ भंक्रमाता हुवा आवलिकाके चरम समय तक जाय; ऐसी तरह पुरुष  
वेद का उपशांत हुवे बाद मोहनीय की १६ प्रकृतियोंका उपशांत होवे

फिर जिस समय हांस्यादि छेओ प्रकृति का उपगम होवे, उस समय मे पुरु-  
ष वेदकी प्रथम स्थिति का क्षय होवे तदनंतर अमत्याग्यनी और और अत्या-  
ग्यानी क्रोध, तथा संज्वल का क्रोध इन तीनों जोनों को एक माथी उपगमावे  
यो पूर्वोक्त रीति मे उपगमाते हुवे जिस वक्त संज्वल के क्रोध की प्रथम स्थिति एक  
समय कम तीन आवलि बाकी रहे, उन दल अमत्याग्यनी और अत्याग्यनीका  
इन दोनों क्रोधाका दल संज्वल के क्रोध मे प्रवेश नही करना, संज्वल के मात्वादिक  
मे मिलावे, क्योंकि वक्त तीन आवलि जिनकाही क्रोधाका दल बाकी रहा है उस में  
जिनी भी प्रदान का दलका पन्ध हा नही होता है. अर्थात् उस में दुसरी प्रकृति

तक अप्रत्याख्यानी और प्रत्याख्यानी मान का उपशम न होवे वहांतक संज्वल के मान का उदय पावे. ऐसेही संज्वल की माया के उदय में श्रेणी का आरंभ करे उस के जहातक अप्रत्याख्यानी और प्रत्याख्यानी माया का उपशम न होवे वहांतक संज्वल की माया का उदय होवे. और ऐसेही संज्वल के लोभ के उदय में श्रेणी आरंभ करे उस के अप्रत्याख्यानी प्रत्याख्यानी और संज्वल के लोभ का उपशम न होवे वहां तक बादर संज्वल के लाभका उदय पावे. यों अपने २ उदय काल की अपेक्षा से उस के उदय मे प्रवर्तता श्रेणीका आरंभ करे वो जो कपाय अथवा जो वेद के उदय में श्रेणी का आरंभ करै वो कपाय अथवा वो वेदका उदय काल थाकता हुवा उस के उतने काल की उतनी प्रथम स्थिति होती है. और दुमरे मव की आवलिका मात्र स्थिति प्रथम स्थिति होती है. यहां जितने काल में स्थिति घात करे तथा दुसरे काल का अन्त स्थिति बंध करे उत ने काल में अन्त करण भी करे. यह तीनों ही साथ करे अर्थात् एकही वक्तमें आरंभ करे और एकही वक्तमें पूर्ण करे. परंतु उसका काल प्रथम स्थिति से असंख्यात गुणा अधिक होता है. अब अंतकरण का दल प्रक्षेपने की विधि लिखते हैं:—जिस प्रकृति का जहा बंध और उदय दोनो हैं, उस प्रकृति का अंतकरण सत्कदल कुछेकतो प्रथम स्थिति में मिलाना और कुछेक दूसरी स्थिति मे मिलाना. जैसे पुरुष वेद के उदय में श्रेणी का आरंभ करे, उस के पुरुष वेदका बंध होवे और उदयतो हेही, इसलिये पुरुष वेद का अन्तकरण दल दोनों स्थिति में मिलाना. और जिस प्रकृति का उदय तो है परंतु बंध नहीं है. उसका अंतकरण का दल प्रथम स्थिति मेही मिलाना. जैसे-स्त्री वेदका तो उदय है परंतु बंध नहीं है, उस न स्त्रीवेद के उदय में जो श्रेणी प्रारंभी वो अंतकरण सत्कदल अपनी प्रथम स्थिति मेंही मिलाने. और जिस प्रकृति का जहां उदय नहीं है, और बंध है. उसका अंतकरण दल दूसरी स्थिति में मिलाने परंतु प्रथम स्थिति में नहीं मिलाने. जैसे-संज्वल क्रोध के उदय मे श्रेणी आरंभी वो बाकी तीन संज्वल की कपाय का बन्ध करता है, वो उसका अन्तकरणदल दूसरी स्थिति मे मिलाने. और जिस प्रकृति का बंध तथा उदय दोनों नहीं है, उस का अन्तकरण दल अन्य प्रकृति मे मिलाने. जैसे-दुसरी अप्रत्याख्यानीय और तीसरी प्रत्याख्यानीय कपाय का अंतकरण दल संज्वल अन्य प्रकृति है उस में मिलाने. यो अंतकरण कियेवादा प्रथम नपुंसक वेदका उपशम करे. वो प्रथम समय में थोडा दल उपश-

मात्रे. दुसरे समय उस मे असंख्यात गुणा यों समय २ में असंख्यात गुणा वधता उ  
पगमता हुआ अन्तिम समय मे सर्व उपगांत होवे. वहां प्रथम समय मे लगाकर दि  
चरम समय पर्यंत जो दल उपगमाया है उस मे असंख्यात गुणा दल अन्य प्रकृति  
मे भिन्नावे; और अन्तिम समय मे जिस प्रकृति मे भिन्नावे उस मे असंख्यात गुण उ-  
पगमावे. यो नृपुंसक वेद उपगमाने मे पहिले की अनंतान वंशि चौकडी तथा दर्श-  
न त्रिक इन नातों सहित आठो मोहनीय की प्रकृति का उपगांत होवे. फिर ऊप-  
रोक्त विधि मे अंतर सुहूर्त पर्यंत स्त्रीवेदको उपगमावे. फिर हॉम्यादि छेओ प्रकृति  
योंको अन्तर सुहूर्त पर्यंत उपगमावे. फिर नव मायही मोहनीयकी बाकी रही १२  
प्रकृति का उपगांत होवे. उस वक्त पुरुष वेदका बंध उदय और उदीगणा का वि-  
च्छेद होवे. और उसकी प्रथम स्थिति का भी विच्छेद होवे. जब पुरुष वेद की प्रथम  
स्थिति दो आवलि बाकी रहे पूर्वोक्त आगे न होवे उन वक्त मार्गदल विघेपदल  
हुवा इनलिये वहां हास्यादिक छेओ प्रकृति का दल पुरुष वेद में तो भिन्ने नहीं. तब  
उन हास्यादि छेओका दल संज्ञक के क्रोधादिक मे भिन्नावे. यों हास्यादि छेओ  
प्रकृति उपगमाये बाद एक समय कम दो आवलि पुरुष वेद उपगमावे. बाँधी, प्रथम  
समय मे सब मे थोडा. उस मे दुसरे समय असंख्यात गुणा अधिक उपगमावे' यों  
समय २ मे असंख्यात २ गुणा अधिक २ उपगमना हुआ. एक समय कम दो आव-  
लिका रहै दानक काना और कितनाक दल दुसरी प्रकृति में क्या मरत भंजन  
कर भंजनावे. परंतु प्रथम समय मे विशेष हीन दुसरे समय में भंजनावे. यो  
समय २ कम २ भंजमाना हुआ आवलिकाके चरम समय तक जाय: ऐसी तरह पुरुष  
वेद का उपगांत हुवे बाद मोहनीय की १० प्रकृतिगोत्रा उपगांत होवे

फिर जिस समय हास्यादि छेओ प्रकृति का उपगम होवे. उस समय मे पुरु-  
ष वेदकी प्रथम स्थिति का क्षय होवे. तदनंतर अमृतगन्धनी ज्ञेय और प्रत्या-  
ग्यानी ज्ञेय. तथा संज्ञक का ज्ञेय इन तीनों ज्ञेयों को एक मायही उपगमावे  
जो पूर्वोक्त रीति मे उपगमाने हुवे जिस वक्त संज्ञक के ज्ञेय की प्रथम स्थिति एक  
समय कम तीन ज्ञेयों बाकी रहे. उन वक्त अमृतगन्धनीय और प्रत्याग्यानीय  
इन दोनों ज्ञेयों का दल संज्ञक के ज्ञेय मे विशेष रूपे वरना संज्ञक के प्रत्याग्या-  
मे भिन्नावे. क्योंकि एक हीन ज्ञेयों मिलनी ज्ञेयों का दल बाकी रहा है उस में  
जिमी भी प्रकृति का दलका पद रह नही होना है अर्थात् उस में दुसरी प्रकृति

के दलका समावेश नहीं होता है. और उसकी दो आवली बाकी रहे तब तहां आगे विच्छेद होता है. और एक आवली बाकी रहे तब संज्वलका क्रोध का बंद उदय उदीरणा का विच्छेद होता है. और अप्रत्याख्यानी प्रत्याख्यानी क्रोध उपशांत होता है. तब १८ प्रकृति यों का उपशांत होवे.

फिर संज्वल क्रोध की प्रथम स्थिति एक आंवालि का कादल और दो आंवालि एक समय कम यहां बंधा जो ऊपरकी स्थिति का दल उसविना सब उपशांत होता है उस के बाद जो संज्वल के क्रोध का प्रथम स्थिति का एक आंवाली का दल सो संज्वल के मान में स्तिबुक संक्रम कर संक्रमावे. और समय कम दो आंवालि का बन्धका ऊपर की स्थिति का दल सो पुरुष वेद उपशमनाधि करिके प्रस्ताव में उपाव वताया उसही तरह से उपशमावे, तथा अन्य प्रकृति में संक्रमावे. यों समय सम दो आंवालि संज्वलन क्रोध की ऊपर की स्थिति उसे उपशमावे. यों मोहनीयकी १९ प्रकृति योंका उपशम हुवा.

जिस वक्त संज्वल के क्रोधका बन्ध उदय उदीरणा का विच्छेद हुवा, उस समय से लगाकर संज्वल के मान की दूसरी स्थिति मे से दलको आकर्ष कर उसे प्रथम स्थिति कर वेदे, वहां उदय समय में तो स्तकोक प्रक्षेपता है, और उस से दूसरे समय में असंख्यात गुण अधिक प्रक्षेप करे, यों समय २ असंख्यात गुणा अधिक चडता हुवा प्रक्षेप करे. सो यावत प्रथम स्थिति के अन्तिम समय तक प्रक्षेप करे, प्रथम स्थिति करण के प्रथम समय से लगाकर - अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वल इन तीनों मानों को एक साथही उपशमावे. वो वैसेही जिस वक्त संज्वल के मान की प्रथम स्थिति समय कम तीन आवली का रहे उस वक्त पहिले कहे मुजबही संज्वल के मान में अन्य प्रकृति का पतद ग्रह न होने से उस वक्त प्रत्याख्यानादि मान का दल संज्वलकी माया मे संक्रमावे, ऐमेही अर्थात् क्रोध की तरह ही मान के उपशमानेकी विधि जानना. यों अप्रत्याख्यानी प्रत्याख्यानी मानको उपशमा तब मोहनीय की २१ प्रकृति का उपशम होता है.

... के मान के बंध उदय उदीरणा विच्छेद हुवे बाद संज्वल के मानकी माफि एक आवलिक में उपशमावे. तब २२ प्रकृति उपशमी और जिस समय में संज्वल के मान का बंध उदय उदीरणा का विच्छेद होवे उसके प्रथम से लगाकर संज्वल की माया की दूसरी स्थिति में से दलको आकर्ष कर पहिले कहे मुजब प्रथम

स्थिति गत करके वेदे. उसही समय से लगाकर तीनों माया का उपशम करने लगे बोधी मान की तरह एक आवली रहे संज्वलकी माया का बंध उदय उदीरणा विच्छेद होवे उस समय अप्रत्याख्यानीय प्रत्याख्यानीय माया उपशांत होवे तब मोहनीय की २४ प्रकृति यों का उपशांत हुवा.

उस वक्त संज्वल की माया का प्रथम स्थिति गत एक आवली तथा समय कम आवलिकाद्विक में बंधा हुवा जो उपर की स्थिति गत दलिक उसको छोड़ कर वाकी रहा सर्व उपशांत होवे. फिर प्रथम स्थिति गत एक आवलिका को स्तिबुक संक्रम कर संज्वल के लोभ में संक्रमावे. और समय कम दो आवलिका बंधे हुवे दलिक को पुरुष वेदमें उपर कोहे मुजवही उपशमावे, यों संक्रमावे. फिर समय कम दो आवलिका संज्वल की माया उपशांत होवे तब मोहकी २५ प्रकृति का उपशांत हुवा.

जिस वक्त संज्वल की माया का बंध उदय उदीरणा का विच्छेद हुवा तदनंतर दुसरे समय में ही संज्वल के लोभ की दुसरी स्थिति में से दलका आकर्षण कर प्रथम स्थिति को रचे उस प्रथम स्थिति लोभ वेदनाद्वा के तीन विभाग दो प्रमाण से करे—उस में प्रथम विभाग का नाम - अश्वकरणाद्वा और दूसरे विभाग का नाम - किट्टि करणाद्वा.

प्रथम अश्वकरणाद्वा विभाग में वर्तता आत्मा पूर्व स्पर्द्धक ÷ में से दल गृहण कर अपूर्व स्पर्द्धक करें. उस स्पर्द्धकी उपरकी वर्गणा के रस विभाग से एक रस विभाग ज्यादा या दो रस विभाग ज्यादा. रस विभाग सहित यों जावत सब जीवों से अनंतगुणा पर्यंत से एक रस विभाग कम रसोपेत कर्म स्कंध दल नहीं मिलता है.

÷ स्पर्द्धक का स्वल्प—जीव अनन्त कर्म प्रमाण से निष्पन्न स्कन्ध उसे कर्म पणें गृहण करता है, वहां एकेक कर्म स्कन्ध में जो सबसे जवन्य रस है उस के दो विभागकी केवल ज्ञानी भी कल्पना नहीं कर सकें. ऐसा बारीक छेदना हुवा सब जीवों को रस का विभाग देता है. और ऐसेही बरोबरी के जवन्य रस के कर्म स्कन्ध दल उसका समुदाय उसे वर्गणा कहते हैं, उस से एक रस विभाग चडता कर्म स्कन्ध की दूसरी वर्गणा. उस से दो रस विभाग चडते कर्म स्कन्धकी तीसरी वर्गणा. यों एकेक रस विभाग चडती २ वर्गणा करता अभव्य से अनन्त गुणी अधिक और सिद्ध से अनन्त गुणहीन प्रमाण वर्गणा का सा मुदाय उसे स्पर्द्धक कहते हैं.

के दलका समावेश नहीं होता है. और उसकी दो आवली बाकी रहे तब तहां आगे विच्छेद होता है. और एक आवली बाकी रहे तब संज्वलका क्रोध का बंद उदय उदीरणा का विच्छेद होता है. और अप्रत्याख्यानी प्रत्याख्यानी क्रोध उपशांत होता है. तब १८ प्रकृति यों का उपशांत होवे.

फिर संज्वल क्रोध की प्रथम स्थिति एक आंवालि का काटल और दो आंवालि एक समय कम यहां बंधा जो ऊपरकी स्थिति का दल उसविना सब उपशांत होता है उस के बाद जो संज्वल के क्रोध का प्रथम स्थिति का एक आंवालि का दल सो संज्वल के मान में स्तिबुक संक्रम कर संक्रमावे. और समय कम दो आंवालि का बन्धका ऊपर की स्थिति का दल सो पुरुष वेद उपशमनाधि करिके प्रस्ताव मे उपाव बताया उसही तरह से उपशमावे, तथा अन्य प्रकृति में संक्रमावे. यो समय सम दो आंवालि संज्वलन क्रोध की ऊपर की स्थिति उसे उपशमावे. यों मोहनीयकी १९ प्रकृति योंका उपशम हुवा.

जिस वक्त संज्वल के क्रोधका बन्ध उदय उदीरणा का विच्छेद हुवा, उस समय से लगाकर संज्वल के मान की दुसरी स्थिति मे से दलको आकर्ष कर उसे प्रथम स्थिति कर वेदे, वहां उदय समय में तो स्तकोक प्रक्षेपता है, और उस से दूसरे समय में असंख्यात गुण अधिक प्रक्षेप करे, यो समय २ असंख्यात गुणा अधिक चडता हुवा प्रक्षेप करे. सो यावत प्रथम स्थिति के अन्तिम समय तक प्रक्षेप करे, प्रथम स्थिति करण के प्रथम समय से लगाकर - अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वल इन तीनों मानो को एक साथही उपशमावे. वो वैसेही जिस वक्त संज्वल के मान की प्रथम स्थिति समय कम तीन आवली का रहे उस वक्त पहिले क हे मुजबही संज्वल के मान मे अन्य प्रकृति का पतद ग्रह न होने से उस वक्त प्रत्याख्यानादि मान का दल संज्वलकी माया मे संक्रमावे, ऐसेही अर्थात् क्रोध की तरह ही मान के उपशमानेकी विधि जानना. यो अप्रत्याख्यानी प्रत्याख्यानी मानको उपशमावे तब मोहनीय की २१ प्रकृति का उपशम होता है.

संज्वल के मान के बंध उदय उदीरणा विच्छेद हुवे बाद संज्वल के मानकी माफि एक आवलिक मे उपशमावे. तब २२ प्रकृति उपशमी और जिस समय में संज्वल के मान का बंध उदय उदीरणा का विच्छेद होवे उसके प्रथम से लगाकर संज्वल की माया की दुसरी स्थिति में से दलको आकर्ष कर पहिले कहे मुझव प्रथम

स्थिति गत करके वेदे. उसही समय से लगाकर तीनों माया का उपशम करने लगे वोभी मान की तरह एक आवली रहे संज्वलकी माया का बंध उदय उदीरणा विच्छेद होवे उस समय अप्रत्याख्यानीय प्रत्याख्यानीय माया उपशांत होवे तब मोहनीय की २४ प्रकृति यों का उपशांत हुवा.

उस वक्त संज्वल की माया का प्रथम स्थिति गत एक आवली तथा समय कम आवलिकाद्विक में बंधा हुवा जो उपर की स्थिति गत दलिक उसको छोड़ कर बाकी रहा सर्व उपशांत होवे. फिर प्रथम स्थिति गत एक आंवलिका को स्तिबुक संक्रम कर संज्वल के लोभ में संक्रमावे. और समय कम दो आवलिका बंधे हुवे दलिक को पुरुष वेदमें उपर को मुजवही उपशमावे, यों संक्रमावे. फिर समय कम दो आवलिका संज्वल की माया उपशांत होवे तब मोहकी २५ प्रकृति का उपशांत हुवा.

जिस वक्त संज्वल की माया का बंध उदय उदीरणा का विच्छेद हुवा तदनंतर दुसरे समय में ही संज्वल के लोभ की दुसरी स्थिति में सें दलका आकर्षण कर प्रथम स्थिति को रचे उस प्रथम स्थिति लोभ वेदनाद्वा के तीन विभाग दो प्रमाण से करे—उस में प्रथम विभाग का नाम - अश्वकरणाद्वा और दूसरे विभाग का नाम - किट्टि करणाद्वा.

प्रथम अश्वकरणाद्वा विभाग में वर्तता आत्मा पूर्व स्पर्द्धक ÷ में से दल गृहण कर अपूर्व स्पर्द्धक करें. उस स्पर्द्धकी उपरकी वर्गणा के रस विभाग से एक रस विभाग ज्यादा या दो रस विभाग ज्यादा. रस विभाग सहित यों जावत सब जीवों से अनंतगुणा पर्यंत से एक रस विभाग कम रसोपेत कर्म स्कंध दल नहीं मिलता है.

÷ स्पर्द्धक का स्वल्प—जीव अनन्त कर्म प्रमाण से निष्पन्न स्कन्ध उसे कर्म पणे गृहण करता है. वहां एकेक कर्म स्कन्ध में जो सबसे जवन्य रस है उस के दो विभागकी केवल ज्ञानी भी कल्पना नहीं कर सके. ऐसा बारीक छेदना हुवा सब जीवों को रस का विभाग देता है. और ऐसेही बरोबरी के जवन्य रस के कर्म स्कन्ध दल उसका समुदाय उसे वर्गणा कहते हैं. उस से एक रस विभाग चडता कर्म स्कन्ध की दूसरी वर्गणा. उस से दो रस विभाग चडते कर्म स्कन्धकी तीसरी वर्गणा. यों एकेक रस विभाग चडती २ वर्गणा करना अभव्य से अनन्त गुणी अत्रिक और सिद्ध से अनन्त गुणहीन प्रमाण वर्गणा का ना मुदाय उसे स्पर्द्धक कहते हैं.



के दलका समावेश नहीं होता है. और उसकी दो आवली बाकी रहे तब तहां आगे विच्छेद होता है. और एक आवली बाकी रहे तब संज्वलका क्रोध का बंद उदय उद्दीरणा का विच्छेद होता है. और अप्रत्याख्यानी प्रत्याख्यानी क्रोध उपशांत होता है. तब १८ प्रकृति यों का उपशांत होवे.

फिर संज्वल क्रोध की प्रथम स्थिति एक आंवालि का कादल और दो आंवालि एक समय कम यहां बंधा जो ऊपरकी स्थिति का दल उसविना सब उपशांत होता है उस के बाद जो संज्वल के क्रोध का प्रथम स्थिति का एक आंवालि का दल सो संज्वल के मान में स्तिबुक संक्रम कर संक्रमावे. और समय कम दो आंवालि का बन्धका ऊपर की स्थिति का दल सो पुरुष वेद उपशमनाधि करिके प्रस्ताव में उपाव बताया उसही तरह से उपशमावे, तथा अन्य प्रकृति में संक्रमावे. यों समय सम दो आंवालि संज्वलन क्रोध की ऊपर की स्थिति उसे उपशमावे. यों मोहनीयकी १९ प्रकृति योंका उपशम हुआ.

जिस वक्त संज्वल के क्रोधका बन्ध उदय उद्दीरणा का विच्छेद हुआ, उस समय से लगाकर संज्वल के मान की दूसरी स्थिति में से दलको आकर्ष कर उसे प्रथम स्थिति कर वेदे, वहां उदय समय में तो स्तकोक प्रक्षेपता है, और उस से दूसरे समय में असंख्यात गुण अधिक प्रक्षेप करे, यों समय २ असंख्यात गुणा अधिक चडता हुआ प्रक्षेप करे. सो यावत प्रथम स्थिति के अन्तिम समय तक प्रक्षेप करे, प्रथम स्थिति करण के प्रथम समय से लगाकर - अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वल इन तीनों मानों को एक साथही उपशमावे. वो वैसेही जिस वक्त संज्वल के मान की प्रथम स्थिति समय कम तीन आवली का रहे उस वक्त पहिले कहे मुजबही संज्वल के मान में अन्य प्रकृति का पतद ग्रह न होने से उस वक्त प्रत्याख्यानादि मान का दल संज्वलकी माया में संक्रमावे, ऐसीही अर्थात् क्रोध की तरह ही मान के उपशमानेकी विधि जानना. यों अप्रत्याख्यानी प्रत्याख्यानी मानको उपशमावे तब मोहनीय की २१ प्रकृति का उपशम होता है.

संज्वल के मान के बंध उदय उद्दीरणा विच्छेद हुवे बाद संज्वल के मानकी माफि कही एक आवलिक में उपशमावे. तब २२ प्रकृति उपशमी और जिस समय में संज्वल के मान का बंध उदय उद्दीरणा का विच्छेद होवे उसके प्रथम से लगाकर संज्वलकी माया की दूसरी स्थिति में से दलको आकर्ष कर पहिले कहे मुजब प्रथम

स्थिति गत करके वेदे. उसही समय से लगाकर तीनों माया का उपशम करने लगे बोधी मान की तरह एक आवली रहे संज्वलकी माया का बंध उदय उदीरणा विच्छेद होवे उस समय अप्रत्याख्यानीय प्रत्याख्यानीय माया उपशांत होवे तब मोहनीय की २४ प्रकृति यों का उपशांत हुवा.

उस वक्त संज्वल की माया का प्रथम स्थिति गत एक आवली तथा समय कम आवलिकाद्विक में बंधा हुवा जो उपर की स्थिति गत दलिक उसको छोड़ कर बाकी रहा सर्व उपशांत होवे. फिर प्रथम स्थिति गत एक आवलिका को स्तिबुक संक्रम कर संज्वल के लोभ में संक्रमावे. और समय कम दो आवलिका बंधे हुवे दलिक को पुरुष वेदमें उपर कोह मुजवही उपशमावे, यों संक्रमावे. फिर समय कम दो आवलिका संज्वल की माया उपशांत होवे तब मोहकी २५ प्रकृति का उपशांत हुवा.

जिस वक्त संज्वल की माया का बंध उदय उदीरणा का विच्छेद हुवा तदनंतर दुसरे समय में ही संज्वल के लोभ की दुसरी स्थिति में से दलका आकर्षण कर प्रथम स्थिति को रचे उस प्रथम स्थिति लोभ वेदनाद्वा के तीन विभाग दो प्रमाण से करे—उस में प्रथम विभाग का नाम - अश्वकरणाद्वा और दूसरे विभाग का नाम - किट्टि करणाद्वा.

प्रथम अश्वकरणाद्वा विभाग में वर्तता आत्मा पूर्व स्पर्द्धक ÷ में से दल गृहण कर अपूर्व स्पर्द्धक करें. उस स्पर्द्धकी उपरकी वर्गणा के रस विभाग से एक रस विभाग ज्यादा या दो रस विभाग ज्यादा. रस विभाग सहित यों जावत सब जीवों से अनंतगुणा पर्यंत से एक रस विभाग कम रसोपेत कर्म स्कंध दल नहीं मिलता है.

÷ स्पर्द्धक का स्वल्प—जीव अनन्त कर्म प्रमाण से निष्पन्न स्कन्ध उसे कर्म पणें गृहण करता है. वहां एकेक कर्म स्कन्ध में जो सबसे जवन्य रस है उस के दो विभागकी केवल ज्ञानी भी कल्पना नहीं कर सकें. ऐसा बारीक छेदना हुवा सब जीवों को रस का विभाग देता है. और ऐसेही बरोबरी के जवन्य रस के कर्म स्कन्ध दल उसका स्तुदाय उसे वर्गणा कहते हैं. उस से एक रस विभाग चडता कर्म स्कन्ध की दूसरी वर्गणा. उस से दो रस विभाग चडते कर्म स्कन्धकी तीसरी वर्गणा. यों एकेक रस विभाग चडती २ वर्गणा करता अभव्य से अनन्त गुणी अधिक और सिद्ध से अनन्त गुणहीन प्रमाण वर्गणा का सा मुदाय उसे स्पर्द्धक कहते हैं.

के दलका समावेश नहीं होता है. और उसकी दो आवली बाकी रहे तब तहां आगे विच्छेद होता है. और एक आवली बाकी रहे तब संज्वलका क्रोध का बंद उदय उदीरणा का विच्छेद होता है. और अप्रत्याख्यानी प्रत्याख्यानी क्रोध उपशांत होता है. तब १८ प्रकृति यों का उपशांत होवे.

फिर संज्वल क्रोध की प्रथम स्थिति एक आंवालि का कादल और दो आंवालि एक समय कम यहां बंधा जो ऊपरकी स्थिति का दल उसविना सब उपशांत होता है उस के बाद जो संज्वल के क्रोध का प्रथम स्थिति का एक आंवाली का दल सो संज्वल के मान में स्निवुक संक्रम कर संक्रमावे. और समय कम दो आंवालि का बन्धका ऊपर की स्थिति का दल सो पुरुष वेद उपशमनाधि करिके प्रस्ताव में उपाव बताया उसही तरह से उपशमावे, तथा अन्य प्रकृति में संक्रमावे. यों समय सम दो आंवालि संज्वलन क्रोध की ऊपर की स्थिति उसे उपशमावे. यों मोहनीयकी १९ प्रकृति योंका उपशम हुवा.

जिस वक्त संज्वल के क्रोधका बन्ध उदय उदीरणा का विच्छेद हुवा, उस समय से लगाकर संज्वल के मान की दूसरी स्थिति में से दलको आकर्ष कर उसे प्रथम स्थिति कर वेदे, वहां उदय समय में तो स्तकोक प्रक्षेपता है, और उस से दूसरे समय में असंख्यात गुण अधिक प्रक्षेप करे, यों समय २ असंख्यात गुणा अधिक चडता हुवा प्रक्षेप करे. सो यावत प्रथम स्थिति के अन्तिम समय तक प्रक्षेप करे, प्रथम स्थिति करण के प्रथम समय से लगाकर - अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वल इन तीनों मानों को एक साथही उपशमावे. वो वैसेही जिस वक्त संज्वल के मान की प्रथम स्थिति समय कम तीन आवली का रहे उस वक्त पहिले कहे मुजवही संज्वल के मान में अन्य प्रकृति का पतद ग्रह न होने से उस वक्त प्रत्याख्यानादि मान का दल संज्वलकी माया में संक्रमावे, ऐसेही अर्थात् क्रोध की तरह ही मान के उपशमानेकी विधि जानना. यो अप्रत्याख्यानी प्रत्याख्यानी मानको उपशमावे तब मोहनीय की २१ प्रकृति का उपशम होता है.

संज्वल के मान के बंध उदय उदीरणा विच्छेद हुवे बाद संज्वल के मानकी माफि एक आवलिक में उपशमावे. तब २२ प्रकृति उपशमी और जिस समय में संज्वल के मान का बंध उदय उदीरणा का विच्छेद होवे उसके प्रथम से लगाकर संज्वल की दूसरी स्थिति में से दलको आकर्ष कर पहिले कहे मुझव प्रथम

स्थिति गत करके वेदे. उसही समय से लगाकर तीनों माया का उपशम करने लगे बाभी मान की तरह एक आवली रहे संज्वलकी माया का बंध उदय उदीरणा विच्छेद होवे उस समय अप्रत्याख्यानीय प्रत्याख्यानीय माया उपशांत होवे तब मोहनीय की २४ प्रकृति यों का उपशांत हुवा.

उस वक्त संज्वल की माया का प्रथम स्थिति गत एक आवली तथा समय कम आवलिकाद्विक में बंधा हुवा जो उपर की स्थिति गत दलिक उसको छोड़ कर बाकी रहा सर्व उपशांत होवे. फिर प्रथम स्थिति गत एक आवलिका को स्तिबुक संक्रम कर संज्वल के लोभ में संक्रमावे. और समय कम दो आवलिका बंधे हुवे दलिक को पुरुष वेदमें उपर कोह मुजवही उपशमावे, यों संक्रमावे. फिर समय कम दो आवलिका संज्वल की माया उपशांत होवे तब मोहकी २५ प्रकृति का उपशांत हुवा.

जिस वक्त संज्वल की माया का बंध उदय उदीरणा का विच्छेद हुवा तदनंतर दुसरे समय में ही संज्वल के लोभ की दुसरी स्थिति में में दलका आकर्षण कर प्रथम स्थिति को रचे उस प्रथम स्थिति लोभ वेदनाद्वा के तीन विभाग दो प्रमाण से करे—उस में प्रथम विभाग का नाम - अश्वकरणाद्वा और दूसरे विभाग का नाम - किट्टि करणाद्वा.

प्रथम अश्वकरणाद्वा विभाग में वर्तता आत्मा पूर्व स्पर्द्धक में में दल गृहण कर अपूर्व स्पर्द्धक करे. उस स्पर्द्धकी उपरकी वर्णना के रस विभाग में एक रस विभाग ज्यादा या दो रस विभाग ज्यादा. रस विभाग महिन यों जावन सब जीवों से अनंतगुणा पर्यंत से एक रस विभाग कम रसोपेत कर्म स्कंध दल नहीं मिलता है.

— स्पर्द्धक का स्वस्व—जीव अनन्त कर्म प्रमाण से निम्न स्वस्व उसे कर्म दो दृष्ट करता है, वरा एकेक कर्म स्वस्व में जो मन्त्रे जल्प रस है उस के दो विभाग के रस ज्ञानी भी कल्पना नहीं कर सके. ऐसा दलिक होयता हुवा सब जीवों को रस का विभाग देता है. और ऐसीही दरोदरी के जल्प रस के कर्म स्वस्व दल हमारा मनुष्य उसे वर्ण कहते हैं, उस में एक रस विभाग चहान कर्म स्वस्व की दूसरी वर्ण. उस में दो रस विभाग चहने कर्म स्वस्वकी तीसरी वर्ण. यों एकेक रस विभाग चहने ३ वर्ण करना अभव्य में अनन्त गुणी अष्टिक और मिष्ट में अनन्त गुणनि प्रमाण वर्ण का मनुष्य उसे स्पर्द्धक कहते हैं.

के दलका समावेश नहीं होता है. और उसकी दो आवली बाकी रहे तब तहां आगे विच्छेद होता है. और एक आवली बाकी रहे तब संज्वलका क्रोध का बंद उदय उदीरणा का विच्छेद होता है. और अप्रत्याख्यानी प्रत्याख्यानी क्रोध उपशांत होता है. तब १८ प्रकृति यों का उपशांत होवे.

फिर संज्वल क्रोध की प्रथम स्थिति एक आंवालि का कादल और दो आंवालि एक समय कम यहां बंधा जो ऊपरकी स्थिति का दल उसविना सब उपशांत होता है उम के बाद जो संज्वल के क्रोध का प्रथम स्थिति का एक आंवालि का दल सो संज्वल के मान में स्तिबुक संक्रम कर संक्रमावे. और समय कम दो आंवालि का बन्धका ऊपर की स्थिति का दल सो पुरुष वेद उपशमनाधि करिके प्रस्ताव में उपाव वताया उमही तरह से उपशमावे, तथा अन्य प्रकृति में संक्रमावे. यों समय सम दो आंवालि संज्वलन क्रोध की ऊपर की स्थिति उसे उपशमावे. यों मोहनीयकी १९ प्रकृति योंका उपशम हुवा.

जिस वक्त संज्वल के क्रोधका बन्ध उदय उदीरणा का विच्छेद हुवा, उस समय से लगाकर संज्वल के मान की दुसरी स्थिति मे से दलको आकर्ष कर उसे प्रथम स्थिति कर वेदे, वहां उदय समय मे तो स्तकोक प्रक्षेपता है, और उस से दूसरे समय में असंख्यात गुण अधिक प्रक्षेप करे, यों समय २ असंख्यात गुणा अधिक चडता हुवा प्रक्षेप करे. सो यावत प्रथम स्थिति के अन्तिम समय तक प्रक्षेप करे, प्रथम स्थिति करण के प्रथम समय मे लगाकर - अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वल इन तीनों मानों को एक साथही उपशमावे. वो वैसेही जिस वक्त संज्वल के मान की प्रथम स्थिति समय कम तीन आवली का रहे उम वक्त पहिले क ह्रे मुजबती संज्वल के मान में अन्य प्रकृति का पतद ग्रह न होने से उस वक्त प्रत्याख्यानादि मान का दल संज्वलकी माया मे संक्रमावे, ऐमेही अर्थात् क्रोध की तरह ही मान के उपशमानेकी विधि जानना. यों अप्रत्याख्यानी प्रत्याख्यानी मानको उपशमावे तब मोहनीय की २१ प्रकृति का उपशम होता है.

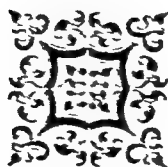
संज्वल के मान के बंध उदय उदीरणा विच्छेद हुवे बाद संज्वल के मानकी माफि कड़ी एक आवलिक में उपशमावे. तब २२ प्रकृति उपशमी और जिस समय में संज्वल के मान का बंध उदय उदीरणा का विच्छेद होवे उमके प्रथम मे लगाकर संज्वलकी माया की दुसरी स्थिति में से दलको आकर्ष कर पहिले क ह्रे मुजब प्रथम

शमावे. अन्तिम समय मे संज्वल के लोभ का उपशांत होवे, उसही वक्त-५ ज्ञानावरणीय की ५ अंतराय की. ४ दर्शनावरणीय की, उंच गौव और यशः कीर्ति इन १६ प्रकृति यों के बंधका व्यवच्छेद करे. उस वक्त बाद दुसरेही समय में उन महात्मा ओंको उपशांत कपायी कहे जाते हैं क्यों कि यहां ही मोहनीय की सर्व २८ही प्रकृतियोंका सर्वतः उपशांत होता है.

वो उपशांत कपायी महात्मा जयन्य से तो एक समय ही रहै, और उत्कृष्ट अंतर मुहूर्त पर्यंत रहै. फिर तो जरूरही पतन को प्राप्त होते हैं. वो पतन दो तरह से होता है:- एक भव से और दुसरा काल से.

(१) जिसका आयु पूर्ण होजावेँ उसवक्त मनुष्य भवका क्षय होने से मरकर अनुत्तर विमान में देवता होवे. वहां प्रथम समय मेंही बंध सक्रमणादी आठों कारणों फिर उदय प्रवर्तवे. वो मीथाही इग्यारवे गुणस्थान से चौथे गुणस्थान परही आकर देहरता है. परंतु बीच में के गुणस्थानोंको विलकुलही स्पर्शता नहीं है. और उपशम सम्यक्त्वसे पडकर उसही समयमें वेदक सम्यक्त्वी होताहै. सो भव क्षय पडवाइ जानना- और (२) इग्यारवे गुणस्थान का जो अंतर मुहूर्त का काल है सो पूर्ण भोग कर उपर जाने के रस्ते के अभाव से वो वहां से पीछे पडे, हो जहां २ बंध उदय उदीरणा की प्रकृति का व्यवच्छेद हुवा है तहां २ से पीछा करता जिस तरह से चडेर्ये वै सीही तरह पीछा पडे, वो पडते हुवे कोइ प्रमत होवे, कोइ अविराति होवे और कोइ-सास्वदानी होकर मिथ्यात्व में भी आते हैं.

यह उपशम श्रेणी एक भव में उत्कृष्ट दो वक्त करते हैं, परंतु जो दो वक्त उपशम श्रेणी करते हैं वो निश्चय से उस भव में क्षपक श्रेणी नहीं करते हैं. परंतु एक वक्त उपशम श्रेणी कर दुसरी वक्त क्षपक श्रेणी करलेवेँ तो कुछ ना नहीं है.



## “ क्षपक — श्रेणी. ”

क्षपक श्रेणी में प्रवर्त ने वाले महात्मा मनुष्य की-आठ वर्ष से अधिक उम्र, वज्र वृष नारच संघयण, शुद्ध ध्यान वंत, अविरति-देश विरति-प्रमत संयाति अप्रमत संयाति इन में से कोई भी होवौ, परंतु इतना विशेष कि-जो केवल अप्रमत संयाति ही होवेतो पूर्वके जानकर होवे, और शुद्ध ध्यान उपगत होवे. और दुसरे सब धर्म ध्यान उपगत होते हैं. ऐसे जीव शुभ योगमें वर्तते क्षपक श्रेणीका आरंभ करते हैं. वो प्रथम अनंतान वंधि चौककी विसंयोजना कर खपावे, इस विसंयोजना करनेकी विधि पाहिले कह आये हैं वैसेही जाणना तदनंतस्-तीनों मोहनीयको क्षपाने प्रवर्त होवे. वहां यथा प्रवृत्ति आदि तीनों करणों पाहिले कहेवैसीही तरहसे करे. परंतु इतना विशेष जो अपूर्व करण के पाहिले समय मेही अनुदिन मिथ्यात्व और मिश्रका दल वो उदय वन्त सम्यक्त्व मोहनीय में गुण संक्रमण कर संक्रमावे, और उन दोनों का उद्दल अर्थात् संक्रमण करना शुरू करे. उस वक्त प्रथमतो बडे २ जो स्थिति खण्ड हैं उन्हकों उवेले. उस से दुसरा स्थिति खण्ड बहुत कम उवेले. उस से भी तीसरा बहुत कम उवेले यों अपूर्व करण के अंतिम समय पर्यंत उवेलना करे. इसमें जो अपूर्व करण के पाहिले समय जो स्थिति का सत्तावन्त होवे उस से असंख्यात गुण कम स्थिति का सत्तावन्त होवे.

तदन्तर दुसरे समय में अनित्यता करण में प्रवेश करे, वहां भी स्थिति घात आदि सर्व पूर्वोक्त विधि प्रमाणें ही कर ते हैं. अनित्यता करण के प्रथम समय में दर्शन त्रिक का भी देशोपशमना निवृत्ति निकाचनाका व्यवच्छेद करे; वहां प्रथम समय में दर्शन मोहनीय त्रिककी स्थिति सत्ताका घात करता २ सदृशों गम स्थिति खण्ड गये बाद, बाकी जिम वक्त अमन्त्री पचेन्द्रिय की स्थिति सत्ता सामन स्थिति रहे. फिर उतनेही स्थिति खण्ड के सदृशों गम गये बाद चौरिन्द्रिय की स्थिति सामान सत्ता रहे, फिर उतनेही स्थिति खण्डके सदृशों गम गये बाद, तेन्द्रिय की स्थिति सामान सत्ता रहे, फिर उतने ही स्थिति खण्ड के सदृशों गम गये बाद येन्द्रिय की स्थिति जितनी सत्ता रहे. फिर भी उतनेही स्थिति खण्ड के सदृशों गये बाद पल्योपस के असंख्यातवे भाग प्रमाणें दर्शन त्रिक की स्थिति सत्ता रहे, तदन्तर तीनों दर्शन मोहनीय का भी प्रत्येक एकेक संख्यातवा भाग छोड़ कर बाकी की सर्व स्थिति सत्ता तदन्तर फिर भी बाकी छोड़ा हुआ संख्यात भाग का एक संख्यात वा भाग

छोड़कर वाकीकी सर्व स्थिति की घात करता २ स्थिति घात के बहुत सहश्र अति-क्रमें उसवक्त मिथ्यात्व के असंख्यात भाग का खण्डन करे और मिश्र मोह तथा सम्यक्त्व मोह का संख्यातवा भाग का खण्डन करे. उस के बाद यों बहुत स्थिति खण्ड गये बाद, जिसवक्त मिथ्यात्व का दल आंवलिका मात्र रहे, और मिश्र मोह तथा सम्यक्त्व मोह का दल पल्योपमके असंख्यातवे भाग प्रमाणही रहता है.

अब स्थिति खण्ड के दल को खण्डन करने की प्रत्येक विधि कहते हैं :— खण्डन किये हुवे ऐसे मिथ्यात्व के दल उनका मिश्र और सम्यक्त्व दोनों में प्रक्षेप करे. और मिश्रका दलतो फक्त सम्यक्त्व मेही प्रक्षेप करे, और सम्यक्त्व का दल सम्यक्त्व अपने नीचे की स्थिति में प्रक्षेप करे, उसके बाद जो मिथ्यात्व का दल आवालि मात्र रहा है. उस भी स्तिबुक्त संक्रम कर सम्यक्त्व में संक्रमावे. तब मिथ्यात्व क्षीण होवे. उसके बाद मिश्र का तथा सम्यक्त्व का असंख्याते भाग कर के उस के खण्डमे वाकी एक भाग रखे. फिर उस के भी असंख्यात भाग कर एक भाग वाकी रखे. और सर्वों का खण्डन करे. यो कर ते २ कितनेक स्थिति खण्ड गये बाद, मिश्र मोहनीय एक आंवलिका मात्र रहै, उस वक्त सम्यक्त्व मोहनीय की स्थिति सत्ता आठ वर्ष प्रमाण की रहे उस वक्त निश्चय नय के मत से तो सर्व विघ्नोका नाश हो गया ! इसलिये इसे दर्शन मोहनीय का क्षपक (धायिक) सम्यक्त्वी) कहना.

तदनन्तर-फिर भी सम्यक्त्व के स्थिति खण्ड को अंतर मुहूर्त प्रमाण उकेरे. उसका दल उदय समय से आरंभ कर सर्व स्थिति सत्ता समय २ संक्रमावे, उस में भी उदय समय सब से थोड़ी संक्रमावे. उस से दुसरे समय असंख्यात गुण अधिक उस से तीसरे समय असंख्यात गुण अधिक. यो समय २ असंख्यात गुण अधिक २ संक्रमाता २ इस गुण श्रेणी के मस्तक पर्यंत जाणना. उसके बाद ऊपर तो विशेष २ हीन जहां लग स्थिति का अंतिम समय होवे वहां लग संक्रमावे, यों अंतर मुहूर्त २ प्रमाण अनेक स्थिति खण्डों को उकेरता है. और निक्षेपण भी करना है. वो स्थिति दल में संक्रमाता द्विचरम स्थिति खण्ड पर्यंत जावे. उस द्विचरम स्थिति खण्ड से अन्तिम खण्ड असंख्यात गुणा करे: वो अन्तिम स्थिति खण्ड जिस वक्त उकेरे उसे क्षपक कृत करण ऐसा नाम कहना. इस कृत करणाद्रा में वर्वना ऐसा जीव. किसी पूर्व आयुका बंध किया होतो वो आयु क्षय हुवे मरकर चागें गति में की किसी भी गति में अवतार लेलेता है. और लेख्या के विषे पहिले तो शुक्र लेख्या में था



और वर्तमान में तो अन्य हलकी लेश्या में जावे, इसलिये सप्तक क्षय का शुरु करने वाला प्रस्थापक होकर मनुष्य निष्ठापक होता भी चारों गति में का जीव कहा है, और जो पूर्व बंधे हुवे मनुष्य वाला क्षपक श्रेणी शुरु करे, और अन्नतान बंधि चौकडी को खपाकर फिर मृत्यु होणे के संभव से श्रेणी से विरमें तो भी अनंतान बंधि का बीज भूत मिथ्यात्व है उसका नाश हुवा नहीं इसलिये फिर भी कदाचित् अनंतान बंधि सजीवन करते प्राप्त होवे. परंतु जिसने मिथ्यात्व का क्षय किया है वो मिथ्यात्व के विनाश से फिर अनंतान बंधि का बंध नहीं करे. क्योंकि बीज विना अंकुर की प्राप्ति नहीं होती है. और इन सातों प्रकृति कों क्षय कर जो चढते परिणाम में मृत्यु प्राप्त होवे तो अवश्य देवगति मेंही उत्पन्न होवे. और जो पतीत परिणामी होवे तो अनेक प्रकार के परिणामों के संभव से जैसे परिणामकी विशुद्धि में प्रवर्तता मरण करे तैसी गति में जावे, और जिस ने पूर्व आयुका बंध किया है, ऐसा जीव जो उस वक्त काल करे नहीं तो भी सात प्रकृति के क्षयसे निश्चय उन के वैसै हि परिणाम रहे, परंतु आगे की दुसरी चारित्र मोहनीय की प्रकृति खपानेका उद्यम करे नहीं. और क्षीण सप्तक पूर्वायु बंध के सबसे मुक्ति नहीं पावे. तो भी तीसरे अथवा चौथे भव में तो जरूरही मोक्ष पावे; क्योंकि जिम ने देवायु या नरकायु का बंध किया हो तो वो देवता अथवा नरक का भवकर वहां से मनुष्य होकर तीसरे भव में मोक्ष पावे. और जो मनुष्य अथवा तिर्थच का आयु बंध किये बाद सप्तक क्षय करे, वो नियमा से अमंख्या वर्षायुतका बंध करे. (परन्तु जिसने अवल संख्यात वर्षायु के स्थान में जानेका बन्ध किया हो तो वो सप्तक का क्षय नहीं करता है.) और वो मरकर निश्चय से युगालियाही होवे. ओर वहां तो भव प्रत्यय निश्चय से देवायुकाही बंध है, इसलिये वो देवगति में जावे, और देवगति में भव प्रत्यय सम्यक्त्व होने के मवव मे मनुष्यायु काही बन्ध करे इसलिये वहां से चवकर मनुष्य होवे, और वहां फिर आयुर्वन्ध करे नहीं, फक्त चारित्र गृहणकर बाकी रही २१ चारित्र मोहनीय की प्रकृति का क्षय कर मुक्ति पद प्राप्त करे इस अपेक्षासे क्षायिक सम्यक्त्वी चौथे भव मे मोक्ष प्राप्त करना है.

( इन सातों प्रकृति का क्षय तो अविरति सम्यक् दृष्टि गुणस्थान में ही होता है. और जो करनेनो देशविरति, प्रमत्त संयति, अप्रमत्त संयति इन में से कोईभी कर सका है )

और जो आयु बिना बन्धे क्षपक श्रेणीका आरंभ करे तो वो अवल इस सम-  
क का क्षयकरे तो वो नियमा मे अनुपरत परिणाम वन्त—चडते परिणाम से आगे  
चारिख मोहनीय की प्रकृतियों को क्षपाने उद्यम कर, तब—यथा प्रवृत्ति आदि ती  
नो करणों ( उपशम श्रेणी में कहे मुद्रवही यहां ) करे. यहां अप्रमत्त गुणस्थान मे य  
था प्रवृत्ति करण, अपूर्व करण गुणस्थान में अपूर्व करण और अनि शृत्तिवादर गुण-  
स्थान में अनिशृत्ति करण करे. वहां अपूर्व करण में स्थिति घात आदि कर अप्रत्या-  
ख्यानी चौकडी और प्रत्याख्यानी चौकडी की आठों कपायों को ऐसी तरह भेक्षया  
वे कि-वो अनिशृत्ति करणाद्धा के प्रथम समय मेंही उस कपायाष्टक की पन्चोपमके  
अभेदव्यातवे भाग प्रमाण माव स्थिति बाकी रहे. फिर-शीण शिखिक, नरक द्विक, ति-  
र्यच द्विक, पाहिली चार जाति, स्थावर नाम, उद्योत नाम, सूक्ष्म नाम, साधारण नाम  
नरगाति और तिर्यचगाति तन्प्रायोग नाम कर्म की १३ प्रकृति, तथा पूर्वोक्त शीणाष्टि  
विक सो दर्शनावरणी की यों सब १६ प्रकृति यों को उद्भूत ना भेदमकर  
प्रति समय डबेल २ जब पत्योपम के अभेदव्यातवे भाग जितनी भी स्थिति यहां रहे  
तब उन १६ प्रकृतियों को प्रतिनमय बन्धनी हुई अन्य प्रकृति में गुणभेदमकर कर में  
क्रमा २ कर क्षीण करना २ अनिशृत्ति वादर गुणस्थान के भेदव्यात भाग नये वाद  
बाकी एकही भाग रहे तब उन सब प्रकृतियों का क्षय करे.

(यहां आचार्या के दो मत हैं:—(१) अप्रत्याख्यानी चौकडी और प्रत्या-  
ख्यानी चौकडी जो पहिले क्षपानी शुरू करी थी परन्तु अभीतक क्षय हुए नहीं उस  
के बीच में पहिलेही उन १६ प्रकृतियोंका क्षय किया, और (२) वह १६ प्रकृतियों  
का क्षय करनी वक्त ही बीच में उन आठों प्रकृति का क्षय कर दिया ऐसा ही कि-  
तनेक आचार्योंका परमान है )

आठ या शोभे कपाय क्षपायेसाद अन्तर सुद्ध में ० नो बचत और भेदकर  
की चौकडी का अन्त करण करे, फिर ननुभव वेद की उन्न की स्थिति बाकी दण्ड  
डबेलने की विधि सेही क्षपान शुरू करे, वो अन्तर सुद्ध में डबेलना २ पन्चोपम के  
अभेदव्यातवे भाग प्रमाण जब स्थिति रहे तब देखनी हुई प्रकृतियोंमें इनका दण्ड गुण  
भेदमकर भेदमकर, वो करके अन्तर सुद्धमें इसका सर्वनाश होवे फिर वो ननुभव वेद  
की सीधे की स्थिति का दण्ड जो ननुभव वेदके उद्भूत में भेदव्यात प्रमाण कि-  
तो वेद २ कर करवे, अन्तर के आठों कपायों में तब ही डबेलना क्षपान करे

और वर्तमान में तो अन्य हलकी लेख्या में जावे, इसलिये सप्तक क्षय का शुरु करने वाला प्रस्थापक होकर मनुष्य निष्ठापक होता भी चारों गति में का जीव कहा है, और जो पूर्व बंधे हुवे मनुष्य वाला क्षपक श्रेणी शुरु करे, और अन्नतान बंधि चौकडी को खपाकर फिर मृत्यु होने के संभव से श्रेणी से विरमें तो भी अनंतान बंधि का बीज भूत मिथ्यात्व है उसका नाश हुवा नहीं इसलिये फिर भी कदाचित् अनंतान बंधि सजीवन करते प्राप्त होवे. परंतु जिसने मिथ्यात्व का क्षय किया है वो मिथ्यात्व के विनाश से फिर अनंतान बंधि का बंध नहीं करे. क्योंकि बीज विना अंकुर की प्राप्ति नहीं होती है. और इन सातों प्रकृति कों क्षय कर जो चढते परिणाम मे मृत्यु प्राप्त होवे तो अवश्य देवगति मेंही उत्पन्न होवे. और जो पतीत परिणामी होवे तो अनेक प्रकार के परिणामों के संभव से जैसे परिणामकी विशुद्धि में प्रवर्तता मरण करे तैसी गति मे जावे, और जिस ने पूर्व आयुका बंध किया है, ऐसा जीव जो उस वक्त काल करै नहीं तो भी सात प्रकृति के क्षयसे निश्चय उन के वैसे ही परिणाम रहे, परंतु आगे की दुसरी चारित्र मोहनीय की प्रकृति खपानेका उद्यम करे नहीं. और क्षीण सप्तक पूर्वायु बंध के सबवसे मुक्ति नहीं पावे. तो भी तीसरे अथवा चौथे भव में तो जरूरही मोक्ष पावे; क्योंकि जिस ने देवायु या नरकायु का बंध किया हो तो वो देवता अथवा नरक का भवकर वहां से मनुष्य होकर तीसरे भव में मोक्ष पावे. और जो मनुष्य अथवा तिर्थच का आयु बंध किये बाद सप्तक क्षय करे, वो नियमा से असंख्या वर्षायुतका बंध करे. (परन्तु जिसने अवल संख्यात वर्षायु के स्थान में जानेका बन्ध किया हो तो वो सप्तक का क्षय नहीं करता है.) और वो मरकर निश्चय से युगालियाही होवे. ओर वहां तो भव प्रत्यय निश्चय से देवायुकाही बंध है, इसलिये वो देवगति मे जावे, और देवगति में भव प्रत्यय सम्यक्त्व होने के सबव से मनुष्यायु काही बन्ध करे इसलिये वहां से चक्कर मनुष्य होवे, और वहां फिर आयुर्वन्ध करे नहीं, फक्त चारित्र गृहणकर बाकी रही २१ चारित्र मोहनीय की प्रकृति का क्षय कर मुक्ति पद प्राप्त करे इस अपेक्षासे क्षायिक सम्यक्त्वी चौथे भव से मोक्ष प्राप्त करता है.

( इन सातों प्रकृति का क्षय तो अविरति सम्यक् दृष्टि गुणस्थान में ही होता है, और जो करेतो देशविरति, प्रमत्त संयति, अप्रमत्त संयति इन में से कोईभी कर सक्ता है )

और जो आयु विना बन्धे क्षपक श्रेणीका आरंभ करै तो वो अवल इस सप्त-  
क का क्षयकरे तो वो नियमा मे अनुपरत परिणाम वन्त—चडते परिणाम मे आगे  
चारिख मोहनीय की प्रकृतियों को क्षपाने उद्यम कर, तब—यथा प्रवृत्ति आदि ती  
नो करणों ( उपशम श्रेणी में कहे मुझवही यहां ) करै. यहां अप्रमत्त गुणस्थान मे य  
था प्रवृत्ति करण, अपूर्व करण गुणस्थान में अपूर्व करण और अनि शृत्तिवाटर गुण-  
स्थान में अनिष्टात्ति करण करे. वहां अपूर्व करण में स्थिति घात आदि कर अप्रत्या-  
ख्यानी चौकडी और प्रत्याख्यानी चौकडी की आठों कपायों को ऐसी तरह भेजपा  
वे कि-वो अनिष्टात्ति करणाद्धा के प्रथम समय मेंही उस कपायाष्टक की पन्थोपमके  
अभंगव्यातवे भाग प्रमाण मात्र स्थिति बाकी रहे. फिर-थीण द्विविक, नरक द्विक, ति  
र्यच द्विक, पहिली चार जाति, स्थावर नाम, उद्योत नाम, भूभ्रम नाम, माधाग्न नाम  
नरगति और तिर्यचगति तन्प्रायोग नाम कर्म की १३ प्रकृति, तथा पूर्वोक्त थीगट्टि  
विक सो दर्शनावरणी की यों सब १६ प्रकृति यों को उद्भूत ना भंजमकर  
प्रति समय उबेल २ जब पन्थोपम के अभंगव्यातवे भाग जिनती भी स्थिति यहां रहे  
तब उन १६ प्रकृतियों को प्रतिनमय बन्धती हूइ अन्य प्रकृति में गुणभंजकन कर मं  
ब्रमा २ कर क्षीण करता २ अनिष्टात्ति वाटर गुणस्थान के भंगव्यात भाग नये वाट  
बाकी एकती भाग रहे तब उन सब प्रकृतियों का क्षय करे.

(यहां आचार्या के दो मत हैं:—(१) अप्रत्याख्यानी चौकडी और प्रत्या-  
ख्यानी चौकडी जो पहिले क्षपानी शुरू करी थी परन्तु अभीतक क्षय हूइ नहीं उस  
के बीच में पहिलेही उन १६ प्रकृतियोंका क्षय बिषा. और (२) यह १६ प्रकृतियों  
का क्षय करनी वन्त ही बीच में उन आठों प्रकृति का क्षय कर दिया तबही वि-  
तनेके आचार्योंका मतमान है.)

आठ वा शोभे वषाय वषायेनष्ट अन्तर सुर्त में १. जो वषाय और भंजक  
की चौकडी का अन्त करण करे. फिर ननुमक वेद की उपर की स्थिति कहां कर  
उबेलने की विधि सेही क्षपाना शुरू करे. दो अन्तर सुर्त में उबेलने २ वषायेनष्ट के  
अभंगव्यातवे भाग प्रमाण जब स्थिति रहे तब क्षयती हूइ प्रकृतियोंमें उनका कर गुण  
भंजमकर भंजवावे. दो वरने अन्तर सुर्तमें उनका भंजक: नष्ट होवे. फिर दो ननुमक वेद  
की नीचे की स्थिति का वन जो ननुमक वेदके उदय में भंजक: प्रमाण जिन ही  
तो वेद २ कर क्षपारं. अन्तरा दो आठों मध्य में सब तब उद्भूत वषाय कर

और वर्तमान में तो अन्य हलकी लेश्या में जावे, इसलिये सप्तक क्षय का शुरु करने वाला प्रस्थापक होकर मनुष्य निष्ठापक होता भी चारों गति में का जीव कहा है, और जो पूर्व बंधे हुवे मनुष्य वाला क्षपक श्रेणी शुरु करे, और अन्नतान बंधि चौकडी को खपाकर फिर मृत्यु होने के संभव से श्रेणी से विरमें तो भी अनंतान बंधि का बीज भूत मिथ्यात्व है उसका नाश हुवा नहीं इसलिये फिर भी कदाचित् अनंतान बंधि सजीवन करते प्राप्त होवे. परंतु जिसने मिथ्यात्व का क्षय किया है वो मिथ्यात्व के विनाश से फिर अनंतान बंधि का बंध नहीं करे. क्योंकि बीज विना अकूर की प्राप्ति नहीं होती है. और इन सातों प्रकृति कों क्षय कर जो चढते परिणाम मे मृत्यु प्राप्त होवे तो अवश्य देवगति मेंही उत्पन्न होवे. और जो पतीत परिणामी होवे तो अनेक प्रकार के परिणामों के संभव से जैसे परिणामकी विशुद्धि में प्रवर्तता मरण करे तैसी गति में जावे, और जिस ने पूर्व आयुका बंध किया है, ऐसा जीव जो उस वक्त काल करै नहीं तो भी सात प्रकृति के क्षयसे निश्चय उन के वैसे हि परिणाम रहे, परंतु आगे की दुसरी चारित्र मोहनीय की प्रकृति खपानेका उद्यम करे नहीं. और क्षण सप्तक पूर्वायु बंध के सबबसे मुक्ति नहीं पावे. तो भी तीसरे अथवा चौथे भव में तो जरूरही मोक्ष पावे; क्योंकि जिम ने देवायु या नरकायु का बंध किया हो तो वो देवता अथवा नरक का भवकर वहां से मनुष्य होकर तीसरे भव में मोक्ष पावे. और जो मनुष्य अथवा तिर्यच का आयु बंध किये बाद सप्तक क्षय करे, वो नियमा से असंख्या वर्षायुतका बंध करे. (परन्तु जिसने अवल संख्यात वर्षायु के स्थान में जानेका बन्ध किया हो तो वो सप्तक का क्षय नहीं करता है.) और वो मरकर निश्चय से गुगलियाही होवे. ओर वहां तो भव प्रत्यय निश्चय से देवायुकाही बंध है, इसलिये वो देवगति मे जावे, और देवगति में भव प्रत्यय सम्यक्त्व होने के सबब से मनुष्यायु काही बन्ध करे इसलिये वहां से चक्कर मनुष्य होवे, और वहां फिर आयुर्वन्ध करे नहीं, फक्त चारित्र ग्रहणकर बाकी रही २१ चारित्र मोहानिय की प्रकृति का क्षय कर मुक्ति पद प्राप्त करे इस अपेक्षासे क्षायिक सम्यक्त्वी चौथे भव से मोक्ष प्राप्त करता है.

( इन सातों प्रकृति का क्षय तो अविरति सम्यक् दृष्टि गुणस्थान में ही होता है, और जो करे तो देशविरति, प्रमत संयाति, अप्रमत संयाति इन में से कोईभी कर सक्ता है )

और जो आयु विना बन्धे क्षपक श्रेणीका आरंभ करै तो वो अवल इस सप्त-  
क का क्षयकरे तो वो नियमा से अनुपगत परिणाम वन्त—चडते परिणाम से आगे  
चारित्र मोहनीय की प्रकृतियों को क्षपाने उद्यम कर, तब—यथा प्रवृत्ति आदि ती  
नो करणों ( उपशम श्रेणी में कहे मुझवही यहां ) करै. यहां अप्रमत्त गुणस्थान मे य  
था प्रवृत्ति करण. अपूर्व करण गुणस्थान में अपूर्व करण और अनि गृचिवादर गुण-  
स्थान में अनिष्टात्ति करण करे. वहां अपूर्व करण में स्थिति घात आदि कर अप्रत्या-  
ख्यानी चौकडी और प्रत्याख्यानी चौकडी की आठों कषायों को ऐसी तरह सेक्षपा  
वे कि-वो अनिष्टात्ति करणाद्धा के प्रथम समय मेंहीं उस कषायाष्टक की पल्योपमके  
असंख्यातवे भाग प्रमाण मात्र स्थिति बाकी रहे. फिर-धीण द्विविक, नरक द्विक, ति  
र्यच द्विक, पहिली चार जाति, स्थावर नाम, उद्योत नाम, सूक्ष्म नाम, साधारण नाम  
नरगाति और तिर्यचगाति तत्प्रायोग नाम कर्म की १३ प्रकृति, तथा पूर्वोक्त धीणादि  
विक मो दर्शनावरणी की यों मव १६ प्रकृति यों को उद्भूत ना भंक्रमकर  
प्रति समय उबेल २ जब पल्योपम के अभंख्यातवे भाग जितनी सी स्थिति वहां रहे  
तब उन १६ प्रकृतियों को प्रतिनमय बन्धती हुई अन्य प्रकृति में गुणभंक्रमण कर भं  
क्रमा २ कर क्षीण करना २ अनिवृत्ति वादर गुणस्थान के संख्याते भाग भये वाद  
बाकी एकही भाग रहे तब उन मव प्रकृतियों का क्षय करे.

(यहां आचार्या के दो मत हैं:—(१) अप्रत्याख्यानी चौकडी और प्रत्या-  
ख्यानी चौकडी जो पहिले खपानी गुरु करी थी परन्तु अभीतक क्षय हुई नहीं. उस  
के बीच में पहिलेही उन १६ प्रकृतियोंका क्षय किया, और (२) यह १६ प्रकृतियों  
का क्षय करती वक्त ही बीच में उन आठों प्रकृति का क्षय कर दिया ऐनाभी कि-  
तनेक आचार्योंका फरमान है.)

आठ या शोले कषाय खपायेवाड अन्तर मुहूर्त में ९ नो कषाय और भंज्वल  
की चौकडी का भ्रन् करण करै. फिर नपुंसक वेद की ऊपर की स्थिति वाला दल  
उबेलने की विधि सेही खपाना शुरू करे. वो अंतर मुहूर्त में उबेलता २ पल्योपम के  
अभंख्यातवे भाग प्रमाण जब स्थिति रहे तब बंधती हुई प्रकृतियोंमें उसका दल गुण  
भंक्रमकर भंक्रमावे. यों करते अंतर मुहूर्तमें उसका सर्वतः नाश होवे. फिर वो नपुंसक वेद  
की नीचे की स्थिति का दल जो नपुंसक वेदके उदय में श्रेणीका आरंभ किया हो  
तो वेद २ कर खपावे. अन्यथा हो आवनी मात्र रहे तब उसे उदयवन्त बधमान प्रकृ

स्त्री में स्तिवुक संक्रमकर संक्रमावे यों नपुंसक वेद क्षय किये बाद, अन्तर मुहूर्त में स्त्री वेदको भी ऐसी तरह से खपावे. फिर हांस्यादि छेओं प्रकृतिका एकही वक्त में साथही क्षय करीना शुभ करे, उन नो कपाय का उपर की स्थितिकी दल पुरुष वेद मे पतद गृह न होवे इसलिये उस का पुरुष वेद में संक्रम नहीं करता हुवा भंज्वल के क्रोध में पूर्वोक्त रीति से संक्रमावे. यों कर ने से अन्तर मुहूर्त में उन छेओं नो कपाय का क्षय होवे, उस ही समय में पुरुष वेद का वन्ध उदय ऊदीरणा का विच्छेद होवे और एक समय कम दो आवलीका वन्धाथा जो पुरुष वेदका दल वो छोडकर वा-की सब क्षय होवे. उस समय में अवेदक होवे. यह पुरुष वेद में श्रेणी करे उसकी विधि कही, और जो नपुंसक वेद मे श्रेणी का प्रारंभ करे वो पहिलेही स्त्रिवेद और नपुंसक वेद दोनों का एकही वक्त क्षय करे, उस क्षय के समयमें ही पुरुष वेदका वन्धादिका विच्छेद होवे. उसवक्त अवेदक हुवा पुरुष वेद का और हॉस्पटक का एकही वक्त में क्षय करे.

और जो स्त्री वेद के उदय में श्रेणि आरंभे तो पहिले नपुंसक वेदखपावे उसके क्षय की वक्तही पुरुष वेदके वन्धादिका विच्छेद होवे फिर नपुंसक वेद और हां स्य पटक का एक वक्तमे क्षयकरे.

और जो पुरुष वेदमें श्रेणीकी आरंभकरे तो वो पुरुषवेदी क्रोधको वेदेता हुवा क्रोधके तीन विभाग करे—१ जो घोडे के कान के जैसे छोटे छोटे पुद्गलो के खण्ड करे इसलिये उसे अश्वकरणाद्धा कहते हैं. २ उस रसरहित दल को कूट २ कर किट्टिकी तरह अत्यन्त सूक्ष्म करे उसे दूसरा किट्टि करणाद्धा कहना. ३ वो किट्टि करणाद्धा किये बाद उस किट्टि को वैदे उसे तीसरा किट्टिवेदनाद्धा कहिये. उस में से प्रथम अश्वकरणाद्धा मे वर्तता हुवा समय २ में अनन्त अपूर्व स्पर्द्धक सज्जलकी चौक डी के अन्त करण की ऊपर स्थिति मे करे; अर्थात् सज्जलकी चौकडी के अन्तकरणकी उपरकी स्थिति के प्रति समय अनन्त अपूर्व स्पर्द्धक करे. (स्पर्द्धकरन की विधि पहिले कही वैसीही जाणना) और इस अश्वकरणाद्धा में वर्तता पुरुष वेदका भी समय कम दो आवलीका रूप काल कर के क्रोध में गुण संक्रमण कर के संक्रमाता हुवा अन्तिम समय मे सर्वतः संक्रमावे. यों यहां पुरुष वेद का क्षय होवे. और अश्वकरणाद्धा की भी समाप्ती हुई. फिर किट्टि करणाद्धा में प्रवेश कर सज्जलकी चौकडी की ऊपर की स्थिति गत दलिक की किट्टि कर, वो किट्टि परमार्थ से तो अनन्त है, तो

भी अल्पज्ञों को समझाने स्थूल भेद की अपेक्षा-अमत् कल्पना से एके क कपाय की तीन २ कल्पना कल्पनी तब १२ किट्टि होवे, यह तो क्रोधसे क्षपक श्रेणी आरंभ उस आश्रय कहा.

और जो मानोदय में श्रेणि प्रतिपन्न होवे तो उमे उद्भलन अनेक प्रकार की विधिकर क्रोधका क्षय कियेबाद बाकी रही तीनों कपाय की उपरोक्त विधिमे ९ किट्टि करे. और जो माया के उदय में श्रेणिका आरंभ करे तो क्रोध और मान इन दोनों को उद्भलन विधिकर खपाने से बाकी रही दोनों कपाय की ६ किट्टि करे. जो लोभके उदय में श्रेणिका आरंभ करे तो क्रोध मान माया इन तीनों को उद्भलन विधिकर उबेलकर खपावे, बाकी रहे एक लोभकी ही ३ किट्टि करे, यह किट्टि करने की विधि कही.

यह किट्टि करणाद्वा पूर्ण हुवे बाद किट्टिबेदना अद्धा में प्रवेगकीया हुवा जो क्रोध में श्रेणिका आरंभ करे तो वोक्रोध की दृमरी स्थिति में रहा हुवा प्रथम किट्टिका दलिया दृमरी स्थिति में से आकर्ष प्रथम स्थिति गत करके वो जगं तक एक समय अधिक एक आंबलीरहे वहां तक वेदताहै. फिर उनके अन्तर समयमें उपरकी दृमरी स्थिति में रहा हुवा दृमरी किट्टि का दल उनको आकर्षकर प्रथम स्थिति गत कर के वोभी एक समय अधिक एक आंबली से वहां तक वेदे, फिर उपर की स्थिति तीमरी किट्टि के दल को आकर्षकर प्रथम स्थिति गत कर वेदताहै. यों तीनों किट्टिबेदनाद्वा में उपर की स्थिति को टालिक वो गुण भंजन कर प्रति समय अभंगनात गुण वृद्धि युक्त भंडवल के मान में प्रक्षेप करे, यों तीमरी किट्टि के आद्वावे अन्तिम समय में भंडवल के क्रोधका वन्ध उदय उदीरणा का साधनी व्यउद होताहै. और मत्तामे भी अन्तिम समय वम दो आबानिका बधा हुवा दल रहा है उन भिवात दृमरी नहीं है. बयो कि सब प्रक्षेप मान में योग्या है: उमे आगे के समय में मान की दृमरी स्थिति में से प्रथम विद्विता दल आकर्ष कर प्रथम स्थिति बरके अन्तर समय तक वेदने हैं. वहां जो क्रोधका दल बाकी रहा है उमे एक समय वम दोआंबलीका गुणभंजन कर भंजनावे और अन्तिम समय तो सब भंजन कर भंजनावे, अन्तिम दयां क्रोध का क्षय हुवा.

चौती मानकी प्रथम विधि का दल प्रथम स्थिति में बिना रहा है उमे वेदने २ एक समय अधिक एक आंबली बाकी रहे कर जिन दृमरी समय में मान की दृमरी



१.६ प्रकृति की सत्ताकी स्थिति सर्व अपवर्त्त मान से अपवर्त्तन कर अर्थात्—घटा कर क्षीण कपाय के अद्धा जितनी करे, परन्तु निद्रा द्विक की स्थिति स्वरूप की अपेक्षा से एक समय कम करे, और कर्म रूपसे बराबर होवे। सो कपाय अद्धा अभीभी अन्तरमु-हूर्त प्रमाण है। उस वक्त उन १.६ प्रकृतियों के स्थिति घातादि विराम पावे। परन्तु जो दूसरी वाकी रही स्थिति है उसके स्थिति घातादि कायम है। इन १.६ प्रकृति की उदय ऊदीरणा करके वेदते २ एक समायधिक आवली मात्र वाकी रहे वहां तक वे दे। फिर ऊदीरणा से भी विराम ( निद्रात्ति ) पावे। उस वक्त एक आवली मात्र फक्त उदय करके ही वेदते हैं। वो भी क्षीण कपाय के द्विचरम  $\times$  समय पर्यन्त फिर उस द्वि चरम समय में—छद्मस्त (ठकी हुई) अवस्थामेंही निद्रा और प्रचला कानाश क-रे—सत्ताकी अपेक्षा से क्षय होवे, फिर—५ ज्ञानावरणोय, ४ दर्शनावरणीय ५.अन्तरा-य इन १.४ प्रकृति का छद्मस्त अवस्था के अन्तिम समय में घात करे।

यों इन १.४ प्रकृतिका क्षय होतेही दूसरे समय में व्यवहार नय के मतानुसार सयोगी केवली भगवन्त होते हैं ! और निश्चय नय के मतानुसार तो उसही समय में के वली गिनेंजाते हैं ! उस केवल ज्ञान रूप महादिव्य जगत्—चक्षुकर लोकालोक के सर्वद्र-व्य क्षेत्र काल भाव और भवो को सर्वांश कर देखते जानते हैं। इस वक्त जो पर म पुण्यात्मा जीव तीर्थकर गौत्र का उपार्जन कर के आये होते हैं उनके यहां \*अष्ट प्र-तिहार्य, ३४ अतिशाय, ३५वाणी गुण. इत्यादि गुणों की प्राप्ति होती है। यह सामान्य केवली के नहीं होते हैं। यह जघन्य तो अन्तर मुहूर्त पर्यन्त उत्कृष्ट देशऊणा ( ८ वर्ष कम ) क्रोड पुर्व पर्यन्त भूमण्डल में सुखसे विहार करके सत्य धर्म को पूर्ण प्रका-श में लाते हैं।

इन केवल ज्ञानी भगवन्तों में से जिनके आयु कर्म थोड़ा होवे और वेदनीय क र्म अधिक होवे तो ८ समयमें समुदघात हो वो कर्म बरोबर होजाते हैं। समुदघात हुवे वाद अन्तर मुहूर्त वाद व उत्कृष्ट ६ महीने वाद मुक्ति प्राप्त करते हैं। और बहुत से केवली भगवन्त बिना स मुद् घात कियेही मुक्ति प्राप्त कर ते हैं।

फिर दोनों प्रकार के केवली भगवन्त भी भवोप गृही कर्मों के क्षय करने के

$\times$  अन्तिम समय के पहिले के समय को “ द्विचरम ” कहा जाता है \* सामान्य केवली के और तीर्थकर के फक्त इन गुणों की ही न्युन्याधिक ताहै बाकी तो सर्व गुण बरोबर होते है।

लिये—लेझ्यातीत, अत्यन्त अप्रकम्य. परम निर्जरा का कारण ऐसा शुद्धध्यानका तीसरा पाया ध्याते हुवे योगीका निरुंधन करना शुरू कर तेहैं. प्रथम वादर वचन जोग का निरुंधन करने को प्रवर्तें. वहां वादर काया योग करके वादर मन योग का और सूक्ष्म मन योग कर के वादर वचन योग को रुंधन करे. फिर सूक्ष्म काया योग कर वादर काया जोग का रुंधन करे. फिर उसही कर के सूक्ष्म मन जोग का रुंधन करे, फिर सूक्ष्म वचन जोग का रुंधन करे. फिर सूक्ष्म काया जोग का रुंधन करते सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाती नामक शुद्ध ध्यान के तीसरे पाये करके उदारीक शरीर के अन्दर रहे हुवे प्रदेशो के छिद्रो को आत्म प्रदेशों को घन रूप कर पूर्ण करे (खड़े—बुरे) तब दो भागके प्रदेशो घन होने से मूल शरीर से तीसरे भागके जितनी अवयवहना उन आत्म प्रदेशो की घन रूप होकर रहजाती है. इसही ध्यान में प्रवर्त ते हुवे स्थिति घातादि कर सयोगी केवली गुणस्थान के अन्तिम समय—एक आयुष्य विना बाकी के तीनो कर्मों को अयोगी गुणस्थान की अवस्था है वैसे स्थिति वन्त करे; परन्तु इतना विशेष—जिनकर्मों का अयोगी गुणस्थान में उदय नहींहैं, उन कर्मों कीस्थिति स्वरूपापेक्षा करके समय मात्र कम करे. कर्म स्वरूप की अपेक्षा से अयोगी अवस्था जितनी करै.

उस अयोगी केवली गुणस्थान के अन्तिम समय में: २ औदारिक द्रिक, ४ तेजस—कार्मण शरीर, १० छे नस्थान, ११ प्रथम संघवण १५ वर्ण चतुष्क, १६ अगुरु लघु नाम, १७ उप घात नाम, १८ पराघात नाम २० शुभ—अशुभ विद्यायो गति. २१ प्रत्येक नाम, २२ स्थिर नाम, २३ आस्थिर नाम, २४ शुभ नाम, २५ अशुभ नाम, २६ निर्माण नाम, २७ सुस्वर नाम, २८ दुस्वर नाम २९ उगाध्वम और ३० दोनो वेदनीय में की एक वेदनीय. इन ३० प्रकृति की उदय और ऊदीरणा का विच्छेद होता है. तब दूसरे समय में अयोगी केवली होते हैं; यहां फक्त पंच लघु अक्षर (अ. इ. उ. कृ. ल.) उच्चार करने में जितना काल लगता है. उतने काल तक रहते हैं. इसस्थान को प्राप्त होतेही व्युपरिन क्रिया—अप्रतिपाती नामें शुद्ध ध्यान का चौथा पाया प्राप्त होता है.

इस गुणस्थान में स्थिति घातादि कुछभी नहीं हैं. फक्त जितनी उदय वानि प्रकृति है उनको वेदता हुवा—स्वपावे. और जिन प्रकृतिका उदय नहीं फक्त मत्तामें हीट्टे उनके दलिये उने स्तिवुक संक्रम कर उदयवनि प्रकृति में संक्रमा कर वेद स्तर म्पा-

वे. यों अयोगी गुणस्थान के द्वि-चरम समय पर्यन्त कर तेहैं.

अब यहां जो स्वभावसे प्रकृतियों का नाश होता है उनके नामः—२ वैक्रय आहारक - शरीर, ४वैक्रय आहारक वन्धन. ६ वैक्रय आहारक संघातन. ८ वैक्रय आहारक अंगोपांग. ९ देव गति, १० देवानु पूर्वी, यह १० प्रकृतियों देवगति के वन्ध की वक्त में वन्ध ती है, इसलिये इने देवगति सहचारीणि कही जाती है. इनका भी द्विचरम समय में नाश करते हैं. फिर ३-औदारिक - तेजस - कर्मण यह तीनों शरीर, ६ इन तीनों का वन्धन, ९ इन तीनों का संघातन, १५ छे खंघयण, २१ छे संस्थान, २२ औदारिक अंगोपांग, २६ वर्ण चतुष्क, २७ मनुष्यानु पूर्वी, २८ पराघात नाम, २९ उपघात नाम ३० अगुरुलघु नाम, ३२ शुभा शुभगति, ३३ प्रत्येक नाम, ३४ अपर्याप्ता नाम, ३५ उन्वासा नाम, ३६ स्थिर नाम, ३७ अस्थिर नाम, ३८ शुभनाम, ३९ अशुभनाम, ४० सुस्वर नाम, ४१ दुस्वर नाम, ४२ दुर्भग नाम, ४३ अनादय नाम, ४४ अयशकीर्ति नाम, और ४५ निर्माण नाम. यह ४५ प्रकृति योंका यहां उदय नहीं होने से द्विचरम समय में इनका भी विच्छेद होता है.

अब द्विचरम समयमें खपाया १ जो साता असाता में का एक वेदनीय २ मनुष्यायु, ३ मनुष्य गति ४ पंचेन्द्रिय की जाति, ५ व्रस नाम, ६ वादरनाम, ७ पर्याप्ता-नाम, ८, सुभग नाम, ९ आदेय नाम, १० यशकीर्ति नाम, ११ उंच गौत्र यह ११ ही प्रकृति मनुष्यगति सहगत है, अर्थात् मनुष्यगति में यह प्रकृतियों जरूर पाती है, इसलिये मनुष्य शरीर के साथ इन ११ प्रकृति का उदय तो सामान्य केवली में पाता है, और १२ तीर्थकर नाम सहित १२ प्रकृति का उदय तिर्थकर में पाता है, इन १२ प्रकृति का चउदवे अयोगी केली गुणस्थान के अन्तिम समय में सर्वांश क्षय करत हैं. “कृतस्त कर्म विप्र मोक्षो मोक्षः” अर्थात्-सर्व कर्मों के वन्धन से मुक्त होना—छूटना उसीको मोक्ष कहते हैं. यों क्षपक श्रेणी प्रातिपन्न महात्माने अनुक्रम से सर्व कर्मोंका नाश करते हुवे चउदवे गुणस्थान के अन्तिम समय सर्व कर्मोंश रहित होतेहैं उसही वक्त वो मोक्ष हुवे समजना.

सूत्र-पूर्व प्रयोगाद् - आविद्ध कुलाल चक्रवद्,

सङ्गत्वाद् - व्यपगतलेपा लाम्बुवद्,

वन्ध छेद् , एरण्ड बीज वद्,  
तथा गति परिणामच - ऽमिश्रितवच्च ॥

तदन्तर मूर्द्ध गच्छत्या लोकान्तात् ॥ तत्त्वार्थ सूत्र. अ. १० ॥

अर्थात्- “तदन्तर” उन कर्मों के सर्वांश से छूटे वाद-(१) जैसे - कुम्भार का घुमाया हुआ चाक, छोड़े वाद भी पूर्व के प्रयोग (धक्के) से बहुत कालतक घूमा (फिरा) करता है, तैसाही अनादि से परिभ्रमण करने का जो जीव का स्वभाव कर्म भाव करके हो रहाथा सो उन कर्मों से छूटे वाद भी मुक्ति स्थान में जाने तक की गमन क्रिया करता है. तथा बहुत काल से मुक्ति गमन के लिये तप संयमादि किरिया कर रहे थे उस प्रयोग से मुक्ति में जाते हैं. (२) जैसे-मट्टी से छाया हुआ तुम्बा पानी में डूबा हुआ सो वो मट्टीका का लेप गलनेसे उस संगत से रहित होने से स्व स्वभाव से पाणी के उपर अन्त में आकर ठेहरता हैं, तैसे ही आत्मा रूपतुम्बा जो कर्म रूप मट्टी से लेपाया हुआ संसार समुद्र मे डूब हुआ था वो अनेक - अकाम सकाम निर्जरा रूप पाणी के प्रयोग से गलने से उस वजन से मुक्त हो हलका हुआ लोकान्त में मुक्ति है वहां जाकर ठेहरता है. (३) जैसे गोहे-डोडे में (फलमे) एरंडी का बीज वन्ध था वो फल सूक कर गोहा फटतेही एरंड बीज उछलकर उपर जाता है, तैसेही आत्मा कर्म रूप वन्ध से छूटेही उपर को उछलता - जाता है. और (४) जैसे आगि से प्रज्वालित मशाल को जो कभी उलटी भी कर दी तो भी उसकी ज्वाला (झाल) उर्द्ध-उंची दिशाकोही स्वस्वभाव से गमन करती है, तैसेही संसार में झुकाने वाले कर्म रूप पवन का अभाव होनेसे आत्मा स्वस्वभाव कर उर्द्ध-मोक्ष को जाती है.

प्रश्न-जो आत्मा का वन्ध से छूटे वाद उर्द्ध गमन करनेका ही स्वभाव है तो फिर मोक्षस्थान मे जाकर अटक क्यों जाती है? ठेहर क्यों जाती है? आगे को क्यों नहीं गमन करती है?

उत्तर-“धर्मास्ति काय अभावात्”-अर्थात् जैसे मछलीको गमन शक्ति में पाणी की सहायता मे है. तैसेही आत्मा और पुद्गलों का गमन धर्मास्ति काय नामक लोक व्यापी एक द्रव्य की सहायतामे है. अर्थात् धर्मास्तिके महायमे ही आत्मा और पुद्गल गमन कर शक्ते हैं. उस धर्मास्तिका लोकाग्रके आगे अलोक में अभाव-नास्ति

होने से आत्मा आगे को नहीं जा सकती है. वहां ही लोक के अन्त में स्थिरी भूत होकर ठेहर जाती है.

**श्लोक—दग्धे बीजे यथात्यन्ते । प्रादुर्भवति नाङ्कुरः ।**

**कर्म बीज तथा दग्धे । नारोहति भवाङ्कुरः ॥८॥**

अर्थात्—जैसे दग्ध किया—अग्नि कर जला हुआ बीज से अंकुर का प्रादुर्भाव होता है. अर्थात्—जले हुवे बीज से अंकुरा नहीं फूटता है, ऐसेही संसारके बीज भूत सर्व कर्मों रूप बीज भस्म भूत होनेसे वो जन्म रूप या किसी प्रकारकी व्याधी—दुःख रूप अंकुर उत्पन्न नहीं करसकते हैं. जिस से सिद्ध परमात्मा सदा काल अचल और अव्याबाध हैं.

**श्लोक—संसार विषया तीतं । मुक्ता नाम व्ययं सुखम् ॥**

**अव्या बाध मिति प्रोक्त । परमं परमार्थिभिः ॥ २० ॥**

अर्थात्—वो मोक्ष स्थान में संस्थित रही हुई आत्मा—संसार के सर्व विषयों से पर—अर्थात् श्रेष्ठ और अव्या बाध अर्थात्—सर्व प्रकार की बाधाओं से रहित, अनन्त काल तकही न्युन्या धिकता रहित एकसी ही बनी रहती हैं, ऐसे निरुपम—अत्युत्तम सुख के भुक्ती हैं.

**(५) पांचवा—लक्षण द्वार का अर्थ.**

ऐसी तरह से जो अनुक्रम से गुणस्थाना रोहण करते हैं—जों जों आगे २ के गुणस्थानों में बढ़ते जाते हैं, त्यों त्यों उनके आत्म गुण भी अधिक्यता विधुद्धता को लेते हुवे बृद्धि होते हैं. वो गुण कौन से और कैसी तरह बृद्धिपाते है, यह स्वरूप दर्शाने के वासते पांचवा वा “लक्षण द्वार” कहा गयाहै.

प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान के लक्षण में जो शास्त्रवसे अन्यन्य ग्रन्थों से संग्रह कर के मिथ्यात्व के ३४ भेद लिखे गयहैं जिसका अर्थ.

**(३४) मिथ्यात्व**

सामान्य प्रकार से मिथ्यात्व के दो भेद—१. अव्यक्त मिथ्यात्व. और २. व्यक्त मिथ्यात्व.

१. अव्यक्त मिथ्यात्व सो—जैसे चन्द्रहांस्य मदिरा का सेवन करने से मनुष्य

वे भान हो मूर्च्छित हो पड़ जाता है। उसे अपने पराये अच्छे बुरे का कुछ भी भान नहीं होता है, तैसेही सूक्ष्म निगोद से लगाकर असन्नी तिर्यच तक तो यह एकही मिथ्यात्व निश्चय से पाता है, और बाकी के दंडको के जीवों में से बहुत से जीवोंगे यह मिथ्यात्व में पाता है। इस मिथ्यात्व के वशमें पड़ेहुवे जीवों ज्ञानावरणी आदि कर्मों का अति तीव्र रस चन्द्रहोस मदिरा जैसा प्ररिगमने से वो धर्म अधर्म पुण्य पाप अच्छा बुरा इत्यादि कुछ भी नहीं समझते हैं। फक्त सुख दुःख रूप होती हुई वेदना वेदने सिवाय दूसरा कुछ भी ज्ञान उनमें न होनेसे अव्यक्त मिथ्यात्वी कहे जाते हैं।

(२) “व्यक्त मिथ्यात्व” सो-जैसे-किसीको पीलीया का रोग होने से वो श्वेत वस्तु को भी पित ( पीली ) देखता है। तैसेही यह मिथ्यात्व एक सन्नी पचेन्द्रिय मेही पाता है। इस मिथ्यात्वके वश्य में पड़े जीवको कर्मरूप पीलीये के रोगसे ग्रासित हुई विपरीत बुद्धि कर सर्व पदार्थों विपरीत-उल्टेही भाप होते हैं। सत्य को असत्य, असत्य को सत्य; न्यायको अन्याय, अन्यायको न्याय, इत्यादि सब उलट जानते-श्रद्धते हैं। सो व्यक्त मिथ्यात्वी। आगेजो मिथ्यत्वके भेद किये जावेंगे उन सबोंका समावेश इसमें होता है।

मुख्यत्व मिथ्यात्व के पांच प्रकार भी कहे हैं:—

(१) “अभिग्रह मिथ्यात्व” सो-जो जीवो-हट ग्राही-कदाग्रही होते हैं। वो अपने ध्यान में जो बात जची सो सब सच्ची, बाकी की सब झूठी जानते हैं। कैसेभी सद्बोध-सदुपाय से उने समजाने कोइ भी समर्थ न होवे। और वो सत्संग भी इसही डरके मा-नहीं करते हैं, कि रखे उन ज्ञानी महात्मा के पास जाउंगा तो मेरी श्रद्धा पलटा देवेंगेरे कभी कोइ उनको उसके धर्मकी असत्यता भी बतादेवे तो वो सीधा यह उत्तर प्रदान करें कि-इस मजब में ऐसे २ विद्वान श्रीमान लोक हैं सो वो क्या मूर्ख हैं! वश-हमारे आगे यह पंचायत निकालाही मत करो ! ऐसा जो गर्दभ पुंछग्रही \* कीमाफिक-दुराग्रही होवे सो अभिग्रही मिथ्यात्वी।

\* किसी एक अनान का व्यापार करने वाले व्यापारिने फजर होतेही अपने पुत्र से कहा कि तू आगे चलकर दुकान लगा। मैं भी पीछेसे आताहु। परन्तु याद रखना जि-“पाहिले ग्राहक को खाली मन जानदेना。” यह हुकम पुत्र प्रमाण कर दुकान पर आया दुकान लगाइ। उस वक्त-एक गधेने आकर अनान में मुह डाला। तब दूसरा दुकान दार उमे भगाने लगा, तब वो वाणिक पुत्र संतत हो बोला कि-खबर दार ! इमे भगाना नहीं, खालेनदो, फिर हिं



सा जो होताहै सो अनाभिग्रही मिथ्यात्वी.

(३) "अनाभि निवेशिक मिथ्यात्व" सो-किसीको सत्संगतके प्रसादसे. सत्शास्त्र के श्रवण पठन से. या सत्-चलन चलन वाले सत्पुरुषों के दर्शन से; अपना मान नी-य मजब अन्तः करणमें सभात् असत्य-झूठ प्रतिभाष होने लग जावे. परन्तु मिथ्या मोहके प्रबलोदय कर उस गृहन किये हुवे असत्य मत का त्यागन नहीं करसके! और श्रीवीतराग के मार्ग को सत्य पथ्य तथ्य न्यायरूप जानता हुवा भी ग्रहण नहीं कर स के !! विशेषत्व-मिथ्यानुराग में मतवाला बनकर अपने असत्य पक्ष को स्थापन कर-ने. वीतराग का न्याय पथ्य का उत्पादन करने-सत्शास्त्रों के कथनको लोपे गोपेड-त्थापे या विपरीत प्रगमावे. उत्सूत्र की परुषणा से-या कपोल कल्पित खोटे ग्रन्थों रा-स चोपाइ आदि की रचना रच. बेचारे भोले जीवों को भ्रम रूप फासमे फसा कूमा र्गमें लगावे, सन्मार्ग छोडावे. अपडूवे अन्य अनेकोकों डूवावे. ऐसी तरह जो फूटी ना-वा का सझाती होवे सो अभिनिवेशिक मिथ्यात्वी.

दृष्टान्त—श्रीपार्श्वनाथ भगवन्त के कितनेक \* संतानीया साधुओं गोशाले के मत में मिलकर श्रीमहावीर स्वामीजी की निन्दा कनरे लगे. तब श्रीमहावीर स्वामी के श्रावको ने उनसे पूछा कि—आप श्रीपार्श्वनाथ भगवान की परुषणा को भी जानतेहो, और श्रीमहावीर स्वामीजीकी परुषणा को भी जानतेहो. तैतेही गोशालाजी की परुष-णा को भी जान गयेहो. इन तीनों में से सत्य परुषणा किनकी है सो फरमाइये? तब वो साधुओं बोले कि—हां हम जानते हैं. जैती परुषणा श्रीपार्श्वनाथ भगवान की थी वैसीही परुषणा श्रीमहावीर स्वामीजी की है; परन्तु हमने जो श्रीगोशालाजी का पक्ष धारन कियाहै. इसलिये हमारा वश पहुँचेगा वहां तक हमतो इन मतकी स्थापना कर-नेमें और महावीरके मतकी उत्पापना करनेमें कच्चा म नही रक्खेंगे!! हमदुर्गति से नहीं डरतेहैं. यह सुनतेही श्रावको उनके मिथ्यामोहका प्रबल उदय जान चुपचाप डटकर चलेगये ! ऐसे मिथ्याहट ग्राही जीवों को अभिनिवेशिक मिथ्यात्वी जानना.

(४) "संशयिक मिथ्यात्व" सो-कितनेक पुण्यात्मा जीव श्रीजैन धर्मको तो पाये हैं, परन्तु सत्सङ्ग और सत्शास्त्र के पठन के अभाव से तथा कितनेक सत्संग और स-त्शास्त्रका पठन करभी अपनी दुर्बुद्धि के ( मोहकी प्रबल नाके ) प्रभाव ने. या अन्य

\* प्रति मिथ्य-अर्थान्-विषय के मिथ्य को सन्तानीया कहते हैं.



मतावा लम्बियों की संगति उनके ग्रन्थों का पठन कर—वीतराग प्राणित सत्कथन में संशयि बनते हैं—वैमलाते हैं, और असत्कल्पना करते हैं कि मूढ़ अग्र भाग जितनी थोड़ीसी जगह में कन्द के अनन्त जीवोंका समावेश, लक्षों योजन की अव्येणा, प्राचीन शहरों में क्रोड़ों घरों की वस्ती, अनन्त सिद्धहोते हुवे भी संसारी जीवों की राशी का नहीं घटना, वगैरा. ऐसी कितनी बातों प्रत्यक्षतामें झूठी दर्शाती है. इत्यादि ऐसी बातों में संशय करे सो संशयिक मिथ्यात्व.

दृष्टान्त—महा वैराग्य वन्त जामलीजी साधु के शरीरमें अकस्मात् महा वेदनी उत्पन्न होते शिष्यों को बीछोना करने का हुकम दिया, और थोड़ी देर बाद पूछा कि—“ बीछोना हुवा क्या ? ” शिष्याने कहा कि—कर रहे हैं; यह मुनतेही मन में विचार हुवा कि भगवन्त फरमाते हैं कि—“करेमाणे करे” अर्थात्—काम करना शुरू किया उसे कियाही कहना. और मैं यहां प्रत्यक्ष देखता हूं कि—“करे माणे अकरे” अर्थात्—काम करना शुरू किया उसे किया नहीं कहना, परन्तु काम पूरा किये बादही किया कहना, इसलिये “करे माण करे” यह महावीर का वचन झूठा है. मिथ्यात्व मोहोदय कर ऐसी शंका उत्पन्नहो तेही सम्यक्त्वका नाशकर किलविपी देवहुवे. यह संशय मिथ्यात्व.

(५) “अनाभोग मिथ्यत्व” सो—कर्मोंकी प्रबलता कर, तीव्रमोहके उदय, कर जीवों अज्ञान दिशा से चेतन्य हो अचेतन्य रूप हो रहे हैं, जिनको अपना पर का विलकुलही भान नहीं है. ऐसे अजान अज्ञानी चारों गति के जीवों को स्वभावसे सहजही यह मिथ्यात्व लगता है.

और भी जैन ग्रन्थ में तीन प्रकारके मिथ्यात्व कहे हैं.—१ लोकीक मिथ्यात्व, २ लोकोत्तर मिथ्यात्व. और ३ कूपरावचनी मिथ्यत्व. इन एकेक मिथ्यात्व के—१ देव. २ गुरु, और ३ धर्म इन तीनों से अलग २ तीन तीन भेद करने से ९ भेद होते हैं सो अलग २ कहते हैं:—

(१.) “लोकीक देवगत मिथ्यात्व”—जिनो में देव के—भगवन्-परमात्मा के जो गुणों हैं वो तो पावे नहीं. औ अनेक दुर्गुणों प्रत्यक्ष में देखने में आवे ऐसे किसी मनुष्य को देवको या उनकी मूर्ती को देव करके—भगवान् करके माने सो लोकीक देव गत मिथ्यात्व कहा जाता है; जैसे—१ जिनके पास माला-स्मरणा है, वो प्रत्यक्षही अज्ञानी वा अल्पज्ञ देखोते हैं, क्योंकि—गिनती-संख्या ध्यान में न रहने सेही स्मरणा रक्खी जाती है. २ जो “अहं ब्रह्मसमी” अर्थात् हमही ब्रम्ह हैं, हमारी पूजा करने से मुक्ति मि-

लेगी, वगैरा अहंता के भरेहुवे शब्दोचार करते हैं सो प्रत्यक्षमेंही मथान्ध भाश होते हैं  
 ३ जो विमूल खड्ग चक्र आदि शस्त्र के धारक हैं वो प्रत्यक्ष ही क्रोधाग्नि से प्रज्व-  
 लित भाष होते हैं.

(४) जो कहते हैं कि मेही कर्ता हर्ताहूं, मेरे हुकम विन पत्ता भी नहीं हल स-  
 कता है, मेही सर्व सामर्थ्य हूं वगैरा शब्दोंसे प्रत्यक्ष में अभी मानी देखाते हैं. ५ जो  
 दगल वाजी ठगाइ करते हैं, छिपकर या रूपबदल कर दूसरे को छलते हैं-जैसे मोह-  
 भी का रूप बना भ्रस्मा मुर को भस्म किया ऐसे मायावी गिनेजाते हैं. ६ जो लोभी  
 -लालची होवे. नारेल डोडी जैसे निर्माल्य वस्तु के लोभ में पड़ शत्रुओं के नाश जै-  
 सा जुलम कर डाले वगैरा. को लोभी कहते हैं. ७ यह मेरा घर कुटुम्ब है यह मेरे रा-  
 ज्य सेना है. यह मेरे ऋद्धि सिद्धि है ऐसे ममत्वी को रागी कहते हैं. ८ तैसे यह मेरा  
 दोषी दुश्मन, शत्रु निन्दक है, इसका नाश होवे ! ऐसे भाव वाले द्वेषी गिनेजाते हैं.  
 ९ जो शोक चिन्ता फिकर करते हैं. हाय विलापात करते हैं रोते हैं, शिरउर कूटते हैं,  
 वगैरा सो शोकी हैं. १० जो कहते कुछही हैं और करते कुछही हैं. मनमें कुछही. और व-  
 ताते कुछही ऐसे झूठ बोलने वाले. पापके हिंस्रके शास्त्रों का स्थापन कर कुमत का  
 प्रसार करते हैं. ११ दूसरे के वस्त्र भूषण के हरण कर्ता. स्त्री पुत्रादि को भरमा कर  
 डडाने वाले. इत्यादि चोरी करने वाले होवे १२ रखे यह मेरेसे अधिक होजावे. मेरा  
 राजपाट हरण करलेवे. इत्यादि मत्सर भाव धारण कर अपत्नरा आदि के पास से उ-  
 नके तप का भङ्ग कराने वाले वगैरा सोमत्सरी कहे जाते हैं. १३ संग्राम करने वाले.  
 शीकार खेलने वाले. यज्ञ होमादि द्वारा-धर्मके नाम से मनुष्य पशु या किसी वस्तु का  
 होम-हवन कराने वाले. भैंसे बकरे मुर्गे आदिके घातिहंसो हिंसक कहे जाते हैं. १४  
 स्वस्त्री के या परस्त्री के लम्पट्टी. पुत्री और पशु के साथ भोग करने वाले. ऐसे जवर  
 कामी. धूप दीप पुष्प फल सुगन्ध. शीतोपचार. उष्णोपचारके कर्ता कराता. स्वशरी-  
 र स्वकुटुम्बादि के प्रेम में रक्त राममंडल खेलना. नाचना नचाना विषय राग गाना.  
 स्त्रीयों के पीछे मरोड़ फिरना. वाजिब वजाना वज वाना. वगैरे क्रिडा के करने वाले  
 जगत् जीवों को मुखी दुःखी करना. शरापया आशीर्वाद देना इत्यादि अनेक दुर्गुण  
 जिनो में पाते होवे. वो प्रत्यक्ष कुदेव के लक्षण हैं. ऐसे देवों को तरण तारण दुःख  
 निवारण जानकर बन्दे पूजे सो लोकीक देवगत मिथ्यात्व.

(२) "लोकीक गुरुगत मिथ्यात्व" मो-जिनों की आत्मा में गुरु के (मायु) के

गुण पावे नहीं, ऐसा को गुरु करके मानें सो गुरु गत मिथ्यात्व. जैसे-जो-सचित्त (स जीव) मट्ठी-पाणी-अग्नि-हवा-वनस्पति और वस (हलते चलते जीवों) इन छजीवों की कायका बधकरने वाले, चकारम कारादि गालीयों असत्य वचनके बोलने वाले. विनादि वस्तु लेवें चोरी करने वाले, स्वस्त्रीया परस्त्री मे गमन के करने वाले, धन धान्य चौपद दुपद आदि परिगृह के रखने वाले, रात्री भोजन के कर्ता, मदिरा मांस-कन्द-मूल इत्यादि अभक्ष वस्तु के भक्षण करने वाले. गांजा तमाखू चडस भांग आदिनशा के सेवन करने वाले, स्नान मंजन तेल अतर सुरमा छापा तिलक वस्त्र भूषणादि से शरीर को शोभा करने वाले, साफ नग्न रहे वारंगी बेरंगी अनेक तरहके वस्त्र धारण करने वाले, मुंड मुडाना जटा बडाना, भभूत रमाना इत्यादि अनेकरूप धारण कर ऊदर पूरना करने वाले. इत्यादि अनेक तरह के गुणाविना कोरा आडम्बर-पाखण्ड रचकर जो गुरु तरीके जगत् में पूजा रहैं. उनको तरण तारण दुःख निवारण जानकर जो वन्दन नमन पूजन करेसो लोकीक गुरु गत मिथ्यात्व.

३ “लोकीक धर्म गत मिथ्यात्व” - जो दुर्गति में पडते जीवों को धर-पकड रखे - पडने नहीं देवे, ऐसा जो परम लक्षण धर्म का है सो जिस में नहीं पाता, है, फक्त-नाम मात्र धर्म हैं-जैसे देवालायादि बन्धाना, तीर्थ स्नानादि करना, धूप दी यज्ञ हवन दव आदि करना, फल फूल पत्र द्रोव कूपल छाल आदि तोडना मोडना, पट मलमुरों भेंसदि जीवों का बध, इत्यादि कर्मों में धर्म का मानना. तथा होली राखी आदि मिथ्या पर्वों का मानना. एकादशि आदि तप नाम धारण कर कन्द मूल पकान मिष्ठानादि भोगवना. ऋतु दान कन्यादानादि देना, पंच धूनी तापना इत्यादि अनेक जो होंगी कृतव्यो है, उसे तरण तारण दुःख निवारण जान पालभा स्पर्शना सो लोकीक धर्मगत मिथ्यात्व.

४ “लोकोत्तर देवगत मिथ्यात्व” सो जिन-तीर्थकर ऐसा नाम तो धारण किया, परन्तु जिनो में तीर्थकर के गुण नहीं, गोशालावत्-उनको तीर्थकर देव कर माने. धन पुत्र स्त्री यश सुख की प्राप्ति के अर्थे-ग्रह दोष निवारण के अर्थे तीर्थकरो का नाम स्मरणादि करना इत्यादि इस लोक परलोकेके द्रव्यीक सूखार्थ जो रीतराग तीर्थ करों का स्मरण वंदन नमन पूजन करेसो लोकोत्तर देव गति मिथ्यात्व.

५ “लोकोत्तर गुरुगत मिथ्यात्व”—सो जैन साधुका लिंग भेष तो धारण किया, परन्तु साधुके गुण जिनो में नहीं पाते होवें. पांच महा व्रत पांच समिति तीन

गुप्ति रहित होवे. छेही जीव काया का आरंभ करते होवें. इत्यादि अनाचारी होवें उनको गुरु माने. तथा इस लोक परलोक द्रव्यीक मुखार्थ मुसाध ओको दान दे वंद न पूजन सत्कार सम्मानादि करे सो लोकतर गुरुगत मिथ्यात्व.

६ “लोकोत्तर धर्मगत मिथ्यात्व” सो—जैन धर्म तो नाम है परन्तु जिनेश्वर के आज्ञानुसार जिस मे करणी नहीं. देव गुरु धर्म निमिन छेही काया का चध, धूप दीप फूल पान फल का चडाना-भोगोप भोग लगाना, नाचना बजाना वगेरा हो उस में धर्म माने. तथा इस लोक परलोक के द्रव्यीक मुखार्थ संवर करणी सामायिक पोपा आविल उपवास अष्टमादि तप करे सो लोकोत्तर धर्मगत मिथ्यात्व.

७—९ “कुप्रा वचनी देव गत मिथ्यात्व” सो—हरी हरादि कुदेव को, “कुप्रा वचनी गुरुगत मिथ्यात्व” सो—बाबा जोगी आदि कुगुरुको, और “कुप्रा वचनी धर्मगत मिथ्यात्व” सो—यज्ञ होम स्नान तीर्थत्व वगैरे धर्म क्रियाको मोक्ष प्राप्ती की इच्छा से मानना वन्दन नमन करना इतहे मोक्ष दाता जानना सो कुप्रावचनी देव-गुरु-धर्म गत - मिथ्यात्व.

और भी—जिनेश्वर प्राणित शास्त्रों में—१ ओछी-कभी. २ आधिकी-ज्यादा और ३ विपरीत-अनमिलती श्रद्धाजानना. पक्षपना-कहना. और स्पर्शना करना सो भी तीन तरह के मिथ्यात्व गिने है :—जैसे

१ तीस गुप्ताचार्य ने आत्मा को एकही प्रदेशी मानी सो. तथा कतनेक मनाव लम्बियों आत्माको - जवार के दाने जितनी. या दीपक पात्र या अंगुष्ठ मामान बताते हैं सो. और कितनेक-‘अपने पर आवेरेलो. तो बात को परीठेलो’ इम कहवन मुजव शास्त्र के वचनों को लोपेगोपे छिपावे या अन्य रूपमें परिणामावे इत्यादि ओछी करे सो पक्षपणा मिथ्यात्व.

२ ‘ऐमेही कितनेक कहते हैंकि’—एकही आत्मा सर्व ब्रह्मान्ड मात्र में व्यापक (भरी) हुइ है. तथा धर्म रक्षणार्थ शुद्ध उपकरण रखणे वाले माधु को परिगृह धारी कहना. शास्त्र में श्री महावीर स्वामीके ७०० केवल ज्ञानी चले हैं और १७७३ तापस को केवल ज्ञान प्राप्त हुवा बनाना वगैरा सर्वज्ञ प्रणीत सूत्रोंमे अधिक पक्षपणा मिथ्यात्व जाणना.

३ ऐमेही कितनेक श्री सर्वज्ञ प्राणित शास्त्रों में विपरीत-अन मिलनी प्रत्यक्षादि प्रमाण द्वारा मिथ्या जानाती बातों को जो सत्य माने मनावे-एना कपोल कल्पित

मन माने मत चलाने वाले ६ प्रकार के मत इस वक्त में प्रवर्त रहे हैं। जिनका संक्षेपित वर्णन ;—

### (१) बौध दर्शन का - स्वरूप.\*

बौध मति-१ बुद्धि देव, २ संघ (उनके सर्व मतावलम्बि) और ३ धर्म, इन तीनों को 'रत्न त्रय' मानते हैं। 'तारा' नामक देवी को उन के शासन (मत) की रक्षक जानते हैं, इन के धर्म गुरुओं-शिर मुंडाते हैं, चरमामनपर बैठते हैं, धातु रंग के वस्त्र रखते हैं, कमण्डल रखते हैं। उने भिक्षु नाम से बोलाते हैं। यह जिस पात्र में भिक्षा लाते हैं, उस में जो पड़े उसे शुद्ध समजकर मांस का भी अहार करलेते हैं। परन्तु ब्रम्हचर्यादि अपनी क्रिया में बड़े दृढ़ होते हैं, इन की चार शाखाओं हैं :— योगाचार, २ सोत्रिक ३ वैभाषिक और ४ मध्यमिक।

बौध मतावलम्बि के माननीय चार तत्त्वों:- १ दुःख, २ समुदाय, ३ मार्ग, और ४ निरोध। इनका खुलासा इस्तरे हैं: पहिले-दुःख को पांच स्कन्ध रूप मानते - १. रूप विज्ञान, रस विज्ञानादि निर्विकल्प जो विज्ञा है सो "ज्ञानस्कन्ध" २ सुखा दुःखा अदुःख सुखा। यह "वेदना स्कन्ध" पूर्वोपार्जित कर्मों से हुवा बताते हैं। ३ सविकल्प ज्ञान को "सज्ञा स्कन्ध" कहते हैं। ४ पुण्य अपुण्यादि समुदाय से "संस्कार स्कन्ध" मानते हैं। इसके प्रबोध से पूर्वानुभावका स्मरण होना कहते हैं। ५ पृथ्वीधातु तैसेही रूपादि को "रूप स्कन्ध" कहते हैं। इन पांचों स्कन्धों सिवाय आत्मादि कोई भी पदार्थ नहीं है और यह पांचोही तत्व है सो निसभी नहीं रहते हैं। इन की क्षीण २ में प्रवर्ती होतीही रहती है, ऐसा कहते हैं इन दुःख तत्व के कारण भूत दूसरा समुदाय तत्वहो ताहें:- सो ऐसे है कि-जगत् में राग द्वेष का समोह उत्पन्न होता है जिस से यह में हूं, यह मेरा है, यह दूसरे का है यह दूसरा है, ऐसा जो भा-

\* कितनेक अज्ञ मनुष्यों जैन मत को बौध मत की शाखा जानते हैं, जिसका मुख्य सत्र-जैन के चौबीसवे तीर्थंकर श्री महावीर श्वामी, और बौध मत के स्थापक बुद्ध देव यह दोनों सम काल में होने का; तथा महावीर श्वामी की ज्ञाती और पिताका नाम बुद्ध देव जैसा होने का जाना जाता है। परन्तु जैन के २३ अवतार बुध के पहिले होगये है, इस लिये जैन मत बहुत प्राचीन है यह बात अब पश्चिमात्य विद्वानोंने भी अनेक प्रमाण से सिद्ध कर बताइ है।

व उत्पन्न होता है, सो समुदाय तत्त्व कहा जाता है. इन दोनों तत्त्वों कोही संसार की प्रवृत्तिके हेतु रूप मानते हैं. इन दोनों तत्त्वोंसे विपक्षीभूत-मार्ग और निरोध तत्त्व हैं, जिस का स्वरूप ऐसा है कि-सर्व पदार्थों क्षीणमात्र रहकर नाश को प्राप्त होते हैं. कि-उत्पन्न दूसरी क्षीण में उसके जैसेही दूसरे पदार्थ उत्पन्न होजाते हैं. पूर्व ज्ञानमें उत्पन्न हुई वासना को उत्तर ज्ञान तक ठहरानेकी शक्ति है और क्षीणक परम्परा पूर्वक जो मानसी पातीत होता है उसका नाम 'मार्ग' है. और यह मार्गही निरोध का कारण है. अर्थात्-चित्तकी निरुद्ध अवस्था सो निरोध है. और सोही मोक्ष है.

और भी बोधमति १२ पदार्थ मानते हैं:-श्रोत चक्षु घ्राण रस और स्पर्श. यह पांचो इन्द्रियों. और इन पांचो के पांच विषय यों १०. और चित्त तथा शब्दा यत्न. इन १२ आयतनों की भी क्षीणिक मानते हैं. बोधमतिय-आत्मा को नहीं मानते हुवे फक्त दूटा का अनुनन्दन ज्ञान क्षणों कोही मानते हैं. इस से यह बात सिद्ध होती है कि-क्षुधा और को लगी. भोजन अन्य ने किया. और तृप्ति अन्य कोही आइ. तैसेही औषधी अन्य को दी. रोग अन्य का गया. ऐसेही अनुभव और को हुवा. स्मरण और को हुवा. वन्ध अन्य के हुवा. और मोक्ष अन्य हुवा. तपादिकेश कि सीने भोगा. और स्वर्गादि प्राप्ति किसी अन्य कोहुइ ! यह सब बातों प्रत्यक्ष में अन्य मिलती हुइ देखाती हैं. और रात्री भोजन तथा मांस आदि अभक्ष का भक्षण यह प्रत्यक्ष में अधर्महै इत्यादि अन्तर्मिलते वनावसे इसे विपरीत परुषणा मिथ्यात्व कहा जाताहै.

## (२) नैयायिक दर्शन का स्वरूप.

नैयायिक मति-शिवको देव मानते हैं. गौतमामुनि को गुरु मानते हैं. इन के धर्म गुरुओ वडी कोपीन पहनते हैं. कम्बल ओढते हैं. जटा रखतेहैं. जटामें लिंग रखते हैं. शरीर को भस्म रमाते हैं. वगलमें तुम्बी और हाथमें दण्ड रखते हैं. निरन आहार और वनवास पसंद करने हैं. अतिय पूजा वडी प्रियलगती हैं. कन्द मूल फूल फलादि का आहार करतेहैं और कितनेक स्त्री रखतेहैं. कितनेक नहीं भी रखतेहैं. जो स्त्री नहीं रखतेहैं वो उत्तम गिने जाते हैं. वृद्धवस्था प्राप्त होने कितनेक हंमट्टाचि (नग्नपना) धारण करते हैं. शिवजी शिवाय अन्य देव को नमन करने में पाप बताते हैं. उनके भक्तों 'ॐ नमो शिवाय' इस शब्द में नमस्कार करते हैं. नव वो "नमो शिवाय" इस शब्द में आशीर्वाद देते हैं. इनों का मुख्य उद्देश यह हैं. कि-किमीने भी १२ वर्ष पर्यन्त 'देव दिना' का पालन करलिया. फिरवो उने छोड देवे तो भी मोक्ष पाना है. उनकी-

१ शैव, २ पाशुपत, ३ महाब्रह्म धर, और ४ काल मुख यह चार शाखाओं हैं. और गौतम मुनि ( अक्षपदमुनि) कृत-‘न्यायमूल.’ उद्योत कर मुनिकृत न्यायवृत्ति भाषा, सर्वज्ञकृत-न्यायसार वगैरा सूत्रों को यह मानते हैं.

नैयायिको-१.अबल तो कहते हैं कि-सत्तायोग से सत्व है, और फिर कहते हैं कि-सामान्य, विशेष, समवाय, यह पदार्थों सत्ता के विनाही सत्तहै. २.एक स्थान कहा है कि-ज्ञान ज्ञान को आप जानता नहीं है, क्यों कि-अपने में आपही के क्रिया का विरोध होता है, और दूसरे स्थान कहा है कि-इश्वरका ज्ञान आप आपको जानता है, और स्वात्मा में क्रिया विरोध नहीं है. ३ आकाश को निरवयवी कह कर फिर कहते हैं कि आकाश का गुण शब्द है (तो अवयव विना शब्दोत्पत्ति कहां से हुई?)सोभी एक देशमे शुन्यता है सर्वतः नहीं है, और भी यह १६ पदार्थों मानते हैं, उसमें भी बहुत विरोध भाष होता है. तैसेही इश्वरको कर्ता यह मानते हैं, यह भी बड़ी विरुधता है. क्यों कि-जो कर्ता हैसो भुक्ता है, और कृत कर्म फल भोगवनेसे अन्य में और इश्वरमें क्या तफावत? तथा किसी भी वस्तुकी इच्छा होती है तब वो वस्तु निपजाता है. और इच्छा है मोही दुःख है, अर्थात्-नून्यता सेही इच्छा होती है, जो इश्वर होकर ही दुःखी हुआ तो फिर इश्वर कायका ? इत्यादि सब से विपरीत परुषक गिने हैं.

### (३) वैशेषिक दर्शन का स्वरूप.

वैशेषिक मति का श्रद्धान विशेष कर नैयायिक मति जैसाही है, फरक फक्त इतनाही है कि-वैशेषिक दो ही प्रमाण मानते हैं, और कहते हैं कि-शिवजीने उल्लूका रूप धारण कर कणाद मुनिको वैशेषिक मतका स्वरूप बताया है, इसलिये उस मतका नाम “ औलूक्य ” भी है, यह-तर्कशास्त्र, वैशेषिक सूत्र, प्रमस्तकर भाष्य, किरणावली. लीलावती आदि को मानते हैं. नैयायिक की तरह इन को भी विपरीत परुष जानना.

### [४] सांख्य दर्शन का स्वरूप.

सांख्यमति के-देव-नागयण, और गुरु-त्रिदन्डीये होते हैं. इन के धर्म गुरुओं-कोपीन पहनते हैं धानुगद्ग के बख्ख रखते हैं, कितनेक शिरमुन्डोंत हैं, कितनेक शीखा रखते हैं. और कितनेक जटा बढ़ाते हैं. मृग चर्म का आसन रखते हैं, फक्त ब्राह्मण के घर काशी अन्नपाने हैं. जिस में कितनेक तो फक्त पंचग्राम (५ कवच) मात्र खा-

करही संतोष करते हैं, और काष्ठ की मुहपति भी रक्खते हैं. इसका सबब यह ऐसा वताते हैं कि “आशो च्छास से जो जीवो हिंसा होती है वो इस से बचती है \*” यह पाणीकी जीवानीकी यत्ना बहुत करतेहैं, कहते हैं कि-“पाणीकी एक नूस्म बिन्दूमें से एकेक जीव निकल कर जो भ्रमर जितना बडा शरीर बनावे तो तीनो लोक मे समा-वे नहीं ! इतने जीव एकही बिन्दू में हैं” ? और इनो मे कितनेक एकेक महीने तक उपवासभी करतेहैं. इनके मतकी महिमा इनके “मठार शास्त्र” मे ऐसी तरह लिखीहै-  
श्लोक-हंस विपच खाद मोदं।नित्यं भुक्त्वच भोगान यथाऽभिकामं॥

यदि विदितं कपिल मतं । तत् प्रपस्यासि मोक्ष सौख्य मचिरेण ॥

पंच विंशति तत्त्वज्ञो । यत् यत्रा श्रये रतः ॥

शिखी मुन्डी जटिवापि । मुच्य ते नात्र संशयः ॥

अर्थात्-कपिल मुनिके फरमाये २५ तत्वो को जानने वाला फिर वो हमे खे-ले खावे पीवे सदा खुशीरहै. चाहे किसी भी आश्रम में रहै शिखा धारी हो या मु-ण्डित हो जैसी रुची होवे वैमार है. तो भी वो सर्व उपाधी मे मुक्त हो अल्प काल में मोक्षपाता है. इसमें संशयही नहीं है.

सांख्यमत के माननीये २५ तत्वों का स्वरूप.

१ प्रकृति तत्त्व.- (१) सत्त्व गुण का मुख लक्षण, चिन्ह प्रसन्नता. प्रमाद-बु-द्धि-लावव-आश्रय-अनभिसंग-अद्वेष-प्रीत्यादि. मत्त्व गुण के कार्य-लिंग-आर्जव-मार्दव सख-शौच-लज्जा-बुद्धि-क्षमा-अनुकम्पा.-प्रमादादि. जिममे भुवोनपति होती हैं. उर्द्वेलो क निवासी देवताओं में प्रधानतामे मत्त्व गुणकी ही अधिक्यता है. (२) रजो गुणक दुःख लक्षण है. चिन्ह-संताप-ताप-शोष-भेद-चलित चित्त-स्नंभ-उद्वेगादि. यह रजो गुण कार्य लिंग-द्वेष-द्रोह-मत्सर-निन्दा-वचन-बन्धन-तपादिस्थान हैं. जिममे दुःखान्प-

ॐ श्लोक—ते प्राणाद तु यातेन । आसे नैकेन जंतवः ॥

हन्यते शत सो ब्रह्म । त्रण मात्मानर वादिना ॥

अर्थ-मुखदके बिना आशोआम लेनेमे व अणुमात्र शब्दोचार करने मे ह-जारो ब्रम्हका ( हजारों प्राणीका ) नाश होता हैं.



ति होती है. अधो लोक तिर्यचनरक में प्रधानता से रजो गुण अधिक्य है. (३) तमो गुण-मोहलक्षण, चिन्ह दीन पणा. दैन्य-मोह-मरण-अमादन-वीभत्सा-ज्ञान-गौरवादि तमो गुणके कार्या लिंग है. अज्ञान-मद-आलस्य-भय-दैन्य-कृपणता-नास्तिकता-विषाद-उन्माद-स्वप्नादि तमो गुणके कार्यहैं, मध्यलोकके मनुष्योंमें प्रधानतामे तमो गुण अधिक है. इन तीनों गुणोंकी सम अवस्थाको प्रकृति कहते हैं; प्रधान, अव्यक्त, प्रकृति के नाम है, यह प्रकृतियों उत्पन्न और प्रलय रहित स्थिर होनेसे नित्य मान ते हैं. और अन्वय असा धारणी, अशब्दा, अपर्शा, अरसा, अगंधा, अव्यथा, इन गुण मय प्रकृति को कहते है. २ प्रकृतिसे महान नामे दुसरा तत्व उत्पन्न होताहै, इसे बुद्धि भी कहते हैं. जिससे जड चैतन्य मनुष्य पशुका भेद मालुम पडता है. इन के-(१) धर्म, (२) ज्ञान, (३) वैराग्य और (४) ऐश्वर्य, यह ४ सात्विक बुद्धि के रूप; और (१) अधर्म, (२) अज्ञान, (३) अवैराग्य, और (४) अनैश्वर्य, यह ४ तामसी बुद्धिके रूप यों ८ रूप हैं. ३ इस बुद्धि तत्व से अहंकार नामक तीसरा तत्व उत्पन्न होताहै. (अहंकार से १६ गुण उत्पन्न होते हैं) ४ स्पर्श, ५ रस, ६ घ्राण, ७ चक्षु, ८ श्रोत्र, (इन पांचों को ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं, क्योंकि यह अपने विषय को आप जानती है.) ९ वायु (गुदा), १० उपस्थ, (पुरुष चिन्ह स्त्री चिन्ह), ११ वच (शब्द), १२ पाद(पग) १३ हाथ (इन पांचो को कर्मेन्द्रिय कहते हैं, क्योंकि यह काम देती है), १४ मन(यह जब ज्ञानेन्द्रिय से मिलता है तब ज्ञान रूप बन जाता है और कर्मेन्द्रिय से मिलता है तब कर्म रूप बनजाता है क्योंकि इस कि संकल्प वृत्ति है.) १५ रूप तनमात्र से-शुक्ल कृष्णादि वर्ण, १६ रस तन मात्र से तिक्तादि रस १७ गन्ध तन्मात्र से-सुरम्वादि गंध. शब्द तन्मात्र से-मञ्जुलादि शब्द विशेष, १८ स्पर्शतन्मात्र से-मृदु कठिनादि स्पर्श (यह १६ गुण अहंकार से होते हैं) २० रूप तन्मात्रसे-अधिकी उत्पत्ति होती है. २१ रसतन मात्र से-पाणी उत्पन्न होता है, २२ गन्ध तनमात्र से-पृथ्वी उत्पन्न होती है, २३ शब्द तन्मात्र से-आकाश उत्पन्न होता है, २४ स्पर्श तन्मात्र से-वायु उत्पन्न होता है (यो ऊपर कहे पांचों तन्मात्र से पांचो भूतों कि उत्पत्ति होती है) और २५ वा "अकर्ता विगुण भोक्ता" अर्थात्-अकर्ता आत्मा विषय सुखादि के लिये पुण्यादि का कर्ता नहीं है, इसलिये अकर्ता है, क्योंकि आत्मा व्रण मात्र तोडने समर्थ नहीं हैं, इसलिये कर्ता प्रकृति ही है, क्योंकि प्रकृति में प्रवृत्ति का स्वभाव है. "विगुण"-आसत्वादि गुण रहित है, क्यो कि-सत्वादि गुण प्रकृति का धर्म है. "भोक्ता"

आत्मा भोक्ता भी नहीं है. परन्तु प्रकृतियों के वीकार भूत उभय मुख दर्पणाकार जो बुद्धि है उस में संक्रमण होनेसे निर्मल आत्म स्वरूप के विषे सुख दुःख प्रति विम्बित होनेसे उदय माव भोक्ता कहलाता है. जैसे स्फटिक मणी के पास जैसे रङ्ग का पदार्थ होता है वैसेही रङ्ग मय वो मणी प्रति भाप होती है, यह सांख्य के २५ तत्वोंका स्वरूप संक्षेप में हुवा.

सांख्य मति-सत्त्व रज और तमो गुण से उत्पत्ति मान ते हैं सो अन मिलतीहै. क्योंकि-गुनी से गुण उत्पन्न होते हैं, परन्तु गुणसे गुनी की उत्पत्ति कदापि नहीं होती है; जैसे मट्टी से घडा बनता है, परन्तु घडे से मट्टी कदापि नहीं बनती है. तैसेही आत्माको अकर्ता अभोक्ता मानना सो भी ग्थिया है. क्योंकि आत्म शक्ति की सत्ता बिना किसीभी जड पदार्थों में वस्तु उत्पन्न करने की और सुख दुःख रूप कर्म फल वेदने की शक्ति नहीं हैं. इत्यादि सबव से यह भी विपरीत परुषक गिने जाते हैं.

### (५) मीमांस दर्शनका स्वरूप.

मीमांस मत का दूसरा नाम 'जे.मिनीय' भी कहते है. इनके देव ब्रम्हा, और गुरु वेदो कोही मान ते है, अन्य किसी को भी गुरु नहीं मानते हैं. इन के धर्मावलम्बियों-सांख्यमति की तरह ही-कोइ एक दण्डधारी. कोइ विदंड धारी होते हैं. धातु रङ्ग के वस्त्र पहन ते है, मृगचर्म के आसन पर बैठते हैं. कमण्डल रक्खते हैं, शिर मुण्डाते हैं, यज्ञोपवित को तीन वक्त धोकर पानी पीते है. शूद्र जातिका अन्न नहीं खा ते हैं. अपन को 'सन्यस्त' कह कर बोलाते हैं, ब्रम्हको अद्वैत मानते है, और सब शरीर मे एकही आत्मा मानते हैं. ÷ और आत्मा में लय हो जाने कोही मुक्ति मान ते हैं. अन्य-मुक्ति की नास्ति बताते है.

मीमांस मत की दो शाखा है-१. पूर्व मी मांस और उत्तर मी मांस. इन में पूर्व मीमांसी तो बहुतकर गृहस्थाश्रमीही रहते हैं. और उत्तर मीमांसी ओंकी ४ शा

÷ श्लोक-एक एवहि भूतात्मा । भूते भूते व्यवस्थितः ॥

एकधा बहुधा चैव । दृश्यते जल चन्द्रदत्त ॥

अर्थात्-जैसे पानीके भरे हुवे अनेक घडों में एकही चन्द्रमाका प्रति विम्ब अलग २ दिखता, तैसेही एक परमात्मा नर्व आत्मा में व्यापे ह्ये हैं.

खा है:—१ विदन्डी, सशिखा, २ ब्रम्हसूत्री, ३ गृहत्यागी, और ४ परिगृही. इनमें—  
 एकही वक्त पुत्र के घर में भोजन करने वाले, कुटि में रहने वाले, इने 'कुटिचर' कहते हैं. २ पूर्वोक्त लिंग युक्त विप्र के घर का निरस आहार करने वाले, नदी के किनारे रहने वाले, को 'बहुदक' कहते हैं. ३ ब्रम्ह सूत्र, शिखा सहित, कपायवस्त्र, दन्डधारी, ग्राम में एक रात्री और नगर में तीन रात रहने वाले, ब्राह्मण के घर में धूम्र रहित अग्नि हो तब भोजन करने वाले, तपश्चर्यामें शरीर को सुकाने वाले, जो देशों देश फिरते रहते हैं, उनको 'हस' कहते हैं. इन को जब ज्ञान उत्पन्न हो जाता है तब चारों वर्ण के घर का आहार करते हैं, और शरीर बिलकुल अशक्त हो जाता है तब अनसन कर देह त्यागते हैं. और ४ वेदान्तक एकाध्यायी को 'परम हंस' कहते हैं.

यह कहते हैं कि—“हिंसा गार्ह्यतु” अर्थात् जो हिंसा इन्द्रियोंको और व्यञ्ज-पोषण को की जाती है वो हिंसा गिनी जाती है. परन्तु वेदोक्त-अश्वमेध, गौमेध, नर-मेध, अजामेध, मधु सपर्क, और पित्र वृत्ति के लिये जो हिंसा की जाती है वो हिंसा नहीं गिनी जाती है. और इनही के वेदोंकी स्मृति में ऐसा लिखा है :—

**श्लोक—श्रुयुतां धर्म सर्वस्वं । श्रुत्वा चैव धार्यतां ॥**

**आत्मानः प्रतिकूलानि । परेषां न समाचरेत् ॥**

अर्थात्—धर्म श्रवण कर धारण करने का येही सार है कि-किसी आत्मा के भी प्रतिकूल (दुःख प्रद) कृतव्य कदापि नहीं करे!

**श्लोक—अन्ये तमासि मज्जाम । पशुभिर्ये यजा महे ॥**

**हिंसा नाम भवे धर्मो । न भूतो न भविष्यति ॥**

अर्थात्—वेदान्त का कथन है कि-यज्ञ निमित्त पशुका वध करने वाला अन्य और तामसी मनुष्य है, क्योंकि हिंसा करने से धर्म न कदापि नहुवा और न होगा!!  
 तथाच तत्त्व दर्शिनः पठन्ति :—

**श्लोक—देवो पहार व्याजेन । यज्ञ व्याजेन वाथवा ॥**

**घ्नन्ति जन्तुन् गत घृणा । घोरान्ते यान्ति दुर्गति ॥**

अर्थात्—देवो की वृत्ति के निमित्त और यज्ञ के निमित्त जो पशु का वध करते

हैं वो घोर (अति दुःख प्रद) दुर्गति में जाते हैं. ऐसे बहुत से हाथले दया धर्म की-पृष्टि के उनोके शास्त्रोंमें होते हुये भी यज्ञ और पिवादि नियम हिंसा करनेमें दोष न-ही मानते हैं. बल्के धर्म मानते हैं. इसलिये यह भी विपरीत परम्पक मिथ्यात्वी गिने हैं

### (६) चार्वाक दर्शन का स्वरूप.

चार्वाक मत का दूसरा नाम नास्तिक मत भी कहल्यता है. इन के न तो कोइ देव है. और न कोइ गुरु हे फक्त कोइ २ देवीको मानते हैं. इनके शास्त्र मे ऐसा लिखा है :—

श्लोक—पृथ्वी जलं तथा तेजो । वायु भूत चतुष्टयम् ॥

आधारो भूमिरे तेषां । मानं त्वन्न जंमवही ॥ १ ॥

पृथव्यादि भूत संहत्या । तथा देह परिणतेः ॥

मदशक्तिः सुरांगे भ्यां । यद्य तद्य चिदात्मनि ॥२॥

अर्थ—पृथ्वी, पाणी, अग्नि और वायु इन चारो भूतों के आगम मेरी मर्त्य श्रे-ष्टि, और जेमे-गुड मरुवा पाणी और अग्नि इन चारो के संगे मे मर्त्य ( शरीर ) नामक पदार्थ उत्पन्न हो उन्मादका कर्ता होता है. तैसी उपेक्षित चारो भूतों के संगे ग मे आत्माजीव उत्पन्न हो अनेक चेष्टा करता है. और इन चारों के विनाश मे या विनाश मे आत्माका भी विनाश होता है. इन चारो भूतों सिवाय इन जगत् मे दुःख-न कोइ पदार्थ है ही नहीं: न कोइ जीव है: और न कोइ पुण्य पाप है. तो फिर पु-ण्य पाप के फल भुक्त ने के सिधे लभक और स्वर्गतो होवेगी कर्माने ऐसे कुरोद मे यह तोको निरर दन सांस मर्त्य परकी या माना भनि को भी भेदन करनेमें लगे नही है. और इनोने चारो मर्त्य मे उत्तम दिन वापस किया है इन दिन मर्त्य मर्त्य न में यह सब भेजे हो श्री को लभ कर पोकी पुजते हैं. और भोग भी करते हैं. इन की शम मार्ग वाचनी मार्ग आदि उपपन्न है. ऐसा चार्वाक दर्शन इन को मर्त्य की सर्व धर्मों मे विरुद्ध विपरीत परम्पक देखलिये. विरुद्ध

और भी चार्वाकजी मन्त्र में “० मर्त्य के सिवाय परमात्मा है. ० मर्त्य ० धम्म मर्त्य” अर्थात्—यह वो अर्थ करते तो सिवाय परमात्मा मर्त्य के मर्त्य ० मर्त्य के बोधे अर्थात् मे परमात्मा है:—

सूत्र—जेय अतीता जेय पडुप्पन्ना जेय आगमिस्सा  
 अरहन्त भगवन्तो ते सव्वे वि-एवं माइक्खन्ति  
 एवं भासन्ति एवंपण्णवन्ति एवं परूवेति—सव्वे  
 पाणा सव्वे मुया सव्वेजीवा सव्वे सत्ता—णहन्तव्वा,  
 ण अज्जवेयव्वा, णपरिधातव्वा, णपरिता वेयव्वा,  
 ण उद्वयव्वा,—एस धम्मे सुद्धे णितिए सासए,  
 समेच्चलोयं खेयन्नेहिं पवेतित्ते.

अर्थ—सुधर्मा श्रीामी फरमाते हैं कि—अहो जंबु ! जो तीर्थकर भगवन्त-गये का ल में हुवे, दर्त मान में हैं और आवते काल में होंगे उनसबों का एक यही फरमान है कि—“सर्व प्राणी ( चेन्द्रिय तेन्द्रिय. चोरीन्द्रिय ) सर्वभूत ( वनस्पाति ) सर्व जीव ( प-चेन्द्रिय ) और सर्व सत्व ( पृथ्वी-पाणी-अग्नि-हवा ) इनको मारेनहीं, परिताप उपजावे नहीं, वन्यन में डाले नहीं, उपद्रव्य करे नहीं, किसीभी तरहसे कदापि किंचित माव दुःख देवे नहीं, सोही दयामय धर्म शाश्वता सनातन है; ऐसा खेदज्ञ(पर दुःख के जान) श्री जिनेश्वरो भगवन्तों का फरमान है.

ऐसे दयामूल शुद्ध पवित्र धर्म को अधर्म श्रद्धे सो द्रव्य से धर्म अधर्म श्रद्धान हुवा, और निश्चय में आत्म स्वभाव ज्ञानादि गुणों सं रमणात् से जो धर्मोत्पत्ति होती है, उसे भूल पुद्गलानन्द जड पदार्थों से धर्मोत्पात्ति समझे सो धर्म अधर्मसज्ञा मिथ्यात्व.

२ “अधम्म धम्मसत्ता” अधर्म को धर्म श्रद्धे, अर्थात् यह जीव अनादि से अधर्म मार्ग में रमण कर रहा है, इसलिये अधर्म मार्ग में सहज रुची होती है, उस स्वभाव का प्रेरण हुवा हिंसा आदि पांचो आश्रव के सेवन में—अश्वमेधादि यज्ञों में, हिंसक पूजा, तीर्थस्नानादि. या वकरीईद जैसे कृतव्यो में धर्म माने सो अधर्म धर्मसज्ञा मिथ्यात्व.

३ “साहू असाहू सत्ता” कितनेक भोले जीवों साधुके गुणो से विलकुलही अवाकिफ होकर सब मनुष्यों जैसेही साधुओं को जानते हैं—साधु संसारी के भेद भाव में नहीं समझें, तथा जगत् में सत्पुरुष तो थोड़े हैं, और पाखण्डियों मुडचीरे बहुत हैं, उनको देख उनके जैसेही—शान्त दान्त ज्ञानी ध्यानी तपी जपी आदि गुण सागर मुनि वरों को समझते हैं, तथा कितनेक कुमत पक्ष में तने हुवे अपने पक्षके (सम्प्रदायके)

साधुओं को छोड़ कर और अन्य सब साधुओं को असाधु समझते हैं, ऊपरोक्त गुण संपन्न मुनिवरों को निंदक लुप्यक भगवन्त के चोर आदि कहे सो साधु असाधु सज्ञा मिथ्यात्व

४ “असाहू साहू सज्ञा”—अर्थात्-असाधुको साधु श्रद्धे जैसे कितनेक कुल परापरा से चले आते मत में फसे हुवे साधु के गुण अवगुण जानने की विलकुल ही दरकार नहीं रखते हुवे सारंभी. सपरिग्रही, विषयी, कषायी. ग्रहस्थ जैसेही कृत-व्योंके करने वाले मन्वादि से भरमाकर. सरापादि से डराकर जो पेट भराइ कर ते हैं. मिथ्या अडम्बर बड़ाते हैं. ऐसे ढांगी धूतारों को जो साधु माने सो असाधु साधु सज्ञा मिथ्यात्व.

५ “जीव अजीव सज्ञा”—अर्थात्-जीव को आजीव श्रद्धे, जैसे कितनेक चार वाक-नास्तिक मतीयो-पंच भूत वादीयों, पृथ्व्यादि के संयोग से ही जीवोत्पत्ति और भूतोंके वियोग से जीव की नास्ति कहते हैं. कितनेक अद्वैतवादी अनेक जीवोंसे भरे हुवे इस विश्व में फक्त एकही आत्मा व्यापक ब्रह्माकर सब जीवों की नास्ति कर ते हैं. कितनेक असंख्य जीवोंका पिण्ड जो मट्टी पाणी अग्नि हवा है और अनन्त जीवोंका पिण्ड जो वनस्पति है, इनको निर्जीव मानते हैं. कहते हैंकि यह तो भोगोप-भोग के लिये स्वभाविक ही उत्पन्न हुवे हैं. ऐसे ही कितनेक कीड़ी मकोड़ी आदि प्रत्यक्ष में हलन चलन करते हुवे कोही निर्जीव बताते हैं. ऐसे ही कितनेक जैनीयों भी सूका अनाज बिगरे में निर्जीव-अचिच्च सज्ञा धारन कर ते हैं, सो सर्व जीव अ-जीव सज्ञा मिथ्यात्व जानना.

६ “अजीव जीव सज्ञा”—अर्थात् अजीवको जीव माने. जैसे कितनेक धातु पापण वस्त्र काष्ठ आदि की बनाइ हुइ मूर्ती को साक्षात् मनुष्य या पशु तुल्य समज ते हैं. देवता के वैदिक्ये किये पुष्पादि को मजीव कहते हैं. इत्यादि जो श्रद्धे सो अ-जीव जीव सज्ञा मिथ्यात्व.

७ “मग्न उन्मग्न सज्ञा”—अर्थात्-मार्ग को उन्मार्ग श्रद्धे, जैसे ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप. दान. शील, क्षमा. दया. शरलता. निर्लोभतादि जो सीधा मत्स्य मोक्ष का मार्ग सर्वज्ञ ने प्रकाश किया है. उमे मंनार परि भ्रमण करने का कारण बनावे वगैरा श्रद्धेसो मार्ग उन्मार्ग सज्ञा मिथ्यात्व.

८ “उन्मग्न मग्न सज्ञा”—अर्थात् उन्मार्ग को मन्मार्ग श्रद्धे, जैसे-क्रिडा कितु-हुल लीला नाचना गाना बजाना यज्ञ होमादि करना. इत्यादि धूम धाम को मोक्ष

मार्ग समझे सो उन्मार्ग को सन्मार्ग सज्ञा मिथ्यात्व.

९ “रूपी अरूपी सन्ना”—अर्थात् रूपी वस्तु को अरूपी माने, जैसे प्रमाण पु-  
ट्टल, कर्म वर्गणा, वायु काय आदि रूपी पदार्थ होकर भी दृष्टि गोचर नहोनेसे अरु-  
पी माने सो मिथ्यात्व.

१० “अरूपी रूपी सन्ना”—अर्थात् अरूपी पदार्थों को रूपी माने, जैसे धर्मास्ति  
काय आदि पंचास्ति काय जो अरूपी है उने. रूपी कहे, मिद्ध भगवन्त जो अवर्ण  
अगंधादि गुण संपन्न हैं. उनको रक्त वर्णादि को स्थापना करे, जो जीवों मोक्ष प्राप्त  
हो अरूपी अवस्था धारण करी है उन्हे पुनः अवतार धारण कर रूपी हुवे बतावे.  
आकाश जो अरूपी है उसे शब्दादि गुणमय कहे. परमात्मा जो अरूपी है, उन मे  
श्रेष्टि रूपी की उत्पत्ति कहे, वगैरा अरूपी को रूपी सज्ञा मिथ्यात्व.

और भी ७ प्रकारके मिथ्यात्व जैन ग्रन्थोंमें कहे हैं सो:—

१ “अविनय मिथ्यात्व”—अर्थात्—श्री जिनेश्वर के, सद्गुरुओं के, शास्त्रों के,  
वचनों को उत्थापे; भगवन्तको भी भूले-चूके बतावे; चतुर्विध संयका ज्ञानी ध्यानी  
तपी जपी त्यागी वैरागी इत्यादि गुणवन्तों की निन्दा करे—अवर्ण वाद बोले, इत्या-  
दि अविनय करे सो मिथ्यात्व.

२ “अज्ञातना मिथ्यात्व”—अर्थात्—३३ अज्ञातना करे, गुणोवृद्ध, वयोवृद्ध  
मान्यवन्त सत्पुरुषोंका सत्कार सन्मान नहीं करे. संताप उपजावे, या ताडना तर्जना-  
दि आज्ञातना करे सो मिथ्यात्व.

३ “अक्रिया मिथ्यात्व”—अर्थात्—कितनेक तो आत्मा को अक्रिया ही मा-  
न ते हैं, अर्थात्—आत्मा न तो शुभाशुभ कर्म की कर्ता है और न भुक्ता है, और कि  
तनेक आत्मा साधन का उपाय जो यम नियमादि क्रिया की जाती है. उसे व्यर्थ-निर्ध  
क बताते हैं. कितने फक्त एक ज्ञान सेही सिद्धी मानते हैं. क्रिया का साफ निषेध  
करते हैं. वगैरा यह सब अक्रिया वादी मिथ्यात्वी में गिने जाते हैं.

४ “अज्ञान मिथ्यात्व”—अर्थात्—जहां अज्ञान है वहां नियमासे मिथ्यात्व होताही है  
क्योंकि अज्ञानी धर्मा धर्म-शुभाशुभ कृतव्योंको और उनके फलसे आविज्ञ रहकर, फक्त  
अन्यके देखा देखी क्रिया करते हैं, और फक्त उस क्रिया से ही मोक्ष मानते हैं. यह  
ज्ञान का निषेध करते हैं, इसलिये अज्ञानी मिथ्यात्वी हैं.

५ “परिवर्तन मिथ्यात्व”—अर्थात्—सम्यक्त्व ही तो हैं, परन्तु खुशामदी से ला-

लच वश हो मिथ्यात्वी के मिथ्याकृतव्यों में सहाय करना मिथ्यात्वीयों से मिलकर रहना. मिथ्यात्वीयों के जैसे कृतव्यों करना. सो परि वर्तन मिथ्यात्व.

६ "परिणाम मिथ्यात्व"—अर्थात्-व्यवहार में तो सम्यक्त्व का पालन कर ते हैं, परन्तु अभ्यन्तर में मिथ्यात्व मोहका उपशम न होने से परिणामों से मिथ्यात्व का सेवन होता है सो परिणाम मिथ्यात्व.

७ "प्रदेश मिथ्यात्व"—अर्थात्-जो अनादि काल से मिथ्यात्व के दलिये खीर नीर की तरह आत्म प्रदेशों के साथ मिल रहे हैं. जो धायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति होनेसे ही दूर होते हैं. जहां तक धायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति न होवे वहां तक प्रदेश मिथ्यात्व गिना जाता है. (इसकी सत्ता इग्यारवे गुणस्थान तक पाती है. क्योंकि वो पडवाइ हो मिथ्यात्व तक आजाते हैं)

यों शास्त्रों और ग्रन्थों के आधार से मिथ्यात्व के ३४ भेद लिखेगये हैं. यह लक्षणों जिनों में पाते होवें. उन्हे मिथ्यात्वी जानना.

दुसरे और तीसरे गुणस्थान का अर्थ मूल मुझवही समझना कुछ विशेष न हो नेसे न लिखा.

### चौथा अविरति सम्यक दृष्टि गुणस्थान के लक्षणः—

जीवादि नव तत्वों के द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय कर बताया निश्चय और व्यवहार कर द्रव्य से भेदमे कालसे और भाव से जाने सो कहते हैंः—

१ "जीव तत्व"—सदा जीवता रहे. चेतना लक्षण युक्त; दश द्रव्य प्राण और चार भाव प्राण का धारक. प्रदेश आत्मक. ज्ञान दर्शन स्वभाव. द्रव्यार्थिक नय से निश्च. पर्यायार्थिक नय मे अनिश्च. परिणामी द्रव्य. व्यवहार नय मे कर्म का कर्ता और भोक्ता. निश्चय नय से शुद्ध चित्त पर्याय का कर्ता. निज स्वरूप का भोक्ता. उद्योगिक भाव के मिलापक रूप. छद्मस्वके चेष्टादि लिंग गम्य. केवली के प्रत्यक्ष शरीर प्रमाण. अरूपी सो जीव द्रव्य. और ( १ ) द्रव्य मे निश्चय नय के मत मे सर्व एक रूप हैं. व्यवहार नय के मत मे-नरक निर्यच मनुष्य देवादि में अनेक रूप धारण करते हैं. (२) भेद मे सर्व जीवो अमर्याद प्रदेशा लोक व्यापी हैं. (३) कालसे निश्चय नय के मत से ध्रौव्य आनादि अनन्त. व्यवहार नय के मतमे चारों गति में शरीर धारण की अपेक्षा उत्पान व्यय होनाही रहना है निज मे. सादी मान्ते हैं. (४) भाव मे-निश्चय नय के मत मे सब जीवों परिणामिक भाव में-अपने २. स्वभाव



में प्रवृत्तते हैं. और व्यवहार नय के मत से भंमारी जीवों शुभाशुभ भाव में परीण मते हैं.

२ “अजीव तत्त्व”—सदा निर्जीव रहे, जड लक्षण, प्रमाण्ड आत्मक पुद्गल प्रदेश आत्मक, धर्मास्ति आदि तीनों द्रव्य-द्रव्यार्थिक नय में नित्य, पर्यायार्थिक नय से अनित्य, घट पटादि रूप पलटता रहे, परिणामिक द्रव्य, और (१) द्रव्य से-धर्मास्तिके द्रव्य का चलण सहाय गुण, अधर्मास्तिके द्रव्य का स्थिर महाय गुण, आकास्तिके द्रव्यका विकाशदान गुण, काल द्रव्य का-पर्याय प्रवावर्तन गुण, पुद्गल द्रव्यका पूर्ण गलन. (२) क्षेत्रसे-धर्मास्ति अधर्मास्ति और पुद्गलास्ति लोक व्यापक, असंख्या प्रदेशी, आकाश लोकालोक व्यापक, अनन्त प्रदेशी. काल व्यवहारसे अढाइ द्वीप-समय क्षेत्र व्यापक वर्तनसे सर्व लोक व्यापक अप्रदेशी, (३) कालसे द्रव्य नय की अपेक्षासे तो पांचों ही द्रव्य अनादि अनन्त हैं. और पर्याय से-देश प्रदेश आश्रय या अगुरु लघु आश्रय धर्मास्ति अधर्मास्ति उत्पाद व्यय आश्रय काल, पूर्ण गलन आश्रय या स्कन्ध परमाणु आश्रय पुद्गल सादि सान्त हैं. (४) भाव से—चारों द्रव्य तो वर्ण गंध रस स्पर्श रहित हैं, और पुद्गल वर्णादि सहित है.

३ “पुण्य तत्त्व”—किये कृतव्यों का पुनः शुभ फल दाता सो पुण्य, सुखदाता लक्षण, पुद्गलिक पदार्थ, आत्मोन्नति कर्ता. साता वेदनीय आदि शुभ प्रकृति का भोगवना सो द्रव्य पुण्य, दान दयालुता, सराग संयम, शुभ परिणामों की प्रवर्ती सो भाव पुण्य. और (१) द्रव्य से-पुण्य के ४२ भेद. (२) क्षेत्र से-पुण्य पुद्गल लोक व्यापी, (३) कालसे-अभव्य आश्रय संतति अनादि अनन्त, भव्याश्रय अनादि सान्त, (४) भाव से ९ प्रकार से पुण्य उपार्जन होवे.

४ “पाप तत्त्व”—जो अवन्नति दिशामें आत्मा को प्राप-पटके सो पाप, दुःख दाता लक्षण, पुद्गलिक पदार्थ, मिथ्यात्वादि कर्म प्रकृति सो द्रव्य पाप, मिथ्यत्वादि के उदय से उपहत मलीन परिणाम सो भाव पाप. और (१) द्रव्य से भोगवने के ८२ भेद, (२) क्षेत्र से-पाप पुद्गल लोका व्यापी, (३) काल से-अभव्याश्रय अनादि अनन्त, भव्याश्रय अनादि सान्त, (४) भाव से-१८ प्रकारे पापों पाजें.

५ “आश्रव तत्त्व”—कर्म पुद्गल आनेका मार्ग सो आश्रव पुद्गलिक प्रणति रूप, उदायिक भाव की प्रणति रूप सो भाव आश्रव, तसनिमित्त रूप कर्म दलका आगम सो द्रव्य आश्रव. और (१) द्रव्य से पुण्य पापादि रूप दालिक का संचय करना

सो, (२) क्षेत्र से-लोक व्यापि. (३) काल से-अभव्याश्रिय अनादी अनन्त, भव्या-श्रिय अनादि सान्त. (४) भावाश्रिय-पुन्य पापका उपार्जन करना सो आश्रय.

६ "संवर तत्त्व"—आते हुवे कर्म पुद्गलों को रोक देवे—आत्मा को लगने न देवे सो संवर, आत्म परिणती रूप. निरुपाधि लक्षण, ध्यायिक क्षयोपशमादि भाव रूप, भाव संवर, उस निमित्त प्रवर्तिसो द्रव्य संवर, और (१) द्रव्य से संवरके ५७ भेद, (२) क्षेत्र से चउदह राजू लोक (वस नाल) प्रमाणे. (३) काल से-ध्यायिक भाव आश्रिय सादि अनन्त, और क्षयोपशमिक भाव आश्रिय सादि सान्त. (४) भाव से अपने स्वरूप-ज्ञानादि गुणों में रमण करना सो सम्बर.

७ "निर्जरा तत्त्व"—आत्मा से सम्बन्ध पाये हुवे कर्म पुद्गलों का झडना सो निर्जरा. संयम तपादि जनक भाव सो भाव निर्जरा. और उससे जोजो कर्म पुद्गल आत्मा मे दूर हुवे सो द्रव्य निर्जरा. और (१) द्रव्य से-निर्जरा के १२ भेद, (२) क्षेत्र से-चउदह राजू लोक (वस नाल) प्रमाणे. (३) काल से-मादी सान्त. (४) भाव से सर्व इच्छाका निवृत्ति कर सम भाव मे प्रवर्तन होवे सो निर्जरा.

८ "बन्ध तत्त्व"—शुद्धात्म गुणों के प्रतिकूल जो कषाय विषयादि गुणों है उनमे आकर्ष कर जो कर्म पुद्गलों का आत्मा प्रदेशोंके साथ सम्बन्ध होवे सो बन्ध. कर्म को ग्रहण करने रूप जो चिकणास लिये सत्ता है सो भाव बन्ध. उसके जोग से जो कर्मों के दलीकोका जमाव होकर ठेहरे सो द्रव्य बन्ध. और (१) द्रव्य मे बन्ध के चार प्रकार, (२) क्षेत्र से-लोक प्रमाण. (३) काल से-सादी मान्त. (४) भाव से राग द्वेष अज्ञानता रूप चीक्यान सो बन्ध.

(१) "मोक्ष तत्त्व"—समूल कर्मों का नाश कर आत्माका छूटकारा होना सो मोक्ष. कर्म पुद्गलों के दूर होने मे स्वातुभव होना सो भाव मोक्ष. जिनानुभव मे कर्मोंके बन्धन से छूटना सो द्रव्य मोक्ष. और (१) द्रव्य मे मोक्ष नाशन के ४ कारणों, तथा केवल ज्ञानी सो द्रव्य मोक्ष. (२) क्षेत्र से-अदाइद्वीप प्रमाण. (३) काल से-सर्व भिद्यों आश्रिय अनादि अनन्त. एक भिद आश्रिय सादि अनन्त. (४) भाव मे सर्व कर्मों मे निर्मुक्तो भिद क्षेत्र में जो भिद भगवन्त अनन्त ज्ञानादि गुणयुक्त विगमने हैं सो भाव मोक्ष.

यों यह नवों पदार्थों—द्रव्यार्थिक नय मे नित्य हैं. पर्यायार्थिक नय मे अनित्य हैं. निश्चय नय मे अभिन्न हैं. व्यवहार नय मे भिन्न हैं. नामान्य नय मे एक. विशेष नय

से-अनेक, ज्ञान नयमे ज्ञेय, क्रिया नयमे-हेयोपादेय, परस्पर मा पेशा, अनन्त धर्मात्म कथंचित्-उत्पन्न, कथंचित् नष्ट, कथंचित् ध्राव्यः यों विरूप एकही समयमें श्रद्धे और भी इने नय निक्षेपे प्रमाण आदि द्वारा जिनेन्द्र प्राणिन मूखानुसार श्रद्धे की रुची रखे सो चतुर्थ गुणस्थान वर्ती धर्मात्मा जानना .

सम्यक्त्वी के ६७ लक्षणों का अर्थ मूल प्रमाणेंही जानना.

### पांचवे गुस्थान के लक्षण.

“श्रावककी ११. प्रतिमा.”

आर्य-श्रावक पदानि देव । रेकादश देशितानिय पुखतु ॥

स्वगुणाः गुणैः सह । संत्तिष्टन्ते क्रम विवृद्धा ॥ १ ॥

अर्थ-श्रीजिनेश्वर भगवन्त ने श्रावकों को गुणवृद्धि करने के इग्यारे स्थानक फरमाये हैं, उनमें श्रावको प्रवर्त तेहुवे जों जों योग्यता को प्राप्त होतेहैं, त्यों त्यों पीछे के गुणों में कायम रहते हुवे आगे को गुणों की वृद्धि करते जाते हैं.

आर्या-दंसण वय साझाइय । पोसह सचित्त राइ भत्तेय ॥

वंभारंभ परिग्गह । अणुमण उदिट्ठ देश विरदोय ॥२॥

अर्थ-उन ११ स्थानक के नाम-१.सम्यक्त्व, २ व्रत, ३ सामायिक, ४ पौषध, ५ रात्रिभोजन त्याग, ६ साचित्त त्याग, ७ ब्रम्हचर्य ८ आरंभ त्याग, ९ परिग्रह त्याग, १० अनुमति विरत, और ११ उदिष्ट विरति-देशविरति. इस प्रकार से अनुक्रम में गुणों वृद्धि करते हैं.

आगे इन ११ ही स्थानक कोंका अलग २ विस्तारसे स्वरूप कहत हैं:-

आर्या-सम्यग् दज्ञेन शुद्ध । संसार शरीर भोग निर्विण्ण ॥

पंचगुरू चरण शरणं । दर्शनिक स्तत्त्व पथ गृह्य ॥ ३ ॥

अर्थ-देश विरति-श्रावक का पद प्राप्त करने का अव्वलही पंक्तिया सम्यक्त्व है, जिसका विस्तार से वर्णन चौथे गुणस्थानमें कियागया है. उनगुणों संयुक्तही जीव इन पञ्चम गुणस्थान में प्रवेश कर यहां सम्यक्त्व की विशेषशुद्धि करते हैं. अर्थात्-संसार से शरीर से और भोगों से विरक्त भावी होते हैं. संसारिक कुटम्बको

तो मतलबी जान धायमाता (दूध पिलाने को रखी हुई धाय) बच्चेको लाडलडाती हुई भी विरक्त रहे त्यों ममत्व बन्धसे विरक्त रहै. व्यापारी ज्यों लाभोपार्जन की इच्छा से द्रव्य व्यय करते हैं. त्यों शरीर को धर्म करणी करने पोषते हुवे विभूपादिसे विरक्त रहै, और ज्यों व्यर्थी अफीम को जहर जानते प्रमाण युक्त भोगवते है, त्यों भोगोपभोगका प्रमाण कर विरक्त रहते हैं. अर्हन्तादि पंच परमैष्टि केही शरण भूत जानते हुवे अन्य का शरण स्वप्न मात्रमे भी नहीं वांछते है, और सर्वज्ञ प्रणित तत्वों के ज्ञान को पथ्य (रुची कारक) आहार की मफिकं गृहणकर परिणामाते-पचातेहै. सो दर्शनिक-सम्यक्त्व रूप प्रथम स्थानक मे प्रवर्तक देशाविरती श्रावक कहे जाते हैं.

“शङ्का काङ्क्षा विचिकित्सा ऽ न्यदृष्टि प्रशंसा संस्तवाः सम्यग्दृष्टे रतीचाराः”  
अर्थात्-१. श्रीजिनेश्वर भगवन्त के अतिगहन समुद्र जैसे वचन अपनी अल्प लोटे जैसी बुद्धि में न समानेसे-ग्राह्यमें न आने से शङ्का-वैम लावे. २ धर्म करणी-फलकीया अन्यमतकी वांछा करै. ३ साधुओंके या रोगी ग्लानाके मलीन गाव देख दुर्गच्छा करे. याकरणी का फल होगा कि नहीं ऐसा सन्देह करे. ४ पर (दूसरे) पाखाण्डियों की प्रशंसा (महिमा) करे. और ५ पाखाण्डियों का संस्तव (सदा) परिचय-सङ्गति करे. तो सम्यक्त्व में अतिचार (दोष) लगता है. ऐसा जान सम्यक्त्वी श्रावक इन पांचोंही कामोंसे दीर्घ उपयोग युक्त सदा वचाव करने ही रहते हैं. सम्यक्त्व में दोष लगने नहीं देते हैं.

ऐसीतरह मे जब दर्शन-सम्यक्त्व में निश्चलात्मक बन जाते हैं. तब अधिक वैराग्यकी वृद्धि कर ने दुमरे व्रत नामक स्थान मे प्रवेश करते हैं. जिसका स्वरूप कहते हैं.

आर्या-निरति क्रमण मणुव्रत । पंचक मपि शील सप्तकं चापि ।

धारयते निःशल्यो । यो सौ व्रति नामतो व्रतिकः ॥ ४ ॥

अर्थ-“निःशल्योव्रति”-इस सूत्रानुसार प्रथम-हृदय रूप क्षेत्र(खेतको)तीनों शल्यों से निष्कन्द-विशुद्ध करतेहैं अर्थात्-प्रथम माया गल्य का निकन्दकर - अभ्यान्तर-अतःरीक चित्तवृत्तिको गरल (दोंगकी अभिलाषा रहित) बनाते हैं. दुमरे नि-याणा-निदान शल्यका निकन्द कर व्रत-धर्म करणी के इहलोक परलोक मन्वान्धि फलकी वांछा नहीं करते. विरवाञ्छक (अनररी) करणी कर उसका महान लाभ प्रा-

स करते हैं. और तीसरा मिथ्यादर्शन-कुमत श्रद्धान का शल्य का निकन्द कर जिन वचनों के युक्त आस्तिक्य वन, की हुई व्रतादि करणी को निर्मल-निर्दोष रखते हैं. इन तीनों शल्य रहित हृदय क्षेत्र को बना फिर सम्यक्त्व युक्त व्रत बीजारोपण करते हैं सो कहते हैं:-

**सूत्र-हिंसा नृत्स्तेया ब्रह्मपरि ग्रह भ्यो विरतिं व्रतम् ॥**

**दिग्दे शानर्थ दण्ड विरति । सामायिक पौषधोपवासो**

**भोग परिभोगाऽतिथि संविभाग व्रत सम्पन्नश्च ॥**

अर्थ-हिंसासे, झूठसे चोरीसे, मैथुन से, और परिग्रह से, पांचों से जो निवृत्तते हैं-इ ने छोड़ते हैं सो पंच व्रत कहे जाते हैं. इन से निवृत्ति दो तरह से होती है:-“देश स र्व तो अणु महती” अर्थात्-जो सर्वथा प्रकारे इन पांचोही कामों का त्याग करते हैं. सो महाव्रती ( साधु ) कहे जाते हैं. और इन्हीं की अपेक्षा से जो देश-थोड़ा सा त्याग करते हैं सो देशव्रती ( श्रावक ) कहे जाते हैं. +

और दिशाव्रत, पेशव्रत, अनर्था दण्डव्रत उपभोग परिभोग परिमाण सामायिक पौषध उपवास, और अतिथी संविभाग, इन ७ को शीलव्रत कहते हैं, यों १२ व्रतों के धारक श्रावक कहे जाते हैं.

और “व्रत शीलेषु पञ्च पञ्च यथा क्रमम्” अर्थात् उपरोक्त पांचों व्रतों और

\* माघू तो (२०) बीम विश्वा दया पावते हैं, और श्रावक (११) सवा विश्वा दया पाव गते हैं. निमका हिंसाव्रत इस तरह से है:-साधुतो त्रस और स्थावर दोनों प्रकारके जीवों की हिंसा से निवृत्ते हैं. और श्रावक फक्त त्रस की हिंसा से निवृत्ते, इसलिये १० विश्वे क-मी हूवे. साधुतो आरंभिक और सकाक्षिक दोनों तरह से त्रस की हिंसा से निवृत्ते हैं, और श्रावक के आरंभ में त्रस की हिंसा निपज जानी ही है, परन्तु सकाक्ष्य कर (जानकर) मा र्ग नही हैं. इसलिये ७ विश्वाही दया रहीं. साधु तो स अपगन्धी और निरपराधी दो-नोंकी हिंसा से निवृत्ते हैं. और श्रावक तो फक्त निरपराधी की हिंसा से निवृत्ते हैं. इसलिये २॥ अटाट विश्वाही दया रहीं. और साधुतो आकांटी अणाकांटी दोनों प्रकार त्रस की हिंसा , निवृत्ते हैं. और श्रावक तो फक्त आकांटी (देम कर) जीव मारने से निवृत्ते हैं इसलिये १॥ सवा विश्वाही दया जो उत्कृष्ट श्रावक होने हैंमें पाव सकते हैं.

सातों शीलों के पांच २ x अतिचार हैं सो अनुक्रम मे आगे कहते हैं:-

### “तत्र और अतिचार”

१. “धूलाओ पाणाइ वायाओ वेरमणं” अर्थात्-बड़ेजीवों जो हलते चलते प्रस-  
क्ष में दृष्टि गोचर आतेहैं ऐसे निरपराधीको जान कर देखकर दोषकरण और तीन जो  
ग कर घात करे नहीं. इस व्रतके ५ अतिचारों:-“बन्ध बध च्छेदा-निभार रोपणा-क्षपा  
ना निरोधा” अर्थात्-मनुष्य पशु पक्षी आदि किसी भी जन जीवों को-१ मजबूत ब-  
न्धन मे बान्धे. २ चाबूकादि से मारे. ३ अवयव-या चर्मका छेदन करे. ४ शाक्ती मे  
ज्यादा काम लेवे. और ५ खान पान का निरोध करे- तो इस व्रत में दोष लगता है.  
ऐसा जान इन ५ कामोंको नहीं करे.

२ “धूलाओ मूमा-वाया ओ वेरमणं” अर्थात्-सूख बड़ा झूठ-जिन मे राजा  
का दण्डका और लोकों का निन्दाका पाव बनें ऐसा झूठ दो कण और तीन  
जोग मे नहीं बोले. इस व्रत के ५ अतिचारों:-“मिज्जोप देस गोभ्याग्यान कूट  
लेख क्रिया-न्यामापहार-भाकार मन्त्र भेदाः”-अर्थात्-१ खोटा-झूठा उपदेस देवे.  
२ गुप्त कर्म प्रगट करे. ३ खोटा खत लिखे. ४ अन्यका इज्यादि लिखावे-डबावे. और  
५ चुगली करे. तो इस व्रत मे दोष लगे. ऐसा जान यह ५ काम त्यागे

३ “धूलाओ आदिन्ना-डाणाओ वेरमणं” अर्थात्-बड़ी चोरी जिनमे राजा के दण्ड  
का और लोकों के निन्दा-अविश्वास का पाव बने ऐसी चोरीका दो कण और तीन  
जोग मे त्याग करे. इस व्रत के ५ अतिचार:-“स्तेनं प्रयोग तडाहन्तान विन्द  
राज्यानि व्रम. तिनाधिकमानेन्मान. प्रतिरूपकल्पवहागः” अर्थात्-१ चोर को म-  
राप देवे. २ चोरका माल लेवे. ३ राजा की आज्ञा उल्लंघने ४ लोले माने कम  
ज्यादा रखवे. और ५ तन्मति रूप बन्तु (हलकी) मिलाकर देवे. तो इस व्रत में  
दोष लगे. ऐसा जान इन ५ कामोंका त्याग करे.

४. राज की वस्तु को—१ भोजन की वस्तु को मे अधिकार. २ भोजन के लिये  
मन्त्र को मे लिये करे. ३ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ४ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ५ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ६ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ७ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ८ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ९ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. १० भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ११ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. १२ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. १३ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. १४ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. १५ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. १६ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. १७ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. १८ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. १९ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. २० भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. २१ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. २२ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. २३ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. २४ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. २५ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. २६ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. २७ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. २८ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. २९ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ३० भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ३१ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ३२ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ३३ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ३४ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ३५ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ३६ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ३७ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ३८ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ३९ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ४० भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ४१ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ४२ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ४३ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ४४ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ४५ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ४६ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ४७ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ४८ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ४९ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ५० भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ५१ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ५२ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ५३ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ५४ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ५५ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ५६ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ५७ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ५८ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ५९ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ६० भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ६१ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ६२ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ६३ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ६४ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ६५ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ६६ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ६७ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ६८ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ६९ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ७० भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ७१ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ७२ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ७३ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ७४ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ७५ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ७६ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ७७ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ७८ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ७९ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ८० भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ८१ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ८२ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ८३ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ८४ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ८५ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ८६ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ८७ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ८८ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ८९ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ९० भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ९१ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ९२ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ९३ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ९४ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ९५ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ९६ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ९७ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. ९८ भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार. ९९ भोजन के लिये वस्तु को मे अधिकार. १०० भोजन के लिये  
वस्तु को मे अधिकार.

४ “सदारा संतोस अवसेसं मेहूणाओ वेरमणं” अर्थात्—जिस स्त्रीका पाणी (हाथ) ग्रहण किया है, उसे सतोप उपजे उस उपरान्त सर्वथा मैथुन सेवन करने का एक करण तीन जोग से त्याग करे. इस व्रत के ५ अतिचारः—पर विवाह करणे त्वरिकापरि गृहीता—स्परिगृहीता गमना-नङ्ग क्रीडा काम तत्रिाभि निवेशा” अर्थात्—१. दुसरे का विवाह करावे, २ पाणी गृहण की हुई छोटी उम्र की स्त्री का सेवन करे, ३ स्वस्त्री बिना पाणी गृहण (लग्न) की हुई का सेवन करे, ४ योनी सिवाय दुसरे अंगो से क्रीडा करे, और ५ भोग में लुब्धता रखे तो इस व्रत में दोष लगे. ऐसा जान इन ५ कर्मों का त्याग करे.

५ “थूलाओ परिग्गहाओ वेरमणं”—अर्थात्—स्थूल बड़ी इच्छा से निवृत्ते धन धान्य आदि की मर्यादा करे कि इतने उपरान्त द्रव्य एक करण तीन जोग से नहीं रखेगा. इस व्रत के ५ अतिचारः—“क्षेत्र वस्तु हिरण्य सुवर्ण धन धान्य दासी दान कुप्य प्रमाणाऽतिक्रमा” अर्थात्—१. खेत घर आदि भूमिका, २ चान्दी सोना दि धातु का, ३ धन (नाणा) धान्य (अनाज) आदि द्रव्यका, ४ दासी दास आदि मनुष्योंका, और ५ जो घरादि के अनेक कार्यों में वस्तु वापरने में आवे उसका प्रमाण एक करण तीन जोग कर (मर्याद) किया है, उससे अधिक वस्तु रखने से इन व्रत में दोष लगता है, ऐसा जान अधिक रखे नहीं.

६ “दिशी प्रमाणव्रत”—अर्थात्—पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, और नीची ऊँची इन छेओ दिशा में गमन कर ने का (जानेका) प्रमाण एक करण तीन जोग करे इस व्रतके ५ अति चारः—“ऊर्ध्वाश्वास्तिर्ग व्यतिक्रम क्षेत्रवृद्धि स्पृत्यान्तरा धानानि” अर्थात्—१-२-३-ऊँची नीची तिरछी (चारों) दिशी का जो प्रमाण किया है उसके आगे जावे. ४ एक दिशीके क्षेत्रका प्रमाण दुसरी दिशीमें मिलावे. और ५ याद दास्ति भूलने से याद न आवे वहाँ तक आगे जावे तो इस व्रत में दोष लगता है, ऐसा जान ५ कामों का त्याग करे.

७ “उपभोग परिभोग परिमाण व्रत”—अर्थात्—आहार आदि जो वस्तु एकही वक्त भोगवणे में आवे सो उपभोग, और वस्त्रादि बारम्बार भोगवणें में आवे सो परिभोग इन दोनों प्रकार की वस्तु की जावत जीव पर्यन्त भोगवणें का प्रमाण (मर्यादा) एक करण तीन जोग कर करे. इस व्रत के ५ अतिचारः—“मच्चित्त मम्यन्ध मम्मि-आ भिपव दुःपकाहाग” अर्थात्—१ जिसका नाग किया ऐसी मचित्र (मजीव) वस्तु

का, २ सचित्त मिली हुई अचित्त वस्तु का, ३ मिश्र वस्तु का, ४ नशेकी (केफी) वस्तु का, और ५ पूरी पकी न होवे एसी वस्तु का या पक कर बिगड़ गई हो एसी वस्तु को भागवने से इस व्रत में दोष लगता है। ऐसा जान इन पांचों प्रकार की वस्तु का त्याग करे।

और भी इस व्रत के धारक १५ कर्मदान सागते हैं।

अङ्गार वन शकट भाटक स्फोट जीविका ।

दन्त लाक्ष रस केश विष त्राणिज्य का निव ।।

यन्त्र पीडा निलाञ्छन मसंयाति दोषणं तथा ।

दव दान सरः शोष इति पञ्च दशत्यजेत् ॥

अर्थात्—आग्नि के आरंभ का, २ वन कटने का, ३ गाड़े आदि वाहन बेचने का, ४ वाहन भाड़े देने का, ५ दांतोका, ६ लावका, ७ पृथव्यादि फोड़नेका, ८ रसक, ९ केश (पशु) का, १० जेहर का, ११ यन्त्र (मीलों) का, १२ अंग भंग करने का, १३ दास्तादि का, १४ वस्तु जलाने का, और १५ निवाणों से पाणी निकालने का, यह १५ प्रकार के व्यापारका भी त्याग करने हैं।

८ “अन्नत्थ दण्ड विरमाण व्रत” —अर्थात्—जित से अपना या दूसरे का कुछ भी मतलब निकलता न हो ऐसे अनर्थ दण्ड (पाप) कामों का एक करन एक जोग से त्याग करे, इस व्रत के ५ अति चारः—“कन्दर्प कौत्सुच्य मौखव्या समीक्ष्याधि करणो - भोग परिभोगानर्थ क्यानि”—अर्थात् १ काम जाग्रत होवे ऐसी कथा करे, २ अंगकी कुचेष्टा करे, ३ व्यर्थ प्रलाप करे, (बिना काम बोले) ४ पाप कारी वस्तु का संयोग मिलावे, और ५ भोगोप भोग में वृद्धि करे, तो इस व्रत में दोष लगता है, ऐसा जान पांचों कामों का त्याग करे।

ऐसी तरह से दूसरी व्रत प्रतिमा में ऊपरोक्त आठों व्रतों को धारण कर, उन के जो जो अतिचारों कह हैं उनको सर्वथा प्रकारे टाल ते-त्यागते हुवे शुद्ध पालने हैं; सो व्रत धारी दुमरे पक्तिये पर प्रवर्तने वाले देशज्ञाने (श्रावक) कहे जाने हैं. \*

\* देखीये उपशक दशांग शास्त्र आनन्दजी आदि १० ही श्रवकों ने भगवन् की मन्त्र आठेही व्रत धारण कियेहैं मो.



ऐसी तरह से व्रत प्रतिमा में प्रवर्तते जव व्रतों में निश्चलात्मक बन जाते हैं, और अधिक वैराग्य की वृद्धि होती है, तब सर्व व्रति (साधुपना) लेने को असमर्थ होंगे। साधु पनेकी वानगी चखने के वास्ते, तीसरी सामायिक प्रतिमा धारण करते हैं।

**चतुरावर्त वितय । श्रुतुः प्रणाम स्थितो यथा जातः ।**

**सामायिकोद्धिनिपद्य । स्त्रियोग शुद्ध स्त्रिसन्ध्याममिव॥५॥**

अर्थात्-सम=समभाव, आय=आवे, इक=जिस वक्त. अर्थात्-जिस वक्त अपनी चित्त वृत्ति की सम भाव में प्रवृत्ती होवे सो सामायिक व्रत यह द्रव्य तो सावद्य (हिसक) जोग (मन वचन काया) से और भाविक राग द्वेष से निवृत्ते, सम भाव में प्रवृत्तिका इस की आराधना करने के वास्ते कम से कम एक मुहूर्त (४८ मिनट) काल तक का प्रमाण बन्धा है, और विशेष तो आपनी इच्छा होवे वहां तक इस व्रत की आराधना श्रावक जन कर सकते हैं. सामायिक व्रत आराधन करने की विधि इस मुजब है कि:-जहां छेही कायका आरंभ विक्रम श्रवन दर्शन न होवे ऐसे एकान्त स्थान में, इर्या पन्थ सोधन पूर्वक जाकर यत्रा पूर्वक गृहस्थ का जो लिंग (भेष-कपडे) हैं, उसे छोडकर, साधु के जैसे पहर ने ओढने के वस्त्र की प्रति लेखना कर-धारण करे, पूंजनी-गुच्छक से जमीन पूंज, एक पट वस्त्र श्वेत रंग का एकही मनुष्य सुख से बैठ सके ऐसे आसन को बिछा-मुहपाति मुखपर बान्ध, देव गुरु को तिखुंत्ता के पाठ से वंदना कर, इतनी धर्म क्रिया करते किसी प्रकार की विराधना हुइ हो उसकी निवृत्ति अर्थ-इर्यावही का सूत्र रूप पाठका उच्चारण कर, उस दोपकी विशुद्धि के लिये-तमुत्तरी का सूत्र पाठ कह, कायुत्सर्ग (कायाको एक स्थान स्थिर) कर, मन में इर्यावही सूत्र का अर्थ का चिन्तावन कर, लगे पापके पश्चताप पूर्वक का युत्सर्ग की समाप्ति कर, दोप निवृत्ति की खुशाली के लिये चौबीस्तव (लोगस्त का) सूत्र कहे. सामायिक व्रत धारण करे, फिर नीचे बैठ डावा घुटना ऊभा रख कर कमल डोडी वत दोनों हाथों को जोड गोडे पर स्थापन कर तीन आवर्तन युक्त - अर्हन्त को सिद्धको और गुरुको नमुत्युणं सूत्र से स्तवन कर, ३२ दोप रहित + तीनों यो-

+ दशमन के दोप:-१. सामायिक जीविधी और फलका अजान होवे. २. सामायिक कर कीर्ती-यशःकी वाछकरे. ३. “करंगा सामाइ तो होवेगा कमाइ” इत्यादि इसलोक के लाभ-की इच्छा करे, ४ में वड धमात्माह शुद्ध सामायिक करने वालाह इत्यादि गर्वकरे. ५ राजा

गो को रक्त्व, शास्त्र श्रवण पठन मनन स्मरण स्तवन आदि धर्म ध्यान में रमण करे-जिसे सामायिक व्रत कहते हैं. "योग दुः प्रणि धानानादार स्मृत्य नुपस्थानानि"-अर्थात्-मन के वचन के और काया के योगों को दुःप्रति ध्यान-खोटे कार्यों में पर-वृत्तावे. आदर रहित सामायिक करे. और सामायिक स्मृति-यददास्ति भूल जावे तो सामायिक में अतिचार लगता है-ऐसा जान इन पांचों दोषों से साफ दूर रहकर सामायिक करते हैं.

ऐसी तरह की शुद्ध सामायिक कमसे कम एक फजर एक दो पहर के और एक ज्याम को यो तीन तो जरूर ही करे. ज्यादा करने का अवसर - वक्त मिलेतो लाभ को गमावे नहीं!

ऐसीतरह से तीसरी भूमीका में प्रवृत्त ते हुवे जब श्रावकजीको कुछ२ आत्मा-नु भवका अनन्द चख ने का एक प्रहर के अवकाश में जो मजह प्राप्त होता है. उस

शेठ कुटम्ब आदिके डर से सामायिक करे. ६ सामायिक के फल का नियाणा करे. ७ सामायिक के फल का सन्देह करे (होगाकी नहीं!) ८ क्रोध मान माया लोभ के वश सामायिक करे. ९ गुरु महाराज का और धर्मोप करण का बहुमान नहीं करे. १० दूसरो का अपमान का चिन्तवतन करे.

दश वचन के दोष-१ झूठ बोले. २ विनिविचारा बोले. ३ श्रद्धाका भङ्ग होवे ऐसा वचन बोले. ४ असम्बन्ध-अन मिलना बोले. ५ नवकार मन्त्रादि सूत्रका पूरा पाठ उच्चारन नहीं करे. ६ द्वेष उत्पन्न होवे ऐसे मर्मिक वचन बोले. ७ दृष्ट-मस्कारी-हॉनी किटुहल करे. ८ त्वीकी भोजन की. देगकी. राजकी. चोरकी. अरंभकी इत्यादि विवधा करे. ९ दूसरे की निन्दाकरे-अवरण वाद बोले-और १० सूत्र पाठ आदि गडबड कर जल्दी पूरा करदे.

बारह काया के दोष-१ अयोग्य आसन से बैठे २ अस्थिर आसन में बैठे. ३ दृष्टिकी चपलता करे. ४ पायकेस्तार के कामों करे. ५ मौतदि का डेका लेकर बैठे. ६ वरन्धर शरीर को सकोचे प्रसार, ७ अल्प-प्रमाद करे. ८ अंगमोडे-करडका करे. ९ शरीर का मैल उतारे १० चिन्तके अग्रतमे बैठे-११ निद्रालेवे. और १२ वैषम्य जगवे-हाथ पांव दबावे.

यो १० मनके. ११ वचनके. और १२ काया के मन्त्र ३२ दोषों रहित को सामायिक करने शुद्ध सामायिक कही जाती है.

ही मजह के रसीले बने, वो मजह अधिक विलसने की उत्कृन्धा जागृत होती है, उसे तृप्त करने अधिक काल परमार्थिक वृत्ति में गुजार नें चौथी भूमि का 'पौषध' नामक है, उस में यथा विधि से प्रवेश कर ते हैं सो- कहते हैं:-

**पर्वादिषु चतुष्वी । मासे २ स्वशक्ति मनी गुह्या ॥**

**प्रोषध नियम विधायी । प्रण धिपरः प्रोषधानशन ॥६॥**

अर्थात्-जो स्वात्माको ज्ञानादि विरत्रों की यथा विधि आराधना कर और छेही जीवों की काया को अभय दान देकर पोषते हैं-पाल ते हैं-तृप्त करते हैं, उसे पौषधवृत कहते हैं.

यह पौषध व्रत सामायिक व्रत की माफि कही यत्ना पूर्वक एकान्त स्थान में सुकुमल पूंजणी से पूंज चार हाथ लम्बा और एक हाथ चौड़ा विछोना प्रति लेखकर विछावै, मुहपाति मुखपर बान्ध कर, हाथ में रजुहरण ग्रहणकर-लघु नीती, बड़ी नीति, पित आदि के लिये भोजन और स्थान की प्रति लेख स्वासन पर सामायिक व्रत मे कही हुई विधी मूजव प्रति लेखना के दोष की निवृत्ति के लिये 'इर्यावही सूत्र' कायुत्सर्ग आदि करे. फिर-"पौषध व्रत" ग्रहण करने के लिये यही विधि कर पोषध ग्रहण करे. फिर थोड़े से थोड़े चार प्रहर विशेष यथेच्छा प्रमाणे १८ दोष रहित आत्मा + ध्यान में काल गुजारे.

\* वस्त्र पात्र स्थान आदि में कोई जीव जन्तु होवे उनको सूक्ष्म दृष्टिसे देखकर उन्हे तक लीफ नहोवे, ऐसी तरह से एकान्त में स्थापन करे उसे प्रतिलेखना कहते हैं.

+ पोषध के १८ दोष पोषा के पहिले दिन वर्जना चाहीये-कल पोषा करनाहै इस लि-  
येही-आज. १ स्नान करे २ अवस्त्र (भैयुन) सेवन करे. ३ पोषा के निमित्तही सरस और ज्यादा आहार करे. ४ पोषाके निमित्त वस्त्र धोवावे. ५ शरीरको सिणगारे, और ६ वस्त्र रगावे [ यह ६ काम पोषाकिये के पहिले दिन करे तो दोष लगे ] और पोषालिये वाद:-१ अ-  
व्रति ( जिसने सवर सामायिक न कियाहो उस) का आदर सत्कार करे, बैठने को विछोना देवे, बैयावच्च करे. २ अपने शरीर की विभूषा करे. केश-वाल सयरे. वस्त्र सजावे, वगैरा. ३ अपने शरीर का या दूसरे के शरीर का मेलउतारे. ४ अधिक निद्रालेवे-अर्थात्-पोषेमें दिन-  
को तो सोनही नहीं चाहिये. और रात्रिको पहला छेला प्रहर छोड बीचके दोप्रहर से अधि  
क निद्रा लेव ५ गोछा रजुहरण आदिसे शरीर को पूजे विनाही खाज कुचरे, ६ स्त्रीयोंके

इस व्रत के ५ अति चारः— "अप्रत्यवेभिता ऽप्रमार्जितो-त्सर्गादान संस्त  
रोप क्रमणा-दर स्मृत्यनुप स्थानानि" अर्थात्-बैठने सोने का स्थान वस्त्र लघुनीतिका  
भाजन भूमीका आदि जोजो वापर ने (उपयोग) में आवे, उन को-१ दृष्टि कर देखे  
नहीं, २ पूंजनी कर पूंजे नहीं, तैने ही, ३ बिना देखे बिना पूंजे हाथ पग आदि श-  
रीर बिछोना संकोचे प्रसारे, पूंजणीयादि उपकरण ग्रहण करे, ४ अनादर से-वेगार  
गलने जैसा व्रतो में बहुमान-पूज्य दृष्टि रहित पौष करे, और ५ पौष करे के पौषाकी  
स्मृति-शुद्धि भूल जावे, जिस से पौषा के अयोग्य कृतव्यों को समाचरे तो पौषा में  
दोष लगे, ऐसा जान पांचों काम वर्जित हैं.

उत्सर्ग मार्ग में उपरोक्त विधि प्रमाणे कम ने कम एक महीना में छे पौषेत्तो  
जहूर करे:-दोनो अष्टमी के दो आठ पेहरके और चउदश पूर्णीमां का दो तथा च-  
उदश अमावास्या का दो बेला करे के गोलह प्रेहरका पौषा करे, और ज्यादा बन  
आवैतो बहुत अच्छा.

अपवाद मार्ग में-जो चारों अहार का त्याग कर प्रति पूर्ण पौषा कर ने की  
शक्ति नहीं हो तो, देशावकाशिक व्रत, ऊपर कही पौषे की विधि माफ कही धारण  
कर, निरारंभ निर्मम्व व्रति मे प्रवर्ते, इन व्रत में जो निवीहार के पञ्चषाप पूर्वक उ-  
पवास व्रत धारण करे तो-प्रानुक-निर्जीवि उष्ण आदि पाणी ग्रहण करने हैं, और  
रोग या वृद्धावस्थादि प्रसङ्ग मे इतनी शक्ति न होवे तो भिन्ना वृत्ति मे निर्दोष आ-  
हार लाकर उपाश्रय (धर्म स्थान) में भोगवते हैं, या आहार निपजे बाद अचिन्त कि

मिगगर की राज्यों के युद्ध आदि की ' भोजन आदि निषेधते विधि तथा उनके स्वद  
की, देग देगान्तों के रिनि रिजज की, विषय भोगज निन्दा-कथनी, इत्यादि विषयों  
को ७ बिना प्रयोजन, बिना बोलाज दोहन करने सेवे समर्पित में, निर्दिष्ट, चुननी, इ-  
त्यादि दिन अचर मे बचन कोरे ८ ऐसे देगे की हिंसा अचर, नेक मन्दी, इत्यादि क  
तो कोरे, ९ संमती सम्प्रदाय नाने भिन्ने-भावान कोरे, १० अन्न इति, क खंज-  
दि का गतिर अनुरग दृष्टिमे निगले ने, ११ जिम्मे, एन मन्दिन उम्हो न मुहुरे  
विद वनें कन्हे उम्मे मय वनें कोरे, और १२ हंसी, मन्दिन रदन मेक कोरे,  
यो ६ पहरे के और १२ पहरे के भिन्ने १८ देगे लेने हैं, जिन्मे दण्ड क जे देग  
कोरे मे इह देग क्क क्क.

सीधी गृहस्थ के घर को जा प्रायुक्त आहार पाणी का, जोग बने वो, या हलवाइ आदि दुकान से सीधा निपजा हुआ मोल गृहण कर के भी भोगव लेते हैं. परन्तु इन ६ दिनों में संसारिक सर्व प्रकार के कामों से अलग रहते हैं.

यों चौथी भूमिका में प्रवृत्तते जब अडोल वृत्तिवन्त बनते हैं, और आधिक वैराग्य की वृद्धि होती है तब तप और धर्म की अधिक वृद्धि करने वासते पांचवी 'नियम' भूमि का में प्रवेश कर उपरोक्त नियमों युक्त नियमों में विशेषता करते हैं.

**आर्य-अन्नं पानं खाद्यं । लेह्यं नाश्राति यो विभावर्या ॥**

**सचरात्रि भुक्ति विरतः । सत्वेष्वनु कम्पमान मनः ॥**

अर्थात्-प्रथम उपरोक्त ६ दिनों से भी अधिक तप धर्म की वृद्धि करने के लिये विचार कर ते हैंकि-खाते २ अनन्तान्त काल व्यतीत हो गया जगत् के सर्व पदार्थों अनन्तान्त वक्त भोगव आया, तो भी अभितक तृप्ति नहीं आइ, और एक दम सब खान पान छोड़ूं ऐसा अवसर तथा शक्ति भी नहीं, इसलिये महा अनर्थका हेतु अन्या ग्याना-रात्रिको अन्न पाणी पकान मेवा तंबोल फलादि सर्व पदार्थों को भोगवने (खाने) के जाव जीव पर्यन्त त्याग करै, जिस से बारह महीने में छे४ महिने के तपका फल प्राप्त कर सकें! और शरीर की ममत्व घटाने-अशाचि निवृत्ति उपरांत सर्व शरीर के स्नान का, हजामत करा ने का, इन्द्रियो निग्रहार्थ-दिन को अब्रम्ह (मैथुन), मैवनका, और धोती की दुमरी लांग लगानेका इन पांच कामोंका त्याग करे.

यों पांचवी भूमिका में तपकी वृद्धि और ममत्व की हानी करते २ जब विषयोंका निग्रह करने मन पर पूरा काबु पुगाने समर्थ बने, तब छठी ब्रम्हचर्य भूमिका में प्रवेश करने हैं.

**आर्या-मल बीजं मलयोनि । गलन्मलं पूत गन्ध बीभत्सं ॥**

**पश्यनं गमनंगा । द्विरमति यो ब्रह्मचारिसः ॥**

+ श्लोक-यः गर्वा सर्वतः आहारं । वर्जयति सुमेधस्य ॥

तेषां पक्षोप दामेन । फल मांसन जायते ॥

अर्थात्-जो एक महीने तक रात्री को सर्व आहार पाणी भोगवने का त्याग करता है उसे-एक महीने में १० उपवास का फल प्राप्त होता है:-महा भारत.

अर्थात्—देखतेही घिनता-भूग की उत्पन्न कर ने वाली, पीरु रुद्र मूव कर पूरित, दुगन्धा ऐसी स्त्रीकी योनी का सेवन और नव तथा इग्यारे द्वारों से सदा अशुची का झरना ऐसे शरीर से अलिंगन में मुक्त का मानना यह प्रत्यक्ष अज्ञानताका दर्शक, और असंख्य असन्नी मनुष्य तथा नव लक्ष सन्नी मनुष्यों का घमसान करना यह महानिर्दयी--अधर्मी कृतव्य. ऐसा मैथुन को महा अधर्म--अनर्थ पाप का हेतु जान सर्वथा प्रकार से त्याग कर, + नव बाङ्ग, विशुद्ध ब्रम्हचर्यव्रत का स्वीकार करते हैं.

ऐसी तरह से से ब्रम्हचर्य भूमीका में प्रवर्ती करते बिना अन देखते हुवे जीवों की हिंसा से निवृत्ते तो फिर देखते हुवे स्यावर जीवों का भी भोग क्यों करना? ऐसा करुणा सिन्धु हृदय जब श्रावकजी का होता है. तब सातवी 'सचित्त त्याग भूमीका में प्रवेश करते हैं.

**आर्या—मूल फल शाख शाखा । करीर कन्द प्रासुन बीजानी ॥**

**नामानि योनि सोयं । सचित्त विरतो दया मूर्ती ॥७॥**

अर्थात्—दया मूर्ती श्रावकजी विषय वासना रहित हुवे पुनः उधर मनकी प्रवृत्ति न होवे और अनाथ स्यावर जीवों को अपने कर्मों कर पीडाने हुवे देव अन्नः करण में 'रे' उत्पन्न होवे तब उन के भोगोमे अपने शरीर को निवार ते हैं. अर्थात् बिनापका अनाज भाजी फल फूल पत्र निमक मिर्च या पाणी आदि सर्व सचित्त पदार्थ खाने का मोगन करते हैं. और अग्नि आदि शास्त्र मे निर्जीव हुवा अन्न शाख पाणी आदि के भोगने क्षुधा तृषा वेदनीको शान्त कर दया धर्मके आराधक बनने हैं.

ऐसी तरह जब अपना शरीर जो अपनी आत्मा को मुख के माधन रूप था उसके लिये ही आरंभ कर ने की वृत्ति करली तो फिर जो मतलबी-स्वजन परजन है. उन के लिये आरंभ कर व्यर्थ कर्म बन्धन क्यों करना? ऐसी दयामय वैगन्य पूर्ण उरमीयों उछल ने लगे. तब उनको शान्त करने आठवी 'आणान्ध' मतिमा स्वीकार करते हैं.

+ विकार उत्पन्न करे तेन-१ स्थान, २ दर्शन, ३ ज्ञान, ४ अन्न, ५ अन्न, ६

विस्तार, ७ अन्न, ८ विमोह, और ९ विमोह, इन ९ कर्मों को दान देनेसे मुक्त

ब्रम्हचर्यव्रत पत्तन है:—

आर्या-सेवा कृषि वाणिज्य । प्रमुखदारंभतो व्युपारमति ॥

पूणातिपात हे तोर्यो । सव्वारम्भ भी निवृत्तते ॥८॥

अर्थात्-इस संसार में-कर्म भूमी मनुष्यों के क्षेत्र में तीन तरह के कर्मों कर उप जीवी का चलाते हैं:—१ हथियार बान्धकर-क्षत्री सिपाई प्रमुख, २ कृषि-खेती बाड़ी कर, कृषान प्रमुख और ३ मसी-लेख कर वाणिज्य व्योपारी प्रमुख इन तीनों कर्मों में बहुदा छे जीवों की काया का घात का प्रसङ्ग आता है, और इस पाप कर्मों कर उपार्जन किया हुआ द्रव्यका हिस्सा कर्म कर्तासे भी अधिक स्वजन आदिके भोगोप भोग में लगता है, तथापि उन पाप कर्मों का सम्पूर्ण फल भोगवने का अधिकारी तो वो कर्ता ही होता है. अर्थात् द्रव्य का हिस्सा लेने वाले बहुत हैं परन्तु कर्मों का हिस्सा लेने वाला कोईभी नहीं है' ऐसा जान श्रावक जी परार्थ भी आरंभ-छेही कायकी हिंसा का त्याग कर निरारंभी बनते हैं. अपने अर्थ और परार्थ कदापि किंचित मात्र हिंसा नहीं करते हैं.

यो स्वार्थ और परार्थ हिंसा से निवृत्त कर जिनका हृदय दया कर कोमल बन गया है, वो फिर उन के सन्मुख होते हुवे कुटारम्भ को दृष्टि कर देख सकते नहीं हैं. अर्थात् अपने सन्मुख होते हुवे घातकी कृतव्यों को देख उनका हृदय ऋद न करने लगता है, तब वो घात की कृतव्य न दृष्टिमें आवे, और न उनकृतव्योंका आदेश करना पड़े, ऐसा पाप से वचने रूप अपना आत्म साधन करने के लिये नववी पसारंभ प्रतिमा का स्वीकार करते हैं:—

आर्या-वाह्यपु दश सु वस्तु । ममत्व मुत्सृज्य निर्ममत्व रतः॥

स्वस्थः संतोषः परः । परिचित्त परिग्रही द्विरतः ॥९॥

अर्थात्—निरारंभी और निष्परिग्रही वृत्ति का मजाह भोगवने के लिये आरंभ और परिग्रह से युक्त जिसे अपना घर मान रक्खा था उस स्थान का त्याग कर, शरीर के रक्षणार्थ कुछ वस्त्र वरतन आदि ग्रहण कर बाकी का सब - दश प्रकार का वाह्य परिग्रह की ममत्व मूर्च्छाका त्याग कर - धर्म स्थान - उपाश्रय में जाकर निवास करते हैं. और ऊपर जो आठों भूमीका में आत्म धर्म साधन की किरिया बताई है उसका पालन अन्तः करण की स्थिर वृत्ति कर करते हैं. ज्ञान दर्शन च-

रिता चरित रूप धर्म से आत्मा को पोषते हुवे - ज्ञान के ध्यान में सदा निर्मग्न रहते हैं. कोई भी किसी प्रकार की आरंभिक सम्मति मांग ने आवे या अपन शरीरार्थ कदापि आरंभी काम करने का किनी को आदेश नहीं देते-हैंकि तुम अमुक प्रकारसे यह कार्य करो, आरंभी कार्य में मौन धारण करते हैं. क्षुधा प्राप्त हुवे आपने स्वजन के घर में जो भोजन निपजा हो उसे भोगव आते हैं. सदा धर्म ध्यान में काल गुजारते हैं.

जो निजार्थ और परार्थ आरंभ करना और कराना इन पापों से निवृत्त ते हैं. उन की पाप कार्यों में सहज अरुची उत्पन्न होजाती है. अर्थात्— फिर उनको पा-पारंभी वो उत्पन्न हुवा काम अच्छा नहीं लगता है. तब अनुमोदन-अच्छा जानना और व्याख्यान करना इस से निवृत्ति करने दशवी 'उदिष्ट कृत प्रतिमा' धारण करते हैं:—

आर्या-अनुमती रारंभ । व परिग्रहे वैहिकेषु कर्म सुवा ॥

नास्ति खलु यश । समाधीर नुमति विरतः मन्तव्य ॥१०॥

अर्थात्—उपरोक्त भूमीका में दर्शाये सुझव आत्म साधन करते २ जब मनपर पूरा काबु जमाता हैं. तब मनकी सारंभी कार्य के अन्मोदन से सहज निवृत्ति होनीहे. वो - अर्थात्—घर के और परके, आरंभी और सपरिगृही जो कामों सुनने में देखने मे जानने में आइ हुइ बातों की, तथा आरंभ से निपजी हुइ वस्तु आहार व-स्त्रादि जो भोगव ने में आवे उन की-परसंस्या-गुणानु वाद करने मे-मन कर उन कार्य को अच्छा जान ने से निवृत्तते हैं. आप हाथ से आरंभ करते नहीं. दुमरे के पास कराते नहीं, और उन के वास्ते किनी ने कुछ आरंभ कर कोई वस्तु निप-जाइ होवे तो वो उसे ग्रहण करने नहीं-भोगवते नहीं. शुद्ध निर्दोष फामुक वक्त भिर जो आहार पाणी वस्त्रादि मिल जावे. उसे ग्रहण कर धर्मार्थ शरीर का निर्वाह करे सदा आत्मानन्द में तल्लीन बने रहते हैं.

ऐसी तरह प्रवृत्ति करते जब मन पर पूरा कबू पहाँच गया. तब निश्चय हो-गया कि-अब में साधु वृत्ति - मुनि धर्म का मुख मे निर्वाह कर पार पहाँचा महुंगा ऐसा निश्चय होते प्रथम नाबु धर्म को अजम्बने इग्यारानी "ममण भूए" प्रतिमा में-साधु तो नहीं परन्तु साधु जैसे (नकली नाबु) बनते हैं.



आर्या-गृहतो मुनिवत् मित्वा । गुरूप कण्ठ व्रतानि परिग्रह्या ॥

भैक्ष्याशन स्तपस्य । चतुकृष्ट श्रेल खण्ड धरः ॥११॥

अर्थात्-समण भूत बनने के लिये श्रावक गृह लिंग (गृहस्थका रूप दर्शक वस्त्र का) त्याग कर, चोल पट पहन लेते हैं, पछोवडी चदर ओड़ते हैं, मुखपर मुहपाति बन्धते हैं, उघाड़ी दन्डी का रज्जुहरण डाबी बगल में दबाते हैं, काष्ठपात्र-झोली में स्थापन कर इर्या सभिता पूर्वक स्वज्ञाती के घर में भिक्षार्थ जाते हैं. ४२ दोपो रहित शुद्ध-आहार ग्रहण कर उपाश्रय में आकर ममत्व-मूर्च्छा रहित फक्त धर्म वृद्धि अर्थ शरीर को सशक्त ठिका कर रखने बिल में सर्प प्रवेश करे त्यों स्वाद नहीं लेते भोगव लेते हैं. इच्छा होतो ग्रामानुग्राम विहार करते हैं, क्षुधा तृषा-शीत-ताप-ताडन-मारन आदि सब परिसहों को सम भाव सहन करते हैं. शिरके दाडी मूछो के वालों का लोच करते हैं. यों आत्मा को निडर बनाते हैं. फक्त यह साधु नहीं है, ऐसी पहचान अन्य को होने के वास्ते शिरपर शिखा (चौटी) रखते हैं, इनको कोई साधु जान नमस्कार करे तो आप खुल्ला कह देते हैं कि मैं साधु नहीं हूँ-मे तो सगण भूत प्रति माका वाहक श्रावक हूँ. इस प्रतिमा के धारक उत्कृष्ट श्रावक कहलाते हैं.

श्रावक उपरोक्त ११ गुण श्रेणी की वृद्धि के कर्म से आत्म शक्तिको अजमा ले ज्यों वैराग्य की वृद्धि और आत्म की शक्ति प्रबल होती जाती है त्यों त्यों बड़ते हुवे साधु भूत बन जाते हैं.

इन इग्यारे प्रतिमा में कहे हुवे स्थान के किसी भी मध्य के स्थान का नीचे के स्थान में रहा श्रावक आराधन करे तो कुछ हरकत नहीं. परन्तु ऊपर चडे हुवे श्रावक तो नीचे के स्थान के गुणों में पूक्त पणें काय रहते हैं. किसी भी गुण की नुन्यता कदापि नहीं करते हैं.

इन एकादश श्रावक की पडिमा में श्रावक के इग्यारे व्रतों को स्पर्शने का वरणन का समावेश हो गया है. और वारवा जो अतित्थ सम विभाग व्रत है, अर्थात् तिथी (दिन) के नियम विन जो अचिन्त्य भिक्षार्थ साधु गृहस्थ के घर में प्रवेश कर शुद्ध आहार ग्रहण करते हैं. उन के भोजन की वक्त अपने सन्मुख प्राप्त हुवे आहार का हिस्सा करना. अर्थात्-भोजन करती वक्त हमेशा विचार करे कि जो इस वक्त कोई माधु आजाय तो इस भोजन में का इतना हिस्सा उब के पाव में डाल कर्तार्थ.

बनू! और उसवक्त साधु आवेतो उलट भावसे दान देवे, ऐसे दानार्थि श्रावकको इस व्रत के आराधन निमित्त ५ अतिचार वर्जने चाहिये:—“सचित्त निक्षेपा-पिधान पर-व्यपदेश मात्सर्या कालातिक्रमा:—अर्थात्-जो वस्तु फ़ासुक-निर्दोष-साधु को देने जैसी होवे उसे सचित्त वस्तुपर रखे, २ सचित्त वस्तु कर डके, ३ आप देने योग्य हो दुसरे पास दान दिरावे, ४ दान दिये पहिले या बाद मत्सर भाव धारन करे, और ५ काल अतिक्रमे-उल्लंघे तो इस व्रत मे दोष लगे, ऐसा जान सुपाव दानार्थि इन पांचों कामो को वर्जते हैं.

यह बारवा व्रत सर्व स्थानो में जीवों के आदरनीय हैं. इस लिये प्रथम प्रतिमासे लगाकर इग्यारवी व्रतिमा के धारक भी अतिथी सम विभाग व्रत का अवसरसे आराधना करते हैं.

इन सिवाय और पांचवे गुणस्थान के लक्षणों का संक्षेपित अर्थ तो मूलपर से ही समझ में आवे जैसा है, विशेषार्थ जानने के लिये जैन तत्व प्रकाश आदि ग्रन्थों को देखीये.

## छठे - प्रमत संयति गुणस्थान के लक्षण.

पांच महाव्रत—२५ भावना युक्त.

१ “ सव्वं पाणाइ वाया ओ वेरमणं ”—अर्थात्—सर्व-सूक्ष्म-चादर, वस्त्र-स्यावर जीवों की हिंसा से विकरण विजोग से निवृत्ते-त्योगे. इस व्रत की रक्षा के लिये ५ भावना:—“चादरनो गुप्ती र्यादान निक्षेपण समित्या लोकिता पान भोजनानि पञ्च” अर्थात्—१-२ मनको और वचन को पापके कामों से गोपे ( छिपा ) कर रखे, ३-५ चलती वस्तु उपकरण शरीर को धरते उठाते और आहार आदि भोगवर्तें यत्र महि-त प्रवृत्तने मे अहिंसा व्रत शुद्ध पलताहै.

(२) “ मव्वं मुना वायाओ वेरमणं ” अर्थात्—किन्नी को अप्रिय करी, और मृषा-झूठा वचन बोलने मे विकरण त्रियोगमे निवृत्ते. इस व्रत के रक्षणार्थ पांच भावना:—“क्रोध लोभ भीरुत्व हास्य प्रत्याख्यानान्य-नुवीचि भाषणं पंच” अर्थात्—१-४ क्रोध का-लोभ का-भयका-होस्पका उदय होवे तब बोलना नदी-मौन धारण करना, और ५ बोलने पहिले वचन का फल विचारना. यों पांचों यत्रा युक्त प्रवृत्तने मे सव्व व्रत शुद्ध पलताहै.

(३) “ मव्वं अदिन्न दाणाओ वेरमणं ” अर्थात्—भालक के दिये बिना या न-

न विना छुपा के लेना जिसे चोरी कहते हैं, उस से निवृत्ते. इस व्रत के रक्षणार्थ ५ भावनाः—“शून्यगार विमोचिता वास परोपरोधाकरण भैक्ष्य शुद्धि सधर्म्माऽविसंवादाः पंच.” अर्थात्—१ सूने घर में मालक की रजा से रहे, २ पाहिले रहते को निकाल कर न रहे, ३ कोई मना करे वहां न रहे, ४ आहार आदि शुद्ध ग्रहण करे, और ५ धर्मात्मा से तो क्या परन्तु किसी के साथ भी विसंवाद (झूठ-झगडा) नहीं करे. यों प्रवृत्तने से दत्त व्रत शुद्ध फलता है.

४ “मव्वं मेहुणा ओ वेरमणं” देवता मनुष्य और तिर्यच की स्त्रीके साथ या नपुंसकके साथ मैथुन करने से निवृत्ते. इस व्रतके रक्षणार्थ ५ भावनाः—“स्त्री राग कथा श्राण तन्मनोहराद्ग निरीक्षण पूर्ववृत्तानुस्मरण वृषेष्टरस स्वशरीर संस्कार त्यागा-पंच” अर्थात्—१ भिकार उत्पन्न होवे ऐसी कथा सुने नहीं, २ गुप्त अंगोपांग निरखे नहीं, ३ पाहिले की हड्डी किडाको याद नहीं करे, ४ कामो तेजक आहार करे नहीं. और ५ भिणगार मजे नहीं. यों रहने से ब्रह्मचर्यव्रत शुद्ध पलता है.

५ “मव्व परिग्गहाओ वेरमणं”—अर्थात्—सजीव निर्जीव किसीभी तरह का परिग्रह (द्रव्य) रखे नहीं, इसके रक्षणार्थ ५ भावना “मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रिय विषय रागद्वेष वर्जनानि पंच” अर्थात्—मनोहर-शब्द रूप गन्ध रस स्पर्श पर राग करे नहीं. और गमय पर द्वेष करे नहीं. तोही निष्परिग्रह व्रत शुद्ध पलता है.

### पांच ममिति - तीन गुप्ति.

“इय्यां भापपणा दान निक्षेपोन्मगः ममितयः”—अर्थात्—१ इय्याम मिती से (१) द्रव्य से—३॥ हाथ आगे की जमीन देखकर चले, (२) क्षेत्र से—रस्ता छोड़ चले नहीं, (३) कालमे-दिनको प्रकाशिक स्थान में आँखों से देखकर, अमकाशीक स्थान में और गत को पूंज कर चले, (४) भाव से—पांचो इन्द्रिय की विषय का और किसी भी बात का चिन्तन करने चलना करे नहीं.

२ भापाम मितिमे—(१) द्रव्य से दुःख और गम द्वेष उत्पन्न होवे ऐसा वचन बोलने नहीं, (२) क्षेत्रमे-रस्ते चलना विशेष बातान्याप करे नहीं, (३) काल मे-पहर रात्रि गये बाद जोग से बोलने नहीं. और (४) भाव से—विना विचार शब्द नहीं उच्चार.

३ पपणा ममितिमो—(१) द्रव्य में फामृक निर्दोष आहार ग्रहण करे, (२) क्षेत्रमे-दो कोश में आने आहार लेनाय नहीं, (३) कालमे-पाहिले पहरका त्याग आ-

हार चौथे पहर में भोगवे नही. और, (४) भावसे-अच्छे घरे आहार वस्त्र मकान पर रागद्वेष नहीं करे.

४ आदान-निक्षेपना समिति सो-उपकरणो-(१)-द्रव्य मे यत्ना से गृहण करे और रक्खे, (२) क्षेत्र से-ग्रहस्थ के घर रक्खकर अन्य ग्राम जाय नही. (३) कालसे दोनो वक्त प्रति लेखना करे. और (४) भाव से-ममत्व मूर्च्छा रहित उपयोग मे लेवे.

५ परिठावणिया समिति सो-लघुनीत बडीनीत अयोग्य आहार उपद्धी आदि-(१) द्रव्य-यत्रसे परिठावे (डाले) (२) क्षेत्र से-ग्रहस्थ निन्दा करे ऐसे स्थान परिठावे नहीं, (३) कालसे-दिन को देखकर रात को दिने देखी भूमिकामे परिठावे, और (४) भाव से शास्त्रोक्त विधि से परिठावे.

“सम्यग्योग निग्र हो गुप्तिः”—अर्थात्—मन को वचन को और काया को संरम्भ सम्भारम्भ और आरम्भ से सम्यक् प्रकार से रोक रक्खना—कु कर्मोंमे प्रवृत्ता ना नहीं सो तीनो गुप्ति है.

### पांच आचार.

१ ज्ञाना चार सो-ज्ञान को-(१) अकालकी वक्त गृहण नहीं करे, (२) अविनय नहीं करे. (३) वदूत मान पूर्वक गृहण करे. (४) यथा विधि ग्रहण करे. (५) ज्ञान दाता का उपकार न छिपावे. (६) अशुद्ध उच्चारन न करे. (७) विपरीत अर्थ नहीं करे. और (८) पाठ और अर्थ को प्रमाण भूत जाणें.

२ दर्शनाचारः—(१) जिन वचनो में शंका नही लावे, (२) अन्य मत की वांच्छा नहीं करे. ३ करणीका फलका वैम नहीं लावे. (४) मूढ़ समान धर्मार्थका अज्ञान न होवे. (५) स्वधर्मीयों की भक्ति करे. (६) धर्म से डिगे को स्थिर करे. (७) चारों संघकी वत्सलता करे. और (८) जैन धर्म की उन्नति करे.

३ चारित्रा चारसो. समिति ३ गुप्ति युक्त सदा प्रवृत्ते.

४ तपाचारसो - १२ प्रकार का विशुद्ध तप करे.

५ विर्याचार सो - धर्मार्थ आप उद्यम करे. दुमरे पानकरावे.

### सत्तर प्रकारका-संयम.

पुढवी दग अगाणि मरुय । वणसइ खिति चउ पणिन्दि अजीव ॥

पहुपेहा पमज्जणा । परिठवणा मणो वय काय संयमे ॥ १ ॥

अर्थात्-१९-पट्टी-पाणी-आग्नि-हवा-वनस्पति-वेन्द्रिय-तेन्द्रिय-चौरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय इन ९ प्रकार के प्राणीयों कि-किंचित मात्र ही घात होना तो दूर रहा, प-  
रन्तु दुःख उपजे ऐसा काम करे नहीं करावे नहीं और करते हेवे उन्हे अच्छा भी न  
हीं जाने. १०. अजीव काय संयम सो वस्त्र पात्र आदि निर्जीव वस्तु भी जितने काल  
तक चले वहां तक चलावे-फाड़े तोड़े नहीं ११ प्रेक्षनासो-सब वस्तु ओंको देख क-  
र उपयोग में ( काम में ) लेवे. १२ प्रमार्जना सो-योग्यस्थान वस्त्र पात्र पूंज कर वा  
पंग. १३ उपेक्षा सो-हितोपदेश से धर्मोन्नति करे, सर्व कार्य उपयोग पूर्वक करे. १४  
'पण्डिताना मो' अयोग्य वस्तु को यत्ना से परिछावे. १५-१७ मन वाणी और शरी-  
र को अप्रमर्ग मार्ग में निवार धर्म मार्ग में प्रवृत्तवे सो संयम.

“वारह प्राकार का तप”

अनशनाय मौदर्यं वृतिपरि सङ्ख्यान रसपरित्याग ॥

विविक्त शय्यामन काय क्लेशा बाह्यं तपः ॥

प्रायश्चित्त विनय वैयावृत्य स्वाध्याय व्युत्सर्ग ध्यानान्युत्तरम्।

अर्थात्-१ अनशन तपसो-दो घड़ी में लगाकर जावज्जीव पर्यन्त आहार  
का त्याग करे. २ उनादगी तपसो-भूषण होवे निममे कम आहार करे,  
नथा वस्त्र पात्र कम रखे. ३ वृत्ति परिमंख्या तपसो-पिछे उभीपर निर्वह चलावे,  
इस तपसो दृमग नाम भिख्या चारी भी है सो-निर्वच्य भिक्षा वृत्ति से आहार आदि  
गृह्य करे. ४ रसपरित्याग-दूध दही घी तेल मीठा त्याग इन छेअंमेंमें एक दोका या-  
नहीं का त्याग करे. ५ काया क्लेशमो. निर्जग के लिये जान कर शीत ताप आदि  
महन करे. लोच करे. विहार करे वंगरा. ६ प्रति मलीनता मो-उन्टियों कपायों में  
गों का निग्रह करे. उर्भा तप का दृमग नाम 'विविक्त शय्यामन' हैमो-स्त्री पशुनपुंसक  
रखे होवे इस स्थान में रहे नहीं, यह ६ बाह्य (प्रगट) तप है. ७ प्रायश्चित्त लगे  
पाप को अलग कर ने तप आदि करे. ८ विनय मो-(१) ज्ञान दर्शन चाग्रि-को  
अपन मात्र में गृह्य करे सो मुख्य विनय. और ज्ञानादि के आगमक आचार्यादि  
का सम्मान सम्मान बंदन नमन करे सो चाग्रि विनय. ९ वैया वृत्त्य मो-(१) पाठ  
गृह्यादि वाचना मो काया चेष्टा जन्म वैयामन. और (२) वस्त्र पात्र आहार आदि उ-  
चित्त वस्तु देना मो दानम् जन्म वैयामन. १० मन्त्रायमो मन्त्रादि आप पद अ-

न्य को पढाव धर्मोपदेश देवेसो. ११ ध्यान सो-चित्त वृत्ति का निगृह कर किसीभी शुद्ध विचार में रमन कराना सो. और १२ काउत्सर्ग-काया को एक स्थान कर स्थिर रहे. तथा इस तपका दुसरा 'व्युत्सर्ग' भी नाम है सो बाह्य अभ्यान्तर परि-गृह का त्याग करे.

## सातवे अप्रमत्त गुणस्थान के लक्षण.

पांच - प्रमाद.

आर्या-मद विषय कषाय । निन्दा विकहा पंचम भणीया ॥

ए ए पंच पम्माया । जीवा पडन्ति संसारे ॥१॥

अर्थात्—१. मद, २ विषय, ३ कषाय ४ निन्दा और ५ विक्रिया इन पांचों प्रमादों के वश में पडने से जीवों संसारे में पडते हैं.

१. मद ८ प्रकार से होता है:—(१) जाति-भाताके पक्षका, (२) कुल पिता के पक्षका, (३) बल-पराक्रम (ताकद) का, (४) रूढ़-शरीर के तेज दमक पने का, (५) तब-तपश्चर्याका, (६) सुय-सूव-विद्या का, (७) लाभ-द्रव्यादि की प्राप्ति का, और (८) इस्सरी-इश्वरी-परिवारादि की मालकी का. इन आठों आभि मान को जीतें.

२ विषय २३ के विकार २४० होते हैं:—(१) श्रोतेन्द्रिय की (१) जीव शब्द, (२) अजीव शब्द, और, (३) मिश्र शब्द. यह तीनों विषय. इन को शुभ अ-शुभ से दुगुने करने से ६ होते हैं, और इन ६ को राग द्वेष से दुगुने करने से श्रोतेन्द्रिय के १२ विकार होते हैं. (२) चक्षुरेन्द्रिय की—(१) कृष्ण, (२) हरित, (३) रक्त (४) पित और (५) शुक्ल. यह पांच रङ्ग रूप पांच विकार होते हैं. इनको सचित्त अचित्त मिश्र इन तीनों से ती गुणे करने से १५ होते हैं. इन १५ को शुभ अशुभ से दुगुणे करने से ३० होते हैं. और इन ३० को राग द्वेष से दुगुणे करने से चक्षु इन्द्रिय के ६० विकार होते हैं. (३) घणेन्द्रिय की—(१) सुर्भागन्ध, और (२) दुर्भागन्ध, यह दो विषय. इनको सचित्त अचित्त और मिश्र इन तीनों से तिगुण करने से ६ होते हैं. और इन ६ को राग द्वेष से दुगुणे करने से घणेन्द्रिय के १२ विकार + होते हैं.

+ घणेन्द्रिय के १२ विकार को शुभ अशुभ से दुगुणे कर २४ नि कहते हैं.

(४) रसेन्द्रियके १ कटु, २ मधु, ३ क्षारा, ४ तीखा और ५ कषायला, यह ५ विषय. इन को सचित्त अचित्त और मित्रसे तीगुने करनेसे १५ होते हैं. इन १५ को शुभ अशुभसे दुगुने करनेसे ३० होते हैं. और ३० को राग द्वेषसे दुगुने करनेसे रसेन्द्रियके ६० विकार होते हैं.

(५) स्पर्शेन्द्रिय १ गुरु, २ लघु, ३ शीत, ४ उष्ण, ५ रुक्ष, ६ चीकन, ७ सुकुमाल, ८ खर दर. यह ८ विषय. इन ८ को सचित्त, अचित्त और मिश्र से तिगुने करने से २४ होते हैं. इन २४ को शुभ अशुभ से दुगुने करने से ४८ होते हैं, और इव ४८ को राग द्वेष से दुगुने करने से स्पर्श इन्द्रिय की १६ विकार होते हैं. यों पाँचों इन्द्रियों के ३३ विषय और २४० विकारों का निग्रह करे.

३ कषाय प्रमादतो १ क्रोध, २ मान, ३ माया और ४ लोभ, इन चारों कषायों को बहु ही पतली संज्वल नमात्र उपशान्त रखे.

४ निन्दा के दो अर्थ होते हैं: — ( १ ) जो दर्शनावरणीय कर्मों दय कर आत्मा के चेतना लक्षण गुण हैं उस पर आवरण आकर प्रवश्य-मृत्यु तुल्य बना दे-वे सो निन्दा कही जाती है. इस जेहर को निकालते-कमी करते हैं. और (२) निन्दा सो अवगुणों को अवर्ण वाद बोलकर प्रकट करना उसे निन्दा कहते हैं, आत्म सु-स्वार्थी जन अपनी आत्मामें दुर्गुण होवे उने जान-प्रकट कर निकालनेका पर्यन्त करते हैं. दुमरा कोड अपने दुर्गुण बढ़ावे निन्दा करे तो आप सम भाव से-श्रवण कर उप-काग महित स्वीकार अन्तर दृष्टि कर आत्मा में अवलोकन करते हैं; जो वो दुर्गुण आत्मा में पाजावे तो उसे निकाल ने का उपाय करते हैं. और नहीं पावे तोभी बुरा नहीं मानते हैं, क्योंकि उम ने तो उम अवगुणी की निन्दा करी है-मेरी नहीं करी, ऐसा विचारते हैं. और अपने मुख से दूसरे की निन्दा कदापि नहीं करते हैं. अर्थात् पाप की निन्दा करते हैं परन्तु पापीकी निन्दा कदापि नहीं करें. क्योंकि शास्त्रों में निन्दा का नाम “माम भक्ती” कहा है. अर्थात्-दुमरे की निन्दा करनी सो मांस भक्षण करने जैसी अपवित्र है. ऐसा जान मुनि मौन रखते हैं.

आगे आठवे गुणम्यान में लगाकर चौदवे गुणम्यान का अर्थ सब मूल में कहे मुञ्जवदी समझना चाहिये.

### छद्म - दृष्टान्त द्वार का खुलासा.

३६३ पावाण्डियोंका स्वरूप समझाने प्रथम ५ समवाय कहते हैं:—

१ कालवादी—कहना हैकि—इम जगत् का कर्ता काल ही है. उत्पत्ति प्रलय

आदि सब कालाधीन है, प्रत्यक्ष देखीये! योग्य काल (वय) को प्राप्त होते स्त्री ऋतु प्राप्त होती है, उसे योग्य वय के पुरुष के संयोग सेही गर्व रहता है. और नियमित काल पूर्ण हुवे ही पूर्ण पूत्र की प्राप्ति होती है. वो लडका योग्य काल जाते ही बोल ता चलता खाता पढ़ता द्रव्योत्पत्ति कुटुम्बोत्पत्ति कर वृद्ध हो मरजाता है. ऐसा काल का सम्राज वस स्यावर सर्व प्राणीयों पर और जड़ोंपर अखण्ड प्रवृत्तता है.

२ स्वभाव वादी-कहता हैकि-जगतोत्पत्ति आदि सर्व काम स्वभावार्थीन है, काल से कुछ भी नहीं होता है. जो होता होतो योग्य काल संयोग हुवेही वन्ध्या के पुत्र क्यों नहीं होता है? स्त्रीके दाढ़ी मूछ क्यों नहीं आती हैं? इत्यादिसे प्रत्यक्ष जाना जाता है कि वो उनका स्वभाव नहीं है. हँसमें शरलता, उगले में वक्रता, कोकीलाका मधुर स्वर, कागका कटुक स्वर, सर्प के मुख में जहर मणी में अमृत, पृथ्वी-कठीण, पाणी प्रवाही, आग्नि उष्ण, वायु चलन, इत्यादि सर्व श्रेष्ठी के पदार्थों स्वभाव सेही प्रवृत्त रहे प्रत्यक्ष दिखते हैं!

३ नियत (होनार) वादी-कहता हैकि-जगत का सब कार्य होनार मुझव ही होता है, जो काल और स्वभाव से होता होतो-अम्ब वृक्ष का काल पके स्वभाव से मोर (फल) तो बहुत आते हैं, परानु फल तो होनहार जितने ही लगेंगे! देखीये! नियत कैसा प्रबल हैकि-रावण को भविष्यण ने मन्दोदरी ने वधूत ही समझाया, परन्तु होनहार के सबवसे किसी काभी नहीं माना, और मारा गया! इत्यादि अनेक दाख-लेसे जाना जाता हैकि-सब होनहार मुझवही होता है.

४ कर्म वादी-कहते हैकि-जगत् के सब कामों कृत कर्मानुसारही होते हैं. जो काल स्वभाव और नियत प्रमाणें होते होवेंतो- काल स्वभाव नियत एकसा मिले पुत्रोत्पत्ति होती है, फिर वो अच्छा बुरा, सुखी दुःखी तो कर्मों प्रमाणे ही होता है. प्रत्यक्ष ही देखीये-घनाढ्य, दरिद्री मूर्ख पाण्डित इत्यादि विचित्र ता पशु मनुष्य और देवों में भी देखी जाती है सो सब कर्मों जनित ही है!

५ उद्यमवादी-कहता हैकि-जगत् के सब कार्यों उद्यम प्रयाम कियेभेही निपज-ते हैं. जो काल स्वभाव नियत और कर्मों में होनाहो तो-तोता अम्ब आदि एकही कालादि प्रमाणें उत्पन्न हो उद्यम करने में गायव नृत्य आदि अनेक कला में प्रवीन हो बड़े २ इन्द्र नरेंद्रों के मन हरण करते हैं, और प्रत्यक्ष ही दिखता हैकि- आहार वस्त्र भूषण मकान आदि कुल उपयोग में आने हुवे पदार्थों बिना उद्यम के नहीं ही



होते हैं, पत्थरोमेसे रत्नों मट्टी में से सुवर्ण आदि निर्माल्य वस्तु में से अमूल्य पदार्थों उद्यम से ही प्राप्त होते हैं, किंवहुना सर्व दुःखों का नाश कर निरामय मोक्ष स्थानके अनन्त सुख का देने वाला एक उद्यम ही है !!

ऐसी तरह से इन पांचों वादीयों का विवाद अनादि से चल रहा है, यह पांचों ही एक एक बात को गृहण कर अपने २ पक्ष को तान ते हैं इसलिये मिथ्या त्वी कहे जाते हैं.

इन पांचों से ३६३ पाखण्ड हुवे सो कहते हैं:-

१. क्रिया वादी के १८० भेद:-ऊपर पांच समवाय कहे, उन्हे स्वात्मा और परात्मा से दुगुने करने से १० भेद हुवे, इन को नित्य और अनित्य से दुगुन करने से २० भेद हुवे. इने (१) जीव, (२) अजीव, (३) पुण्य, (४) पाप, (५) आश्रव, (६) संवर, (७) निर्जरा, (८) वन्ध, और (९) मोक्ष, इन ९ से ९ गुने करने से  $२० \times ९ = १८०$  हुवे. यह क्रियावादि-आत्मा का और क्रिया का अनादि अनन्त सम्बन्ध मानते हैं, क्रियासे ही गतागति कर पुण्य पाप के फल भोगवना मानते हैं, इन को मिथ्यात्व में लेने का सबब यह है कि-आत्मा को अनादि अनन्त साक्रिया मानने से मोक्षकी नास्ति होती है. और यह फक्त क्रियासे ही मोक्ष मानते हुवे ज्ञान की उत्थापना करते हैं. +

२ अक्रिया वादिके ८४ भेद:-ऊपर कहे सो पांच समवाय और छद्वा-यह-च्छवादी + यह ६ स्वात्मा से और परमात्मा से दुगुने करने से १२ होते हैं, इनको उपरोक्त ९ तत्व में से पुण्य पाप \* कमी कर ७ तत्व में ७ गुणे करने से  $१२ \times ७$

+ श्रीभगवति सूत्र के ३० वे समव सरण शतक के पहिले उद्देशे में क्रिया वादिको १४ वे गुणस्थान तक बता कर बहुत उत्तम दर्शाया है. सो वो क्रिया करतूत को मान ने वाले जान ने. परन्तु मिथ्यात्वी नहीं हैं.

- यह इच्छावादी कहते हैं कि-कार्य कारण भावका कुछ नियम नहीं है, क्यों कि- जैसे मरे मेंडक से भी मेंडक उत्पन्न होते हैं, और गोत्रर से भी मेंडक होते है. आग्नि से भी आग्नि उत्पन्न होती है, और अरणीकी लकड़ी से भी अग्नी होती हैं, ऐसे अनेक वस्तु होने से कार्य कारण नियम मान ना उचित नहीं है, जो होता है सो सब यद्इच्छा से होता है.

\* यह पर लोक की नास्ति कर्ता होने से पुण्य पाप की नास्ति करते हैं.

=८४ भेद होते हैं. यह कि कहते हैंकि-जगत् के सर्व पदार्थों क्षीण २ मे पराश्रित पाते दृष्टि आते हैं. पदार्थों की अस्थिरता के सबब मे उनको क्रिया नहीं लगतीहै- न कर्म बन्ध होता है और न उन के फल भुक्तना पडता है.

३ अज्ञानवादीके ६७ भेदः—(१) सत्त्वं-क्या जीव सत्य है? (२) असत्त्वं क्या असत्य है? (३) सदसत्त्वं क्या सत्यासत्यहै? (४) अवाच्यत्वं-जीवको सत्य कैसे कहना? (५) सदवाच्यत्वं-असत्य कैसे कहना? (६) 'असदवाच्यत्वं'-सत्यासत्यभी कैसे कहना? और (७) सदा सदा वाच्यत्वं-सत्य भी नहीं असत्य भी नहीं. यह विकल्पों जीव के किये, तैसे नव पदार्थ के करने से  $७ \times २ = १४$  भेद हुवे, और सत्त्व, २ अमत्त्व, ३ सदत्त्वं, ४ अवाच्यत्वं यह  $४ \times २ = ८$  भेद होते हैं. यह कहते हैंकि-"जानेसो ताने" यह अच्छा. यह बुरा, ऐसे राग द्वेष में ज्ञानी फस मरते हैं. अपन अज्ञानी अच्छे हैं जो किसीकी के झगडे में न फसे, न पाप को जानें, और न पाप लगे.

४ विनयवादी के ३२ भेदः—(१) सूर्य, (२) राजा, (३) ज्ञानी, (४) ज्ञाति, (५) स्थविर, (६) धर्मी. (७) माविव, और (८) गुरु, इन आठोंको—(१) अच्छे जान ना, (२) मुणानुवाद करना, (३) नमस्कार करना, और (४) उचित दान देना. इन ४ से चौगुन करने से  $८ \times ४ = ३२$  भेद होते हैं, यह कहते हैंकि-सब को अपने से अच्छे जान बंदन नमन आदि विनय करने मे ही सब सुख की प्राप्ति होती है.

यों चारों वादीयों के मिलकर ३६३ मत भेद होते हैं.

### कृष्ण वासुदेव श्रेणिक महाराज.

सोरठ देश में देवताकी बसाइ हुइ देव लोक भूत द्वारका नगरी में तीन खण्ड राज के भुक्ता ४२०००, हाथी, ४२००० अश्व, ४२००० रथ ४८००००००, पायदल, श्री समुद्रविजय आदि १० दशरथमहाराज, बलभद्रजी प्रमुख ५०० महावीर, पद्मन प्रमुख ३५०००००० कुमर, संव प्रमुख ६००००० दुर्दन्त, महासेन प्रमुख ३६००० बलवन्त. वीरसेन प्रमुख २१००० वीर, उग्रसेन प्रमुख १६००० सुकट बन्ध राज चाकर, ऋक्मणी प्रमुख १६००० राणीयों, अनंगसेना प्रमुख अनेक हजारों गणीका, ९६०००००० जादव का परिवार, और भी महा ऋद्धि सिद्धि के

× यहा कितनेक संख्य, २ वेद, ३ शिव, और विष्णव यह ४ मिलता हैं.

धारक बाबास वे तीर्थकर श्रीरिठनेमी भगवन्त के शिष्य 'श्री कृष्ण वासुदेव' नामक महाराजा थे.

और मगधदेश की राजगृही नगरी में १७१००००० ग्राम, के ३३००० हाथी, ३३००० अश्व, ३३००० रथ, ३३०००००० पायदल, चेलाणजी प्रमुफ ५०० राणीयों, अभय कुमार प्रमुख २३ कुमार, मगध और अंग दोनों देशका मालक चौबीसवे तीर्थकर श्री महावीर भगवन्त के शिष्य श्रेणीक नामें महा मंडलीक राजा थे.

इन दोनों महाराजाओंकी सम्यक्त्व की दृढता विषय शक्रेन्द्र देविन्द्र ने पर संस्था करी, जिसे सहन न करते मिथ्यात्वी देवने व्यभीचारी साधु साध्वी का रूप बनाकर धर्म को ढोंग बताने के वास्ते व और भी सब १०८ तरह से परीक्षा करी. परन्तु इन के परिणाम लवलेश भी चालित न हुवे. और इन्होंने अपने राजमें जाहिर किया था कि जो दिक्षा ग्रहण करेगा उनका महोत्सव और कुटुम्ब का पालन हम करेंगे. ऐसा सुन कर इन की प्राणप्रिय पटराणीयों और पाटवी पुत्रों वगैरा जो जो दीक्षा लेने तैयार हुवे उनको सहर्ष आज्ञा दे स्वतः बड़े आडम्बर से उत्सव कर दीक्षा दिलाइ. अपने राज में अमरी पडह बजवाया, जैन धर्मीयों का दाण-हांसल माफ किया, और हरेक तरह से धर्मोन्नति कर धर्म को विश्व व्यापी-सर्व मान्य बना दिया था. मानो इन्होंने अपने तन मन धन जन आदि सर्व स्वयं धर्मापण कर विदेही वत - दृष्टाभूत हो राज्य करते थे. इसादि इन्होंने के सद्गुणों समोह से आकर्षा कर खुद परमात्मा श्री तीर्थकर भगवन्त वरम्बार इन के ग्राम को पावन करते थे, और धर्म वृद्धि ज्ञान वृद्धि संघ वृद्धि कराते थे. ऐसा महान् पुण्य की प्रदलता रूप वृद्धि कर इन दोनों महाराजाओं ने श्री तीर्थकर गौव की उपाजना की है, अर्थात् यह दोनों पूर्वो पार्जित पाप का बदला भुक्त ने फक्त एकही खुलक (छोटा-थोड़ा आयुका) भव नरकका भव कर अनन्तर आगे के भव में खुद तीर्थकर-परमात्म पद को प्राप्त कर सर्व जगत्के परम माननिय परम पूज्यनीय हो महन् धर्मकी वृद्धि कर, आयु अन्त अनन्त अक्षय मोक्षके सुखके भुक्ता वनेंगे!

❀ दश श्रावको का वरणन. ❀

संख्या	श्रावकों के नाम	इनकी स्त्री के नाम	रहने का ग्राम	पास द्रव्य	पास गौसंख्य.
१.	आणन्दजी	शिवानन्दा	वाणीया ग्राम	१२ क्रोड	४००००
२.	कामदेवजी	भद्रा भार्या	चम्पा नगरी	१८ क्रोड	६००००
३.	चूलणी मिये	सोमा भार्या	वनारसपुर	२४ क्रोड	८००००
४.	मूरदेव	धन्ना भार्या	वनारसपुर	१८ क्रोड	६००००
५.	चूल शक्त	बहुला भार्या	आलंभीया	१८ क्रोड	६००००
६.	कुंडको लीया	पुंस्ता भार्या	कपिल पुर	१८ क्रोड	६००००
७.	सकडाल पुत्र	अग्नि मित्रा	पोलाम पुर	३ क्रोड	१००००
८.	महा शक्त	रेवती आदि १३	राज ग्रही	२४ क्रोड	८००००
९.	नन्दन मिय	अम्बनी भार्या	सावन्धी	१२ क्रोड	४००००
१०.	तेतली मिय	फाल्गुनि भार्या	सावन्धी	१२ क्रोड	४००००

यह दशोंही श्रावकों चौविमवे तीर्थकर श्री महावीर स्वामीजीके शिष्यों थे. इनोंने पहिली कही हुई श्रावक धर्म में प्रवेश करने की इच्छासे ही भूमिक्ता- गुण श्रेणी का अनुक्रम में यथा विधि शुद्ध सम्पूर्ण आराधन किया है. वनों की दर्यादा में जितनी अपने पास ऋद्धि थी उस उपरान्त सर्वथा इच्छा का निरंजन किया है. इन १० हीने कुल २० वर्ष तक श्रावक धर्म का पालन किया. जिस में जन्मि आद्युष्य के ५॥ वर्ष पर्यन्त तो घर धन परिवारका त्याग कर, एकान्त धर्म ध्यान में रहकर, एक महीने तक एकान्तर उपवास. फिर दो महीने तक तेले २ पारणे. फिर तीन महीने तक तेले २ पारणे. यों रहते २ जावन इत्यारे महीने तक इत्यारे २ उपावास के प्रा-

रण ने कर श्रावक की इग्यारेही प्रतिमा का अधिकाधिक विथुद्धी से आराधन किया और आयु का अन्त नजीक आया जान सल्लेपण युक्त संथारा किया-मरे वहांतक चारों अहार के त्याग कर एकस्थान स्थिर रह धर्म ध्यान में निर्मग्न हुवे, जिस से ज्ञानावरणीय कर्मदल पतले पडने से ऊपर प्रथम स्वर्ग नीचे प्रथम नरक और चारों दिशीयों पांचसो २ योजन तक देखें ऐसा अवधिज्ञान उत्पन्न हुवाहै. शक्रेन्द्र महारा जने इन की परसंख्या करी तब देवताओं इनको डिगाने आये महा विकराल रूप बनाकर महा दुःख दिया, तीव्र भयंकर वेदना उपजाइ, कितनक श्रावकों के पुत्रों का रूप बना कर उनके सन्मुख लाकर मारे, घरका धन हरण किया, वगैरा अनेक परिसह उपजाये, परन्तु यह धर्म से किञ्चित् मात्रही चलित नहीं हुवेहै. ऐसी तरह से द्रु-द श्रावक व्रतों की आराधना कर दशोही प्रथम स्वर्ग के अरुण नामे विमाण में चार यलयोपम के आयुष्य वाले देवों हुवे. वहां से चक्कर दशोही महाविदेह क्षेत्रमें उत्तम मूलस्थान में जन्म लेकर सममले करणीकर कर्मखपा मोक्ष पावेंगे.

### धन्नावा सारथवाही का दृष्टान्त.

राजग्रही नगरी के प्रभूत धनी धन्नावा सारथ वाही की भद्रा भार्या के नागदेव की मान्यता लिये बाट एक पुत्र हुवा जिसका "देवदत्त" नाम रखवा. उसे शेट का विश्वाम् पंखक दाम शिणगार सजा क्रिडा के लिये बाजार में लेगया, बहुत बच्चों में खेल्वा छोड आप सोगया. वहां तस्कर कला में कौशल्य "विजय" चोर उसदेवदत्त को निर्वारम देख उठलेगया- उसके भूषण लेकर उमेमरकर अन्धारे कूथेमें डाल आप वृक्षोंकी कच्छा में छिप गया, पीछे दाम जागृत हुवा बच्चा नहीं मिलने से रुदन करता शेट ने कहा, शेटने राज में इत्तल्लादी, राज भटों मृत्युक पुत्र को और चोर को हुंढलाये. शेट मपरिवार अत्यन्त शोकमें पीडित होपुत्र का मृत्यु कार्य किया; और चोर को शिर्कार ने काष्ठके खोड में केद किया. कितनेक दिन बाट शेट जी टाण की चोरी कर राजा के गुन्हेगार हुवे., उनको राज भटने जिम खोडे में विजय चोर का पांव फसाया या उमी खोडे के एक छिड में शेट के पग को फसाया भोजनकी वक्त शेटाणी ने पंखक दाम के हाथ शेट के लिये तस्कर शाला में भोजन पठाया. उमे शेट भोगवने लगे तब वो चोर बोला की इम भोजन का कुल हिस्सा मुझे भी दीजिये. परन्तु शेटने उमे अपने प्यारे पुत्र का धानिक जान भोजन नहीं



मुनि ने नाम बता कर कहा कि नाना करते एकही दम सब शाख डाल दिया. गुरु-जीने किंचित शाख जवान पर रक्खा तो हलाहल जेहर सा कदुक लगा, तब हुकुम दिया कि ऐसे आहार से तुम प्राणमुक्त हो जावोगे इसलिये इसे निर्वद्य स्थान परिठा आवो. हुकुम प्रमाणकर कुम्भार के निभाडे में आ परिक्षा निमित्त एक बिन्दु डालकर देखा तो तुर्त अनेक कीडीयों उसे खाते ही मरगइ! मुनिने विचारा कि-किंचित आ-हार से इतनी हिंसा तो सब डालने से तो महा जुलम हो जायगा. और गुरु जी का हुकम तो निर्वद्य स्थान परिठाने का है. इसलिये निर्वद्य स्थान तो मेरा पेट है, कदा-पि इस से मैं मरभी गयातो कुछ फिकर नहीं. क्योंकि मेने संयम दया निमंतही लि-या है, लेखे लगेगा! यों सोच तुर्त खीर सक्कर की माफिक उस शाख को खा गये!! कि तुर्तही अति दारुण व्याधि उत्पन्न हुई, गुरुजी के पास आने अशक्त हो और आयु अन्त समिप्य जान पदोप गमन संथारा कर सर्वार्थ सिद्ध नामें महा विमान में ३३ सागरोपम के आयु वाले उत्कृष्ट सुख के भुक्ता एकावतारी देव हुवे!

आचार्यजी ने धर्म रुची को गये बहुत देर हुई जान चौकस करने दूसरे साधु को भेजे, वो देख आये और अकाल मृत्यु के हाल दर्शिये. सुन कर गुरुजी कोपाय-मान हुवे और साधुओं को हुकम दिया कि बीच बजार में खड़े हो पुकार कर कहो कि-हमारे तवन्धी साधु को नागश्री ब्राम्हणी ने जेहर देकर मारडाले है! साधुओंने वैसाही किया. नाग श्रीके कुटुम्ब ने यह बात सुन उसको घरमें से निकल दी. उसके भी शरीर में कुष्ठ रोग प्रगटा और महा निन्दा महा विदम्बना सह कर नरकमें गई!

मतलब—साधु को किसी के धर्म प्रकाश ने नहीं यह उत्सर्ग मार्ग है, परन्तु अन्य लोक जानेगें कि साधुओं में लडाइ हूइ जिस से एक साधु को जेहर दे मार डाले-या जेहर खा मरगया-इत्यादि धर्म का कलंक दूर करने धर्म घोषाचार्य ने अप-वाद मार्ग का आचीर्ण कर नाग श्री की फजीती कराइ. यों छड़े गुणस्थानी उत्सर्ग और अपवाद दोनों मार्ग में यथा अवसर प्रवृत्ति करते हैं.

### घन्ना अणगार का दृष्टान्त.

काकन्दी नगरी के घन्ना श्रेष्ठ ने ३२ क्रोड सोनैयें (मोहरों) का द्रव्य और ३२ सुन्दर स्त्रीयोंका त्याग कर दिक्षा ले निरन्तर छट २ (वैले २) रूप और पार ने मे लूखा मुका आहार कि-जिसे भिरुपारी भी गृहण न भोगवा. ऐसे दुष्कर

पत से ८ महीने में जिनका शरीर सूककर रक्त मांस राहित फक्त हड्डियों का पिंजरा रह गया. जिनके-पांव-मुँके वृक्ष की छाल जैसे, पांव की अङ्गुलीयों-मूकी मूंगकी फली जैसी, पीन्डी-कागले की जंघा जैसी, ढँचण-काग जंघा वनस्पति की गांठ जैसी, कम्मर बुढ़े वेल के पांव जैसी, पेट चमड़े की मूकी मशक जैसा, पांसलियों-कांच के ढग जैसी अलग २ दिखें, छाती पत्ते के पंखे जैसी, बाहों-अगधीये की फली जैसी, हथेली-ब्रह्म के मूके पत्ते जैसी, हस्तांगुली मूंगकी मूकी फली जैसी, गरदन-कमण्डल के गरदन जैसी, जिह्वा-पलासके मूके पत्ते जैसी, होठ-मूकी इमली जैसे, नाशिका अम्ब की मूकी गुठली जैसी. आंख बीणाके छिद्र जैसी, कान प्याज के पत्ते जैसे, मस्तक-मूके तुम्ब फल जैसा. ऐसी तरह सर्व शरीर सूक गयाथा ! तोभी-मज्जाय ध्यान भिक्षा प्रति लेखना आदि साधु की सर्व क्रिया ओका यथा विधि वक्तोवक्त आराधन-पालन करते थे, तब ही खुद श्री महावीर परमात्मा ने श्रेणिक राजा के मन्मुख १४००० साधुओं में उन्कृष्ट करणी के कर्ता धन्ना ! अणगाग कोणी बताये हैं. यह एक मान का संयारा कर कुल नव महीने की करणी में सर्वार्थ मिद्ध विमान में एकावतारी देव हुवे हैं.

### मेघ कुमारका दृष्टान्त.

राजग्रही नगरी के श्रेणिक राजा की धारणी नामक राणी के अङ्ग में उत्पन्न हुवे मेघ कुमार आमुन्दर स्त्रीयो और दहृत ऋद्धि का त्याग कर श्री महावीर भा मकि सामिष्प-दीक्षा ली. नव से छोटे होने के नवव में अन्तिम विद्याना कर मृते. रात्रि के स्वध्याय ध्यान परिटावणीया आदि क्रिया के लिये मुनियों के अवगमनमें और पतले विद्योने में जमीन चुबनेमें निद्रा नहीं आइ. तब पीछा यह जानेका विचार कर भगवन्त मन्मुख आकर राजा लेने. शम्भगये. तब भगवन्त ने फगमादा वि-प्रयो मेघ मुनि ! हमने पहिले तीन्हे भव में तुम देताट भवर्त के नजीक एक हजार द्वापरी-यों के बालक श्वेतगंगवाले सुमेर नामे गजगज थे. एवडा उष्ण जल में पानी देने को तलाव में प्रवेश करने दीचट में पन गये. तब हुमरा देरी तबनि जगज तुमने को दोनों में दहृत भाग. जिन में मान दिनों में तुम मज्ज विद्याना पर्वत के नजीक पुनः सातसो द्वापरीयों के बालक श्वेतगंगवाले गजगज हुवे जग तुम ने अग्नि में उपद्रव में दबने एक चार कोण हुमी में बस कर गति मन्दल जगजा था. तब तुम



एक काल में वन में देव, (अग्नि) लगी तब तुम सपरिवार उस मण्डल में आ खड़े रहे, उसवक्त और भी अनेक वनवासी पशुओं वहां खींचो खींच भरा गये. उसवक्त तुमने खाने कुचर ने पांव उठाया, उस पांव की जगह एक सुसलीया आगया, पांव रखते कौमल स्पर्श लगने से नीचे सुसलीये को देख तुमने विचार किया कि-वेचार लायसे बचने मेरे शरण आया और जो मैं पांव रखदू तो इसकी तो यहांही लाय हो जाय! यों करुणा भाव लाकर तीन दिन पांव ऊंचा रक्खा, जब अग्नि शान्त पड़ने से सर्व जीवों भाग गये तब पांव वादी में अकड़ा हुवा नीचे रखते तुम गिर पड़े, और मरकर दया प्रभावे श्रेणिक राजा के पूव हुवे.

सोचीये! तीसरे भव में निरर्थक महा कष्ट सहा जिसका कुछ भी फल न हुवा और दूसरे भव में दया निमित्त थोड़ा भी कष्ट सहा तो यह क्रोद्धि और संयम तक प्राप्त कर सके! तो अब यहां कितनाक कष्ट सहना है! सम भाव से प्राप्त वक्त का लाभ लेवोगे तो आत्माका कल्याण हो जायगा.

ऐसा जिनेंद्र का सद्बोध श्रवण कर मेघ मुनि ने फक्त दया निमित्त दोनों ओर खो की संभाल करने का आगार रक्खा, बाकी सब शरीर मुनिराजों की सेवा में समर्पण कर-तहामन से खूब विनय वैयावच्च ज्ञान ध्यान तप कर विजय विमान में ३२ सागर के आयुवाले एकावतारी देव हुवे.

### प्रसन्न चन्द्र राज ऋषि का दृष्टान्त.

राजग्रही नगरी के श्रेणिक राजा गुणशील वाग में विराजे श्री महावीर भगवन्त के दर्शन करने जाते, रस्ते में-प्रसन्न चन्द्र ऋषि को सूर्य के तापमें अडोल ध्यानान्ध देख आश्चर्य चकित हो भगवन्त को नमस्कार कर पूछा कि-महाराज! दुष्कर ध्यानी मुनि मरकर कहाँ जायगे? भगवन्ते फरमाया कि-जो अभी मरेतो पहिली नरक में जाय. श्रेणिक-हँ, पहिले नरक! भगवन्त-नहीं दूसरी नरकमें, श्रेणिक-है दुसरी!! भगवन्त-नहीं तीसरी. यों श्रेणिक आश्चर्य चकित हो प्रश्न करता गया, और भगवन्त चौथी पांचवी छठी जावत सातवी नरक में जानेतक का फरमादिया. श्रेणिक ने फिर भी पूछा कि-ऐसे महा मुनि सातवी नरक में जाय? तब भगवन्त ने फरमाया कि-नहीं छठी में यों, फिर भी श्रेणिक आश्चर्य चकित हो पूछता गया और भगवन्त-पांचवी चौथी तीसरी दूसरी पहिली भवनपाति वाणव्यातर जोतिषी देवलोक ग्रीवक

और अनुत्तर विमान का नाम फरमाते ही देव दुंदभी का नाद सुनाया, तब श्रेणि-  
ने पूछा कि-यह दुंदभी क्यों बजो? भगवन्त ने फरमाया कि प्रसन्न चन्द ऋषि केवल  
ज्ञानी हुवे हैं. यों सुण श्रेणिक बडाई आश्चर्य चकित हो पूछा कि-बडी ताजुब की  
बात है, अबी सातवी नरक और अभी केवल ज्ञान, इस्का सबब क्या? तब भगवन्त  
ने फरमाया कि-तुमारे साथ के एक भट्ठने उन मुनि को देखकर कहा कि-यह साधु  
बडा निर्दयी है. बेचारे नादान बच्चे पर सब राज भार डाल साधु बन गया, उसे पर-  
चक्री सता रहे हैं. इतना सुनतेही राज ऋषि कोपित हो परचक्री के साथ मनोमय सं-  
ग्राम सुरु किया (उसवक्त तुमारा प्रश्न करना हुवा) अनेक नरों का संहार कर शत्रु  
को मारने चक्र लेने जब शिरपे हाथ डाला (उसवक्त सातवी नरक के दलिये भेले  
किये) तो रुंड मूंड मस्तक पाया, उस वक्त चौंक गये, और भान आया कि-मैंने सा-  
धु होकर यह क्या जुलुम किया! यों विचार करने लगे (उसवक्त संचित कर्मों के द-  
लिये खपने लगे) त्यों त्यों ऊंचे चढते गये और शुद्ध ध्यान में एकाग्रता लगने से  
घन घातिक कर्म नष्ट कर केवल ज्ञान पाये! यों सुण श्रेणिक राज बडे खुशी हुवे,  
और भगवन्त को तथा राज ऋषि को नमस्कार कर स्वस्थान गये.

यों परिणामो की धाराओंके उतर चढ पणे श्रेणी में उत्तर चढ होती हैं.

### हरकेशीवल ऋषिका दृष्टान्त.

पूर्व भव में जाति का और रूप का अभिमान करने से चण्डाल की जाति में  
उत्पन्न हुवे, हरा काला रंग का वलिष्ट विद्रूप शरीर होने से 'हरकेशी वल' नाम पाये,  
कुरूप के अपमान से घबराकर पहाड से पडकर मरती वक्त मुनि के दर्शन होते ही  
मुनि ने उनको अकाम मरण मे वचा कर सकाम मरण मरने का बोध किया, 'जिमे  
सुन वैराग्य प्राप्त हो दीक्षा धारण करी. और निरन्तर मांस २ तप करने का अभिग्र'  
ह धारण कर बनारसी नगरी के बाहिर यज्ञ के मन्दिर में ध्यान धारण कर रहे उन  
के उग्र तप के प्रभाव से तिट्ठक (टीवल्) वृक्ष का वामी देव मुनि का भक्त हुवा. उ-  
सवक्त बनारसी पुरीके राजाकी भद्रानाम महा दिव्य रूप की धारक कन्या महेन्दी-  
यों के सङ्ग उस यज्ञ के अन्धरे देवालय में क्रीडा करने आई. और मुनि को विद्रूप  
देख मुह फिराकर धूक दिया. उनी वक्त यलने उमका मुह बाँका करदिया. पुत्रीका  
दुःख सुन राजा देवालय में आया तब यज्ञ मुनि के शरीरमें प्रवेश का बोला कि-यह

कन्या मुझे देवोंगे तोही आराम पावेगे मुनिके शापसे राज डरकर मुनिके साथ उस भद्राका पाणी ग्रहण कराया कि-उसीवक्त वो यज्ञ-मुनिके शरीरमेंसे निकल गया. तब मुनिने भद्रासे कहा वाह! साधूसे दूर रहे-छीना नहीं. भद्र बोली-अभी आपने मेरा पाणी ग्रहण कर मुझे दासी बनाइ, और अब यह क्या फरमाते हो! साधु बोले-में यह न जानताहूं. मैं तो कन्क कन्ता का त्यागी साधु हूं यों कहते चलपडे. कन्या रुदन कर ने लगी. राजा आदि बहुत से लोको मुनि के आडे फिर बहुतही समझाए, परन्तु मुनि मेरु की माफिक अडोहो वहां से दूर जा अन्य एकान्त स्थान में ध्यान धरा.

कन्याकी यह दिशा देख राजा खेदित हो पुरोहितजी से पूछा कि अब इस कन्या का क्या करना! लोभी पुरोहित जी बोले कि ऋषि पात्रि ब्रह्म पात्रि हो शक्ति है, भोले राजा ने उस भद्रा को पुरोहित जी को देदी. पुरोहित सहर्ष लग्न करने यज्ञ का आरंभ किया.

उसवक्त मुनि यज्ञस्थान की तरफ पारणा (आहार) लेने पधारे, वहां एक अध्यापक वचोको पढा रहाथा, व बोला कि-रे विकराल रूप और मलीन वस्त्रके धारक भिक्षु! इधर से चलाजा.

यों सुनकर मुनि फिरने लगे. तब वो तिन्दुक यज्ञ मुनि के शरीरमें प्रवेश कर कहने लगा कि-में परार्थ किया हुवा विर्वध्य-निर्दोष भोजन का ग्रहण करने वाला साधु हूं, यहां बहुतसा आहार निपजा देख लेने आया हूं.

ब्राह्मण बोला-वेदों के जानने वाले विप्रों सिवाय यह यज्ञ में निपजा हुवा भोजन दुसरे को कदापि नहीं दिया जाता है,

यज्ञ बोला-जैसे कृपी ऊंच नीच दोनों प्रकार के क्षेत्र में बीज डाल कर लाभ प्राप्त करता है. तैसे ही कैसीभी श्रद्धा से मुझे दीजीये.

ब्राह्मण बोला-उत्तम क्षेत्र ब्राह्मणोंकाही है, उन सिवाय दुसरेकोभी नहीं दिया जायगा. क्यों वकवाड करता है. चलाजा.

यज्ञ बोला-विषय कपाय युक्त विप्रों का क्षेत्र अलाभ करी है, में ब्रह्मचारी निष्पत्तिग्रीही हूं जो मुझे न दोगे तो यज्ञ का फल कैसे प्राप्त करसकोगे?

इतना सुन्तेही अध्यापक क्रोध में आ छत्रों को हुकुम दिया कि ब्राह्मणोंके निन्दक अभिमानी इस भिक्षुको मारकर निकाल दो-कि एक दम छत्रों मुनिको मार ने खडे हुवे. उनका कोलाहल सुन भद्रा देख कर बोली-अरे यह क्या जुलम करते

हो! मेरा वमन आहारकी तरह त्याग कर जाने वाले, देविन्द्र नरिन्द्रके पूज्य, इन महा तु भाग को सत्ताकर क्यों दुःखी होते हो, यह कोपेंगे तो सब को जलाकर भस्मकर देंगे, ऐसे भद्रा के वचन को जब उन कुमारों न नहीं माना. तब यज्ञ ने उनको जमीन पर पछाड़ रुद्र वमन करते हुवे मुला दिये! और मुनि के शरीर में से निकल आकाश में खड़ा तमाशा देखने लगा.

यह अनर्थ निपजा देख यज्ञ कर्ता ब्राम्हणों दोड़ आये, और मुनिको नमस्कार कर कहने लगे. अहो क्षमा समण मुठ वालकों पर इतना कोप करना उचित नहीं हैं. अपराध माफ करो. और इस यज्ञ शाला में से इच्छित आहार ग्रहण कर हमें कृतार्थ करो.

मुनि बोले-मेरे मन में किञ्चित ही क्रोध नहीं है. परन्तु मेरी वेयावच्च के लिये यज्ञ ने यह किया दिखता है. फिर मुनि शुद्ध आहार ग्रहण किया वहां देवों ने पंच द्रव्य की वृष्टि करी. देव दुंदभी बजाइ. और अहो दान महा दान ऐसा शब्दों-चार करते अकाश में नृत्य करने लगे.

आश्चर्य चकित हो ब्राम्हणों आपस में कहने लगे कि-तप का फल तो यह प्रत्यक्ष ही दिखता हैकि-चाण्डाल जाति में उत्पन्न हुवे मुनि देवों से पूजित हो रहे हैं. और यज्ञका फलतो कुछ भी दृष्टि नहीं आता है.

तब मुनि बोले कि-अहो ब्राम्हणों बाह्य धुद्धि मे और हिंसक जय मे किमीभी प्रकार का कल्याण होणे वाला नहीं है. जो आत्म कल्याण चाहते होवो तो धर्मतीर्थ के ब्रम्हचर्य रूप द्रह में न्दान कर. जीव रूप कुंड में तप रूप अग्नि प्रज्ज्वलित कर कर्म रूप इन्धन को जलावो. सर्व जीवों शान्ति रूप मन्त्र का पठन कर पवित्र बनो!

ब्राम्हणों ने यह बोध महर्ष धारण किया. मुनि बहुत वर्ष मंथम पाल बहुत जी बोंका उद्धार कर मोक्ष प्राप्त किया.

सारांश यह हैकि-नीच कुल. कुम्प. बल्लवन्. सुख की प्राप्ति के लिये मरण सन्मुख हुवे. ऐमों को अत्युत्तम कुली दिव्य सुन्दराङ्गी राज ऋद्धि आदि मन्मूर्ण जी वित तक के सर्व द्रव्य सुखों को प्राप्ति बल्लकार (अग्रह) मे होने दी. उनका विशाकी माफिक त्याग कर निजान्त सुख में रमण किया!! ऐमे निर्विषयी निर्वाडक होवे सो निश्चि करणी जानना.

## श्री गौतम गणधर का दृष्टान्त.

गोवरधन ग्राम के गौतम गोत्री वसु भूति विप्र की पृथ्वी नामे स्त्रीने इन्द्र म-वन का स्वामा देख, सुवर्ण वरण बलिष्ठ शरीर धारक पुत्र प्रसवा, जिसका इन्द्रिभू-ति नाम रक्खा, वो योग्य वय प्राप्त होते चार वेद छे शास्त्र चउदह विद्या आदि व्यवहारिक विद्या में महा प्रवीन पांचसो छत्रों के मालिक होने से जगत् में जवर प्र-तिष्ठथा पाये. वो मध्य पापापुरी नगरी के सोमल ब्राम्हण के यज्ञ मण्ड मे बहुत स-न्मान से आकर यज्ञ क्रिया के अग्रभागी कर्ता बने. उसवक्त ऋजु बालका नदी के कण्ठ पर गोदु आसनस्थ श्री महावीर भगवन् को केवल ज्ञानी की प्राप्ति हुई जिनके समवशरण की रचना मध्यपापपुरी के बाहिर देवताओंने रची. वहां क्रोड़ों गम देव यज्ञशाल ऊपर हो समव शरण में जाने लगे, यह देख इन्द्र भूति बोले कि-देवों भरम मे पड़ यज्ञ स्थान उल्लंघन कर कहां जाते हैं? तब किसीने कहा कि-ग्राम बाहिर ती-र्थकर समवसरे हैं, उन के दर्शनार्थ देव जाते हैं. यह सुन अभिमान मे उन्मत हो वि-वाद कर तीर्थकर का परांजय करने पांचसो छत्रों के परिवार से समवशरण में आ-ते ही जिनेन्द्र की विभूति पेख दिग मुढ बन गये. और विचार ने लगे कि जो मेरा सन्देह निवारें तोही यह सर्वज्ञ. तब भगवन्त ने फरमाया कि अहो इन्द्र भूति वेद में तीन दकार हैं. जिसका क्या अर्थ होता है? यह तुम्हारे मन सन्देह है, जिसका अर्थ दया दान और दम होता है. इतना सुनते ही संवेग प्राप्त हुवा, पांच से छत्रों सहित दीक्षा धारण कर एक मुहूर्त मात्र में १४ पूर्व के पाठी हुवे. जाव जीव बेले २ पार-णा का तप धारण किया, चार ज्ञान के धारक हुवे. सदा प्रभूकी समिप्य रहकर अ-नेक गम प्रश्नोत्तर किये. एक वक्त विचार हुवा कि-मेरे पीछे से दीक्षा लेने वाले अ-नेक केवली होगये, और मुझे अभी तक केवल ज्ञान प्राप्त न हुवा, सो करण क्या? यह भाव जान भगवन्त गौतम + को अपने पास बुलाकर कहने लगेकि-अपन गये भव में साथ रहे हैं. और आगे भी बरोबर होंगे, छोटे बड़े होतेही रहते हैं. परन्तु तु-म्हाग मेरे पर प्रेम है, यह मोह आभरणही केवल ज्ञान को को रोक रहा है. यों सुण गौतम खुशी हुवे, और तप संयम से अपनी आत्माको भावते विचरने लगे.

+ नाम तो इनका इन्द्र भूती था, परन्तु गौतम गोत्र होनेके सव्व से भगवन्त इनको 'गौतम' नाम से ही बोलातेथे.

भगवन्त महावीर श्वामी अपने आयुष्य का अन्तिम अवसर जान गोतश्वामी को देव समन ब्राम्हण को प्राति बोधने भेजे, और फिर आधी रात्री को मोक्ष पधार गये. देवगमके आवागमन से भगवन्त निर्वाण प्राप्त हुवे यह समाचार गोतम श्वामी को मालुम होतेही मृरछा खाधरती पर पड गये, और सावध हो कहने लगे कि-हे भगवन् ! मुझे अन्तिम अवसर में दूर किया क्या मैं-आपका पल्ला पकड रोकता कि ज्ञानका हिस्सा मांगता. बगैरे शोक करते २ भान में आ विचारने लगे कि-वो वीतराग सर्वज्ञने जैसा देखा वैसा किया. रे आत्मान् ! तूं रागीद्विषी बन क्यों कर्म वन्ध करता है. बगैरा शुभ ध्यान ध्याते चारो घन घातिक कर्मोंका क्षय कर केवल ज्ञान पाये, और १२ वर्ष बाद मोक्ष पधारे.

सारांश-श्री भगवन्त समान परम विशुद्ध पदार्थपरही धर्म प्रेम भी केवल ज्ञान को आवरण भूत होता है !!

### कुंडरिक पुंडरीक का दृष्टान्त.

जम्बु द्वीप की पूर्व महा विदेह की पुष्कलावती विजयकी पुण्डरीकणी राज्य ध्यानी के पद्मनाभ राजा के कुंडरीक कुंवर ने परम सम्बेगी बन दीक्षा धारण कर अत्यन्त दुष्कर तप क्रिया के आचारण से शरीर को कष्ट-शुष्क करडाला. एकदा अपने छोटे भाइ पुण्डरीक को राज्य मुख भोगवत्ता देख मन ललचाया-संयम से परिणाम पडित हुवे, और गुप्त गुरुजी का संग छोड मेहल के पीछे की आगोक वाडी में आकर बैठे. पुंडरीक राजा यह खबर पातेही तुरंत मुनिके पास आये और मन विग्रह देख प्रश्न करने से मुनिने राज्य वैभवकी परसंस्या करी. जिस से भाइ मुनि का मन पडित देख, अपना राज्य भेष (पोशाक) मुनिको दिया. और मुनिका-उतारा हुवा भेष आप धारन कर तीन दिन के उपवास से गुरुजी के दर्शन कर फामुख लुक्खम सुक्खम शुद्ध आहार मिला सो खाने से एकदम शरीर में महावेदन प्रगटी और आयुष्य पूर्ण कर सर्वार्थ सिद्ध विमान में देव हुवे.

पीछे कुण्डरीक राज्य भोग में लुब्ध हो ताकत बढने मदिरा मांम का मेवन किया, जिस से अत्यन्त असाद्य वेदना उत्पन्न हुई; सोभी तीन दिन में मरकर सातवीं नरक में गये !!

सारांश-शुद्धाचार पाल पडवाइ होने मे भी मिथ्यात्वी होजाते हैं.

## खन्धक मुनिका दृष्टान्त.

सावत्थी नगरी के कनक केतु राजा की मलया राणी के अङ्ग से उत्पन्न हुवे खन्धक कुमर विजय सेनाचार्य का उपदेश श्रावण कर दीक्षा धारण करी, एकल विहारी हो मास २ खमण तप करते कुंतिनगरी में गौचरी के लिये पधारे. यहां इन के वनोइ पुरिषेण राजा गोख में मुनन्दाराणी के सङ्ग चोपड खेल रहे थे, उसवक्त राणी ने मुनि को रस्ते से जाते देख अपने प्यारे भ्रात का स्मरण होते ही आँखों से आश्रु टपकने लगे. यह हाल राणी के देख निघापर से राणी के चित्त का चोर मुनि को जाण, एक दम क्रोध तुर हो नीचे आ भटों को हुकम दिया कि-इस मोड़ीये को मशाण मे लेजा इस के शरीर की तमाम चमडी निकाल डालो! मुभटों दौड कर मुनि को थक्के लगाने लगे; तब क्षमा सागर मुनि ने सबव पूछा, भटोंने राजा का हुकुम सुणाया. जिससे मुनिराज विलकूल ही नहीं घबराते भटों साथ मशाण में आ आलो यणा निन्दणा कर सुमेर ज्यों अडोल ध्यानस्य खडे हुवे. ज्यों सूतार काष्ठ को छोल ता है, त्यो भटोंने मुनि के सब शरीर का चर्भ तीक्ष्ण पातणे से निकाल कर अलग किया! मुनि राज नरक निगोद की वेदना का विचार करते और अपूर्व मुक्ति प्राप्ती का सहज अवसर प्राप्त हुवा जान किंचितही द्वेष भाव धारण नहीं करते. सहर्ष सर्व बैर बदला चुका मुक्ति गये.

जिस वक्त खन्धक कुमर दीक्षाले एकल विहारी हुवे थे, उसवक्त इन के पिता ने गुप्त रीति ५०० मुभटों रक्षा निमित्त इन के साथ रखे थे. वो यह वनोइ का गाम जान वेफिकर हो हजामत स्नान भोजनादि कर्ममें लगे. और थोडा दिन रहतेही मुनि को पलट कर नहीं आये देख सब गाम में चौकस करते फिरते थे, उन को राजा की एक दासीने पैछान कर पूछने से उनने मुनि का हाल कहा, दासीने राणी से कहा, राणी ने राजासे कहा. सुनतेही राजाके आँखमें से आँश्रु टपकने लगे. तब राणी अत्यन्त अग्रह से पूछने से होनहार कह दिया. सुनते ही राणी मूर्छित हो पडगइ, हवा के साथ वात नगर में पसर गइ, ५०० मुभटों सुन अत्यन्त क्रोधातुर हो राजा को मारने महल घेर लिया. घर हानी जन हॉसी देख राजा बडा ही घबराया. दाने शाने मनुष्यों ने युक्ति से सबकों समझा कर सुस्त किये.

उसवक्त वहां केवली भगवान पधारे, राजा राणी ५०० मुभट वगैरा बहुत प-

रिपद के मध्य भगवन् ने फरमाया कि-अहो ऋतार्थिओं! “कट्टाण कम्मा न मोक्ख अत्थि” अर्थात्-कृत कर्म का फल भोगवे विन छूटका नहीं! सो प्रत्यक्षही देखीये कि खन्धक मुनिके जीवने तेरह १२ क्रोड भवके पाहिले एक काचरे फलकी त्व(छाल)चा उतारी थी वोही काचरा यहां पुरिप सेण राजा होकर मुनि की खाल उतारी!! ऐसा जान कर्म बन्ध से डरो! इत्यादि बोध श्रवण कर राजा राणी और ५०० सुभट्टों देक्षा धारण करी. करणी कर स्वर्ग प्राप्त किया.

सारांश-सब शरीरकी खाल उतार डाली तोभी नाक में शल्य और मनमें द्वेष किंचित मात्र ही नहीं लाये. ऐसी तरह जो कषाय ज्वाला को बुझाकर शान्त करतेहैं सो क्षीण कषायी कहे जाते हैं.

### श्री महावीर श्वासीका दृष्टान्त.

क्षवी कुण्ड ग्राम के भिद्वार्य महाराजाकी मुलक्षणी ब्रमला देवी को १४ महा स्वप्न को दे. दशवे स्वर्गमे चक्कर अवतरे. अत्युत्तम ऊंच ग्रहोंके संयोगमे जन्मे. ल-पञ्चदिग्ग कुमारि का और चौमठ इन्द्र आदि देवों ने जन्म उत्सव किया. पग के अ-शुंठे के दवाने मे लक्ष योजनका मेरु पर्वत हलाने मे 'महावीर' नाम पाये. जन्ममेही तीन ज्ञान युक्त होने से विद्याभ्यास की कुछ जरूर नहीं. युवावस्थान में यशोदाजी नामक स्त्रीके सथ पाणी ग्रहण किया. जिसमे एक पुत्रीकी प्राप्ति हुई; मात पिता स्व-र्मस्य हुवे बाद नंदीहृदय भाई को मंतेप ने ब्रह्मचर्यादि नियम युक्त घर में रहे. फिर बारह महिने तक-३,८८,८०,००,००० इत ने मोनैये का दान दे मंचमलिया. उभी-वक्त मनः पर्यव ज्ञान की प्राप्ति हुई. फिर कर्मों का क्षय करने माही बाग वर्ष और १५ दिन तक अति दुष्कर तप किया. इतने दिन मे फक्त इग्यारे महीने उन्नीस दिन आहार लिया और फक्त दो घड़ी ही निद्राली. देव मनुष्य तिर्यच मन्वानि अति दुःख अनुकुल प्रतिकूल परिमह रहे. जहां २ परिमह उत्पन्न होने का जाना बढ़ा. सम्मुख होगये. और परिमह दानाओंपर पुनः उपचार कर स्वल्प दोष मे स्वर्ग गामी बनाये. ऐसे क्षमा शूर अर्हत भगवन् चारों धन धातक कर्मोंका ममूल नाश कर. केवल ज्ञान. केवल दर्शन. चौतीन अनिग्रह. आदि महान ज्ञाते को प्राप्त हो द्वादश जाति की पणिपद में पैंतीस गुणयुक्त दिव्य द्वावीका प्रज्ञान लिया. जिन के महान प्रताप मे अभीतक धर्मदीप्त योगी हैं. जौन अन्तिम आठों कर्म क्षय कर मोक्ष पधारे.



## गजसुकुमाल मुनीजीका दृष्टान्त.

सोरठ देश द्वार का नगरी के वसुदेव महाराजकी देवकी राणी के अंगसे उत्पन्न हुवे, हाथी के तालुवे जैसे रक्त और सुकुमाल शरीर के धारक भज सुकुमाल कुमर कृष्ण वासुदेव के साथ नेमीनाथ भगवान् के दर्शनार्थ जाते, रस्ते में महा दिव्य रूप वति सोमल ब्राह्मण की सोमा नामक पुत्री को कृष्णजी देख कर गजसुकुमालजी के पाणी गृहणार्थ कुंजारे अन्तेवर में पहुँचा कर, भगवान के पास आये-सवित्री वन्दन कर व्याख्यान श्रवण कर गज सुकुमाल जी वैरागी बने. अत्यन्त अग्रह से माता पितादि की आज्ञाले दीक्षा धारण करी. और भगवन्त से पूछा की जलदी मुक्ति मिले ऐसा रस्ता मुझे बताइये. सर्वज्ञ प्रभु वैसाही होतव जान हुकम किया कि-महाकाल मशाण में १२वीं भिक्षुक प्रतिमा का आराधन करने से शीघ्र मुक्ति मिलेगी. उसी वक्त भगवन्त को नमस्कार कर महाकाल मशाण में एकही पुद्गलपर अनिमेष-एकाग्रदृष्टि रख ध्यानस्थ खड़े रहे. उसवक्त लग्न सामग्री लेकर पीछा आता सोमल ब्राह्मण मशाण में गज सुकुमाल मुनि को ध्यानस्थ देख कोपातुर हुवा. रे पापी ! बिना कारण मेरी पुत्री को बाल विद्रापना दे साधु हुवा, तो अब देख मझा. ऐसा कह तालव के किनारे की चिक्कनी मड़ी की मुनिराज के शिरपर चौगिरदा पाल बान्ध जलते मुरदे की चिता में से खेरके झग २ ते अझारके खीरे ठीकरी में ले मुनि राज के शिरपे भर दिये. और अपने घाँको चले गया. उस वक्त मुनिराजकी खोपरी जलने लगी, शरीर की नशों तड २ टूट ने लगी, इत्यादि अत्यन्त तीव्र महादारुण प्रबल वेदना उत्पन्न हुई. मुनि ने शिर हिलाना तो दूर रहा ! परन्तु नाक में शल्य भी नहीं डाला विचारा कि-मेरे खुसरेने मेरे शिरपर मुक्ति गमन रूप पाघ बान्ध है. इसे नीचे डाला अनेक जीवों के घात के साथ संयम और प्राप्त होते मुक्ति सुख का गमाने वाला कदापि नहीं बनूंगा ! यह अलभ्य महा लाभ कदापि नहीं गमावुंगा. इत्यादि निश्चय से राग द्वेष रहित शुद्ध भावना भावते सुमेरे गिरी की माफिक तनो योगों को अडोल स्थिर रख महा परिसह सम भाव सहन करते आठोही कर्मोंका समूल नाश कर मोक्ष पधारे. बाद शरीर ने धरणीशरण धारण किया ! !

सारांश-यों योगों की स्थिरी भूतता होने से मोक्ष मिलती है.

७ सातवा गुणद्वारका अर्थ.

### पुद्गल परावर्तन का स्वरूप.

१ द्रव्य से, २ क्षेत्रसे, ३ काल से, और ४ भाव से में यह ४ सूक्ष्म, ४ वादर, यों ८ तरह से पुद्गलों का परावर्तन होता है और कितनेक स्थान भावसे के स्थान भव से पुद्गल परावर्तन के दो भेदरक्ते हैं. और कितनेक स्थान उन ८ में भवसे के दोभेद मिलाकर १० भेद पुद्गल परावर्तन के किये हैं. तो अलग २ यहां कहते हैं :—

१ द्रव्य से वादर पुद्गल परावर्तन सो-(१) औदारिक, (२) वैक्रिय (३) तेज-स, (४) मन, (५) भाषा, (६) कार्यण, और (७) श्वाशोश्वात, इन ७ प्रकार के पुद्गलोंके सर्वलोक व्यापी प्रमाणों को भेद संघात तथा वादर सूक्ष्म परिणमन कर स्व-स्व वर्गणा योग्य परिणत स्कन्ध औदारिकादि नो कर्म पणे जितने काल में एकजीव अनन्त भव भ्रमण करता परिणमाकर-ग्रहणकर स्पर्श कर-छोडे. उसे वादर द्रव्य पुद्गल परावर्तन कहना. इत में जो एक वक्त ग्रहण किये हुवे पुद्गलो को दूसरी वक्त ग्रहण कर उसे ग्रहीत ग्रहणी द्वार कहना. तथा पहिले कितनेक ग्रहण किये और कितनेक बिना ग्रहण किये ऐसे दोनों तरह के भिले पुद्गलो ग्रहण कर उसे मिश्र ग्रहण द्वार कहना. और पहिले ग्रहण नहीं किये ऐसे पुद्गलों को जो ग्रहण करे सो अग्रहीत ग्रहण द्वार कहना. इन तीनों में से ग्रहीत ग्रहणद्वार और मिश्र ग्रहण द्वार इन दोनों तरह के पुद्गलोंको छोड कर, अग्रही ग्रहणाद्वार जो पुद्गलों ग्रहण करे, वो पुद्गलों ही यहां गिनती में आते हैं. बाकी के गिनती में नहीं लेना. यों एक औदारिक पणे, दुसरे वैक्रिय पणे, जावत सातवे श्वाशोश्वात पणें सात परिणाम एकेक अणु के होते हैं. यों सर्व वर्ती द्रव्य के सात परिणाम एक जीव पूर्ण कर तब वादर द्रव्य पुद्गल परावर्तन पूर्ण होता है. +

२ द्रव्य से सूक्ष्म पुद्गल परावर्तन सो-सर्व लोक, वर्ती अणुको औदारिकादि पणे परिणमावे. परन्तु इतना विशेष. जो औदारिक पणे परिणमावते बीचके भवों में जो जो वैक्रियादि पणे पुद्गल ग्रहण करे वो यहां गिनती में नहीं लेना. यों अनन्त

+ इस में आहारिक शरीर ग्रहण नहीं किया. इसका यह सबब हैकि-एक जीव आहारक शरीर चार वक्त से अधिक नहीं करता है, इसलिये इसके सब पुद्गलों के साथ परावर्तन होता नहीं है. इसलिये गिना नहीं.

भवों कर सर्व लोकके अणु औदारिक पणे परिणमा कर-ग्रहण कर स्पर्श कर-छोड़े, उस वक्त प्रथम औदारिक सूक्ष्म द्रव्य पुद्गल परावर्तन होवे. फिर ऐसीही तरह लोक के सर्व अणु के वैक्रिय पणे परिणामावे. ग्रहण कर छोड़े तब दुसरा वैक्रिय, सूक्ष्म द्रव्य पुद्गल परावर्तन होवे. ऐसे ही तेजस शरीर पणे जावत सातवा श्वाशोश्वास पर्यंत पणे तक सब पुद्गलों ग्रहण कर स्पर्श कर छोड़े, इस में सब से कर्मण पुद्गल परावर्तन कां काल अनन्त है, परन्तु दुसरे की अपेक्षासे स्तोक (थोड़ा) जाणना. उस से तेजस पुद्गल परावर्त काल अनन्त गुणा, उस से औदारिक पुद्गल परावर्तन काल, अनन्त गुणा, उस से श्वाशोश्वाल पुद्गल परावर्तन काल अनन्त गुणा, उस से मन पुद्गल परावर्तन काल अनन्त गुणा, उस से भाषा पुद्गल परावर्तन काल अनन्त गुणा, उस से वैक्रिय पुद्गल परावर्तन काल अनन्त गुणा. अब इस अल्प बहुत का सबव क होते हैं:-कर्मण पुद्गल परावर्तन सब भवों में ग्रहण करता है, जिससे जलदी भरा जाता है. उस कर्मण से तेजस अनन्त गुण हीन है, क्योंकि उस से अनन्त गुण अधिक काल में भरावे, यों सर्वोंकि अल्प बहुतता अपनी बुद्धि से विचार कर लेना चाहिये. गये काल में एक जीव के अनन्त वैक्रिय पुद्गल परावर्तन हुवे. उस से अनन्त, अधिक भाषा पुद्गल के परावर्तन हुवे. उस से अनन्त गुण मन पुद्गल के परावर्तन हुवे, उस से अनन्त गुण श्वाशोश्वास पुद्गल के परावर्तन हुवे, उस से अनन्त गुण औदारिक शरीर के पुद्गल परावर्तन हुवे, उस से अनन्त गुण तेजस पुद्गल के परावर्तन हुवे और उस से अनन्तगुण कर्मण पुद्गल के परावर्तन हुवे. ऐसे सब पुद्गल परावर्तनों एक जीवने अतीत (गये) काल में कर के छोड़े हैं. \*

३ क्षेत्र से वादर पुद्गल परावर्तन सो-सर्व लोक के आकाश प्रदेशों जो घनां-

\* कितनेक आचार्योंका यह मत है कि-औदारिक वैक्रिय तेजस और कर्मण इन चारों शरीर पणे सर्व लोक वर्ती प्रमाणों जो ग्रहण करता है वो गिनती में आते हैं. यों कर के सर्व प्रमाणों चारों शरीर पणे परिणमा कर छोड़े सो वाद द्रव्य पुद्गल परावर्तन. और अनुक्रम से एकेक शरीर पणे परिणामावे, ऐसी तरह सर्व अणुक एक शरीर पणे परिणमा रहे, फिर दूसरे शरीर पणे परिणामावे. परन्तु औदारिक परावर्त में वैक्रियादि पुद्गल ग्रहण करे वो गिनती में नहीं आवे. यों अनुक्रम से चारों ही प्रकारकी सर्व अणुक परिण-  
से सूक्ष्म द्रव्य पुद्गल परावर्तन होता है.

गुल आकाश खण्डके प्रदेशों का समय २ प्रते हरण करते असंख्यात काल चक्र वीत जावे, ऐसे सूक्ष्म आकाश के प्रदेश हैं. उन सर्व लोक के आकाश के प्रदेशों को जिस वक्त एक जीव अनेक भवकर स्पर्शे अर्थात्-सर्व आकाश प्रदेशों पर मृत्यु पावे, उस में जिस आकाश प्रदेश पर एक वक्त मृत्यु पाया, उसही आकाश प्रदेश पर दूसरी वक्त मरण पावे, वो गिनती में नहीं. यों सर्वाकाश प्रदेश को मरण कर स्पर्शे × जिसे बादर क्षेव पुद्गल परावर्तन कहना.

४ क्षेव से सूक्ष्म पुद्गल परावर्तन सो-अनुक्रम से अर्थात्-जिस आकाश प्रदेश की श्रेणीपर एक वक्त मृत्यु पाया, उस ही आकाश प्रदेशपर किंचित ही अन्तर नहीं छोड़ता नजीक दूसरी वक्त मृत्यु पावे, यों मरण कर एक आकाश श्रेणी पूर्ण स्पर्शे, फिर दूसरी आकाश श्रेणी इसही तरह से मरण कर सम्पूर्ण स्पर्शे, इस में प्रथम मरण किये स्थान में दूसरी वक्त मरण करे सो गिनती में नहीं, यों अनुक्रम से श्रेणि बन्ध प्रतर बन्ध प्रादेशों मरणकर स्पर्शता हुवा सर्व लोकके सर्व (असंख्यात) आकाश प्रदेश स्पर्शे सो क्षेवसे सूक्ष्म पुद्गल परावर्तन.

५ काल से बादर पुद्गल परावर्तन सो-बीस क्रोडा क्रोडी सागरोपम प्रमाण काल चक्रहै. उसके सब समय मरण कर जीव स्पर्शे, अर्थात्-जब काल चक्र शुरू होवे उस के आदि समय से लगाकर अन्तिम समय तक के सब समयों में मरण करे, जिस समय एक काल चक्र में मरण पाया उसी समय बहुते काल चक्रों में मरण पाया वो गिनती में नहीं आते हैं, परन्तु अन्य दूसरे तीसरे चौथे आदि अन्तिम समयतक मरे सो ही गिनती में गिने जाते हैं. यों सब काल चक्र के समयों को मरण कर स्पर्शे सो काल से बादर पुद्गल परावर्तन.

६ काल से सूक्ष्म पुद्गल परावर्तन सो-एक काल चक्र के प्रथम समय में मरण कर फिर दूसरे चक्र के दूसरे समय में मरण करे, फिर तीसरे चक्र के तीसरे समय में मरण करे, यों एकेक काल चक्रका एकेक समय ही गिनती में आता है, परन्तु बीच के संख्यात असंख्यात जावत अनन्त काल चक्र तक मरण करे सो गिनती में नहीं आता है. यों असंख्यात मरण में भी अनन्त चक्र वीत जाते हैं. क्योंकि पहिला

---

× यद्यपि जीवात्म असंख्यात प्रदेशी है सो असंख्याकाश प्रदेश अवगाह रहा है. तद्यपि कार्य की मुख्यताकर एक प्रदेश ही लिया है.

दूसरा तीसरा यों अनुक्रम से समयों में मरण करे सोही गिनती में लिये जाते हैं. ऐ से काल चक्र के अन्तिम समय तक मरण कर स्पर्श सो काल से सूक्ष्म पुद्गल परावर्त न जानना.

७ भाव से वादर पुद्गल परावर्तन सो-रस बन्ध हेतु कपायादि अध्यवसाय स्थानक मन्द मन्दतर मन्दतम इन के भेद असंख्यात लोकाकाश प्रमाण है, जिस वास्ते सीत्तर ( ७० ) क्रोडा क्रोड सागरोपम के समय प्रमाण स्थिति स्थानक में असंख्यात रस बन्ध हेतु अध्यवसाय स्थानक हैं, वो सब अध्यवसाय स्थानक अनुक्रम से मरण कर स्पर्श, अर्थात्-इन रसबन्ध के स्थानक किसी वक्त मंद मदतर, मदतमः तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम. ऐसे स्थानक में मरण करे, जिस वक्त एक जीव सर्व स्थानक स्पर्श कर पूर्ण करे सो भाव से वादर पुद्गल परावर्तन.

८ भाव से सूक्ष्म पुद्गल परावर्तन सो-पहिले जघन्य अध्यवसाय में मरण पाकर, फिर किसी कालान्तर में उस चढते दुसरे अध्यवसाय स्थानक मे मरण पावे फिर उस से चाढते तीसरे अध्यवसाय स्थानक में मरण पावे यों एकेक चढते स्थानक मे मरण पावे सो ही गिनती में आते हैं, परन्तु बीच में ज्यादा कम अध्यवसाय स्थानक में घरे सो गिनती में नहीं. यों अनुक्रम से निरन्तर पने जघन्य से लगाकर उत्कृष्ट अध्यवसाय के स्थानक मरण कर स्पर्श्ये उस के बीचमें वोही अध्यवसाय तथा सान्तर अध्यवसाय स्थानक में मरण करे. वो भी गिनती में नही आते हैं. पहिले के अध्यवसाय से चढता स्थानक ही गिनती में आता है. सोभाव से सूक्ष्म पुद्गल परावर्तन.

(७-८ प्रकारान्तर से कितनेक आचार्य-५ वर्ण, २ गन्ध, ५ रस, ८ स्पर्श्य और २ अगुरु लघु इन २२ बोलों के एक गुण से लगा कर जावत अनन्त गुणतक जितने पुद्गल लोक में हैं उन सबोंको मरण कर स्पर्श कर छोडे सो भाव से वादर पुद्गल परावर्तन, और प्रथम एक गुण काला फिर दो गुण काला यों अनुक्रम से जावत अनन्त गुण काला जितने प्रमाणुओं हैं उने स्पर्श. फिर एक गुण हरा दोगुण हरा जावत अनन्त गुण हरे प्रमाणुओं को अनुक्रम से स्पर्श. ऐसे ही फिर लालके, फिर पीलके, फिर श्वेतके, योंही २ गंध के, ५ रस के, ८ स्पर्श के, और अगुरु लघु के सर्व प्रमाणुओं प्रथम एक गुण से लगाकर अनुक्रम से अनन्त गुण तक मरण कर स्पर्श कर छोडे. (इन के बीच में कभी ज्यादा गुण के वर्णादि के प्रमाणुओंको स्पर्श

सो गिनती मे नहीं.) ऐसे २२ प्रकारके पुद्गल स्पशें सो भाव से सूक्ष्म पुद्गल परावर्तन)

॥ जो आचार्य भाव के स्थान भव को कहकर ८ बोल पूरे, करते हैं, अथवा भव के दो बोल अधिक कर १० बोल कर ते हैं सो कहते हैं:—

९. भवसे वादर पुद्गल परावर्तन—कोई जीव नरक गति में जयन्य १० हजार वर्ष आयुष्य से लगाकर एक समय अधिक दो समय अधिक यों एकेक समय बढ़ाता ३३ सागरोपम के आयुष्य तक, और ऐसे दश हजार वर्ष से एकेक समय अधिक २ करता ३१ सागरोपम देवता का आयुष्य तक, तथा जयन्य = २५६ आंवलिके एक क्षुलक भव से एकेक समय अधिक लगाकर ३ पल्योपम तिर्यच के आयुष्य को, और जयन्य अन्तर मूहूर्त से लगाकर एकेक समय अधिक करता ३ पल्योपम पर्यन्त मनुष्य के आयुष्य को, यो चारों गति के आयुष्य को मरण कर स्पशें सो भव से वादर पुद्गल परावर्तन.

१० भव से सूक्ष्म पुद्गल परावर्तन सो—प्रथम नरक में दश हजार वर्षायु भोग मरे, फिर एक समय अधिक दश हजार वर्ष आयुष्य भोग मरे, फिर दो समय अधिक यों अनुक्रम से एकेक समय अधिक करता नरक का ३३ सागरोपम का आयुष्य पूर्ण करे, बीच में अन्य गति का तथा नरक काही ज्यादा कमी आयुष्य भोगवे सो गिनती में नहीं, फिर ऐसेही तिर्यचका, फिर ऐसेही मनुष्य का और फिर ऐसेही देवता का जयन्य आयुष्य से समय २ अधिक आयुष्य पाकर मरण कर स्पशें सो भव से सूक्ष्म पुद्गल परावर्तन.

यह ऊपरोक्त ८ प्रकार का या १० प्रकार कर के जो पुद्गलों का परावर्तन होने का वरणन् किया सो विशेषत्व जाणना, परन्तु सामान्य प्रकार से तो भव मिलकर एक ही पुद्गल परावर्तन गिना जाता है, ऐसे अनन्तानन्त पुद्गल परावर्तन संसार निवासी सब जीवोंने इस संसार में किये हैं, जो जीवों मिथ्यात्व गुणस्थान का एकही वक्त त्याग कर देते हैं, वो ज्यादा मे ज्यादा अर्थ पुद्गल परावर्तन से अधिक संसार में परिभ्रमण नहीं करते हैं, इतने काल वाद तो जरूरही मोक्ष पाते हैं.

८—१२ अवधेणा, उत्पत्ति—पावति—और क्षपति, द्रव्य परिमाण इन चारों द्वारों का अर्थ बताने प्रमाण—बोध कहते हैं.

प्रमाण दो तरह के हैं—१ लौकिक, और २ लोकोत्तर, इस में प्रथम लौकिक

प्रमाण सो तो जो जगत में-एक, दश, सो, हजार, जात्रत परार्द्ध, तक अठारा अंककी संख्या जो अभी प्रचलित है सो, इस सिवाय और भी ४३२०००००००-इतने सो र्य वर्ष (३६५-दिन, १५ घडी ३१ पल, ३१ विपल) का एक ब्रह्मका-दिक (कल्प) गिन ते हैं. इनत में १४ मनु और १००० महा युग होने का बताते हैं, वगैरा लौ-किक प्रमाण कहा जात है.

और लोकोत्तर गणित का स्वरूप लौकिक गणित से कुछ विलक्षण ही है, क्योंकि लौकिक गणित से स्थूल और स्वल्प (थोड़े) पदार्थों का प्रमाण किया जाता है. और लोकोत्तर गणित से तो सूक्ष्म और अनन्त पदार्थों की हीनता अधिकता का प्रमाण का बोध कराया जाता है,

लोकोत्तर गणितके दो भेद हैं:—१. संख्यामान, और उपमामान, इसमें संख्यामानके मूल ३ भेद हैं:—१. संख्यात, २ असंख्यात, और ३ अनन्त, इस में-संख्यात का एकही भेद, और असंख्यात ३ भेद हैं:—१. परितासंख्यात, युक्तासंख्यात, और ३ संख्यातसंख्यात, ऐसे ही अनन्त के भी ३ भेद होते हैं:—१. परितानन्त, २ युक्तानन्त, और ३ अनन्तानन्त. यों सब मिल संख्यामान के ७ भेद हुवे. इन सातों को, १. जवन्य (छोटा) २ मध्यम (बीचका) और ३ उत्तकृष्ट (बड़ा) यों तीगुने कर ने से संख्यामान प्रमान के २१ भेद होते हैं. इनका खुला से वार स्वरूप समझाने लिये आगे कल्पित उपाय उपमामात्र शस्त्रानुसार लिखते हैं:—

१. अनव स्थित, \* २ शालका, ३ प्रतिशलका, और ४ महा शलका. इन चारों नामके चार टोपले. जम्बुद्वीप प्रमाणे एक लक्ष योजनके लम्बे चौड़े (गोल) और एक हजार आठ योजनके ऊँड़े, इनमेंसे पहिले अनवस्थित टोपलेमें शरशोंके दाणे शिखाऊ (जमीन पर किये हुवे अनाज के ढंग की तरह) भरे. उस में सब १९२७११२२३८ ४५१.३ १६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ इतने दाणे का समावेश होता है, फिर एक भरा और तीनों खाली ऐसे चारों टोपलों को कोई देवता उठाकर, उस भरे टोपाले मेंसे एक दाणा जम्बुद्वीप में दूसरा

\* अनवास्थित उसे कहते हैं. जो सदा एकसा न रहे, अर्थात् पीछेके तीनों टोपले तो एक से लक्ष योजनके सदा बने रहते हैं. और अवास्थित तो जहां खाली होता है उसी स्थानकी सूची प्रमाणे (जितना बड़ा द्वीप व समुद्र होवे उतना) बड़ा बनाते हैं.

दाणा लवण समुद्र में, तीसरा दाणा घातकी खण्ड में, यों एकेक दाणा अनुक्रम से आगे के द्वीप समुद्रों में रखता हुआ चला जावे. जब उस अनवस्थित टोपले में एक दाणा बाकी रह जावे तब उस दाणे को दूसरे शाल का नामक टोपले में रखे, और जिस स्थान वो प्रथम टोपला खाली हुआ उस स्थान (द्वीप व समुद्र) की सूची प्रमाणे लम्बा चौड़ा (गोल) और एक हजार आठ योजन का ऊँड उस अनवस्थित टोपल को बनाके. सरशों के दाणों से शिखाऊ भरे, और फिर आगेके द्वीप समुद्र में एकेक दाणा रखता जावे. जब उस अनवस्थित टोपल में दूसरी वक्त एक दाणा बाकी रहजावे, वो दाणा बाकी रहा जावे, वो दाणा उठा कर प्रथम प्रमाणे उस दूसरे शालाका टोपले में रखे, शाला का मे दो दाणे हुवे. और जिस स्थान वो अनवस्थित टोपला खाली हुआ. उस स्थान की सूची प्रमाणे तीसरी वक्त उस अनवस्थित टोपले को बनाकर सरशों के दाणों से शिखाऊ भर कर फिर एकेक दाणा आगे के द्वीप समुद्रों में रखता हुआ जावे. उस में एक दाणा बाकी रह जावे तब वो दाणा लेकर फिर दूसरे शालाका टोपल में रखे; यों शाला का में तीन दाणे हुवे. एसीह तर अनवस्थित टोपल में बाकी रहे एकेक दाण कर काल का नामक टोपले को सम्पूर्ण शिखाऊ भरे. और फिर उस शालाका नामक पाले (टोपले) को उठाकर पूर्वोक्त रीति प्रमाणें ही एकेक दाणा आगे के द्वीप समुद्रों में रखता जावे, जब उस शाला का में एक दाणा बाकी रहजावे. तब वो दाणा लेकर तीसरे 'प्रतिशालका' नामक टोपले में रखे. और शालाका को बाजू रखकर. फिर उसही स्थान की सूची प्रमाणे अनवस्थित टोपला पहिला बनावे. और सरशों के दाणों से शिखाऊ भर, आगेके द्वीप समुद्रों में एके क दाणा रखता जावे. जब के उसमें एक दाणा बाकी रह जावे तब उस दाणों को लेकर दूसरे शालाका नामक टोपले में रखे. ऐसीही पूर्वोक्त रीतिमे अवस्थित टोपले के एकेक दाणों कर शालाका को प्रतिपूर्ण शिखाऊ भरे. और फिर दूसरी वक्त शालाका को उठाकर आगेके द्वीप समुद्रों में एकेक दाणा रखते आगे जावे वो 'शालाका' में एक दाणा रह जावे तब, उस दाणे को 'प्र-

+ द्वीप व समुद्र की गोलाई के एक तट से दूसरे नामों के तटों लम्बाई के प्रमाण प्रमाण को सूची कहते हैं. जैसे लवण समुद्र की सूची १ लक्ष योजन की. और धान की खण्ड द्वीप की सूची २५ लाख योजन की.



मिलकर जो राशी (दग) करी थी, और उस में से एक दाणा निकाल लियाथा, वो दाणा पीछा उस राशी में डाल देने से-(१) जघन्य परिता असंख्याते होते हैं. और इस जघन्य परिता असंख्याते की राशी को रास गुणाकरे  $\times$  फिर उसमें से एक दाणा निकाले कम करे सो-(१) उत्कृष्ट परिता असंख्याता. और जघन्य परिता असंख्याता से एक अधिक, तथा उत्कृष्ट परिता असंख्याता से एक कमी उसे (२) मध्यम परिता असंख्याता कहा जाता है. फिर उस उत्कृष्ट परिता असंख्याते की राशीमें से वो निकाला हुवा-कम करा हुवा दाणा पीछा उस राशी में डाल देवे सो (४) जघन्य युक्ता असंख्याता. (इतने एक आवली का के समय होते हैं) फिर इस जघन्य युक्ता की राशी को राशगुणा करे, और उस में से एक दाणा कम करे-निकाल लेवे सो (६) उत्कृष्ट युक्ता असंख्याता, और जघन्य युक्ता असंख्याता से एक अधिक उत्कृष्ट युक्ता असंख्याता से-एक कमी सो-(५) मध्यम युक्ता असंख्याता. फिर उत्कृष्ट युक्ता की राशी मेंसे निकाला हुवा दाणा डाल देवे-सो-(७) जघन्य असंख्यात असंख्याता. और इस जघन्य, असंख्यात असंख्याते की राशी को राश गुणा कर, एक दाणा कम करे सो-(९) उत्कृष्ट असंख्याता, (इतने धर्मास्ति, अधर्मास्ति, लोकाकास्ति. और जीवास्ति के प्रदेश हैं.) और जघन्य असंख्यात असंख्याते से एक अधिक उत्कृष्ट असंख्यात असंख्याते से एक कमी सो-(८) मध्यम असंख्यात असंख्याते. यह असंख्याते के ९ भेद हुवे.

अब अनन्त के ९ भेद कहते हैं:-फिर उत्कृष्ट असंख्यात असंख्याते की राशी में से निकाला हुवा दाणा पीछा उस में मिला देवे सो (१) जघन्य परिता अनन्ता (इत ने अभव्य जीवों हैं) फिर इस जघन्य परिता अनन्ते की राशी को रास गुणाकर, उस में से एक दाणा निकालने से, जो रहे सो-(३) उत्कृष्ट परिता अनन्ता, और जघन्य परिता अनन्ता से एक अधिक, उत्कृष्ट परिता अनन्त से एक कम सो, (२) मध्यम परिता अनन्ता. फिर उत्कृष्ट परिता अनन्ता की राशी में से निकाला हु-

$\times$  जैसे ४ को ४ गुणा करने से १६ होते हैं. तैसेही जितने दाणों की वो राशी है उन सब दाणों को अलग २ एकैक बिखेर कर, उस एकैक दाणे के ऊपर पहिलेकी राशी जितना एकैक दगला करे, उने दाणे जितने सब दगले को भेलें करे उसे राशगुणा कहा जाता है.

वा दाणा पीछा उस में डाल देवे सो-(४) जघन्य युक्ता अनन्ता, और जघन्य युक्ता अनन्ता की राशी को राश गुणा कर उस में से एक दाणा निकाल लेवे सो (६) उत्कृष्ट युक्ता अनन्ता. और जघन्य युक्ता अनन्ता से एक अधिक, उत्कृष्ट युक्त अनन्ता से एक कमी सो (५) मध्यम युक्ता अनन्ता जाणना, फिर उत्कृष्ट युक्ता अनन्ता की राशी में से निकाला हुआ दाणा उस राशी में पीछा मिलावे सो (७) जघन्य अनन्त अनन्ता कहते हैं.

अब आगे केवल ज्ञान के आविर्भाव परिच्छेदों के प्रमाण स्वरूप बताने उत्कृष्ट अनन्ता न्तका स्वरूप कहते हैं:-जघन्य अनन्ता अनन्त राशी को राश गुणा करने से जो राशी उत्पन्न होवे वही अनन्तान्त का मध्य भेद है. इस राशी में जीव राशी के अनन्त वे भाग सिद्ध राशी. सिद्ध राशी से अनन्त गुणी निगोद राशी-वनस्पति काय राशी, जीव राशी से अनन्त गुणी पुद्गल राशी. पुद्गल से भी अनन्त गुणे तीन काल के समय. और अलोका काग के प्रदेश. यह ६ राशी मिलाना और इस में धर्म द्रव्य के अगुरु लघु गुण के अनन्तान्त आविर्भाव प्रतिच्छेद मिलाकर जो राशी होवे सो (८) मध्यम अनन्ता अनन्त. इस राशी को केवल ज्ञान के आविर्भाव परिच्छेदों के समोह रूप राशी में से घटाना. और जो शेष बचे उन में पुनः वही महा राशी मिलाने से केवल ज्ञान के आविर्भाव प्रतिच्छेदों का प्रमाण स्वरूप उत्कृष्ट अनन्तान्त होता है. उक्त महाराशी को केवल ज्ञान में घटाकर फिर मिलाने का सबब यह है कि दूसरी राशी से गुणाकार करने पर भी केवल ज्ञान के प्रमाण से बहुत कमती रहता है. इस लिये केवल ज्ञान के आविर्भाव परिच्छेदों का प्रमाण का महत्व दिखलाने ऊपर युक्त विधान किया है.

इस प्रकार से संख्यामान के २१ भेदों का कथन समाप्त हुआ.

अब उपमा प्रमाण के ९ भेद कहते हैं:—१. पल्प, २. मागर, ३. मूच्यांगुल.

+ अनन्त के दूसरे दो भेद होते हैं - १. साक्ष्य अनन्त. और अक्षय अनन्त यहां तक जो संख्या हुई सो साक्ष्य अनन्त की हुई. अब इसके आगे जो भेद कहते हैं सो अक्षय अनन्त के जानना. क्योंकि इस ऊपर उक्त महाराशी में आगे छे राशी अक्षय अनन्त की मिलाई जाती है. नवीन वृद्धि न होने पर भी खर्च करते २ जिस राशी का अन्त पार नहीं आवे उसको अक्षय अनन्त कहते हैं.

४ प्रतरांगुल, ५ घनांगुल, ६ राज्जू, ७ जगच्छेणी, ८ जगत्परतर, और ९ लोक. इन नवोंका अलग २ स्वरूप कहते हैं:—

१ पल्य—पाला, किसी भी वस्तु भरने का स्थान (पियु-खो-कोठार - प्रमुख) या ठाम (पायली-कोठी) होवे उसे पल्य कहते हैं. उस के मपतीसे किसी का प्रमाण समझाया जाय सो-पल्योपम प्रमाण. इसके ३ भेद:—(१) व्यरहार पल्य, (२) उद्धार पल्य, और (३) अद्वापल्य-

(१) व्यवहार पल्य का स्वरूप:—परमाणु=परम=उत्कृष्ट+अणु=पतला, जो सब से बारीक होवे, जिसके दो, विभागकी केवल ज्ञानी भी कल्पना नहीं कर सकें, उसे परमाणु कहते हैं. ऐसे अनन्त सूक्ष्म परमाणु का स्कन्ध (पिण्ड) का १ वादर (व्यवहारिक) परमाणु होता है. उसे देवता भी अति तीक्ष्ण शास्त्र कर छेद सके नहीं, अग्नि में जले नहीं, पाणी में भीजे नहीं. ऐसे अनन्त वादर प्रमाणु के स्कन्ध का-एक उष्ण श्रेणिया (गरभीका) पुद्गल होता है, ८ उष्ण श्रेणियाका-१ शीत श्रेणीया (शरटी-उन्डका) पुद्गल. ८ शीत श्रेणियाकी-१ उर्द्धरेणु (तरवर में उडे सो रज) ८ उर्द्धरेणुकी-१ त्रसरेणु (वस कायका शरीर) ८ वस रेणुकी-१ रथरेणु, (रथ चलते उडे सो रज) ८ रथरेणु जितना जाडा-१ देवकुरु उत्तरकुरु क्षेत्रके मनुष्य के वालाग्र. ८ देवकुरु उत्तरकुरु मनुष्य के वालाग्र जितना-१ हरीवास रम्यक वास क्षेत्रके मनुष्यका वालाग्र. ८ हरीवास रम्यकवास के मनुष्य के वालाग्र जितना-१ हेमवय हिरणवय क्षेत्र के मनुष्य का वालाग्र, ८ हेमवय हिरणवय मनुष्य के वालाग्र जितना-१ पूर्ण महा विदेह पश्चिम महाविदेह क्षेत्रके मनुष्य का वालाग्र. ८ महाविदेह क्षेत्रके मनुष्य का वालाग्र जितना-१ लीख, ८ लीखकी-१ सरसों, ८ सरसों का-१ जौ, और, ८ जौका-१ उत्पेद अंगुल. (चारों गति के जीवों का शरीर का माप इस अंगुल से किया जाता है.) ५०० उत्पेद अंगुल का-१ प्रमाण अंगुल (अवमार्पिणी के प्रथम तीर्थकर का अंगुल) कहा जाता है (इस से नरकावासे-भवन-देवनगर-विमाण-द्वीप-ममुद्र-पर्वत-नदी इत्यादि का प्रमाण बताया जाता है) और भरत एरावत क्षेत्र में जो मनुष्यों हो वे हैं. उस वर्तमान काल में जितना बडा अंगुल होवे, उसे आत्म अंगुल कहते हैं. (इस में चक्रवर्ति राजा के १४ रत्नादे कद्वि का, तथा झारी थाल कटोरे आदि संसार में काम आती वस्तुओं का प्रमाण बताया जाता है) ६ प्रमाण अंगुलका-१ पड (मुदी.) २ पडका-१ विलस्त, २ विलस्तका-१ हाथ, २ हाथकी-१ कुच्छ, २ कुच्छका-१



(३) उद्धार पल्य के वर्षों को असंख्यात कोटी वर्षोंके समयों से गुणाकार करने से-१ अद्वा पल्य के वर्षों का प्रमाण होता है, (इस अद्वा पल्योपम से कर्मोंकी स्थिति का प्रमाण किया जाता है !!) ÷

दशक्रोडा क्रोड व्यवहार पल्योपम का-१ व्यवहार सागरोपम, दशक्रोडा को उद्धार पल्योपम का-१ उद्धार सागरोपम और दश क्रोडा क्रोड अद्वा पल्योपम का १ अद्वा सागरोपम होता है.

३ अद्वा पल्य की अर्द्धच्छेद राशी को रास गुणा करने से जो संख्या आवे उसे सूच्यंगुल कहते हैं (एक प्रमाणंगुल लम्बे और एक प्रदेश चौड़े- ऊंचे आ-काशमे इतने प्रदेश हैं.)

४ सूच्यंगुल के (सूच्यंगुल को सूच्यंगुलसे गुणें.) वर्ग को प्रतरांगुल कहते हैं.

५ सूच्यंगुल के घन को घनांगुल कहते हैं.

६ पल्यकी अर्द्धच्छेद राशाक असंख्यातवे भागको घनांगुल से रास गुणा कर लेसे-१ राज्जूका प्रमाण होता है. +

७ सात राज्जूकी एक जगच्छेणी (आधी वसनाल) होती है.

८ जगत्च्छेणी के वर्गको जगत्परतर कहते हैं. और

९ जगत्च्छेणी के घनको लोक कहते हैं. (यही तीनों लोक के आकाश प्रदेशों की संख्या है.)

यह उपमान प्रमाण के ९ भेदों का कथन हुवा.

इतना जरूर ध्यान में रखना कि-१ जहां द्रव्य का प्रमाण कहा जाय, वहां उतने अलग २ पदार्थ जानना. जहां क्षेत्र का प्रमाण कहा जाय, वहां उतने प्रदेश

पाठको! जरा ध्यान दीजिये, कर्मोंकी स्थिति के लिये कितना जबर प्रमाण दिया गया है !! कर्म बन्ध करना सहज है, परन्तु भोगवते बहुत ही मुशीबत भोगवनी पडती है! जरा लक्ष में लीजिये !!!

+ ३२१,२७२,७० इतने मणका-१ लोहेका गोला, ऐसे १००० गोले को भेले करने से १ भार वजन कहते हैं. ऐसा १ भारका गोला कोइ देवता ऊपर से डाले, वो ६ महिने, ६ दिन, ६ पहर, ६ घडीमें जितना क्षेत्र उल्टेघकर नीचा आवे, उतने क्षेत्रको एक राज्जू आया कहना.

जानता. ३ जहाँ कालका प्रमाण कहा जाय, वहाँ उतने समय जानता. और ४ जहाँ भाव का प्रमाण कहा जाय, वहाँ उतने अविभाग प्रतिच्छेद जानता.

यह लौकोत्तर (अलौकिक) गणितका कथन हुआ.

१२-१३ क्षेत्र स्पर्शना और क्षेत्र प्रमाण द्वाराका अर्थ:

लोकालोक का स्वरूप.

भेदपरमे लोकालोक का स्वरूप इतना है— अलोक=अ=नी+लोक=वि-  
लोकने-देखने जैसा. अर्थात्-अलोक में पक्का एक आकाश (पञ्चांग) ही है, और कुछ भी नहीं है. इनलिये अलोक कहा जाता है. नो अगन्तान्त—अदम्यार-आद्य—  
न्य रहित है.

इस अलोक के अन्यन्त मध्य विभाग में पन्द्रहों के विष्ट रूप नीचे के ऊपर  
तक १४ राजू का लम्बा और, नीचे मान राजू चौड़ा, मध्य में १ राजू चौड़ा, ऊपर-  
रखे अर्ध विभागमें-५ राजू चौड़ा, ऊपर अन्त में १-राजू चौड़ा—जैसे एक गीता उ-  
ल्ला. ऊपर हुनग दीवा मुल्ला और ऊपर एक दीवा इन्ना समान है. इन आ-  
कार ३४३ राजू घनाकार मपति रूप सर्व चरपर पदार्थों का स्थान लोक है. इनके  
तीन विभाग कल्पे हैं—१ अधो-नीचालोक, २ मध्य-बीचका लोक, और ३ उर्ध्व  
ऊंचा लोक. इन तीनोंका अलग २ भेदिए स्वरूप बताते हैं—

१ नीचा लोक का स्वरूप—अलोक के ऊपर आकाश और द्वांद्वीय वायव्य  
तनुवाय के तीनों दीपों अर्ध पन्द्रवार मध्य में दीप २ हजार सौजक के जोड़, यह  
ते २ अन्त में ६ सौजक के समान है. जिसका अन्तर्गत नीचालोक विष्ट है  
विष्ट अन्त अन्त जीर्ण में भरा हुआ है. जिसका मध्य नीचालोक मध्य नीचालोक  
मी चौड़ी और एक १४ हजो (इंचा) है. इन १४ राजू दवा जग में है. इन के  
मध्य में—१ लम्बा ८ राजू चौड़ा का जोड़ा और १ राजू का चौड़ा द्वांद्वी का वि-  
ष्ट है. जिसके अन्त १४ राजू चौड़ा नीचे और १४ राजू चौड़ा ऊपर लगे. बीच में  
१ लम्बा सौजक नीचालोक. जिसके एक सौजक में १ लम्बा सौजक में अगन्तान्त  
नीचालोक है. जिसका अन्त १४ राजू चौड़ा और १४ राजू चौड़ा का आकार है.

जिसका लंबा सौजक के राजू चौड़ा चौड़ा, एक राजू चौड़ा, १४ राजू

घनाकार विस्तारमें है। जिसके मध्यमें-१ लक्ष १६००० योजन जाड़ा, और १ राजू लम्बा चौड़ा पृथ्वी पिण्ड है, जिस में एक हजार योजन उपर एक हजार योजन नीचे छोड़ कर बीच में १ लक्ष १४ हजार योजनकी पोलार है, जिसमें ३ पाथडे, २ आन्तरे, ९ कम १ लक्ष नरकावासे में असंख्यात नेरीये हैं-जिमका ३५० धनुष्य शरीर और २२ सागर का आयुष्य है।

जिसपर पांचवी रिवा नरक—पांच राजूकी लम्बी चौड़ी, एक राजू की जाड़ी ३४ राजू घनाकार में है। जिसके मध्य-१ लक्ष १८ हजार योजनका पृथ्वी, पिण्ड है, जिस के एक हजार योजन ऊपर एक हजार योजन नीचे छोड़ बीच में १ लक्ष १६ हजार योजन की पोला रहे, जिस में पांच पाथडे, ४ आन्तरे, ३ लक्ष नरकावासे में असंख्यात नेरीये रहते हैं, जिनका १२५ धनुष्य का शरीर, और १८ सागर का आयुष्य है।

जिसपर चौथी अजना नरक-चार राजू की लम्बी चौड़ी, एक राजूकी उंची-२८ राजू के विस्तार में है। जिसके मध्य में १ लक्ष २० हजार योजनका पिण्ड है, जिसके एकेक हजार योजन उपर नीचे छोड़ के बीच में १० लक्ष १८ हजार योजन की पोलार है, जिसमें ७ पाथडे, ६ आन्तरे, १० लक्ष नरकावासे असंख्यात नेरीये हैं। जिनका ६२॥ धनुष्यका शरीर, और १० सागरोपम का आयुष्य है।

जिसपर तीसरी मीला नरक तीन राजूकी लम्बी चौड़ी एक राजूकी उंची २२ राजू के विस्तार में है। जिसके मध्य में १ लक्ष २८ हजार योजनका पृथ्वी पिण्ड है, एकेक हजार योजन उपर नीचे छोड़ बीच में १ लक्ष २६ हजार योजनकी पोलार है, जिम में ९ पाथडे ८ आन्तरे, १५ लक्ष नरकावासे में असंख्यात नेरीये हैं, जिनके ३१॥ धनुष्य का शरीर और ७ सागरका आयुष्य है।

जिसपर दुसरी वंमा नरक-दो राजूकी लम्बी चौड़ी, एक राजू की उंची, १६ राजू घनाकार में हैं। जिसके मध्य १ लक्ष, ३२ हजार योजन का पृथ्वी पिण्ड है, जिसके एकेक हजार योजन उपर नीचे छोड़ बीच में-१ लक्ष ३० हजार योजनकी पोलार है, जिसमें-११ पाथडे, १० आन्तरे, २५ लक्ष नरकावासे हैं में असंख्याते नेरीये हैं। जिनका १५॥ धनुष्य १२ अंगुल का देहमान और ३ सागर का आयुष्य है।

जिसपर पहिली घम्मा नरक-एक राजूकी लम्बी चौड़ी, और १ राजूका उंची, १० राजू घनाकार में हैं, इनके मध्य १ लक्ष ८० हजार योजन का पृथ्वी पि-

ण्ड है, जिसमें से एकेक हजार योजन ऊपर नीचेका छोडा बीच में १ लक्ष ७८ हजार योजन की पोलाड है, जिसमें १३ पांयडे, १२ आन्तरे ३० लक्ष नरक, वासेमें असंख्यात नेरीये हैं. जिनकी ७॥ धनुष्य ६ अंगुल का शरीर, और उत्कृष्ट १सागर का आयुष्य है.

सातों नरक के-४२ आन्तरमें से प्रथम नरक के १०अन्तर छोड वाकीके सब खाली पडे हैं. और ४१ पांयडे हैं सो सब पोले हैं. जिन में ८४ लक्ष नरकावासे हैं उन में नेरीये रहते हैं.

पहिली नरक के दश अन्तरमें ११ हजार ५ सो ८३ योजन कुछ झाजेरी जगह है. जिसमें १ क्रोड ७१ लक्ष भवन हैं. उन में असंख्यात, भवन पति देवों १० जाति के रहते हैं. जिनका ७ हाय का शरीर और एक सागरका आयुष्य है.

२ तिरछा लोकका वरणन्-एक राजू का लम्बा चौडा गोळ. १८०० योजन का ऊंच १० राजू घनाकार में तिरछा लोक है.

पहिली नरकके उपर जो १००० योजनका पृथ्वी पिणु छोडाहै, उसमें १०० तो योजन नीचे छोडना. जो नीचे लोककी हद्दीमेंही हैं. और १०० योजन उपर छोडना, बीचमें८०० योजनकी पोलारमें आठ जातिके व्यन्तर देवोंके असंख्यात नगरेहैं. और उपर१००योजन छोडेउसमेंके१० योजन उपर छोडना, और१०योजन नीचे छोडना, बीच में८०० योजनकी पोलारहै; जिसमें ८ जातिके वाण व्यन्तरके असंख्याते नगरे हैं. नड दोनों स्थान में रहने वाले देवोंका ७हायका शरीर और एक पल्योपमका आयुष्य है.

१० योजनके छोडे हुवे पिण्ड पर समभुमी है. सो एक राजू की लम्बा चौडी गोळ है. इस के बहूतही मध्य भाग में मुदर्शन मेरु पर्वत मलस्थंभ जैसा गोळ नीचे १० हजार योजन चौडा. और कम होता २ उपर गिखरपर १ हजार योजन चौडा रह गया है. और मूल में मे शिखरतक १ लक्ष योजन का उंचा है. इस के मूल में समभूमी पर तो-१ भद्रगालवन है, २५०० योजन उपर नंदनवन है, ६२५० योजन उपर सोमानस वन है. और ३६००० योजन उपर पडंग वन है. (यहां तीर्थकरोंका जन्माभिषेक इन्द्रादि देव करते हैं) इस वनके मध्यमें ४० योजन की उंची चूली का (चोटी जैसी डोंगरी) है.

इस मेरु पर्वत के चारों तरफ चूडीके आकार फिरना हुवा १ लक्ष योजनका लम्बा चौडा गोळ जम्बुद्वीप है. मेरु पर्वत पाम पूर्व पश्चिममें महा विदेह क्षेत्र है. जे-



सके १६ विजय पूर्व में, और १६ विजय पश्चिम में मिलके ३२ विजयों है-एकैक विजय २२ सो १२ योजन झाझेरी लम्बी है, ११ हजार ८ सो ४२ योजनकी चौड़ी है, एक महा विदेह के पास वपारापर्व और एक के पास अन्तर नदी होनेमे १६ व-खारा पर्वत ५०० योजन चौड़े, और १२ नदी १०५ योजन चौड़ी दोनों विजय प्रमाणों ही लम्बे हैं.

महाविदेह क्षेत्र में २४ बी नलीनावति विजय १००० योजन जमीनमे उतरती हुई उंडी चलीगई है, इसे अधोगामिनी विजय भी कहते हैं. इस के १०० योजन नीचेके नीचे लोकमे गिन जाते हैं.

महा विदेह के मध्य भाग में पूर्व मे सीता और पश्चिम मे सीतोदा नामे महानदी है सो १० लक्ष १४ हजार नदीयोके परिवार समुद्र गइ हैं.

महा विदेह क्षेत्र के मनुष्यों का ५०० धनुष्य का शरीर, और क्रोड पूर्वका आयुष्य सदा चौथा आरा (सत्ययुग) प्रवर्तता है.

मेरु पर्वत के पास दक्षिण मे देवकुरु क्षेत्र + और उत्तर मे उत्तर कुरु क्षेत्र ११ हजार ८ सो ४२ योजन झाजेरा है, इसमे सदा पहिले आरे जैसी रचना है, युगल मनुष्य होते हैं, तीन गाउ का शरीर तीन पल्योपम का आयुष्य होता है.

देव कुरु क्षेत्र के पास दक्षिण मे नीपध पर्वत और उत्तर कुरु के पास उत्तर मे नीलवन्त पर्वत ४०० योजन उंचे, ९४१५६ योजन पूर्व पश्चिम मे लम्बे, १६८४२ योजन २ कला ÷ उत्तर दक्षिण मे चौड़े है.

नीपध पर्वत के पास दक्षिण मे हरीवास क्षेत्र और नीलवन्त पर्वत के पास उत्तर मे रम्यक वास क्षेत्र ७२९०१ योजन १७ कला लम्बे, और ८४२१ योजन १ कला चौड़े है. इन मे सदा दुसरे आरे जैसी रचना रहती है. यहां के युगल मनुष्यो का दो गाउ का शरीर और दो पल्योपम का आयुष्य होता है.

हरि वास क्षेत्र के पास दक्षिण मे महा हेमवन्त पर्वत और रम्यकवास क्षेत्र के

+ देवकुरु क्षेत्र मे रत्नोका जम्बु नामक वृक्ष १२ योजन का ऊंचा है. उसपर अणाढी नाम जम्बु द्वीप का मालक देवता के रहने के भवन है, वहा देवता रहने से इसद्वीप का नाम जम्बुद्वीप कहा जाता है.

— १ योजन १९ के भाग करने उसमे के १ भाग को १ कला कहते हैं.



१६ द्वीपे हैं। इनपर युगल मनुष्य रहते हैं, उनका ८०० धनुष्यका शरीर ऊंचा, और पल्यके असंख्यातवे भाग आयुष्य है।

लवण समुद्र के मध्य में चारों दिशा में-वडवा, युग, केतु और इश्वर नाम के चार पातल कळशे १ लक्ष होजन ऊंडे, बीच में ५० हजार योजन चौड़े, मुख औरत ला १ हजार योजनका चौड़ा, वायुका, पाणी वायु मिश्रित, और पाणी का, ऐसे ३ कान्ड युक्त, दुसरे ७८८४ छोटे कळशके परिवारसे है।

लवण समुद्र के मध्य में १६ हजार योजन ऊंचा और १० हजार योजन चौड़ा चारों तरफ फिरता पाणी का डगमाला (डग) है। गौतम द्वीपा, वेलन्धरके द्वीपा चाद्र सूर्यक द्वीप आदि हैं।

लवण समुद्र के चारों तरफ फिरता बलियाकार धातकी खण्ड द्वीप चार लक्ष योजनका चौड़ा है। इसके मध्य दक्षिण और उत्तर में दो इपुकार पर्वत ५०० योजन ऊंचे, और धातकी खण्ड जितने लम्बे पडने से पूर्व धात की खण्ड और पश्चिम धात की खण्ड ऐसे दो विभाग होगये हैं। एकेक धातकी खण्ड में जबुद्वीप में कहे मुखव सब पदार्थ-क्षेत्रों पर्वतों नदियों वगैरा है। दोनो धातकी खण्ड में दो मेरु पर्वत और सब जबुद्वीप से दुगने पदार्थ हैं।

धातकी खण्ड के चारों तरफ बलीया कार ८ लक्ष योजन का कालोदधी समुद्र है, यह इस किनारे से उस किनारे तक एकसा हजार योजन का ऊंडा है।

कालोदधीसमुद्र के चारों तरफ बलीयाकार पुष्करार्थ द्वीप १६ लक्ष योजन का चौड़ा है, इसके मध्यबीच में बलीया कार चौतरफ फिरता मानुषोत्तर पर्वत १९२१ योजनका ऊंचा है, इसके अन्दरही मनुष्यों की वस्ती है, धात की खण्डद्वीप की तरह इस में भी दो मेरु पर्वत और क्षेत्र पर्वत नदी वगैरा सर्व वस्तु है। इस अडाड द्वीप मानुषोत्तर पर्वत के बाहिर के पुष्करार्थ द्वीप में व आगे मनुष्यों की उत्पत्ति वस्ती, वादर अग्नि, नदी, द्रव, बदल, विजली, गर्जारव, वर्षादि, खड्डे, दुष्कालादि नहीं हैं। फक्त देवता और तिर्यचो रहते हैं।

पुष्कर द्वीपे के चौतरफ बलीयाकार पुष्कर समुद्र ३२ लक्ष योजन का है, जिसके चौफेर वारुणी द्वीप ६४ लक्ष योजनका, जिसके चौफेर वारुणी समुद्र (मदीरा जैसा पाणी वाला) १२८ योजन। यों आगे एकेक में दुगुणे-क्षीर द्वीप, क्षीर समुद्र, वृत द्वीप, वृत समुद्र, इक्षु द्वीप, इक्षु समुद्र, नंदीश्वर द्वीप, नंदीश्वर समुद्र, आदि अ-

संख्यात द्वीप और असंख्यात समुद्र है, अन्तिम सचंभु रमण समुद्र एकही अर्ध राजू प्रमाण चौड़ा है. उस के आगे १२ योजन अलोक है.

मेरु पर्वत के पास सम भूमी से ऊपर ७९० योजन तारा मंडल है उसपर १० योजन सूर्य है, उसपर ८० योजन चंद्रमा है. उपर ४ योजन नक्षत्र माला. उपर ४ योजन ग्रह माला, उपर ४ योजन बुद्ध, उपर तीन योजन शुक्र. उपर तीन योजन वृ-हस्पति, उपर तीन योजन मंगल. उपर तीन योजन शनी, यों ११० योजन में जो-तिपी चक्र हैं.

उंचा लोकका वर्णन:-शनिश्वर के विमान में १॥ राजू उपर, १९॥ राजू के विस्तार में जम्बु द्वीप के मेरु से दक्षिण की तरफ तो पाटिला सुप्रभा देवलोक १३ प्रतर ३२ लक्ष विमानों असंख्यात देव युक्त है. और उत्तर में ईशाण देवलोक १३ प्रतर २८ लक्ष विमान. असंख्यात देव युक्त है. दोनों देवलोक के देवताओं का ७ हाथ का शरीर, और २ सागरोपम का आयुष्य है.

इन दोनों देवलोक की दूरी के उपर-१ राजू उंचाई में और १६॥ गुरु धना-कार में मेरु से दक्षिण में तीसरा 'मनलुमार' देवलोक दोग प्रतर, और १२ लक्ष विमान, उत्तर में चौथा महेन्द्र देवलोक १२ प्रतर, ८ लक्ष विमान. असंख्यात देव युक्त है. दोनों देवलोकों के देवका ६ हाथका शरीर, और सागरोपम का आयुष्य है.

इन दोनों देव लोककी दूरी में आधा राजू उपर, २० गुरु धनाकार में धेनु-पर दसोवर पांचवा देवलोक ६ प्रतर, और ४ लक्ष विमान में असंख्यात देवों का शरीर और १० सागर के आयु वाले रहते हैं.

पांचवे देवलोक की तीसरी अष्टि प्रतर के पास. दक्षिण दिशा में आठ कृ-ष्ण राजी पृथ्वी पाणिम रूप इयाम वर्ण की है. जिस में आठ विमान आठों दिशा में और एक विमान मध्य में यों ९ विमानों में, ९ लोकान्तिक देव २०५०० देवों के परिवार में, ६ हाथका शरीर और "लोकान्तिका नाम्नी सागरोपमि रक्षितम्" इन महालुमार-सर्व देवोंका आठ सागरोपम का आयुष्य है. (उपर लोकोक्ति के विमान के अक्षर में रहते हैं.)

पांचवे देवलोक के उपर दसोवर आठ राजू उपर, और १८॥ गुरु के विमान-

र मे छद्वा 'लान्तक देव लोक' ५ प्रतर और १० हजार विमान में असंख्यात देवों ५ हाथ शरीर और १४ सागर आयुवाले रहते हैं.

छठे देवलोक के पाव राजू उपर वरोवर सातवा महा शुक्र देवलोक ७। राजू घनाकार मे ४ प्रतर ४० हजार विमान असंख्यात देवों ४ हाथका शरीर, और १७ सागर आयुवाले रहते हैं.

सातवे देवलोक के पाव राजू उपर वरोवर आठवा सहसार देवलोक ७। राजू घनाकार मे चार प्रतर और ६ हजार विमान में असंख्यात देवों चार हाथ का शरीर और १८ सागर आयुवाले रहते हैं.

आठवे देवलोक के उपर पाव राजू दक्षिण में नववा आण देवलोक, और उत्तर मे दशवा पाण देवलोक १२॥ राजू घनाकार में दोनों के चार प्रतरों और चार-सो २ विमाणों में असंख्यात देवताओं तीन हाथ का शरीर, और नववे मे १९ सागर, दशवे मे २० सागर आयुवाले रहते हैं.

इन दोनों देवलोक के उपर आधा राजू दक्षिण में इग्यारवा अरण देवलोक और उत्तर में बारवा अचुत देवलोक १०॥ राजू घनाकार में चार २ प्रतरों के तीनसो २ विमाणों मे असंख्यात देवों ३ हाथ का शरीर और २२ सागरोपम का आयुप्य वाले रहते हैं.

यहांतक के देवलोकों को कल्प कहते हैं, इनमें में-इन्द्र सामानीक, लोकपाल, वायव्येशक, आत्मरक्ष, परिपद, अनिका, आदि अनेक प्रकारके देवों हैं. वो इन्द्रकी आज्ञा प्रमाणे चलते हैं. और आगे सब कल्पातीत-अहमेन्द्र देव हैं.

इन दोनों देवलोकोंके उपर १ राजू एकेके उपर एक-भदे, सुभदे सुजाय, सुमान से, सुदंशण, पियदंसण, अमोए, पडीभद और जसोधर, यह नवग्रीविक के ३१८ विमाण आठ राजू घनाकारमें हैं, इनमें देवोंका २ हाथका शरीर पहिली ग्रीविक में २३ सागर आगे एकेक सागर बढ़ता २ नववी ग्रीविक में ३१ सागर का आयुप्य है.

नवग्रीविक से एक राजू उपर विजय विजयन्त जयन्त अपराजित यह चारों विमान तो चारों दिशा में हैं, और सर्वार्थ सिद्ध विमान इन चारों के मध्य में, यों पांचों अनुत्तर विमान ६॥ राजू घना कार में हैं. इन में देवों का एक हाथ का शरीर, और ३३ सागर का आयुप्य है.

सर्वार्थ सिद्ध से १२ योजन उपर सिद्ध शीला सीधे छवकों संस्थान में श्वेत सु

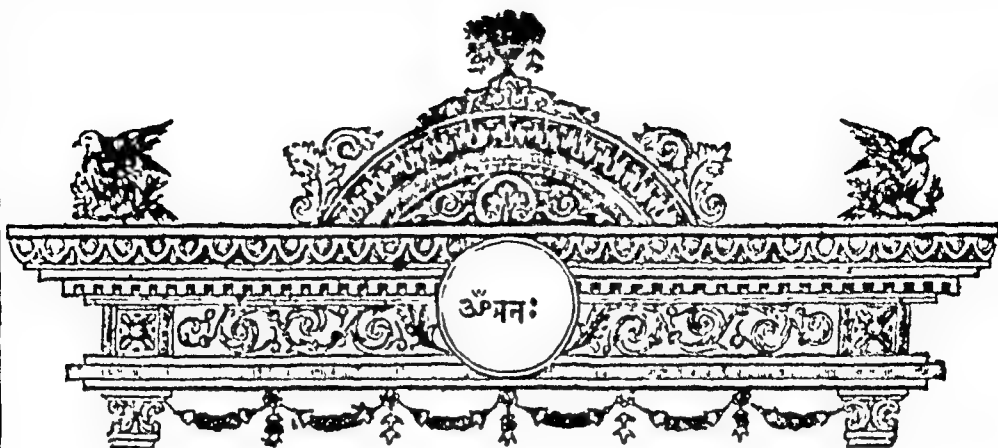
वर्ण की ४५ लक्ष योजन की लम्बी चौड़ी गोळ है.

सिद्ध शिष्य के उपर सिद्ध क्षेत्र एक योजन उपर और सब ११ राजू के विस्तार में है. यहां उपर के ३३३ धनुष्य ३२ अंगुल जितने जाड़े और ४५ लक्ष योजन जितने लम्बे चौड़े स्थान में अनन्त सिद्ध भगवन् परमात्म हैं. उन सर्वों का सिर आलोक से लगा है. यह संक्षेप में लोकालोक का वर्णन समाप्त हुआ.

• ॥ काल प्रमाण द्वारका खुलासातो पीछे कहे प्रमाण बोधसे जाणना. बाकी के आगे कहे सब द्वारको खुलासा मूल मुझवही जाणना. तथा उपरोक्त द्वारोंके खुलासे से जाणना.

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज के सम्प्रदाय के बालब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलख ऋषिजी महाराज रचित मुक्ति सोपान श्री गुणस्थान रोहण अष्टाशतद्वारी प्रथम अर्थ काण्ड का मूल द्वारा रोहण का अर्थ नामक





## \* द्वितीय-कर्म द्वारा रोहण खण्ड. \*



प्रथम मूल द्वारा रोहण खंडमें गुणस्थाना रोहणकी विधी विविध द्वारों कर बता-इ, सो गुणस्थानारोहण तो कर्मों की हीनता से होता है. अर्थात् ज्यों ज्यों कर्मदल आत्म प्रदेशसे पतले पडते जातेहैं-झडते जातेहैं, त्यों त्यों आत्म लाघवत्व (हलके पने) को प्राप्त हो उंचसे उंच दिशाको प्राप्त करतीहैं, सोही गुणस्थानारोहण जाणना. इसालि-ये गुणस्थानारोहण-गुण वृद्धि के इच्छकों को कर्मोंको पतले करने उनके स्वरूप का जान जरूरही होना चाहिये. और इससिये ही कर्मा रोहण खण्ड कहते हैं.

जैसे मट्टीका सुवर्ण का अनादि सान्त सम्बन्ध है, तैसे ही जीवका और कर्म का अनादि सान्त सम्बन्ध है, वो कर्म सामान्य प्रकार से तो एकही और विशेष प-नेसे (१.) जो कर्म पुद्गलोंका पिण्ड सो द्रव्य कर्म, और (२) कार्य में कारण का व्यवहार होने से उन पुद्गलोके द्रव्य में फल देने की शक्ति उस से उत्पन्न हुवा अनादि परिणाम सो भाव कर्म, तथा-(१) ज्ञानादि आत्माके गुणों का घात करे सो घातिक कर्म, और (२) जो पुद्गल प्रणति रूप आत्मा के साथ परिण में परन्तु गुणों की घात नहीं करे सो अघातिक कर्म. ऐसे दो भेद भी होते हैं. और घातिक कर्म के ४ भेद, तथा अघातिके भी चार भेद, दोनो मिलकर ८ भेद भी होते हैं. इन की १४८ प्रकृतियों हैं, इसलिये १४८ भेद भी होते हैं. असंख्यात लोक व्यापि कर्म पु-द्गलों होने से असंख्यात भेद, कर्म पुद्गलोंके स्कन्ध अनन्त होनेसे अनन्त भेद, और

जगत में अनन्त जीवों हैं, एकैक जीव अनन्त कर्म पुद्गल की वर्गणा कर घेरा हुआ है इसलिये अनन्तानन्त भी कर्मोंके भेद होते हैं.

यहां मुख्यत्व ८ कर्मोंकी १४८ प्रकृतियों कहते हैं.

इह नाण दंसण वरण । वेअ मोहाउ नाम गोआणी ।

विग्घं च पण नव दु। अठवीस चउ तिसय पण विहं। गोमठसार

अर्थ-१. ज्ञानावरणीय कर्म की ५ प्रकृति. २ दर्शनावरणीय कर्म की ९ प्रकृति. ३ वेदनीय कर्म की २ प्रकृति. ४ मोहनीय कर्म की २८ प्रकृति. ५ आयुष्य कर्म की ४ प्रकृति. ६ नाम कर्म की ९३ प्रकृति, ७ गौव कर्म की २ प्रकृति. और ८ अन्तराय कर्म की ५ प्रकृति. यो ८ कर्मों की १४८ प्रकृतियों होती है. इन सबोंका कुलामे वार आगे वरणन् करते हैं:-

### ज्ञानावरणीय कर्म.

जिनसे वस्तु का स्वरूप जाना जावे सो 'ज्ञान' यह आत्मा का निजगुण है. सब गुणोंमें अब्बल दर्जे का गुण है. इसलिये यह पूज्य होनेसे प्रथम ग्रहण किया है. जीव रूप लोकालोक प्रकाशी सूर्य को केवल ज्ञानावरणीय रूप बदलोंने ढका है. तो भी अक्षर का अनन्तवा भाग सब जीवों के उवाडा रहता है; + वो बदलों पतले पड़ते हैं त्यों सूर्य का प्रकाश बढ़ता है, तैमेही ज्ञानावरण, कम होने मे मति श्रुति आदि ज्ञान प्रगटता है. और बदलों जोड़े होनेसे सूर्यका तेज आवरता-कमी पड़ता है, तैसे ही ज्ञानावरण से पंचज्ञान की मन्दता होती है. मोही ज्ञानावरणीय की ५ प्रकृति.

१. 'मति ज्ञानावरणीय'-पांचों इन्द्रिय और मन कर जो भाव जानने में आवे सो मति ज्ञान. इसके दो भेद:- (१) व्यंजनावग्रह और (२) अर्थाव ग्रह. व्यंजे=प्र-

+ यहा श्रुत केवल ज्ञान साधारण पर्यावहार लेना. जिनमे अविद्येय वस्तु धर्म मे स्वर्ण्य है, और अविद्येय वस्तु धर्म से पर पर्याय है. और केवल ज्ञानकाले अविद्येय अविद्येय दोनों पर्याय हैं, यों दोनों ज्ञान के पर्याय एक मे होते हैं. मे पर्यावहार, उन का अनन्तवा भाग उच्छृ तो श्रुत केवली के होता है, और जद्वय भग निन्दे में जद्वेजे अहार सहादि चेनता रूप होता है. जो कमी इन्ना एक जय मे जीव वैतन्य पन्ने के स-भाव से अविद्येय उच्छृने अविद्येय पन्ने में होतही नही हैं.



काशे+अवग्रह-मिलकर. अर्थात्-जिन इन्द्रियों का ज्ञान दूसरे पदार्थ को मिलकर, आप में उसे प्रणमा कर फिर उसका स्वरूप ग्रह-जाने उसे व्यंजनावग्रह कहते हैं. यह अवग्रह-श्रोत, घ्राण, रस और स्पर्श, इन चारों इन्द्रिय से होता है, क्योंकि इन चारों इन्द्रियोंके विषय पदार्थ शब्द गन्ध रस और स्पर्श, आकर इन्द्रियों को लगेते हैं, तबही वो उनके गुणको समझती है. और चक्षु इन्द्रिय तथा मन इन से यह अवग्रह नहीं होता हैं, क्योंकि-यह दोनोंही अपने से दूर रहे हुवे विषय रूप-रंग को और अन्य के भाव को ग्रहण करते हैं. जो कभी यह विषय को स्पर्श के ग्रहण करेतो अग्नि देख मस्म होजावे, और काँचकी सीसीमें छिद्र होजावे, वगैरा इसलिये दोनोंके व्यंजनावग्रह नहीं है, वाकी की चारों इन्द्रियोंकेही है. सोही व्यंजनावग्रह के चार भेद कहे जाते हैं. इसकी स्थिति-जघन्य आवलिका के असंख्यातवे भाग की, उत्कृष्ट पृथक्त्व श्वास प्रमाणे-तीसरे मिश्र गुणस्थान जितनी जाणना. (२) 'अर्थावग्रह' जो पदार्थोंका अर्थ=मतलब का अवग्रह-ग्रहण करेसो, इस के ४ प्रकार हैं:- (१) पाँचों इन्द्रिय और मन के विषय! जब अपने २ स्थान को प्राप्त होते वो उन्हे ग्रहण करे अव्यक्त ज्ञान से सो-'अवग्रह' इसकी स्थिति-एक समयकी, (२) अव्यक्त पने ग्रहण किये छेही विषयो का निर्णय करने विचार करे कि यह क्या है? सो 'ईहा', इसकी स्थिति अन्तर भूहूर्त की, (३) विचार ते पूर्ण निश्चयात्म बनजावे कि-यह येही है, ÷ सो 'अपाय.' इसकी स्थिति अन्तर भूहूर्त की. (४) और उस निश्चय किये अर्थ को, वासना संस्कार पूर्वक बहुत कालन्तर तक धार रखे, दूसरी उसके जैसी वस्तु देखने से सुनने से उसका ज्ञान हो आवेसो 'धारणा.' इसकी स्थिति असंख्याते कालकी, क्योंकि-जाति स्मरण ज्ञान भी इस धारणाके पेटेमें है. × यो इन अर्थाव ग्रहे के चारों भेदोंको पाँचो इन्द्रिय और छद्म मन से ६ गुना करने से २४ भेद होते हैं, और उपरोक्त व्यंजनावग्रहके ४ भेद इस में मिलाने से २८ भेद माति ज्ञान के होते हैं:-

२ श्रुति ज्ञान-से अक्षर जाने इसके १४ भेद:

— यह निर्णय-निश्चय छत्ते धर्म से सो सम्यग ज्ञान. और अच्छे धर्म का करे सो 'मिध्या ज्ञान' है.

× जाति स्मरण ज्ञान से पिछले ९०० भव जो सन्नी के लगेलग किये होवैतो देख सकता है, बीच में असन्निका भव हुवा हो वहासेही आगे दिखना बन्ध होजाताहै.

(१) अक्षरश्रुत-पदादि पर लिखे सो-‘सज्ञाक्षर,’ मुखसे उच्चारन करेसो ‘व्य-जनाक्षर,’ यह दोनों द्रव्य श्रुत. और इन से अर्थात् पढ़कर-देखकर, या सुनकर इन्द्रियावरण की क्षयोपशम लब्धिद्वारा अनाभिदेय पदार्थ के अनन्तवे भाग अभिधेय पदार्थ को जाने सो-‘लब्धाक्षर,’ यह भाव श्रुत. इन तीनों प्रकारके अक्षरों को जाने सो अक्षर श्रुत.

(२) ‘अनक्षर श्रुत’-अक्षर के उच्चार विना साँसी छीक डकार वगासी आदि किसी भी चेष्टासे मतलब समझे सो अनक्षर श्रुत.

(३) ‘सज्ञीश्रुत’-विचारे, निर्णय करे, समुचय अर्थ करे, विशेष अर्थ, चिन्तवे और निश्चय करे. यह ६ बोल सज्ञी में पातेहैं. इन ६ बोल सहित सूत्र धारेसो सज्ञीश्रुत

(४) ‘अनज्ञी श्रुत’ ऊपरोक्त ६ बोल विना पूर्वापर अलोचविना पढ़े पढ़ावे सुने सुनावे सो अनज्ञी श्रुत.

(५) ‘सम्यग श्रुत’—तर्क या दश पूर्वतक पाठे हुवेके वचनोको या कथित सूत्र ग्रन्थोको यथा तथ्य श्रद्धे सो सम्यग श्रुत -

(६) ‘भिध्याश्रुत’-अज्ञानता से मन कलित कथनया करे रचे हुवे काम गल्ला जोतिष वेदके आदि पाप शास्त्र हैं सो भिध्याश्रुत.

(७-११) नादि. अनादि. शान्त, और अनन्त. इनो चारों श्रुतका अर्थ, द्रव्य क्षेत्र, काल. और भाव कर बताते हैं:- (१) द्रव्य मे कोई जीव भिध्यात्व को छोड़ सम्यक्त्व मे आया तब श्रुत ज्ञान की आदि हुई. और पड़वाई हो पीछा भिध्यात्व में गया तब अन्त हुआ. तथा केवल ज्ञान पाया तब अन्त हुआ. और बहूत जीवों आश्रित्य अनादि अनन्त है. क्योंकि ऐसा वक्त कदापि नहीं था और न होगा कि जब श्रुत ज्ञान तथा और न रहेगा. (२) क्षेत्रमे-भरत ऐरावत क्षेत्र में तीर्थ की प्रवृत्ति होवे तब श्रुत की आदि होवे. और तीर्थ का व्यच्छेद होवे तब श्रुतका अन्त होवे. और महा विदेह आश्रित्य अनादि अनन्त है. (३) कालमे-उत्सर्पिणी अवसर्पिण काल मे तीमरे आरे के अन्त तथा आदि में श्रुतकी आदि होनी है. और छेद आरे की आदि में

÷ पदार्थ जानने के स्वयं मे सम्यग दृष्टि को भिध्याश्रुत भी सम्यगश्रुत हो पगन जाना है. और कदाप्यदि होनेके स्वयं मे भिध्यादृष्टि के सम्यगश्रुत भी भिध्याश्रुत हो पगन जाना है.

श्रुतका व्यच्छेद होता है. और (४) भाव से भव्य जीवों श्रुतकी प्राप्ति करे तब आदि होवे, और केवल ज्ञान पावे तब अन्त होवे. और अभव्य के श्रुति अज्ञान है सो अनादि अनन्त है.

(११) 'गमीश्रुत' द्रष्टी वाद की माफिक लड बंध पाठ होवे सो गमी श्रुत.

(१२) 'अगमी श्रुत'—एकादशांगी तरह आगे पीछे पाठ होवे सो अगमी श्रुत.

(१३) अंगपविठ श्रुत सो-आचाराङ्ग आदि शास्त्र.

(१४) अंगवाहिर श्रुतसो-दशवैकालिकादि शास्त्र.

मतिज्ञान से श्रुतिज्ञान भिन्न होने के कारणः—(१) मविज्ञान श्रुतिज्ञान का कारण है. और भाव श्रुतज्ञान कार्य है. (२) मतिज्ञान निरक्षर है श्रुतिज्ञा साक्षर है. (३) मति ज्ञान—अभापक मुक्ताहै. श्रुतिज्ञान भापक है. (४) और “श्रुति माते पूर्वक” इसतत्त्वार्थसूत्रानुसार-मतिज्ञान हुवे वादही श्रुतिज्ञान होताहै. इसलिये श्वाभि, विषय, प्रमाण परोक्षता, और सधर्म के वास्ते पहिले मतिज्ञान कह कर फिर श्रुतज्ञान कहाहै.

मति श्रुतिज्ञान का सम्बन्धः—(१) मति और श्रुति इन दोनों ज्ञान का क्षीर नीर की तरह सम्बन्ध है. (२) मति श्रुतिज्ञान बिना कोई भी जीव नहीं है. सम्यग दृष्टि के ज्ञान को ज्ञान कहते है, और मिथ्या दृष्टि के ज्ञान को अज्ञान कहते हैं. उत्कृष्ट मति श्रुति ज्ञानी सर्व-द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का जानने से श्रुतकेवली कहातेहैं. ऐसे जो श्रुतज्ञान है उस ढके प्रकाशने नहीं देसो श्रुताज्ञाना वरणीय.

(३) अवाधि ज्ञान-मर्याद युक्त रूपी पदार्थ जाने इसके ८ भेदः—

(१) भेदः—अवाधि ज्ञान दो तरह से होवे, (१) नरक स्वर्ग में और तीर्थ करों को स्वभावसे जन्म से ही होता हैं, (२) न्यय मनुष्य या तिर्यचके क्षयोपशम करणी. करने से होता है,

(२) 'विषय'—नरकके जीवो जघन्य आधाकोश उत्कृष्ट ४ कोश अवाधि ज्ञान से देखे. देवताओं संख्यात वर्षायुवाले २५ योजन, प्लयोपम के आयुष्य वाले-संख्या त द्वीप समुद्र, और सागरोपम आयुष्यवाले-असंख्यात द्वीप समुद्र देखे-तिर्यच जघन्य अंगुलके असंख्यातवे भाग, उत्कृष्ट असंख्यात द्वीप समुद्र देखे, मनुष्य जघन्य अंगुल के असंख्यातवे भाग, उत्कृष्ट सम्पूर्ण लोक और लोक जैसे अलोक में असंख्यात खण्ड देखे \*

\* अलोक में अवधी ज्ञान से देखने जैसा पदार्थ तो हेही नहीं फक्त सत्ता बताइ है.

(३) 'संठाण'—नरक-त्रिपाई के, भवनपति-पाला के, व्यन्तर-पडह के, जोति-पी-शालरके, देवलोकके देव-मृदंग के, प्रीविकेके देव-फूलचंगरीके, अनुत्तर विमान के देव-कंचुकीके, और मनुष्य तिर्यच जालीके आकार से नानाप्रकारसे देखते हैं।

(४) 'वाह्यभ्यन्तर'—नरक देव के अभ्यन्तर अवधी ज्ञान, तिर्यच के वाह्य अ-वाधि ज्ञान, मनुष्यके-वाह्य अभ्यन्तर दोनों तरह का अवाधि ज्ञान।

(५) 'अणुगामी-अणाणुगामी'—जो आँखों की तरह जहाँ जावे वहाँ साथ रहे, और चारों तरफ देखे सो अणुगामी अवाधि ज्ञान। यह चारों ही गति के जीवों को होता है। और जो स्थापित-दीविके जैसा उत्पन्न होवे उसी स्थान से या हरेक एक दे, दिशीमें विक्रम से देखे सो अणुगणाणुगामी अवाधिज्ञान, यह मनुष्य तिर्यच दोनों गति में होता है।

(६) 'देशसे सर्वसे'—जो मर्याद सहित देखे सो देशसे। और सर्वलोक तथा कु-छ अलोक देखे सो सबसे। नरक देव तिर्यच के देशसे अवाधिज्ञान। मनुष्य के देशसे सर्व से दोनों तरहका अवाधिज्ञान।

(७) हायमान वृद्धमान अवस्थितः—परिणामोंकी संक्षेपता कर घटता जाय सो 'हायमान,' विशुद्धता कर बढ़ता जाय सो वृद्धमान, मध्यस्ताकर उपजे उतनाही बना रहे सो 'अवस्थित,' नरक देव के अवस्थित अवधीज्ञान, और मनुष्य तिर्यचके दोनों तरहका।

(८) 'पडवाइ अपडवाइ'—जो उपजकर चलाजावे सो पडवाइ, और जन्मान्ततक या आगेके भवों तक बना रहे सो अपडवाइ, नरक देव के अपडवाइ, मनुष्य तिर्यच के पडवाइ अपडवाइ दोनों तरहका।

अवाधि ज्ञानी—(१) द्रव्य से जयन्य अनन्त में भाग रूपी द्रव्यको जाने-देखे, उत्कृष्ट-सर्व रूप द्रव्य जाने। एकेक प्रमाणों चढेते अनन्त द्रव्यों हैं, यों द्रव्यविधि के अनन्त भेद होते हैं। (२) क्षेत्र से जयन्य अंगुलके अमंख्यातवे भाग क्षेत्र से लगा कर प्रदेशाधिक होते उत्कृष्ट संपूर्ण लोक और लोक जैसे अलोक में अमंख्यात बंड वे देखे-यों क्षेत्रसे अमंख्यात भेद होते हैं। (३) कालसे-जयन्य आंवलीका के। अमं-ख्यातवे भाग से समयाधिक होकर उत्कृष्ट अतीत अनागत अमंख्यात काल चक्रनक जाने यों, कालसे भी अमंख्यात भेद होते हैं। और (४) भाव से-जयन्य अनन्त भाव उत्कृष्ट अनन्त भावोंको जाने। यों भाव से अनन्त भेद ऐसे अवाधि ज्ञान का आवरण—

ढक्कन करे सो आवधि ज्ञानावरणी।

४ मनः पर्यव ज्ञानावरणीय के दो भेद-१. ऋजुमति और विपुलमति (१) ऋजुमति सो-सामान्य पणे, स्थूल पणे इसने घटलाने का चिन्तवन किया ऐसा मनोगत भाव जाने, (२) विपुलमति-विस्तीर्ण पणे बहुत पर्याय सहित जाने, जैसे इसने घटलाने का तो चिंत वन किया है, परंतु-अमुक धातुका अमुक-वर्णका आकारका परिमाणका वगैरा सब विस्तार से जाने।

मनः पर्यव ज्ञानी-(१) द्रव्यसे-ऋजुमति मनो वर्गणा के अनंत द्रव्य को जाने उस से विपुलमति बहुत प्रदेश के अति सूक्ष्म मनो द्रव्य को जाने। (२) क्षेत्र से-तिरछा अढाई द्विपतक, उंचा जोतिपीके उपर के तले तक, नीचे उंडी विजय- रत्न प्रभा पृथ्वी के खुलक प्रतर तक, यों १८०० योजन में रहे सान्नि पचेन्द्रिय के मनोगत भाव को जाणे, विपुलमति-इस से अढाई अंगुल क्षेत्र अधिक और विशुद्ध पणे जाणे। (३) कालसे-ऋजुमति वाला पल्योपम के असंख्यातवे भाग अतीत अनागत में चिन्तवन किये व करेगा उसे जाने। विपुलमति वाला कुछ अधिक जाने। और (४) भावसे ऋजुमति चिन्तवन किये हुवे असंख्यात पर्याय को जाने, विपुलमति कुछ विशेष जाने। ऐसे मनः पर्यव ज्ञान का जो आवरण करे सो मन पर्यव ज्ञानावरणी।

५ केवल ज्ञान-इसका एकही भेद है। केवल ज्ञानी-(१) द्रव्य से रूपी अरूपी सर्व द्रव्य को जाने, (२) क्षेत्र से-लोकालोक का सब क्षेत्र जाने। (३) कालसे-सर्वाद्वा विषय जाने। और (४) भाव से-सब गुण पर्याय विषय है। एक रूप-शुद्ध-निरुपाधी-अप्रतिपाति-शुद्धात्म सम्पूर्ण गुण-सर्व विशेष प्रकाश रूप सो केवल ज्ञान। इसका आवरण-ढक्कन करे सो केवल ज्ञानावरणीय।

यों पांचों ज्ञान को आवरण करने वाली ज्ञानावरणीय कर्म की पांच प्रकृति।

## २ दर्शनावरणायि कर्म।

अवल ज्ञान हुवे से तुर्त ही दर्शन होता है, अर्थात्-ज्ञानको साकर उपयोग कहा है सो पदार्थों का आकर जानने वाला विशेष रूप सो ज्ञान, और जो सामान्य निराकारोपयोग रूप वस्तुका अवबोध जाति गुण क्रियादि विशेषण रहित धर्मीभाव विषय करे, सो निर्विकल्प रूप अवबोध उसे दर्शन कहते हैं। जैसे आँखपर पट्टा बान्धने

से किसीभी वस्तुको देख सकता नहीं है और उस पट्टे में छिद्र होने से कुछ प्रतिभा-  
प होता है, और सर्वथा पट्टा दूर होनेसे पुर्ण प्रकाश होता है. त्यों दर्शनके भी चार  
प्रकार होते हैं.—(१) आँखों से पद्यादि पदार्थ का सामान्य रूप देखा जावे सो चक्षु  
दर्शन, उसे नहीं देखने देवेसो चक्षु दर्शनावरणीय. (२) आँखोबिना चारों इन्द्रियों से  
तथा मन से जो शब्दादि अर्थ का सामान्य बोध होता है. तथा परभव से आते हुवे  
रस्ते में द्रव्येन्द्रिय की सहायता बिना जो बोध होवेसो अचक्षु दर्शन. इसका जो आ-  
वरण-दक्कन करे सो अचक्षु दर्शनावरणीय. (३) द्रव्यादि की मर्याद सहित जो रूपी  
पद्यों हैं, उनको देखे सो अवधि दर्शन. इसका आवरण करे सो अवधि दर्शनावरणी-  
य. (४) सर्व द्रव्योंका सामान्यश का बोध होवेसो केवल दर्शन-इसका-निवन्धन-आव-  
रण करे सो केवल दर्शनावरणीय.+

और निद्रासे सर्व दर्शनोंका घात होनेके सबबसे निद्राको भी दर्शनावरणीयका  
उदय कहा जाता है. और कर्मों की मन्दता कर शब्दादि से जाग्रत होता है. प्रचल-  
ता कर मुर्छित होता है इस कारण से निद्राके पांच भेद कहे हैं. (१) जो मद खेद  
आदि दूर करने सोवना. सोवतेही तुर्त निद्राका आना. शब्द भाव में तुर्त जाग जाना,  
उसे 'निद्रा' कहते हैं. (२) जो लोट पलोट आदि अनेक दुःख में आवे. बुलन्द आ-  
वाज शरीर घुणघुणादि अनेक दुःख में जागावे तो भी मुशकिल में आँख ज्यडे,  
सो 'निद्रा निद्रा' (३) उभे २ बैठे २ निद्रामे झोके. खावे कुत्ते की  
तरह निद्रा में अंगका वचन का चलन होवे सो 'प्रचला :—(४) अत्यन्त  
चिन्तामे नगे मे निद्रा के वश चिन्तकूल वे सावधानी रहे. अंगपछाडे या थोडे  
की तरह रस्ते चलता उभे x सो प्रचला प्रचला. ५ जो—(१) निद्राके अ-  
व्वल चिन्तवन किया कार्य निद्रामें करे सो 'धीनद्री' निद्रा. (२) स्थान=एकस्थान+  
गृह=लुब्ध होना. अर्थात्—आत्माकी कण्टिकी एक स्थान रोक अचेत बनादेना सो

+ मनके विषय चिन्तवन किया द्रव्य विशेष रूप होता है इसलिये मनः पञ्च ज्ञान  
का दर्शन नहीं करहै. और धुन्दिन मन्दिन पूर्वक होता है इसलिये मन्दिनके बहुत और  
अचक्षु दो दर्शन कहे हैं.

x कहते हैंकि—थोडा दो स्थान जगुन है पञ्चके ज्ञान रहने केकर दान नचे छोडे नद ईन  
स्थान होवे नद.

‘स्त्यान गृह्य’ निद्रा. इस निद्रा में अर्ध चक्रवर्ति का बल प्राप्त होता है, \* जो इस निद्रा में मरेतो नरक गति ही होती है.

यह ४ दर्शन और ९ निद्रा मिल दर्शनावरणीय कर्म की ९ प्रकृति हुई.

### ३ वेदनीय कर्म.

उपरोक्त ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय के तीव्र आभरण के उदयकर अज्ञानताके योगसे तीव्र विपाक भोगवते हुवे(१) जो नरकादि गतिमें दुःख की प्राप्ति हो वे-वेदे-भोगवे, सो असाता वेदनीय कर्म, और (२) तीव्र क्षयोपशम के योग्य से सूक्ष्म अर्थ जानते जो देवादि गति में साता सुख वेदनेमें आवे सो सातावेदनीय. जैसे मधू (सहेत) लिप्त खड्ग धारा को जिन्हां कर चाट ने से प्रथम तो मीठा रसका स्वाद आता है, और फिर जिन्हां कटने से दुःख होता है, ऐसे ही साता वेदनीय के क्षयसे असाता का उदय होता है और असाताका क्षय से साता का उदय अनुक्रम से बना रहता है.

### ४ मोहनीय कर्म.

जैसे मदिरा पान करने से मनुष्य वावला हो जाता है, तैसे मोहनीय कर्म के उदय कर जीव अपना हित अहित कुछ समझ सकता नहीं है; कदाचित समझ भी जायतो कर सकता नहीं है. इस के दो भेदः—(१) जैसे खुशार के जोर से पथ्य आहार पर रुचि नहीं होती है, तैसे ‘दर्शन मोहनीय’ के उदय कर शुद्ध-देव-गुरु-धर्म पर रुचि नहीं होती है, और कु-देव-गुरु-धर्म पर रुचि जगती है. (२) जैसे बंधी खाने में पडा हुआ मनुष्य इच्छित भोग भोगवने समर्थ नहीं होता है, तैसेही “चारित्रमोहनीय” के उदयकर जीवों-धर्म तप संयम का आचरण कर सकते नहीं है.

प्रथम कही दर्शन मोहनीय जिसके तीन भेदः—(१) जैसे नशा का पदार्थ भोगवने से मूर्च्छित हुआ जीव माति की विकलता होनेसे पदार्थों को विपरीत देखता है, तैसे-मिथ्यात्व मोहनीय” के उदय चौठाणीया तीठाणीया दोठाणीया रस सहित अनुपहत सर्व घातिक रस तत्व सदृहणा में विपर्यास का करने वाला होता है. (२) जै-

से उस मादक पदार्थका आधा नशा कभी होने से-विकलता कम होती है जिससे सु-कार्य करता २ कुकार्य भी करने लग जाता है। तैसे 'मिश्र मोहनीय' के उदय कर दो ठाणीया रस रहने से कुछ सम्यक्त्व के कार्य करता २ मिथ्यात्व का भी, कार्य करने लगजाता है, और उन दोनोंको एकसा-अच्छा श्रद्धान करता है। (३) जैसे सा-फ नशा उच्चर गये बाद उसकी खुमारी यत्किंचित रहती है जिससे जरा विचार उ-चार आचार में तफावत आजाती है, तैसे ही "सम्यक्त्व मोहनीय" वालेने मिथ्यात्व के दलको यथा प्रवृत्ति करण, अपूर्व करण और अनिवृत्ति करण कर मन के परि-णाम उज्ज्वल कर चौठाणीया त्रिठाणीया और दो ठाणीयां रसोंको निवार कर फक्त एक ठाणीया रस बाकी रखा है वो जीव, जीवादि की परिज्ञामें मुरझाय तो नहीं, प-रन्तु आत्म स्वभाव रूप उपशम क्षायिक सम्यक्त्वकी उन के प्राप्ति होवे नहीं। सूक्ष्म पदार्थों में विशेषादेश शंकित हो सम्यक्त्व में मेल लगालेता है।

(२) चारित्र मोहनीयकी २ प्रकृति:—(१) कषाय, और (२) नो कषाय, इसमें कषाय की १६ प्रकृति और नोकषाय की ९ प्रकृति, दोनों मिल चारित्र मोहनीय की २५ प्रकृति होती है। सो कहते हैं:—

कष=रस+आय=आवे. जिससे संसार का कष आकर आत्म प्रदेशोंपर जमें और जिससे संसार परि भ्रमण का कार्य निपजे सो कषायचार प्रकार की होती है:— १ क्रोध. २ मान. ३ माया और ४ लोभ. इन चारों को अनन्त बन्धि, अप्रत्याख्या-नावरणीय, प्रत्याख्यानावरणीय, और संज्वलन इन चारों से चौगुने करने से १६ भेद होते हैं, सो आगे दृष्टान्त युक्त कहते हैं.

(१) अनन्तान बन्धि कषाय सो—अनन्तान=अनन्त संसारकी अनुबन्धि वृ-द्धि करे, इस कषायवाला कदाग्रह रूप कुयुक्ति से बुद्धिके शून्य पणे कर-एकान्तवा-दिकी रूचि टले नहीं. अन्यमतपर रागयुक्त. मन्मतपर द्वेषी. ऐसाजीवं बाह्य दृष्टि कर कदापि कषायोदय मन्दभी देखाय तो भी युक्ति हीन पन्नपाति को नियमा से अन-

+ अनन्तान बन्धि चौक और तीनों दग्धन मोहनीय इन से श्रद्धान में फरक पड़ता है, इसलिये इन सातों प्रकृति को दग्धन मोहनीयमें गृह्यकी जाती है. और यहां जो २९ प्रकृति को चारित्र मोहनीयकी कही है सो फक्त स्मृति अज्ञेयकर जनना. निश्चय नरसे तो अनन्तान बन्धि चौक दिना २९ ही प्रकृति चारित्र मोहनीयकी है.



[नो कपकाय उसे कहते हैंकि जो कपायको उत्पन्न करनेका मूल कारण होवे, जैसे कहवत् हैकि—“ झगडेका मूल हांसी, और रोगका मूल खांसी. ” ऐसेही नवों का जानना उन ९ नवों का नाम कहते हैं.—] (१) ‘हांसी सो’ भांड चेष्टादि सकारण से तथा विना कारण से हंसना आवेसो. (२) ‘रतिसो’—इन्द्रियों को अनू कूल सामग्री मिलने से या विना कारण मन में सुख वेदेसो. (३) ‘अरति’ सो—इन्द्रियोंके प्रतिकूल संयोग मिलने के कारण से तथा विना कारण मन में उद्वेग होवे सो. (४) ‘भय’—दुष्ट मनुष्यादि देखने से भय होवे—सो एह लोगभय, सिंह सर्पादि देखनेसे भय होवै सो परलोग भय, चोरादि वस्तु का हरण करनेसे भय होवे सो आदान भय. विद्युतादि से अचिन्त्य भय उपजे सो अकस्मात् भय. उदर पूरण का भय सो आजीवका भय, मरण भय, पूजाश्लाघा भय, यह ७ प्रकार से डरकी प्राप्ति सो. (५) ‘शोक’—इष्ट वियोगादि कारण विना कारण जिस कर्मोदय कर शोककी प्राप्ति होवे. (६) ‘दुगंच्छा’—सो दुर्गन्ध कुरूप आदि वस्तु देखे या विना देखे मत्सर—‘ग्लानी आवै सो (इन ६ ही प्रकृतियों को ‘हांस्य पटक’ कहते हैं) (७) ‘स्त्रीवेद’—जो पुरुष के दर्श स्पर्श की इच्छा होवे सो. इसकी विषय वकरीयों की लेंडी की आग्निके जैसी छेडे त्यों ज्यादा होवे. (८) ‘पुरुषवेद’—जो स्त्रीके दर्श स्पर्श की अभिलाषा करेसो—इसकी विषय सूके घांसकी आग्निके जैसी प्रज्वलित हो तृप्त शान्त पड जावे. और (९) ‘नपुंसक वेद’—स्त्री पुरुष दोनोंका दर्श स्पर्शकी इच्छा होवेसो—इसकी विषय द्वाग्नि के जैसी सदा प्रज्वलित रहे. (यह ३ वेद मिल ९ नो कपाय हुवे) उपरोक्त दर्शन मोहनीय की ३ प्रकृति और चारित्र मोहनिय २५ प्रकृतियों सब मिल मोहनीय कर्म की २८ प्रकृति हुइ.

### आयुष्य कर्म.

जैसे अपराधी पुरुष को राज पुरुष काष्ठ के खोडे में कब्ज कर देते हैं, उस की जितने कालकी मुदत होती है उस के पाहिले वो उस खोडे में से निकल सकता नहीं है. तैसे ही कर्म के अपराधी आत्म ने नरकादि गति रूप खोडमें जितनी मुदत (आयुष्य) बन्ध कर प्रवेश किया है, उस मुदत पाहिले निकल नहीं सकता है. इस कर्म की ४ प्रकृतियों;—१. महा आरंभ, महा परिग्रह, पचेन्द्रिय का वध, और मदिरा मांस का आहार करने से जीवों नरक गति का आयुष्य बान्ध कर नरक में जाकर रहे सो ‘नरकायु,’ २. माया, मत्सर, झूठ बोलना, खोटे माप तोल करने से जीवों ति-

बन्धन मे बन्धि होवे, परन्तु हाड पट्टी और हाड स्त्रीली दोनों नहीं होवे सो "मारच संघयण." (४) एकही तरफ मर्कट बन्ध होवे सो "अर्धनाराचमंघयण." (५) फक्त हड्डीयों की सन्धि मिली हो—केवल वृक्षकी तरह तुर्त नम जावे—सो—कीलिका संघयण. और (६) जिसके शरीर की हड्डीयों—एकेक हड्डीके आकार मे रही होवे, जराक बक्का लगने मे अलग हो जावे, सो—"छिन्न संघयण." कहा जाता है.

८ "मंस्थान नाम कर्म"—जो प्रत्यक्ष में शरीरका आकार देखने में आवे उसे 'मंस्थान' कहते हैं, जिसके ६ प्रकार :- (१) 'ममचतुर्गम मंस्थान'—मम—बगैर+चतु=चारों तरफ के+अन्त=बोनें, अर्थात् पश्चामन लगाकर बड़े बाट-दोनों घुटने और दोनों स्कन्ध के बीच के चारों तरफ के अन्त की होनी बगैर आवे सो—'ममचतु. रस मंस्थान' (२) जैसे (निग्रोध-वृक्ष) के वृक्ष का ऊपरका भाग तो अन्त देखाता है, और नीचेका विभाग चट्टे आदि के सबब मे खगाव लगता है, तैसी जिसके शरीर का नाभी ऊपर का भाग विलक्षणों पेन पूर्ण प्रमाण घुल होवे, और नीचे का भाग धरोवर न होवे सो "निग्रोध पग्मिन्त्य मंस्थान" (३) जैसे गुग्गुली इमरीका शाट नीचे तो शाखा प्रतिशाखादि बर अन्त देखाता है, और ऊपर दृष्ट निरन्तर खराद देखाता है, तैसी जिसके शरीरका नाभी नीचेका भाग अन्त होवे और ऊपरका आकार अन्त न होवे विदूष होवे सो—'सावि मंस्थान' (४) जिसके हाथ पैर सुप्त द्रीवादि अङ्ग सुन्दर होवे, और हृदयपर तथा एष्टर हड्डीका पिण्ड निरन्त होवो, सो—'पुष्प मंस्थान' (५) जिसके फल हाथ पैर छोटे होवे, हाथीका मूँद शरीर बगैर होवे—जो देखा होवे सो—'बावना मंस्थान' और (६) जिसके सर्व अङ्गोत्तम अङ्गोत्तम होवे और प्रखलित सुन्दरे से जैसा भयंकर देखाता होवे सो "हृद मंस्थान."

९ 'वर्ण नाम कर्म'—शरीर के विषय घुटनों का बर, रंग से बर, परितः होवे सो 'वर्ण नाम' इसके ५ भेद :- (१) बाँधने का बर—जैसा शरीर का बर—रङ्ग होवे सो—'कृष्ण वर्ण नाम' (२) सुते की रंग जैसा होे बर का शरीर होवे सो—'नील वर्ण नाम' (३) शिर के जैसा रंग का शरीर होवे सो—'श्वेत वर्ण नाम' (४) अन्तर्गत जैसा रंग का शरीर होवे सो—'पित्त वर्ण नाम' (५) अन्तर्गत जैसा रंग का शरीर होवे सो—'शेखर वर्ण नाम'

१० 'मन्त्र नाम कर्म'—मन्त्रोक्ति से कृष्ण होने से शरीर का रंग होवे सो 'मन्त्र नाम कर्म' इसके ५ भेद :- (१) कृष्ण वर्ण वर्ण नाम

हण कर जो तेजस शरीर का बन्ध करे सो "तेजस बन्धन." और (५) कर्मण के पुद्गलों ग्रहण कर कर्मण शरीर का बन्धन करे सो "कर्मण बन्धन."

इन ५ के पहिले के तीनों शरीरका तो देश बन्ध और सर्व बन्ध दोनों होते हैं. और तेजस कर्मण के देश बन्ध तो है परन्तु सर्व बन्ध नहीं है, क्योंकि-यह दोनों अनादि सम्बन्धि हैं.

६ "संघातन नाम कर्म"—जैसे विखरे हुवे तृणों को बुहारी से बुहार कर एकत्र करते हैं और फिर उसका भारा बान्धते हैं. तैसे ही संघातन नाम कर्म के उदय कर औदारिकादि के विखरे हुवे जगत् में के पुद्गलों को एकत्र करता है, तब उसका शरीर रूप भरा बन्धता है-बन्धन पडता है. इस संघातन के ५ भेदः—(१) औदारिक शरीर के विखरे पुद्गलोंका जो संघात करे-मिलावे सो—"औदारिक संघातन," (२) वैक्रिय के पुद्गलों का संग्रह करे सो-वैक्रिय संघातन (३) आहारक पुद्गलों का संग्रह करे सो—"आहारक संघातन." (४) तेजस के पुद्गलों का संग्रह करे सो "तेजस संघातन," और (५) कर्मण के पुद्गलों का संग्रह करे सो—"कर्मण संघातन"

७ "संघयण नाम कर्म"—आस्थि-हड्डियों का सान्धना-मिलाकर जमाना-मजबूत करना उसे संघयण कहते हैंः—यह संघयण ६ प्रकार के होते हैंः—(१) दोनों तरफ के दोनों हाड मरकट बन्ध से बन्धे होवें, उसपर तीसरा हाड पट्टे की माफिक बाँटा होवै, उसपर उन तीनों हड्डियोंको भेदे-ऐसी बज्रभंय खीला होवे जो उन हड्डियोंमें ठोका हुवा होवै, जिससे सब हड्डियों स्थिरी भूत होगइ होवे, ऐसा जिनका मजबूत शरीर होवेसो "बज्र ऋपभनारच संघयण." + (२) दोनों तरफ की हड्डियों मरकट बन्ध कर मजबूत बन्धी होवे, उसपर हाड पट्टा भी विधित होवे. परन्तु उनके बीच खीली न होवे. सो—"ऋपभ नारच संघयण."—(३) दोनों तरफसे हड्डियों मरकट

+ दोनों हड्डियों को स्थिर करने पट्टे जैसी तीसरी हड्डी उसपर वेधित होवे. उसे पट्टा कहते हैं. और दोतान हड्डियों को भेद कर जो सन्धि को दृढ़ करे जो चौथी हड्डी खाली रूप होवे उसे बज्र कहते हैं. और दोनों हड्डियोंके आंकड़े मिले पीछे छूटे नही उसे नारच कते हैं. जैसे बन्दरी फायग भरनी है तब उसका बच्चा उसके हृदय को दृढ़ ग्रहण करता है, तैसे हड्डियों के बन्धन को मरकट बन्ध कहते हैं. × सबयण हड्डियोंका होता है. देवना के और नाकी रकी के वैक्रिय गतिर में हड्डियोंने होनेसे असंययणी कहे जाते है.

बन्धन से बन्धि होवे, परन्तु हाड पट्टी और हाड खीली दोनों नहीं होवे सो "मारच संघयण." (४) एकही तरफ मर्कट बन्ध होवे सो "अर्धनाराचसंघयण." (५) फक्त हड्डीयों की सन्धि मिली हो—केल वृक्षकी तरह तुर्त नम जावे—सो—कीलिका संघयण. और (६) जिसके शरीर की हड्डीयों—एकेक हड्डीके आधार से रही होवे, जराक बक्का लगने से अलग हो जावे, सो—'छिद्य संघयण.' कहा जाता है.

८ "संस्थान नाम कर्म"—जो प्रत्यक्ष में शरीरका आकार देखने में आवे उसे 'संस्थान' कहते हैं. जिसके ६ प्रकार :—(१) 'समचतुरस्र संस्थान'—सम—चरोवर+चतु—चारों तरफ के+अस्र=खोले. अर्थात् पद्मासन लगाकर बैठे बाट-दोनों घुटने और दोनों स्कन्ध के बीच के चारों तरफ के अन्तर की डोरी बराबर आवे सो—'समुचतुरस्र संस्थान.' (२) जैसे (निग्रोध-वृद्ध) के वृक्ष का ऊपरका भागतो अच्छा देखाता है, और नीचेका विभाग चडें आदि के सचब से खराब लगता है, तैसेही जिनके शरीर का नाभी ऊपर का भाग विलक्षणों पेट पूर्ण प्रमाण युक्त होवे, और नीचे का भाग चरोवर न होवे सो "निग्रोध परिमण्डल संस्थान." (३) जैसे खुरमाणी इमलीका झाड नीचे तो शाखा प्रतिशाखादि कर अच्छा देखाता है, और ऊपर ठूठा निकलनेमें खराब देखाता है, तैसेही जिनके शरीरका नाभी नीचेका भाग अच्छा होवे और ऊपरका आकार अच्छा नहोवे विद्रूप होवे सो—'सादे संस्थान' (४) जिनके हाथ पैर मुख ग्रीवादि अङ्ग सुन्दर होवे, और हृदयपर तथा पृष्ठपर हड्डीका पिण्ड निकला होव सो—'कुब्ज संस्थान.' (५) जिनके फक्त हाथ पैर छोटे होवे, बाकीका सब शरीर चरोवर होवे—जो ठेंगणा होवे सो—'वाचना संस्थान.' और (६) जिनके सर्व अङ्गोपाङ्ग अशोभनीक होवे, अध प्रज्वालित मुरदे के जैसा भयंकर देखाता होवे सो "हुंड संस्थान."

९ 'वर्ण नाम कर्म'—शरीर के विषय पुद्गलों का वायु रूप में रहन परिणाम होवे सो 'वर्ण नाम' इनके ५ भेद :—(१) कायले या काजले जैसा शरीर का काया रङ्ग होवे सो—'कृष्ण वर्ण नाम.' (२) सूत्रे की पंख जैसा हने रङ्ग का शरीर होवे सो—'नील वर्ण नाम.' (३) हिंगुल के जैसा लाल रंग का शरीर होवे सो "रक्त वर्ण नाम." (४) रस्ताल जैसा पीले रंग का शरीर होवे सो—'पित्त वर्ण नाम.' (५) और चन्द्रकीर्ण जैसा गौर वर्ण शरीर होवे सो—'श्वेत वर्ण नाम."

१० 'गन्ध नाम कर्म'—आपोन्द्रिय के ग्रहण करने योग्य काम मय जो शरीर के पुद्गलों होवे सो गन्ध नाम कर्म. इनके २ भेद :—(१) केसर बन्तनी जैसा शरीरकी

सुवास आवे सो-“सुरभि गन्ध नाम”, (२) लशणादि जैसी कुवास आवे सो-“दुर्भि-  
गन्ध नाम.”

११ “रस नाम कर्म”—रसेन्द्रिय के पारीक्षित-रस मय शरीरके पुद्गलों पारिणमैसो  
रसनाम कर्म, इसके ५ भेदः—(१) लोबिके जैसा कडवा रस हो सो “कटुरसनाम.” (२)  
मृद के जैसा चीखा रस होसो “तिक्त रसनाम,” (३) हरडेके जैसा कषायला रस होसो  
“कषायला रस नाम.” (४) इमली जैसा खट्टा रस हो सो “आमलन रस नाम” और  
(५) सक्कर जैसा मीठा शरीर होवे सो-“मधुरसनाम.”

१२ “स्पर्शनाम”—स्पर्शेन्द्रिय के ग्रहण करने योग्य जो पुद्गलों शरीर भाव  
को प्राप्त हुवे हो सो स्पर्श नाम-इसके ८ भेदः—(१) लोहेके जैसा भारी शरीर होवेसो  
“गुरु स्पर्श नाम.” (२) अर्कतुल (आककी रूड़) जैसा हलका शरीर होवेसो—“लघु  
स्पर्श नाम.” (३) मक्खन जैसा कोमल शरीर होवेसो—“मृदु स्पर्श नाम.” (४) गौ-  
जिह्वा के जैसा खरदरा शरीर होवे सो—“वासट स्पर्श नाम.” (५) हीम के जैसा शी-  
तल-ठन्डा शरीर हो सो—“शीत स्पर्श नाम.” (६) अग्नि के जैसा उष्ण स्पर्श हो सो—  
“उष्ण स्पर्श नाम.” (७) तेलके जैसा चिकना शरीर होवेसो “स्निग्ध स्पर्शनाम.” और  
(८) राखके जैसा लुक्खा शरीर का स्पर्श होवे सो “रूक्ष स्पर्शनाम कर्म.”

६ वर्ण, २ गंध, ५ रस, और ८ स्पर्श, सब मिल २० बोलों की व्याख्या यहां  
अलग २ शरीरको ग्रहण कर की गयी है सो मुख्यता में जानता हुआ एकही वर्णादि  
व्यवहार में धारण किया है. निश्चय नय करी गोणता रूप तो प्रत्येक एक २ शरीर  
में अलग २ बीमही बोल पाते हैं. +

१३ “आणू पृथ्वी नाम कर्म”—जैमे रम्मी से खेंचा हुआ बैल उन्मार्ग गया भी  
मन्मार्ग आ जाता है, तैमे-चक्र गति में जानि हुई आत्मा को खेंचकर नियमित गतिमें

— इन २० बोलों में मे-१ काल्य और २ नील्य, यह २ वर्ण. १ दुर्गन्ध, १ कटु और  
२ तिक्त यह २ रस. १ गुरु २ रक्ष ३ खरखरा और ४ शीत यह ४ गन्ध. यह १ प्रह-  
ति लोको में अनिट् गगनेमे अशुन गिनि जानिहै. उम लिये पाप प्रकृति कहतेहैं. और-१ र-  
क्त. २ पित्त. ३ और धैत, यह ३ वर्ण. १ सुरभिगन्ध. १ कषायला २ अम्यान और मधु  
यह ३ रस. और १ मृदु, २ लघु, ३ स्निग्ध ४ उष्ण यह ४ स्पर्श. यह १ प्रकृति लोकमें अच्छी  
गगने मे शुन गिनि जानिहै. इन्मैदे इनको पुन्य प्रकृति कहते हैं.

खेचकर लेजाय उसे अनुपूर्वी कहते हैं; इसके ४ भेद:- (१) जीव को नरक गति में खेच करले जावे सो "नरकानुपूर्वी" (२) तिर्यच गतिमें खेच करले जावे सो- "तिर्यचानुपूर्वी" (३) मनुष्य गतिमें खेचकर लेजावे सो मनुष्यानुपूर्वी. (४) और ४ देवगति खेचकर ले जावे सो देवगतियानुपूर्वी.

१४ विहायोगति नाम कर्म."-विहायो-आकाश में या अवकाश में + गति गमन करे सो विहायो गति (इस में आकाश नाम आने से इसे 'खगति' नाम से भी बोलते हैं:-) इस के दो भेद:- (१) राजहंस, सिंह, हस्ती आदि जैसी शुभ चालसे चलेसो - शुभ विहायोगति. और (२) गर्भव ऊड आदि जैसी खराब चालसे चलेसो अशुभ विहायोगति. +

यह सामान्य से १४ तथा विशेषसे ६५ पिण्ड प्रकृति कही. अब प्रत्येक प्रकृतियों अर्थात् जिसके दो भेद नहोवे, एक अपने रूपमें ही बनी रहे. जिसके ८ भेद:- (१) "पराघातनाम" सो-जिसके सम्मुख बोलते हुवे बड़े सामर्थ भी शंक लावे, उस के शब्द मात्रमें शब्दों का म्पाय मान होजावे, जो बड़ी राज शभा में भी बोलता हुआ धरे नहीं. सोपराघात \* २ 'उन्वाश नाम' सो-शरीर के अभ्यन्तर का वायु मुखद्वारा और नाकद्वारा मुख से आगमन होवे. ऐसा लब्धि × वन्त जीव होवे सो-उन्वाश नाम (३) 'आताम नाम'-सूर्यके विमानके जो रवहैं वो बादर एकेन्द्रिय पर्याप्ता पृथ्वीके जीवहैं. उनके शरीरका स्वभाविक स्पर्श तो शीतहै, तोभी उनका प्रकाश उष्ण पडना है. येही आताप नामकर्म. × (४) 'उद्योतनाम कर्म'-उपर कहा आताप नामकर्म उसका सूर्य जैसा उष्ण प्रकाश जानना. और यह जैसा चन्द्रमा ग्रह नक्षत्र ताराओंके विमानका शीतल प्रकाश, तथा देवताओं वैक्रिय रूप बनावे. लब्धि वन्त मुनि वैक्रिय रूप बनावे, तथा आ-

+ पहिले जो ४ गति का वरण कहा सो-परमव गमन आश्रया जानना, और यहा उद्धार की गति कही सो-इस भव आश्रय जगना, मोनड सरमोने आकाश में गमन कर्ताकों-ही विहायो गति कही है.

\* मोनड मर के कर्म काण्ड में लिख है जिन्हीका मंग, नर डट, मर्, निर, जटि जीवों के शरीर में दूसरे के शरीर के घात होत है. इन्हीसे उसे परा घात नाम जानना.

× नास्र में लब्धि को अयोपगमिज कही है सो प्रभाविक शब्दहै, ज्यों जिवैका अन्तर-क लब्धि उदायिज भव में है, तथा विर्यन्तगपके अयोपगम से भी होत है. इन्हीसे उदायिज अयोपगमिज जाने में कुछ हकन नही.

गीया नामक चौरिन्द्रिय जीवके उडते प्रकाश पडे. इत्यादि के शरीर का शीतल प्रकाश पडता है सो सब 'सद्योतनाम.' (५) "अगुरु लघू नाम"—जिनोका शरीर ऐसा भारीभी न होवे जो आपका शरीर आपसेही संभले नहीं, और ऐसा हलका भी न होके-वायु से उड जावे, ऐसा मध्यस्त 'शरीर होवे सो-अगुरु लघू नाम.' "(६) तीर्थकर नाम कर्म"—तीर्थकर नाम उपार्जन करने वाले प्राणी प्रदेशोदय से ज्ञान वृत्त्यता, अन्य प्राणीयों से अधिक होवे, तीर्थकर के भव में अवतरे तब पञ्चकल्याण (चवन, जन्म, दीक्षा, केवल और मोक्ष) का महोत्सव चौसठ इन्द्रादि असंख्य देवों वगैरा करते हैं:—१ उनको अहार निहार करते चर्म चक्षु देख सके नहीं, २ पसीना मेल रज रोग रहित महा दिव्य प्रकाशी सुन्दर शरीर होवे. ३ सुगन्धि आशाश्वास, ४ रक्त मांस गौ दुग्ध जैसा उज्ज्वल और मधुर. यह ४ अतिशय तो जन्मसे ही होते हैं, और भोगवाली कर्म भोगे वाद सर्वांरंभ परिग्रह को त्याग दिक्षा ले दुक्कर करणी से चार घनधातिक कर्मोंका क्षय कर केवलज्ञान केवलदर्शन पावें. साधू साध्वी श्रावक श्राविका इन चारों तीर्थकी स्थापना करे. तथा समवसरणकी रचना, तीस अतिशय वगैरा महान पुण्य प्रताप का प्रकाश होता है, महान उपकार कर सर्व कर्मोंका क्षयकर मोक्ष पधारतेहैं. सो तीर्थक नाम(७)'निर्माण नाम'-जैसे-बढाइ(मुतार)काष्ठके ढाय पांव मस्तक आदि अङ्गोपाङ्ग अलग २ बनाकर, फिर यथा योग्यस्थान उन सबको जमा कर, 'सुन्दर पुतली' बनाते हैं, वैसे जीवोंके शरीर के अङ्गोपाङ्ग नाम कर्म उत्पन्नकर्ता है, और फिर इस निर्माण-नाम कर्मोदयकर वो अङ्गोपाङ्ग सब निज स्थानमें २ यथा योग्य रीति से जम जाते हैं. उसे निर्माण नाम कहते हैं,(८)"उघपात नाम कर्म" जैसे रोज नामक पशुके सींगोंका बहुत फेलाव होने से किसी वक्त झाड़ी में शिर फस नेसे मरना पडता है, अर्थात् उसका शरीर उसीकी घातका कर्ता हुवा. ऐसे ही पड-जीभी, चौदन्ता आदि दुःख दाता अङ्ग होवे सो "उमघात-नाम कर्म." यह ८ प्रत्येक प्रकृतियोंका नामार्थ कहा.

\* प्रश्न-आग्नि के भी उष्ण प्रकाश पडता है तो क्या उसकेभी आताप नाम कर्मका उदय समझणा?

समाधान-आग्नि के आताप नाम कर्म का उदय नहीं है, क्योंकि आग्नि काय के शरीर का स्वाभाविक ही उष्ण प्रकाश है, सो नजीक रहने से अधिक उष्णता मालुम पडती है और दूर रहने से कम उष्णता मालुम पडती है, और सूर्यतो दूर रहाभी एकसा प्रकाशता है, तथा आग्नि काय का शरीर स्वभाविकही रक्त प्रकाशी है. तैसा सूर्यका नहीं इसलिये आग्निमें आतापनाम नहीं है.

अब "वस दशका"—अर्थात् वस आदि दश प्रकृति कहते हैं :—(१) "वस नाम"—जो दुःख से वास पावे, नुख से संतोष पावे यह उनके भाव प्रत्यक्ष में देखने में आवे, शीत उष्णादि दुःखप्रद स्थान को छोड़ मुख स्थान में जावे, इत्यादि लक्षण युक्त वेद्रिय, तेद्रिय, चौरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय, में उत्पन्न होवे सो वस नाम. (२) 'वादर नाम'—जिन जीवों का शरीर सर्वों के देखने में प्रत्यक्ष आवे ऐसा शरीर होवे सो-वा-दर नाम. (३) 'पर्याप्ता नाम'—पुद्गल के उपचय से हुवा जो पुद्गल परिणामन हेतु श-क्ति विशेष १ जो जीवो पुद्गलों को ग्रहण करे खल रस अलग अलग करे, सो "आहार पर्याप्ति". २ जो शक्ति विशेष रस हुवा उसे सात धातु पणे परिणामावे सो 'ग-रीर पर्याप्ति'. ३ उस धातु को द्रव्येन्द्रिय पणे परिणामने की जो शक्ति सो 'इन्द्रिय पर्याप्ति', ४ आशोश्वास वर्णादल ग्रहण कर आश पणे परिणामावे सो 'आशोश्वास पर्याप्ति'. ५ भाषाके द्रव्य ग्रहण कर भाषा पणे परिणामावे सो 'भाषा पर्याप्ति'. और ६ मन के द्रव्य ग्रहण कर मन पणे परिणामावे सो—"मन पर्याप्ति". इन ६ पर्याप्ति में से-एकेन्द्रिय मे पहिले की चार पर्याप्ति होती है. वेन्द्रिय तेन्द्रिय चौरिन्द्रिय और अस-त्री पचेन्द्रिय इन में मन बिना पांच पर्याप्ति होवे, और मन्त्री में ६ ही पर्याप्ति होवेहैं. इनमें से जिनमें जितनी पर्याप्ति होव वो प्रथम समय सब पर्याप्ति का आरंभ एक सा-थही करे. फिर एक समय में आहार पर्याप्ति पूर्ण करे, फिर अन्तर मुहूर्त में गरीर पर्याप्ति पूर्ण करे, फिर औदारिक गरीर वाला तो अन्तर मुहूर्त २ अन्तर से बाकी रही पर्याप्ति पूर्ण करे और वैक्रय तथा आदारक गरीर वाला समय २ के अन्तर वा-कीकी पर्याप्ति पूर्ण करे. आगे दो पर्याप्ति सूक्ष्महैं, इमलिये कालका फरक पडजाताहै, यथा दृष्टान्त-छे स्त्रीयों सूत कानना एकही समय नुरु किया. उममें से जो स्थूल जा-डा सूत काते सो शीघ्र पूर्ण करे, और बारीक काते तो देरने पूर्ण होवे. यों-१ आ-हार पर्याप्ति, २ शरीर पर्याप्ति, ३ इन्द्रिय पर्याप्ति, यह ३ पर्याप्ति पूर्ण किये पहिले कोइ भी जीव कदापि मरता नहीं है. इनलिये इन ३ पर्याप्ति पूर्ण करे उमे 'करण प-र्याप्ता' कहना. और जिनके जितनी पर्या है उतनी पुर्ण करे उमे लब्धि पर्याप्ता कह तेहैं.(४)"प्रत्येक नामकर्म"—मो-एक गरीरमें एकही जीव रहे. ऐसे गरीरमें ग्हेमो प्रत्येक नाम (५)"स्थिर नाम कर्म"—ढडीयों दंतों नशों अङ्गोपाङ्ग सब स्थिर होवे. अव्यय व द्रढ होवे सो स्थिर नाम. (६) "शुभ नाम कर्म" (६) जिनके अङ्ग का स्पर्श दुमने



को होने से हर्ष उत्पन्न करै जैसे नाभी के उपर के अङ्गका किसी को संघटा होने से बुरा नहीं लगता है, सो शुभ नाम. (७) "सौभाग्य नाम" पर उपकार किये बिना या स्वजनादि सम्बन्ध बिना सब जन को इष्ट कारी लागे, सुबाहु कुमारकी तरह, सो सौ भाग्य नाम" (८) "सुस्वर नाम सो" कोकिला जैसा सुस्वर होवे. (९) "आदेय नाम सो-जिसका बोला हुआ कैसा भी वचन सब को मन्योग लगै. शुभ शकुन की तरह ग्रहण करे सो आदेय नामी जाणना और (१०) "यशः कीर्ती नाम"—जो एक देश में विस्तरे सो कीर्ती, चारों दिशा में फैले सो यशः, यह दोनों जिसके होवे सो यश कीर्ती नाम.

अब 'स्थावर दशका'—अर्थात् स्थावर आदि १० प्रकृति कहते हैं;—(१) 'स्थावर नाम' सो जो पृथ्व्यादि पांचो स्थावर स्ववशते हलन चलन नहीं कर सके सो. स्थावर सूक्ष्म नाम—जिनोके असंख्यात शरीर का समागम होनेसे भी जो दृष्टि नहीं आवे सो सूक्ष्म नाम. (३) "अपर्याप्त नाम" सो पूर्वाक्त छे पर्याप्ति में से पहिलेकी तीस पर्याप्ति पूर्ण नहीं करे वहां तक-करण अपर्याप्ता. और जितनी जिस स्थान पर्या वान्धने की है. वो पूर्ण बन्धे नहीं वहां तक लब्धि अपर्या कहना. (४) साधारण नाम वनरपति-निगोद-कंद मूल आदि में एकेक शरीर में अनन्त २ जीवो हैं, उन में रहे सो साधारण नाम. (५) अस्थिर नाम सो-जैसे कान भाषण केश इत्यादि सब हिलते रहे, ऐसे अस्थिर अव्ययव होवे सो अस्थिर नाम. (६) 'अशुभ नाम' जैसे नाभी के नीचे का किसीभी अङ्ग का किसी को संघटा हो जावे तो वो बुरा मानता है, तैसे अशुभ अङ्गोपाङ्ग होवे सो अशुभ नाम. (७) 'दौर्भाग्य नाम सो' बिना वैर विरोध और बिना नुकसान कियेही जो दुसरेको अप्रिय-अनिष्ट लगे सो—"दौर्भाग्य नाम" (८) दुस्वर नाम-काग मंजार आदि की तरह जिसका स्वर अनिष्ट खराब होवे सो. दुस्वर नाम. (९) "अनादेय नाम" जो अपने जान में सब को अच्छे लगे ऐसे वचन बोले, तोभी उस के वचन किसीकोभी अच्छे नहीं लगे, आप शकुन समझे सो अनादेय नाम. (१०) और 'अपयशः कीर्ती नाम' सो—उत्तम काम करते भी जिसका अपयश होवे, लोको अव्रण वाद बोलै सो अपयश नाम:

यह ६५ पिन्ड प्रकृति, ८ प्रत्येक प्रकृति, १० वस दशका, और १० स्थावर दशका सब मिल १३ नाम कर्म की प्रकृति होती हैं.+

+ जो मूल प्राप्ति शरीर बन्धन ५ है. उसके जो १५ भेद पीछे किये है वो बन्धकी

## ७ गौत्र कर्म.

जैसे कुंभकार-कुम्भ कलश आदि उत्तम वरतन निपजावे तो वो अक्षत धूपा-दिसे पूज्य होतेहैं, और मदिराका घट बतावेतो मदिरा निकाले बाद भी दुर्भिगन्ध कर दुर्गच्छनीय, निन्दनीय होतेहैं. ऐसेही गौत्र कर्म के भी दो भेद होते हैं:- (१) इषाग, उग्र राज भोग आदि महाजनोके कुलमें जन्म लेवे सो ऊंच गोत्र. और (२) भिक्षुक चण्डाल आदि नीच कुल में जन्म लेवेसो नीच गौत्र.

## ८ अन्तराय कर्म.

जैसे राजा ने भन्दारी को हुकम दिया की इसे लक्ष रूपे इनाम के देवो. परन्तु वो रूपे देना भन्दारी के इक्त्यार है। तैसे वस्तु तो सब प्रकार की प्राप्त होगइ परन्तु उनका लाभ लेने देना यह अन्तराय कर्म दूटेके इक्त्यार है, इसके ५ भेद :- (१) 'दानान्तराय'-पात्र में देने योग्य शुद्ध द्रव्य भी पास है, लेने वाले शुद्ध पात्रका भी योग्य है. देने के भाव भी हैं, इतना सब योग होकर भी दान नहीं दिया जावे मो दानान्तराय. (२) चहा जैसी वस्तु उस के पाम है. वो ढातार है. देनेके भाव भी हैं, तोभी उस वस्तु की प्राप्ति न होवे, तथा बहूत होंग्यारीमें व्यापार करते भी उम में लाभ की प्राप्ति न होवे सो 'लाभान्तराय.' ३ असन पान खादिया स्वादिम इत्यादि सब भोग के पदार्थोंका जोग भिलाहे, भोगवने की तीव्र इच्छाभी है, परन्तु भोगवे नहीं जावे सो 'भोगन्तराय.' (४) वस्त्र भूषण आमन शैया आदि, सब उप भोगकी इच्छित सामग्री मिली है, भोगवने की तीव्र इच्छाभी है, परन्तु भोगव मके नहीं सो- 'उपभोगन्तराय'-और (५) मिथ्यात्व की क्रिया करने समर्थ होकर वो क्रिया नहीं कर सके सो 'बालवीर्यान्त राय'-तथा मायु श्रावक मोलकी क्रिया जानादि वीरन्त की आराधना करने समर्थ होकर भी आराध नहीं सके मो पंडित वीर्यान्तराय.

कर्म और कर्म प्रकृतियोंका संक्षेप में नाम बताने वाला यन्त्र.

१ ज्ञानावरणीय कर्म की ५ प्रकृति.	नं.	४ मोहनीय कर्म की २८ प्रकृति.	नं.
१ अनिज्ज्ञानावरणीय	१	१७ मिथ्यात्व मोहनाय	१
२ अविज्ञानावरणीय	२	१८ मिश्र मोहनीय	२
३ अविज्ञानावरणीय	३	१९ सम्यक्त्व मोहनीय	३
४ अविज्ञानावरणीय	४	२० अनन्तान बन्धि क्रोध	४
५ अविज्ञानावरणीय	५	२१ अनन्तान बन्धि मान	५
दर्शनावरणीय कर्मकी ९ प्रकृति.		२२ अनन्तान बन्धि माया	६
		२३ अनन्तान बन्धि लोभ	७
		२४ अप्रत्याख्यानी क्रोध	८
		२५ अप्रत्याख्यानी मान	९
		२६ अप्रत्याख्यानी माया	१०
६ अविज्ञानावरणीय	६	२७ अप्रत्याख्यानी लोभ	११
७ अविज्ञानावरणीय	७	२८ प्रत्याख्यानी क्रोध	१२
८ अविज्ञानावरणीय	८	२९ प्रत्याख्यानी मान	१३
९ अविज्ञानावरणीय	९	३० प्रत्याख्यानी माया	१४
१० निद्रा	१०	३१ प्रत्याख्यानी लोभ	१५
११ निद्रा निद्रा	११	३२ संवर्जन क्रोध	१६
१२ प्रवृत्ति	१२	३३ संवर्जन मान	१७
१३ प्रवृत्ति प्रवृत्ति	१३	३४ संवर्जन माया	१८
१४ अविज्ञानावरणीय	१४	३५ संवर्जन लोभ	१९
३ वेदनाय कर्मकी प्रकृति.		३६ शान्त	२०
		३७ शान्ति	२१
		३८ अग्नि	२२
		३९ अग्नि	२३
		४० अग्नि	२४
१५ अविज्ञानावरणीय	१५	४१ अग्नि	२५
१६ अविज्ञानावरणीय	१६	४२ अग्नि	२६

४२	स्त्रीवेद	२८
४४	पुरुष वेद	२७
४५	नपुंसक वेद	२८

### ५ आयुष्य कर्म की ४ प्रकृति.

४६	नरकका आयुष्य	१
४६	तिर्यचका आयुष्य	२
४७	मनुष्यका आयुष्य	२
४८	देवता का आयुष्य	४

### ६ नाम कर्म की ९३ प्रकृति.

४९	नरकगति	१
५१	तिर्यच गति	२
५१	मनुष्य गति	३
५२	देव गति	४
५३	एकेन्द्रिय जाति	५
५४	बेन्द्रिय जाति	६
५५	तेन्द्रिय जाति	७
५६	चौरिन्द्रिय जाति	८
५७	पचेन्द्रिय जाति	९
५८	औदारिक शरीर	१०
५९	वैक्रिय शरीर	११
६०	आहारक शरीर	१२
६१	तेजस शरीर	१३
६२	कर्मण शरीर	१४
६३	औदारिक अङ्गोपाङ्ग	१५
६४	वैक्रिय अङ्गोपाङ्ग	१६
६५	आहारक अङ्गोपाङ्ग	१७
६६	औदारिक बन्धन	१८

६७	वैक्रिय बन्धन	१९
६८	आहारक बन्धन	२०
६९	तेजस बन्धन	२१
७०	कर्मण बन्धन	२२
७१	औदारिक संघातन	२३
७२	वैक्रिय संघातन	२४
७३	आहारक संघातन	२५
७४	तेजस संघातन	२६
७५	कर्मण संघातन	२७
७६	वज्र रूपम नाराच संघयन	२८
७७	ऋषभ नाराच संघयण	२९
७८	नारच संघयण	३०
७९	अर्ध नारच संघयण	३१
८०	केलिक संघयण	३२
८१	छेवटा संघयण	३३
८२	ममचतुरस्त भंस्थान	३४
८३	निगोद पारिमंडल भंस्थान	३५
८४	सादिया भंस्थान	३६
८५	वाचना भंस्थान	३७
८६	कुचडा भंस्थान	३८
८७	हुंड भंस्थान	३९
८८	क्रष्ण वर्ण	४०
८९	नील वर्ण	४१
९०	रक्त वर्ण	४२
९१	पित्त वर्ण	४३
९२	भूत वर्ण	४४
९३	मूरभिगन्ध	४५
९४	दुर्भिगन्ध	४६
९५	कटुक रस	४७
९६	तिक्त रस	४८
९७	कषायला रस	४९
९८	अम्लान रस	५०

९१	मधुर रस	६१	१२७	शुभ नाम	७१
१००	कर्कश स्पर्श	६२	१२८	सोभाग्य नाम	८०
१०१	मृदु स्पर्श	६३	१२९	मुस्वर नाम	८१
१०२	गुरु स्पर्श	६४	१३०	आदेय नाम	८२
१०३	लघु स्पर्श	६५	१३१	यश कीर्ति नाम	८३
१०४	शीत स्पर्श	६६	१३२	स्यावर नाम	८४
१०५	उष्ण स्पर्श	६७	१३३	सूक्ष्म नाम	८५
१०६	स्निग्ध स्पर्श	६८	१३४	आपर्याप्ता नाम	८६
१०७	रूक्ष स्पर्श	६९	१३५	मात्रारण नाम	८७
१०८	नरकानु पूर्वी	७०	१३६	आस्थिर नाम	८८
१०९	तियंचानु पूर्वी	७१	१३७	अशुभ नाम	८९
११०	मनुष्यानु पूर्वी	७२	१३८	दौर्भाग्य नाम	९०
१११	देवानु पूर्वी	७३	१३९	दुस्तर नाम	९१
११२	शुभ विहायोगाति	७४	१४०	अनादेय नाम	९२
११३	अशुभ विहायोगाति	७५	१४१	अयशकीर्ति नाम	९३
११४	पराघात नाम	७६	७गोत्र कर्म की २ प्रकृति.		
११५	उन्वाश नाम	७७			
११६	आताप नाम	७८			
११७	उद्योत नाम	७९	१४२	ऊंचा गौत्र	१
११८	अगुरु लघु नाम	८०	१४३	नीच गौत्र	२
११९	तीर्थकर नाम	८१	८अंतराय कर्मकी ५प्रकृति.		
१२०	निर्माण नाम	८२			
१२१	उपघात नाम	८३			
१२२	व्रस नाम	८४	१४४	दानान्तराय	१
१२३	वादर नाम	८५	१४५	लाभान्तराय	२
१२४	पर्याप्ता नाम	८६	१४६	भोगान्तराय	३
१२५	प्रत्येक नाम	८७	१४७	उपभोगान्तराय	४
१२६	स्थिर नाम	८८	१४८	वीर्यान्तराय	५





## “ द्वितीय कर्मरोहण द्वारार्थ. ”

### ३४—प्रथम क्रियाद्वार का अर्थ.

मूल कर्मोत्पाति का कारण क्रियाही है. अर्थात्—मिथ्यात्व, आविरति, प्रमाद, कषाय, योग इन पांचों में-उठाण कम्म वल वीर्य पुरुषाकार पराक्रम इन पांचोंका संयोग होने से क्रिया निपजती है. वो किरिया इस विश्व में भरे हुवे कर्म वर्गणाके अनन्तान्त पुद्गलोंका परावर्तन होरहा है उन्हे खेंच कर आत्म प्रदेर्शोंके साथ सम्बन्ध करतीहै. “सकषाय कषाययोः साम्परायिके व्यययपो” इन तत्त्वार्थ नृवके वचनानुसार क्रिया दो प्रकारकी है:—सकषाड़ जीवोंके जो क्रिया लगती है उसे सम्पराय क्रिया कही जाती है. वो कषाय के योग से वन्ध स्थिति प्राप्त करती है. और कषाय रहित महात्मा को जो फक्त जोगों प्रवृत्ति कर क्रिया लगती है मो इर्षावही क्रिया कही जाती है. मो कषाय रूप रस-विक्राम के अभाव ले वन्ध स्थिति नहीं पाती है. काँच पर लगी रज (धूल) की तरह तुरंत दूर होजाती है.

इन में प्रथम सम्पराय क्रिया कही जित के २४ भेद करते हैं.

१. काइया क्रिया. इसके दो भेद:—(१) काया-शरीर पर ममत्व भाव धारन कर व्रत प्रत्याख्यान तप मंयम करता डरे. कि रखे धर्म करने में भेरा शरीर दुर्बल होजायगा. और शरीर के पोषणार्थ छेही काया का कुटुम्व करना डरे नहीं मो अणा उत्त काया क्रिया. (२) उठते बैठते हलन चलनादि करते यन्ना नहीं रखे मो दुप्रयुक्त काइया क्रिया.

२ आधीगरणीय क्रिया:—शस्त्र ले लगे जिनके दो भेद:—(१) शस्त्र की धान तीक्ष्ण करावे. हाया आदि लगावे मो मंयोजनाधि करणी. और (२) नदीन शस्त्र निपजानेमो निवृत्तनाधि करणी. ऐंभेही इसके वचनाअश्री दो भेद:—ज्यूना हेम-न्रमा या हेम जडूरेमो मंयोजनाधि करणी. और (२) नवा हेम करेमो निवृत्तनाधि करणी.

३ 'पाउसीया क्रिया'—द्वेष परिणामों से लगे. इसके दो भेदः—(१) सजीव वस्तु मनुष्य पशु क्षुद्री-जीवोंपर द्वेष करेसो जीव पाउसीया, (२) शीत ताप विष पाषाणादि निर्जीव नस्तुपर द्वेष करनेसे लगेसो अजीव पाउसीया.

४ 'परीतापनिया क्रिया'—परिताप (दुःख) उपजाने से लगे, इस के दो भेदः—(१) जीवको दुःख दे सो जीव परितापनीय, और (२) अजीवका निकारण छेद न भेदन करे सो अजीव परितापनिया किरिया.

५ 'पाणाइवाइ क्रिया'—सो जीव काया अलग २ करे, इसके दो भेदः—(१) अपने से दुसरे की घात करे, तथा आप घात करे सो सहत्य पाणावाइ, और (२) दुसरे के हाथ से दुसरे को मरावे, या दुसरेके हाथसे घात करावे सो परहत्य पाणाइवाइ क्रिया.

६ आरंभीय क्रिया—किसी भी पाप कार्य का प्रारंभ करे, इसके दो भेदः—(१) पृथव्यादि छेही जीव काया का मर्दन करे सो जीव आरंभी, और (२) साकट वाहन मुशलादि करावे सो अजीव आरंभी.

७ परिग्गाहीया क्रिया—ममत्व भाव से लगे, इसके दो भेदः—(१) दो पद चौपद मणी आदि पर ममत्व करे सो जीव परिग्गाहीया, और (२) वस्त्र भूषण मकानादि की ममत्व करे सो अजीव परिग्गाहीया.

८ 'मायावतिया क्रिया'—कपट करने से लगे, इसके दो भेदः—(१) ऊपर शुद्धाचारी रहे और अन्दर अनाचीर्ण सेवन करे सो अभ्यन्तर मायावतिया, और (२) खोटे-तोले-मापे रखे सो बाह्यमायावाति याकिरिया.

९ मिथ्या दंशणवत्तिया क्रिया—खोटी श्रद्धा से लगे, इसके ३ भेदः—(१-३) जिनाज्ञासे, कभी ज्यादा, विपरीत श्रद्धे परूपे स्पर्श. तथा (१-३) कुदेव-कुगुरु-कुधर्मका सत्य श्रद्धान करे.

१० 'अपचखाणीया क्रिया'—अविरति पने से लगे इसके दो भेदः—(१) सजीव वस्तु भोगवने के पचखाण न होणे से उसकी अविरति आवे सो सचित्त अपचखाणीया. और (२) अचित्त-निर्जीव वस्तु भोगवनेके पचखाण नहोनेसे अविरत आवे सो अचित्त अपचखाणीया किरिया.

११ 'दीढीया क्रिया'—देखने से लगे, इस के दो भेद—(१) गज वृषभ अश्वादि सजीव वस्तु को देख हर्ष विषवाद उत्पन्न होवे सो जीव दीढीया. और (२) भवण भूषणादि अजीव वस्तु के देखने से हर्ष विषवाद होवेसो अजीव दीढीया क्रिया.

१.२ "पुठियाक्रिया" स्पर्शने से लगे-इस के दो भेदः-(१) स्त्री पुरुष धान्य आदि सजीव वस्तु का स्पर्श करने से लगे सो जीव पुठिया. और (२) वस्त्र आभरण आदि स्पर्शने से लगे सो अजीव पुठिया.

१.३ "पाडोचिया क्रिया"-बुरा चिन्तवने से लगे. इसके दो भेद-(१) भयंकर र सिंह आदि सजीव वस्तु का बुरा चिन्तवे सो जीव पाडोचिया; और (२) अशुची मलादि निर्जीव का बुरा चिन्तवे सो अजीव पाडो चिया क्रिया.

१.४ सामन्तवणिया क्रिया-नजीक की वस्तु से लगे. इसके दो भेद-(१) स्व-क्रिय मनुष्य पशु पर्षा मकान भूषणादि की पर संस्था नृणकर प्रमोद पावे सो जीव सामन्तवणीया. और (२) दूध तेल आदि प्रवाही [पतले] पदार्थ उद्याडे रखनेमे लगे सो पर सामन्तवणिया.

१.५ निमथीया क्रिया-निक्षेप करने मे-डालने से लगे. इसके दो भेद-[१] पृथ्वी पाणी आदि सजीव वस्तु अयत्ना मे डालने से लगे सो सजीव निमथीया. और [२] तीर गोष्प आदि फेंकने से-डालने से लगे सो अजीव निमथीया.

१.६ "सहत्थिया क्रिया" अपने हाथ मे लगे. इसके दो भेद-( २ ) भिहर्मर्ष स्वान मंजार गौ अम्बादि का तथा अपने शरीर का वध बन्धनादि करने से लगे सो-जीव सहत्थिया. और (२) मोनार लोहकार कुंभकार आदि कूटन पीटन करे सो अ-जीव सहत्थिया.

१.७ आणवणीया-आइदे काम कराने से लगे. इसके दो भेद-[१] दाम आदि को आइदे काम करावे सो जीव आणवणीया. और (२) चंवादि की मटाय मे कामलेवे सो अजीव आणवणीया.

१.८ विदारणीया क्रिया-वस्तु के विदारने-फोड तोड करने से लगे. इसके दो भेदः-(१) भट्टी पुण्य फलादि सजीव वस्तु को विदारे सो जीव विदारणीया. और (२) धातु काष्ठ वस्त्रादि का छेदन भेदन करे सो अजीव विदारणीया. मिषणाग्निक रत्न. वि-भल्ल रत्न. शूर रत्न. आदि कुरमों मे पृथीत कषा गंगादि क वषय कषाय की प्रेरणा मे दूमरे का हृदय विदारे सो भी विदारणीया क्रिया.

१.९ अण भोग क्रिया-विना भोगवेदी क्रिया लगे. जिसके दो भेद-(१) दृश्य चित्त-अनावधान पणे किमी भी वस्तु को द्रष्टव करे निक्षेप करे सो दृश्य अनाभिणी. और (२) अन्य के काम भोग देखे हुए उने पार भोगवणे की अभिलाषा करे. सो



वस्तु अणा भोगी.

२० "अणाव कंखवति क्रिया-नइच्छेने लायक काम करने से लगे. इसके दो भेद-(१) दुर्व्यश्चादि सेवन करे सो लोकीक अणाव कंखी और (२) हिंसा धर्म स्थापे, तथा इस लोकार्थ धर्म करे सो लोकोत्तर अणाव कंखी.

२१ अनापयोगीक्रिया-निर्थक काम करने से लगे, इसके दो भेद-(२) मन वचन काया के योगो को अयत्ना से वर्तवे सो योग अनापयोगी (२) और कारीगरों के पास हिंसक कृतव्य करावे सो पर योग अनापयोगी.

२२ समुदाणिया क्रिया-बहुतों के समागम से लगे-इसके दो भेद-(१) बहुत मनुष्यों का समुदाय मिलकर शूली फासी नाटक तमाशा आदि देखे सो जीव सामुदा. नी. और (२) अजायब घर, बाग, दुकानादि, में बहुत वस्तुओंका संग्रह किया सो देखे सो अजीव सामुदाणी.

२३ पेजवतिया क्रिया-राग भावसे लगे-इसके दो भेद:- (१) माया-दगल वाजी करे, सो पेजवति. और (४) असा-तृष्णा वालां करे सो लोभ पेजवतीया.

२४ दोषवतिया क्रिया-द्वेष भाव से लगे. इसके दो भेद:- (१) क्रोध कपाय क र स्वात्म परात्म को प्रज्वलित करे सो क्रोध दोषवति, और (२) अभीमान अहंता करने से लगे सो मान दोषवतिया.

यह २४ सम्परायिक अर्थात् कर्मों के बन्ध करने वाली क्रिया. जानना और-

२५ इर्यावही क्रिया-फक्त योगों की प्रवृत्ति से लगे इसके भी दो भेद:- (१) इ ग्यास्वेन उपशान्त कपायी और वारवे क्षीण कपायीको योगोंके सकम्पपणेने लगे सो छद्मस्तीक इर्यावही, और (२) तेरेवे गुणस्थानी केवली भगवन्त के शुभ योगों की प्रवृत्ति से लगे सो केवल इर्यावही. यह इर्यावही क्रिया मे माता वेदनीय कर्म प्रदेश मे बन्ध तेह. सो कपाय के अभाव मे म्रियति और अनुभाग को प्राप्त नहीं होते, उमही वक्त अर्थात् जिस समय बन्ध करे उसके दूसरे समय में वेद (भोगवे) और वो तीसरे समय में-दिज्ञे-दुः करदेते हैं.

### २५ द्वितीय कारण द्वाराका अर्थ.

ऊपर कहे मुख्य क्रिया तो कर्म-प्रवृत्ति दत्त का मध्यम-संग्रह करतीहैं. और उनका बन्ध कारण से होता है सो कर्म बन्ध के ५ कारण हमो कहते हैं,

१. "मिथ्यान्व"-तत्त्वार्थ की अशुचि तथा विपरिणत रुचिसेवे, कुपक्ष का कदाप्र-

ह-हट करे सो मिथ्यात्व.

२ "अविरति" - कृपाका अपरिमाण-इच्छाका अनिरुध्द-छूटा पणा. आरंभ और विषय में लोलुप्ता सो अविरति.

३ "प्रमाद" - मत्प्रवृत्ति में निरुध्दमी. कुप्रवृत्ति में सहायिक. वाचाल. आळसी पणा सो प्रमाद.

४ "कषाय" - प्रवृत्ति-स्वभाव की बक्रना सो कषाय.

५ "योग" - मन वचन काया की मजीनता सो योग.

### ३६ तीसरे से सातवे-तक-हेतुद्वार का अर्थ.

ऊपर जो १ कारण कर्म वन्ध के कहे सो सामान्य सूत्र. और आगे जो हेतु कहते हैं सो इनही ५ कारणों में मे तीसरा प्रमाद कारण छोड़ कर + बाकी के ४ कारणों के विशेषार्थ रूप ५७ भेद होते हैं. उन्हे कर्मों के हेतु (कर्मों का कार्य साधने वाले मूलजन) कहते हैं:-

प्रथम मिथ्यात्व कारण से पांच हेतु हुवे:- १ अभिग्रही मिथ्यात्व-हठीला. २ अनाभि ग्रहीमिथ्यात्व-भोला. ३ अभिनिवेशिक मिथ्यात्व-कटाग्रही. ४ सांगायिक मिथ्यात्व-वैनी. और ५ अना भोग मिथ्यात्व-अजान.(इन पांचों मिथ्यात्व का कथन मिथ्यात्व गुणस्थान के लक्षण. लक्षण द्वार में विस्तारमे कियाई.)

द्वितीय अविरति के कारण मे-१२ हेतु हुवे:- १ मन्की २ श्रोत इन्द्रियकी. ३ चक्षुइन्द्रिय की. ४ घणैन्द्रिय की. ५ रनेन्द्रिय की. ६ स्पर्शैन्द्रिय की. ७ पृथ्वी कायकी. ८ अपकाया की. ९ तेजकायकी. १० वायुकायकी. ११ वनस्पति कायकी और १२ वनकायकी अर्थात्-मन को पांचों इन्द्रियों के विषय में और छेकाय के आरंभमें अन्न तेहवेको रोके नहीं. परन्तु छुटा छोड़देवे-अनर्पादित रहने १२-अविरतिहै

तृतीय कषाय के कारण मे २० हेतु हुवे:- १-४ अदन्तावबंधी चौक- निमका अदन्त नहीं आवे ऐसे त्रोध मान नाया लोभ: ५-८ अग्रन्या ख्याना वर्णी चौक-जो व्रत प्रत्याख्यानके निर्जरा रूप फलको न होनेदे ऐसे-त्रोध. मान. माया. लोभ. ९-१२

+ पांच प्रमादों में-प्रमाद कषयक मन्के कषयके हूँ. और विरक्त मन्के कषयके मे हूँ. के कषय मन्के कषय के मे हूँ. इन-पंच प्रमादों को छोड़ करके ४ कारणोंके ही ५७ हेतु किये गये हैं.

प्रत्याख्या नावरणीय चौक-जो सर्व विरति-संयम के फल को नष्ट करे ऐसे क्रोध न माया लोभ. १३-१६ संज्वलन चौक-जो थोडासा प्रज्वलित हो शान्त पड़जावे ऐसे क्रोध मान माया लोभ. (१६ कपाय हुई) १७ हॉस्य, १८ रति, १९ अरति, २० भय २१ शोक, २२ दुगंच्छा, २३ स्त्रीवेद, २४ पुरुषवेद, और २५ नपुंसक वेद, यह २१ ही सर्व कर्मों का बन्ध करने कवच=रस+आय-आवे. अर्थात् रस प्रगमा कर उस बन्ध को मजबूत-पक्का करे सो कपाय कहीजाती है.

चतुर्थ योग कारण से १९ हेतु हुवे-१ सत्यमन योग-सत्य विचार, २ असत्यमन योग-झूठा-कूकर्मों का विचार, ३ "मिश्रवचन योग", -सत्य असत्य दोनों तरहका विचार. ४ विवहार मन योग-सच्चा भी नहीं तैसे झूठा भी नहीं ऐसा विचार, (यह ४ मन के) ऐसेही-५ सत्य वचन योग, ६ असत्य वचन योग, ७ मिश्रमन योग, ८ विवहार वचन योग. (यह ४ वचन के) ९ औदारिक योग - हड्डी चरम आदि का मनुष्य तिर्यच का शरीर, १० औदारिक मिश्रयोग-औदारिक शरीर उत्पन्नहोते पुराने होवे वहां तक. यालब्धिप्रसय औदारिक शरीरि जब वैक्रिय करता है और वो वैक्रिय करे, सो नहीं निपजता है तब तक मिश्र गिना जाता है. ऐसेही ११ वैक्रिय योग-शुभ २४ दोषवातयो

र स्वात्म परात्म को प्रयत्न हुवे देवों का शरीर और अशुभ पद्वलों सेवना नरक का शरीर ने से लगे सो मान दोषयोग सो वैक्रिय उत्पन्न होते वा उत्तर वैक्रिय बनाते पूर्ण नहोवे वहां यह २४ सम्पत्ति सो. १३ आहारक योग-चउदह पूर्व पाठी मुनिवरों संशय से निवृत्त २५ इर्यावही समवसरण की विभूति का अवलोकन करने लब्धिके प्रभाव से स्वशरीर ग्यारवे; उपशान्त कपरका पूतला निकालेसो. १४ आहारक मिश्रयोग सो आहारक शरीर व छत्रस्तीक इर्यावही, जाते मिश्रता पावेहैसो. और १५ कारमण योग सो फक्त बलाउ रूप पर्वती से लगे सो केवत्साथ रहै सो. ( यह ५७ हेतु हुवे. )

बन्ध तेहैं, सो कपाय  
वक्त अर्थात् जिस स  
समय में-निर्जरे-दूर व

ऊपर कहे मुझव  
उनका बन्ध कारण से होत  
१. "मिथ्यात्व"-तत्त्व



बन्धातीहै। ४ अनन्तान वन्धि चौक, ४ बीच के चार संस्थान, ५ पहिले पांच संय-  
यण, १ अशुभ विहाय गति, १ दौर्भाग्य नाम, २ तिर्यच विक्र, ३ मनुष्य विक्र, २ औ-  
दारिक द्विक, १ स्त्रीवेद, १ नीच गोत्र, ३ धीणद्धी विक्र, १ उद्योत नाम, ४ अपत्या-  
ख्याना वरणीय चौक, यह ३३ प्रकृति का मिथ्यात्व गुणस्थान में होवे तो मिथ्यात्व  
प्रलय बन्ध होवे, और मिथ्यात्वके आगे अन्नत करके भी इन प्रकृतियोंका बंध होता  
है, तथा मिथ्यात्व और अन्नत दोनोंके कारण से भी इनका बन्ध होता है, परन्तु वा-  
की रहै तीनों कारणों कर इनका बन्ध नहीं होताहै ज्ञानवरणीय ५, दर्शनावरणीय-  
६, अज्ञातावे दनीय? मोहनीय १५ (जिन नाम, और आहारक द्विक छोड कर) ना  
म कर्म की ३२, ऊंचगौव १, और अन्तराय की ५, इन+६५ प्रकृति का मिथ्यात्व  
अविरति और कषाय इन तीनों में के एक कारण के सेवन से या दोनों तीनों कार-  
णोंके सेवन से बन्ध पडताहै, परन्तु फक्त इकेले योग करकेही बन्ध नहीं पडताहै। ए-  
क माता वेदनीय का बन्ध चारोंही कारण कर होता हैं, क्यों कि इसका बन्ध तेरे  
गुणस्थान तक होताहै। आहारक द्विकका बन्ध निर्वर्ण योग मरग संयम कर होताहै  
। और "दर्शन विशुद्धि, विनयस्पन्नता, शील हृतेप्सन्ती चारों, ५ भक्षण ज्ञानो पयोग,  
संवेगौ, शक्ति तस्त्याग, तपसी साधू समाधि बैयाह्य करण, महर्दाचार्य बहुश्रुत प्रव-  
चन भाक्ति रावश्यका परिहाण, मार्ग प्रभावना, प्रमचन वत्नलत्व, मिति तीर्थकर त्वस्य,  
अर्थात्-निर्मल सम्पत्तत्व पालने मे, विनय-नम्र भाव रखवने मे, शील आदि मर्व व्रतों  
आतिचार दोष रतिन पालने मे, वारम्बार ज्ञान में उपयोगका रमण करणे मे, वैराग्य  
भाव रखवने मे, स्वगन्यानुमार उलट भाव दान देनेमे, दुक्कर नपश्चर्या करनेमे, माधु  
के चितको समाधी शाल्नी प्राप्त होवे ऐसी तरह बैयाह्य भाक्ति करने मे, अर्हत आ-  
चार्य बहुमुत्री शास्त्र इनो की भाक्ति करने मे, दोनों वक्त के प्रतिक्रमण में हानी नही  
डालने मे अर्थात् दोनों वक्त प्रतिक्रमण करने मे जैन मार्ग की प्रभावना माहिमा की  
वृद्धि और जिन वचनों की वत्नलता करनेमे तीर्थ कर गौव का उपार्जन होताहै, और  
आहारक शरीरका बन्ध अप्रमन नायुकेही होताहै (यह १०० उत्तर प्रकृति बंधके कारण।)

+ आगे देश विगति सुम्पतने ६७ प्रकृति का बन्ध कह ज्ञान, उन्ने से यहाँ जिन नाम  
और सना वेदनीय यह प्रकृति प्रहृन नहीं कहै.

चीवृ परिणाम श्रारित्र मोहः” अर्थात्-जब कपाय का उदय होवे-क्रोधादि प्रणति में परिण में उस वक्त अपना स्वभाव (भान) भूल कर तीव्र कपायी बन जावे, दीर्घकाल तक कपायमें राच रहै, तो चारित्र मोहनीयका बंध होवे, ४ “बह्यारम्भ परिग्रहत्वं नार कस्यायुषः” अर्थात्-महा आरंभ, महा परिग्रह, पचेन्द्रिय का बध, और मांस मदिरा का भोग करने से नरक गति के आयुष्य का बन्ध होता है। ५ “माया तैर्यग्यो न स्य” अर्थात्-दगलवाजी, करे झूठ बोले तोले मापे खोटे रखे, और मत्सर भाव सेतिर्य च गतिके आयुष्य का बन्ध होता है! ६ “अल्पारंभ परिग्रहत्वं स्वभाव मार्दवच मानुष्य स्य” अर्थात्-अल्प-आरंभ परिग्रह, शरल-निष्कपटता, दयालुता और विनय करनेसे मनुष्यगति के आयुष्यका बन्ध होता है। और “सराग संयमा संयमा संयमऽ काम नि-ज्जरा बाल तपांसि देवस्य” अर्थात्-शिष्य शरीर आदि पर ममत्व रखने वाले साधु, श्रावक, विना मन कष्ट सहने वाले, अज्ञान तप करने वाले, देवगति का आयुष्य क रते हैं, ओर “सम्यक्त्वं च” अर्थात् सम्यक्त्वी के देवायु काही बन्ध होता है। ७ यो ग वक्रता विसंवादं चाशुभस्य नाम्न “अर्थात्-मन वचन काया के योगों की कुटिल ता रखे, दूसरे के साथ झूठे झगडे करे तो अशुभ नाम कर्म काबन्ध होता है। और “तद्विपरीतं शुभस्य” अर्थात्-मनादि वियोगों की शरलता शुद्धता रखे, धर्म चर्चा क-र धर्मोन्नति करने से शुभनाम कर्म का बन्ध होता है। ८ “परात्मनिन्दा प्रशंसे सद सद्गुणों च्छाद नोद्गावने च नीचैर्गौत्रस्य” अर्थात् दूसरे की निन्दा करे, अपनी प्रशं सा करे, दूसरे के गुणोंके ढाँके-छिपावे, अपने गुण प्रसिद्ध करे, दूसरे के दोष प्रसि द्ध करे, अपने दोष ढाँके तो नीच गौत्रका बन्ध होता है और “तद्विपर्ययो नीचैर्दृष्ट्यनु त्मेकौ चोत्तरस्य,” अर्थात्-गुणवातों के गुणानुवाद करे, अपनी निन्दाकरे, गुणीजनों के गुणों प्रसिद्ध करे, अपने गुण ढाँके; दूसरे के दोषों छिपावे, अपने दोष प्रसिद्ध क रे तो ऊँच गौत्रका बन्ध होता है, और ९ “विघ्नकरण मन्तरायस्य” अर्थात्-किसीको दान देने में, भोगोप भोग भोगने में, लाभोपर्जन करनेमें, और धर्म उद्यम करने में अ न्तराय देनेसे-विघन करने से अन्तराय कर्म काबन्ध होता है।

### उत्तर प्रकृति बन्ध के कारण.

पहिले बन्ध के चार कारण- (मिथ्या अट्ट कपाय योग) कहै, उने १२० ब-न्ध की प्रकृतियों पर उतार तैहैं:- ३ नरक विक, ४ पहिली चार जाति, स्थावर ना-म, सूक्ष्म नाम, अपर्याप्ता नाम, साधारण नाम, हुंड संस्थान, आताप नाम, नपुंसकवेद छेवटा संवयण, और मिथ्यात्व मोहनीय, यह १८ प्रकृतियों एक मिथ्यात्वो दय कर

बन्धातीहै । ४ अनन्तान बन्धि चौक, ४ बीच के चार संस्थान, ५ पाहिले पांच संय-  
यण, १ अद्युभ विहाय गति, १ दौर्भाग्य नाम, २ तिर्यच त्रिक, ३ मनुष्य त्रिक, २ औ-  
दारिक द्विक, १ स्त्रीवेद, १ नीच गोत्र, ३ धीणद्धी त्रिक, १ उद्योत नाम, ४ अप्रत्या-  
ख्याना वरणीय चौक, यह ३३ प्रवृत्ति का मिथ्यात्व गुणस्थान में होवे तो मिथ्यात्व  
प्रलय बन्ध होवे, और मिथ्यात्वके आगे अन्नत करके भी इन प्रवृत्तियोंका बंध होता  
है, तथा मिथ्यात्व और अन्नत दोनोंके कारण से भी इनका बन्ध होता है, परन्तु वा-  
की रहें तीनों कारणों कर इनका बन्ध नहीं होताहै ज्ञानवरणीय १, दर्शनावरणीय-  
६, अमातावेदनीय? मोक्षनीय १५ (जिन नाम, और आहारक द्विक छोड़ कर) ना-  
म कर्म की ३२, ऊंचगात्र १, और अन्नराय की ५, इन ४५ प्रवृत्ति का मिथ्यात्व  
अविरति और कषाय इन तीनों से के एक कारण के भेदन से या दोनों तीनों का-  
णोंके भेदन से बन्ध पड़ताहै, परन्तु फलतः इकेले योग करकेही बन्ध नहीं पड़ताहै। ए-  
क माना वेदनीय का बन्ध चारोंही कारण कर होता है, क्यों कि इसका बन्ध तेरे  
गुणस्थान तक होताहै । अहारक द्विकका बन्ध निर्यय योग मगग भयन कर होताहै  
। और "दर्शन विशुद्धि, दिनयस्पन्दता, शील हृतेष्वनती वागे, ५ भक्षण ज्ञानोपयोग,  
भवेगा, शक्ति तन्मयाग, तपपी साधु समाधि वैपाहल्य करण, मर्दाचार्य बहुश्रुत प्रव-  
चन भाक्ति रावश्यका परितापि, मार्ग प्रभावना, प्रसन्न बन्धत्व, निनि तीर्थका तन्मय,  
अर्थात्-निर्बल सम्यक्त्व पालने से, वित्त-तन्म भाव रखने से, शील आदि सर्व व्रतों  
अतिचार दोष रतिन पालने से, वाग्म्याग ज्ञान से उपयोगका मगग करने से, वैगम्य  
भाव रखने से, स्वगन्त्यानुसार उत्तम भाव दान देनेसे, दुष्टा तन्म्याग करनेसे, साधु  
के चित्तको समाधी शाली प्राप्त होवे ऐसी तरह वैपाहल्य भाक्ति करने से, अर्थात् आ-  
चार्य बहुश्रुती शास्त्र इनो की भाक्ति करने से, दोनों वक्त के प्रतिव्रजन में हानी नहीं  
होने से अर्थात् दोनों वक्त प्रतिव्रजन करने से जैन मार्ग की प्रभावना मर्दाचार्य की  
दुष्टि और जिन वक्तों वाक्म्याग करनेसे तीर्थ कर मार्ग का उपार्जन होताहै और  
आहारक मार्गका बन्ध अन्नत साधुकेही होताहै यह ३३ प्रवृत्ति के बंधन

॥ इनके दोष जिनके गुणस्थान में उपस्थित हैं, इनके से बंधन होता है, इनके से बंधन होता है, इनके से बंधन होता है ॥

## प्रकृति बन्धके चार प्रकार.

१. पहिले थोड़ी प्रकृतिका बन्ध कर फिर बहुत प्रकृतिका बन्ध करे. उसे—“भूयस्कार बन्ध”—कहते हैं. २ जो पहिले बहुत प्रकृति का बन्ध कर फिर थोड़ी प्रकृति बन्ध स्थानको जावे उसे—“अल्पतर बन्ध” कहते हैं. ३ जो बन्ध एकही संख्याके स्थान में रहे, अर्थात् जितनी प्रकृति पहिले बन्धि उतनीही प्रकृति का निरन्तर आगे बन्ध करे सो—“अवस्थित बन्ध.” ४ और जो साफ अवन्ध होकर फिर एकादि प्रकृति बन्ध सो—अव्यक्त बन्ध” इन चारों का खुलासा कहते हैं.

## आठों कर्मोंपर ४ ही प्रकार के बोध.

१. “भूयस्कार बन्ध”—(१) प्रथम ज्ञानावरणीय कर्म से लगाकर जो आठवे अन्तराय कर्म तक आठों कर्मों जिस वक्त बन्ध करे सो आठों का बन्ध स्थान-यह फक्त अन्तर मुहूर्त पर्यन्त रहता है. क्योंकि-आयुष्य का बन्ध एक भव में एकही वक्त अन्तर मुहूर्त पर्यन्त होता है; यह बन्ध पहिले गुणस्थान से (बीचका तीसरा गुणस्थान छोड़ कर) सातवे गुणस्थान तक होता है. (२) आयुष्य विना सात कर्मोंके बन्ध का स्थानक प्रथम गुणस्थान से नववे गुणस्थान तक पाता है, इसकी स्थिति-जघन्य अन्तर मुहूर्त, उत्कृष्ट-पूर्व क्रोडीका तीसरा भाग आधिक छे महीने कम ३३ सागरोपम पर्यन्त जानना. क्योंकि-पूर्व क्रोडी वर्षके तीसरे भाग में देवायु का बन्ध करे, वो सवार्थ सिद्ध में ३३ सागरोपम के आयुष्य पणे देवदा होवे, वहां सहस्र ६ महीना आयुष्य बाकी रहे तब आगेका दुसरे आयुष्य का बन्ध करे, इसलिये. (३) आयुष्य और मोहनीय यह दो कर्म छोड़ बाकी के छे कर्मोंका बन्ध दशवे गुणस्थान में होता है. सो फक्त अन्तर मुहूर्त पर्यन्त रहता है. (४) आगे उपशान्त-मोहनीय आदि गुणस्थान में. एक वेदनीय कर्मका बन्ध होता है. इसकी स्थिति जगन्य अन्तर मुहूर्तकी उत्कृष्ट देश ऊणी (कुछ कमी) पूर्व कोडी वर्ष की. कवली के अपेक्षा कर. इन के बन्ध स्थान तीन प्रकार के होते हैं.—(१) एक वेदनीय का बन्ध किये बाद छे कर्मोंका बन्ध करे सो प्रथम समय प्रथम भूयस्कार. यह बन्ध इग्यारवे गुणस्थान (उपशम श्रेणि) में पड़ते होवा है. और दशवे गुणस्थानमें ६ कर्मका बन्ध कर नववे गुणस्थान में ७ कर्म का बन्ध करे. मो-दुमरा भूयस्कार. (३) और येही जीव सातवे गुणस्थान में आयुष्य महित आठों कर्मों का बन्ध करे सो प्रथम समय तीसरा भूयस्कार है.

२ अल्पतर वन्ध-आयुष्यका वन्ध किये बाद पहिले समय ७ कर्म का वन्ध करे सो प्रथम समय प्रथम अल्पतर वन्ध. और नववे गुणस्थान के प्रान्त मे सात कर्मों का वन्ध कर दशवे गुणस्थान के प्रथम समय मोहनीय हीन कर छे कर्मोंका वन्ध करे सो दूसरा अल्पतर वन्ध. और छे कर्मों के आगे उपशान्त मोह क्षीण मोहमे एक वेदनीय कर्म का का वन्ध करते तीसरा अल्पतर वन्ध.

३ “अवस्थित वन्ध;”-आठ कर्मों का वन्ध किये बाद सात कर्मों का वन्ध करे तब प्रथम समय अल्पतर वन्ध. और फिर उसस्थान मे जीव जितने काल रहे ता-हंलग पहिला अवस्थित वन्ध. इन सात के पीछे छे कर्म का वन्ध करे तब प्रथम समय अल्पतर वन्ध. और फिर दूसरा अवस्थित वन्ध. और ६ कर्मों वान्धे बाद एक का वन्ध करे तब प्रथम समय अल्पतर वन्ध, और फिर तीसरी अवस्थित वन्ध. और सात कर्मों का वन्ध किये बाद आठ कर्मों का वन्ध करते प्रथम समय भूयस्कार, वन्ध और फिर चौथा अवस्थित वन्ध.

४ “अव्यक्त वन्ध”-मूल प्रकृतियोंका सर्वथा अवन्धक पणातो चउदवे अयोगी केवली गुणस्थान मे होता है, और फिर वहां से कोइभी जीव कदापि पडताही न ही है. इसलिये चौथा जो अव्यक्त वन्ध है सो कही भी पाता नहीं है.

### ❀ उत्तर प्रकृतियों पर चारों प्रकार के वन्ध. ❀

१ ज्ञानावरणीय, २ वेदनीय, ३ आयुष्य, ४ गोत्र, और ५ अन्तराय, इन पांचो कर्मोंका एकही वन्ध स्थान है. क्यों कि ज्ञानावरणीय और अन्तराय यह दोनों कर्मों तो ध्रुव वन्धि हैं. इन लिये दशवे गुणस्थान तक इन दोनो कर्मोंकी पांच २ प्रकृति का साथही वन्ध होता है वहां भूयस्कार और अल्पतर वन्ध नहीं होता है. और वेदनी, आयुष्य, गोत्र इन तीनों कर्मोंकी प्रकृतियों वन्ध विरोधनी है. इसलिये एक समय मे एकही का वन्ध होता है. और इसहि लिये इन तीनों कर्मों का वन्ध स्थानभी एकही होताहै: भूयस्कार अल्पतर वन्ध नहीं होता है. और वेदनीय तो नववे गुणस्थान तक वन्ध तीर. इसलिये इन बिना बाकी रहे चारों कर्मों की प्रकृतियों का फक्त अव्यक्त वन्ध एक होता है क्योंकि-इग्यारवे गुणस्थान में अवन्धतो फिर वन्ध करने प्रथम समय में अव्यक्त वन्ध जानना. और फिर अवस्थित वन्ध जानना.

अब बाकी रहे दर्शनावरणीय, मोहनीय, और नान इन तीनों कर्मों की उत्तर प्रकृतियों पर चारों प्रकार के स्थान वन्ध उतारने हैं.—



दर्शनावरणीय कर्म के-९ का, ६ का, और ४ का, यह ३ बन्ध स्थान हैं (१) इस में दर्शनावरणीय की सब नवोही प्रकृतिका बन्ध पहिले और दूसरे गुणस्थान में होता है, जिसकी जघन्य स्थिति अन्तर मुहूर्त की और उत्क्रष्ट स्थिति अभव्य की अपेक्षा से अनादि अनन्त, भव्य की अपेक्षा से अनादि सन्त, और पडवाइ की अपेक्षा सादि सान्त होती है. (२) नवप्रकृतियों में से धीणद्वी द्विक का बन्धका व्यच्छेद करनेसे मिश्रादि गुणस्थानमें ६ प्रकृतिका बन्ध होता है, सो जघन्य तो अन्तर मुहूर्त और उत्क्रष्ट ३३ सागरोपम पूर्वक्रोडी प्रथक्त्व झाजेरा जाणना. । (३) छे में से निद्रा द्विक अपूर्व करण के पहिले भाग में बन्ध का व्यच्छेद होने से आठवे गुणस्थान के बाकी रहे भागोंमें और नववे दशवे गुणस्थान में चारों प्रकृतियों का बन्ध जानना, सो जघन्य एक समय, श्रेणीमें मृत्यु होवे उसकी अपेक्षासे; और उत्क्रष्ट अन्तर मुहूर्त प्रमाण जाणना. । इन बन्धों में भूयस्कार बन्ध दो, अल्पतर बन्ध दो, अवस्थित बन्ध तीन, और अव्यक्त बन्ध दो होते हैं, सो कहते हैं:- (१) उपशम श्रेणी से पडते हुवे आठवे गुणस्थान के दूसरे भागमें आते हुवे दर्शनावरणीय की चारों प्रकृतियों का बन्ध करते हुवे पहिले निद्रा द्विक का व्यच्छेद कियाथा उसे पुनः बन्धे, तब ६ का बन्ध होवे; उस समय प्रथम भूयस्कार बन्ध जानना. फिर नवका बन्ध करते दूसरा भूयस्कार. ( यह दो भूयस्कार बन्ध ) ऐतेही (२) प्रथम ९ का बन्ध कर फिर ६ का बन्ध करे उस समय प्रथम अल्पतर बन्ध अपूर्व करण गुणस्थान के प्रथम समय छे प्रकृतिका बन्ध कर फिर निद्राद्विक का बंध व्यच्छेद होने से चार का बंध करे, उस समय दूसरा अल्पतर बंध. ( यह दो अपत्तर बंध ) (३) और इन तीनों बन्ध स्थान मे दूसरे समय से लगाकर उनस्थान के अन्तिम समय तक तीनों अवस्थित बंध जानना. और (४) इग्यारवे गुणस्थान में दर्शनावरणीय का अवंधक हो वहां से पडते दशवे गुणस्थान में चार प्रकृतिका बन्ध करे उसे समय पहिला अव्यक्त बंध और जो जीवो इग्यारवे गुणस्थानमें आयुक्षय होनेसे मरकर अनुत्तर विमान में देवता होवे वहां ६ प्रकृतिका बन्ध करे उस समय दूसरा अव्यक्त बन्ध. यों दर्शनावरणीय कर्म के उपर ४ प्रकारके बंध कहेजाते है.

मोहनीय कर्म के-१० बन्ध स्थान:-मोहनीय कर्म की २८ प्रकृति है, जिसमें से सम्यक्त्व मोहनी और मिश्रमोहनीय इन दोनों प्रकृतिका बन्ध होता नहीं है. इसलिये यह दोनों छोडकर बाकी २६ प्रकृति बन्ध के योग्य होती हैं; इसमें भी एकही



की, और उत्कृष्ट स्थिति अंतर मुहूर्त की जानना. क्योंकि-कोटक जीव श्रेणि में वंश स्थान एक ही वक्त स्पर्श कर मरण पावे, इस अपेक्षा में ॥ उन १० स्थानों में - १. भूयस्कार, ८ अल्पतर, १० अवस्थित, और २ अव्यक्त वंश होने हैं—सो कहते हैं जीवों औपशम श्रेणि चडकर इग्यारवे गुणस्थान में अंतर मुहूर्त रहकर, पडकर दशवे गुणस्थान में आवे वहां भी मोहनीय का अवंध रहे, वहां में पडता नववा गुणस्थान के पांचवे भाग में एक मंजल के लोभका वंश करती वक्त प्रथम समय पहिला अव्यक्त वंश, और आयुक्षय होने में-इग्यारवे गुणस्थान में मरण कर अनुत्तर विमान में देवता होवे सो प्रथम १० प्रकृति का वंश करे, उस के पहिले दुसरा अव्यक्त वंश. (यह दो अव्यक्त वंश) नववे गुणस्थान के पांच भाग से पडते चौथे भाग में मंजलकी माया के साथ दो प्रकृति का वंश करते प्रथम समय प्रथम भूयस्कार, तीसरे भाग में मंजल के मान के साथ तीन प्रकृति का वंश करते प्रथम समय दुसरा भूयस्कार, दुसरे भाग में मंजल के क्रोध के साथ चार प्रकृति का वंश करते. तीसरा भूयस्कार, प्रथम भाग में पूरुष वेद सहित पांच प्रकृतिका वंश करते चौथा भूयस्कार. वहांते आठवे गुणस्थान के अंतिम भाग में हांस्य, रति, भय, दुर्गच्छा सहित नव प्रकृति का वंश करते पांचवा भूयस्कार. वहांमें देश विराति गुणस्थान में प्रत्याख्यानवरणीय की चार प्रकृति सहित तेरा प्रकृतिका वंश करते छठा भूयस्कार, वहां से चौथे गुणस्थान में अमृत्याख्यानावरणीय चार कपाय सहित सत्तरे प्रकृति का वंश करते सातवा भूयस्कार, अनंतान् बान्धिकाचार कपाय सहित २१ प्रकृति का वंश करते आठवा भूयस्कार. मिथ्यात्व मोहनीय सहित बावीस प्रकृतिका वंश करते नववा भूयस्कार, (यह ११ भूयस्कार वंश) मिथ्यात्व गुणस्थान में बावीसका वंशकर चौथे गुणस्थान में सत्तरेका वंश करते प्रथम अल्पतर, फिर सत्तरे से तेरे प्रकृति का वंश करते दुसरा अल्पतर, यों उपर भूयस्कार वंश सब उलट कहने. इस में विशेष इतना है कि-इक्कीस प्रकृति का अल्पतर वंश नहीं होता है, क्यों कि-मिथ्यात्व गुणस्थान से सास्त्रादन में कोई भी जीव नहीं आता है. सा स्वादन गुणस्थान तो नियमासे सम्पक्त्व का पडवाई ही स्पर्शता है. इसलिये २२ के वंश से २१ के वंश में आनेका अल्पतर वंश नहीं होता है, बाकी के ८ होते हैं. (यह ८ अल्पतर वंश) । और उपर जो मोहनीय वंश के दशस्थान कहे उसमेंसे प्रथमका छोड कर बाकीके अंतिम समय पर्यंत रहे सोही दश अवस्थित वंश जानना.

नाम कर्म के ८ वन्ध स्थानः-(१) मिथ्यात्वी जीव मनुष्य तिर्यच अपर्याप्ताए-  
केन्द्रिय, प्रायोग्य-१. वर्ण, २ गंध, ३ रस, ४ स्पर्श, ५ तेजस, ६ कार्माण, ७ अगु  
रुलघु, ८ निर्माण, ९ उपयात, १० तिर्यच गति, ११ तिर्यचानु पूर्वो, १२ एकेन्द्रि  
य जाति, १३ औदारिक गरीर, १४ हुंड संस्थान, १५ स्थानवर नाम, १६ वादर,  
नाम, अथवा - नृत्त नाम, १७ अपर्याप्ता नाम, १८ प्रत्येक नाम, अथवा-साधारण  
नाम, १९ अस्थिर नाम, २० अशुभ नाम, २१ दौर्भाग्य नाम, २२ अनोदय नाम,  
और २३ अयगःकीर्ति नाम, इन २३ प्रकृतिका प्रथम वन्ध स्थान, (२) इन २३ में  
पराधात नाम और उन्धरा नाम यह दोनों प्रकृति मिलाने से और अपर्याप्ता के स्था  
न पर्याप्ता कहने से यह २५ प्रकृति पर्याप्ता एकेन्द्रिय प्रायोग्य मिथ्यात्वी देव मनुष्य  
तथा तिर्यच वान्ध तेहें: (३) इन २५ प्रकृति में आताप नाम, अथवा उद्योत नाम इ  
न दोनों में से एक नाम मिलाने से २६ प्रकृतिका वन्ध पर्याप्ता एकेन्द्रिय प्रायोग्य  
तीनों गतिके मिथ्यात्वी जीवों वान्ध तेहें, (४) २ देव द्विक, ३ पचेन्द्रिय जति, (४)  
वैक्रिय गरीर, ५ वैक्रिय अङ्गो पाङ्ग, ६ सम चतुरस्त संस्थान, ७ पराधात नाम, ८ उ  
छवान नाम, ९ शुभस्र गति, १० वस, नाम ११ वादर नाम, १२ शुभ पर्याप्ता नाम,  
१३ प्रत्येक नाम, १४ स्थिर अथवा अस्थिर नाम, १५ शुभ अथवा अशुभ नाम, १६  
यःकीर्ति अथवा अयगःकीर्ति नाम, १७ शुभग नाम, १८ नुस्वर नाम १९ ओदय  
नाम, २० वर्णचतुष्क, २१ तेजन गरीर, २२ कार्मण गरीर, २३ अगुरुलघु नाम  
२४ निर्माण नाम और २५ उपयात नाम, यह २८ प्रकृति देवगति प्रायोग्य मिथ्या  
त्वी तथा मन्मग्दृष्टि मनुष्य और तिर्यच वान्ध तेहें, और ऐमेही नरक गति प्रायोग्य  
भी २८ काही वन्ध होना है, जिनमें विधेय इतना है कि-देव द्विक के स्थान नरक  
द्विक कहना, समचतुरस्त संस्थान के स्थान हुंड स्थान कहना, और अपरावर्त मान प्र  
कृतियो अशुभ गृहण करनी, यह २८ प्रकृतियों का चौथा स्थान हुआ, (५) मन्म-  
ग्दृष्टि जिन नाम नहित देव प्रायोग्य २८ का वन्ध करते २९ का वन्ध स्थान होता  
है, अथवा २ मनुष्य द्विक, ३ पचेन्द्रिय जाति, ५ औदारिक द्विक, ६ छे-भंगयण में  
का एक भंगयण, ७ छेस्थान में का एक संस्थान: ८ वस, ९ वादर, १० पर्याप्ता, ११  
प्रत्येक, १२ स्थिर अथवा अस्थिर, १३ शुभ अथवा, अशुभ, १४ दौर्भाग्य अ-

थवा दौर्भाग्य. १९ सुखर अथवा दुःखरं, १६ आदेय अथवा अनादेय १७ यशःकीर्ति अथवा अयशःकीर्ति १८ शुभर गति अथवा अशुभ रगति, १९ पराघात, २० उच्छ्वास, २४ वणचतुष्क, २५ तेजस शरीर, २६ कर्मण शरीर, २७ अगुरु लघु, २८ निर्माण, और २९ उपघात, यह २९ प्रकृतिका मनुष्य प्रायोग्य, बंधस्थान होता है. ६ देवगति प्रायोग्य २८ प्रकृतिके साथ आहारक द्विक सहित ३० प्रकृति का बंध अप्रमत्त साधु के होता है और मनुष्य प्रायोग्य २९ प्रकृति का जिन नाम सहित ३० प्रकृतिका बंध सम्यग्दृष्टि देवता के होता है. (७) जिन नाम सहित देव प्रायोग्य ३० प्रकृति बांधते ३१ प्रकृतिका बंध अप्रमत्त व अपूर्व करण गुणस्थानी मुनिके होता है (८) और आठवे गुणस्थान के छठे भाग में नाम कर्म की ३० प्रकृति का बंध विच्छेद कर फक्त एक यशःकीर्ति काही बंध करे. । इन ८ बंध स्थान में भूयस्कार बंध ६, अल्पतर बंध ७, अवस्थित बंध ८, और अव्यक्त बंध ३, होते हैं सो कहते हैं:-

(१) प्रथम २३ का बंध कर तथा विधि शुद्धि कर २५ प्रकृतिका बंध करे सो प्रथम भूयस्कार बंध मिथ्यात्वी के होता है. (२) इन २५ प्रकृति को आताप अथवा उद्योत दोनों में की एक प्रकृति सहित २६ प्रकृति बांधे सो दूसरा भूयस्कार. (३) विशुद्धया संतोष परिणामों से देव प्रायोग्य अथवा नरक प्रायोग्य २८ प्रकृति का बंध करते तीसरा भूयस्कार. (४) देव प्रायोग्य २८ प्रकृतिका जिननाम सहित २९ का बंध करे सो चौथा भूयस्कार. (५) ३० प्रकृति मनुष्य प्रायोग्य अथवा देव प्रायोग्य बांधे सो पांचवा भूयस्कार. (६) देव प्रायोग्य ३० प्रकृति को जिन नाम सहित ३१ का बंध करे सो छठा भूयस्कार (यह ६ भूयस्कार) और (१) अपूर्व करण गुणस्थान में देव गति योग्य—२८—२९—३०—और ३१ का बंध कर श्रोणि चढ़ते हुवे इस बंध का व्यच्छेदकर एक यशःकीर्ति काही बंधन करे सो प्रथम अल्पतर बंध. (२) कोई आहारक द्विक और जिन नाम सहित देव प्रायोग्य ३१ प्रकृतिका बंध करते मरकर देवलोक में जावे वो वहां प्रथम समय मनुष्य प्रायोग्य ३० प्रकृति का बंध करे तब दूसरा अल्पतर. [३] देवलोक में चढ़कर मनुष्यपणें उत्पन्नहो जिन नाम सहित देवगति प्रायोग्य २९ का बंध कर उसके प्रथम समय तीसरा अल्पतर बंध [४] कोई मनुष्य देवगति प्रायोग्य २९ प्रकृति का बंध करता विशुद्ध परिणामों कर देवगति प्रायोग्य २८ का बंध करे उसके प्रथम समय चौथा अल्पतर बंध. (५) इनही २८ का बंध करते संकेश परिणाम कर एकेन्द्रिय प्रायोग्य २६ का बंध करे सो पांचवा अल्पतर बंध. ६ यही २६

वाला २९ बांधे सो छद्वा अल्पतर. ( ७ ) और २५ वाला २३ का बंध करे सो सातवा अल्पतर बंध. ( यह ७ अल्पतर बंध ) और ऊपरोक्त आठों बंध के स्थानक में दूसरे समय से लगा कर अन्तिम समय तक आठोंही अवस्थित बंध जाणना. ( यह ८ अवस्थित बंध ) और [१] श्रेणिसे पडते हुवे. नाम कर्म का सर्वथा अवन्ध होकर. फिर यशःकीर्ति नाम का दन्ध करे उसके पहिले समय पहिला अव्यक्त बन्ध. [२] उपशान्तमोह गुणस्थान में आयुष्य पूर्ण कर अनुत्तर विमान में देवता होवे वहां प्रथम समय मनुष्य से मनुष्य प्रयोग्य २९ का बन्ध करे सो दूसरा अव्यक्त बन्ध. और [३] वाहांही जिन नाम सहित ३० प्रकृतिज्ञा बन्ध करे सो तीसरा अव्यक्त बन्ध. [ यह ३ अव्यक्त बंध ] ॥ इति प्रकृति बंध. ॥

### स्थिति-बन्ध.

स्थिति बंध के ४ भाङ्गे:-ऊपरोक्त प्रकृति बंधमें मूल प्रकृतिज्ञा तो जयन्प एक का बन्ध है. उत्कृष्ट ८ का बन्ध है. और उत्तर प्रकृति का जयन्प एक का दन्ध है. उत्कृष्ट ७४ का दन्ध है इसमें:-१ अनादि. २ सादि. ३ अनन्त. और ४ सान्त; यह ४ भाँगे कहते हैं:-मूल प्रकृति बन्ध का ओयमे ( समुच्चय ) एक मादि सान्त भांगा पाता है. क्योंकि-भवो भवमे एकही वक्त आयुष्य का बन्ध होता है. यह ( ८ ) का बन्ध कहा. और वाकीके कालमें सात प्रकृतिज्ञा दन्ध होताहै. और उत्तर प्रकृतिमें ज्ञावनावरणीय और दर्शना वरणीय का एके का दन्ध स्थान. वेदनीय का-एक का बन्ध. मोहनीय का २२ का बन्ध. गौवका एक कवन्ध. और अन्तरायका पांच काबन्ध. इन बन्धों में-१ अभव्यकी अपेक्षा अनादि अनन्त भांगा. २ भव्यकी अपेक्षा अनादि सन्त भांगा. और ३ पडवाड की अपेक्षा नादि नान्त भांगा. यों तीन भाँगे मिलने हैं. और वाकी रहै सर्व प्रकृतियों के स्थान में फक्त एक मादि सान्त भांगा पाता है.

अठों कर्मोंकी स्थिति:-(१-२) ज्ञानवरणीय. दर्शना वरणीय. और अन्तगय इन तीनों कर्मों की जयन्प स्थिति अन्तर मुहूर्त की दशवे गुणस्थान के प्रान्त में होती है. और उत्कृष्ट तीन कोडा कोडी मागरोपम की उत्कृष्ट भेदग परिणामो मिथ्या त्वी के होती है. (३) वेदनीय कर्म की जयन्प स्थिति १२ मुहूर्त की मो इग्यान्वा. वारवा और तेरवा इन तीनों गुणस्थानों को छोड वाकी के नरागी गुणस्थानों मेंपाती है. क्योंकि-इन तीनों गुणस्थानों में कषाययोदय नहोने से स्थिति बन्ध और न्न बन्ध नहीं होता है. फक्त योग प्रत्यय प्रदेग बन्ध नया प्रकृति बन्ध पाता है. सो भी

प्रथम समय में बन्धे, द्वितीय समय में वेदे ( भोगवे ) और तीसरे समय में विनाशदी पाजाताहै. और उत्कृष्ट स्थिति तीस क्रोडा क्रोडी सागरोपमकी (४) मोहनीय कर्मकी जघन्य स्थिति अन्तर मुहूर्त की. बादर सम्पराय नववे गुणस्थान के प्रान्त में होती है और उत्कृष्ट स्थिति ७० क्रोडा क्रोडी सागरोपम की, महा संक्लिष्ट परिणामी मिथ्यात्वी के होती है. [५] आयुष्य कर्म की जघन्य स्थिति अन्तर मुहूर्त की पहिले दुमरे गुणस्थान में होवे, और उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की मिथ्यात्वी अत्यन्त सक्लेश परिणाम से नरंकाय बान्धता है, और प्रमत अप्रमत मुनि विशुद्ध परिणामों कर देवाय बन्धते हैं (६-७) नाम कर्म और गौव कर्म की जघन्य स्थिति ८ मुहूर्त की सो सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान के प्रान्त में बन्धे, और उत्कृष्ट २० क्रोडा क्रोडी सागरोपम की.

आठोंही कर्मों की १४८ प्रकृति की अलग २ स्थिति कहते हैं :-

१ ज्ञानावरणीय कर्म की-पाचों प्रकृति की जघन्य स्थिति अंतर मुहूर्त की सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थात के प्रांत में परिणामों की विशुद्धता से होती है, और उत्कृष्ट तीस क्रोडा क्रोडी सागरोपम की मिथ्यात्वी के होती है.

२ दर्शनावरणीय कर्म की - चक्षु दर्शनावरणीय आदि चारों प्रकृति की स्थिति जघन्य अंतर मुहूर्त की सो सूक्ष्म सम्पराय के प्रांत में. पाचों निद्रा की-एक सागर के सात भाग करीये जिस में के दो भाग उस में पल्योपम के असंख्यातवे भाग कम जाननी, एकेन्द्रिय की अपेक्षा से, उत्कृष्ट १ ही प्रकृति की ३० क्रोडाक्रोड सागर

३ वेदनीय कर्म की-साता वेदनीय की जघन्य स्थिति १२ मुहूर्त की, असाता वेदनीय की एक सागर के सात भाग करीये उस में के दो भाग जिस में पल्योपम का असंख्यातवा भाग कम. और उत्कृष्ट. साता वेदनीय की १९ क्रोडा क्रोडी सागरोपम, असात वेदनी की तीस क्रोडा कोडी सागरोपम की.

४ मोहनीय कर्म की-मिथ्यात्व मोहनीय की-जघन्य स्थिति-एक क्रोड सागरोपम में पल्योपम के असंख्यातवे भाग कम की. अनंतानबंधी, अप्रत्याख्यानि, प्रत्याख्या. इन तीनों चौक के १२ कपाय की एक सागर के सातीये चार भाग की. संक्रोध के क्रोध की नववे गुणस्थान के दुसरे भाग में चरम बंध दो महीना का संज्वलमान का नववे गुणस्थान के तीसर भाग में चरम बंध एक महीने का, संज्वलकी का नववे गुणस्थान के चौथे भाग में चरम बंध १५ दिनका, संज्वल के लोभ नववे गुणस्थान के पंचवे भाग में चरम बंध अंतर मुहूर्त का, पुरुष वेदका नववे

गुणस्यानके प्रथम भागमें चरम बंध ८ वर्ष का, स्त्रीवेदका एक सागर के चौदवे-तीन भाग का, नपुंसक वेदका एक सागर के चौदवे दोभाग का, हांस्य और रतिका एक सागर के सातीया-एक भाग का, अरति भय शोक दुगंच्छा का एक सागर के साती ये दोभाग का, [ यह २६ प्रकृतिका बन्ध हुआ, सम्यक्त्व मोहनीय और मिश्रमोहनीय का बन्ध पडता नहीं है, इसलिये गिना नहीं है ] और उत्कृष्ट स्थिति मिथ्यात्व मोहनीय की ७० क्रोडा क्रोडी सागरोपम, चारोंही चौकडी की १६ कषाय की ४० क्रोडा क्रोड सागरोपम, पुरुष वेदकी १० क्रोडा क्रोड सागर, स्त्रीवेदकी १५ पन्द्रक्रोड क्रोड सागर, नपुंसक वेदकी २० क्रोडा क्रोड सागर, हांस्य और रतिकी १० क्रोडा क्रोड सागर, अरति भय शोक दुगंच्छा की २० क्रोडा क्रोड सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति जानना.

५ आयुष्य कर्मकी-नरकायु देखाय की जयन्य स्थिति दशहजारवर्ष, उत्कृष्ट ३३ सागरोपम, मनुष्य तिर्यच की जयन्य अन्तर मुहूर्त उत्कृष्ट तीन पत्योपम ( जुगलीये आश्रिय. )

६ नाम कर्म की-जयन्य स्थिति जिन नाम की अन्तर मुहूर्त की, २ + आठारक शरीर, ३ आहारक अङ्गो पाङ्ग, ४ आहारक मंघातन, आहारक बन्धन, ६ आहारक तेजस बधन, ७ आहारक कर्मण बंधन, ८ आहारक तेजस कर्मण बन्धन, ३म आहारक सप्तककी उत्कृष्ट स्थितिमे अनख्यात गुण हीनी, तोभी अन्तर मुहूर्तकी, १५ शःकीर्ति की ८ मुहूर्त की, १३ वस चतुष्क, १९ अस्थिपञ्चक, २१ औदारिक द्विक, २३ तिर्यच द्विक, २४ एकेन्द्रिय जाति, २५ कुत्सगानि, २६ निर्माण, २७ आताप, २८ उद्योत, २९ स्थावर, ३० तैजस, ३१ कर्मण, ३२ अगुण्ययु, ३३ उपधात, ३४ उच्छ्वान, ३५ हृदयस्थान, ३६ छेवडा मंघयण, ३७ कृष्णवर्ण, ३८ तीक्ष्णरस, ४१ अशुभ स्पर्श चतुष्क, ४३ दुर्गंध, और ४४ पगयात नाम इन ४४ प्रकृति की जयन्य स्थिति एक सागर के मातीये दोभाग की, ६९ सूक्ष्म द्विक, ७० विद्वे, न्द्रिय द्विक, इन ६ की एसागर के पेंत्रीनी (३५) ये ६ भाग की, ७१ म्यिग, ७२ शुभ, ७३ सुभग, ७४ सुखर, ७५ आदेय, ७६ अयमाःकीर्ति, ७७ शुभग्व गानि, ७८

निरर्थक नाम कर्मके दस्तिये मेरे जिन्दे औरकेके कर्म अन्तर मुहूर्त इन इन नाम को प्राप्त होकेके ते को दस्तिये रूप न होने दस्तिये इन जेव की नम कर्मों दस्तिये केके वचन आदेय आदि हुम्नूलों दते



प्रथम संघयण, ५२ प्रथम संस्थान, ६० शुरुवर्ण, ६१ मिष्टरस, ६५ शुभ स्पर्शचतुष्क  
 इन १५ प्रकृतिकी-एक सागर के अठावीसीये ५ भागकी। इन सिवाय और जिस ना  
 म कर्म की स्थिति २० क्रोडा क्रोड सागर की है, उनकी जघन्य स्थिति सागरोपम के  
 सातीये दो भागकी जाननी। जिनकी स्थिति दश क्रोडा क्रोड सागरोपमकी है उनकी साग  
 रोपम के सातीये एक भाग की। जिनकी पन्द्रह क्रोड क्रोड सागरोपमकी है उनकी  
 जघन्य सागरोपम के चौद्वे ६ भाग की, जिनकी उत्कृष्ट १८ क्रोडा क्रोड सागरोपम  
 की है उनकी जघन्य सागरोपम के पैंतीसये १ भागकी की जानना। परन्तु सर्व  
 स्थान पल्योपम का असंख्यातवा भाग हीन (कमी) लेना। एसी तरह नाम कर्म की।  
 जघन्य स्थितिका प्रमाण करना। अब उत्कृष्ट स्थिति कहते हैं:- १ सूक्ष्म, २ साधार-  
 ण, ३ अपर्याप्ता, ६ विक्लेन्द्रियत्रिक, इन ६ प्रकृतिकी १८ क्रोडा क्रोड सागरोपम की  
 ७ वज्रवृषभ नाराच संघयण, समचतुरस्र संस्थान इन दोनों की दश क्रोडा क्रोड सा  
 गरोपम की, १ न्यग्रोध संस्थान, १० ऋषभ नाराच संघयण इन दोनों की १२ क्रो  
 डा क्रोड सागर। ११ नाराच संघयण, १२ सादि संस्थान इन दोनों की १४ क्रोडा  
 क्रोड सागर। १३ अर्धनाराच संघयण, १४ वामन संस्थान, इन दोनों की १६ क्रोडा  
 क्रोड सागर। १५ किलिक संघयण, १६ कुज्व संस्थान, इन दोनों की १८ क्रोडा क्रो  
 ड सागर। १७ छेवटा संघयण, १८ हुंड स्थान इन दोनों की २० क्रोडा क्रोड सागर  
 १९ मृदुस्पर्श, २० लघुस्पर्श, २१ लिङ्गस्पर्श, २२ उष्णस्पर्श, २३ सुर्भिगन्ध, २४ श्व  
 तवर्ण, २५ मधुर रस, इन ७ प्रकृतिकी १० क्रोडा क्रोड सागर। २६ हरावर्ण, २७  
 अम्लान रस, की साडी वारा क्रोडा क्रोडी सागर। २८ रक्तवर्ण, २९ कषायलारस-  
 की १५ क्रोडा क्रोडी सागर। ३० पितवर्ण, ३१ कटुरस की साडी सतरे कोडा कोड  
 सागर। ३२ श्यामवर्ण, ३३ तीक्ष्ण रसकी २० क्रोडा क्रोडा सागर। ३४ शुभ विहाय  
 गति, ३५ देवगति, ३६ देवानुपूर्वी, ३७ स्थिर; ३८ शुभ, ३९ सौभाग्य, ४० सु-  
 स्वर, ४१ आदेय, ४२ यशःकीर्ति, इन ९ प्रकृति की-१० क्रोडा क्रोड सागर। ४३  
 मनुष्य गति, ४४ मनुष्यानु पूर्वी की १५ क्रोडा क्रोड सागर, ४५ पवैक्रिय शरीर, ४६  
 वैक्रिय अङ्गो पाङ्ग, ४७ वैक्रिय संघातन, ४८ वैक्रिय वैक्रिय बन्धन, ४९ वैक्रिय ते  
 जस बन्धन, ५० वैक्रिय कार्मण बन्धन, ५१ वैक्रिय तेजस कार्मण बन्धन। ५२ तिर्य-  
 चगति, ५३ तिर्यचानु पूर्वी, ५४ औदारिक शरीर, ५५ औदारिक अङ्गो पाङ्ग, ५६  
 औदारिक संघातन ५७ औदारिक औदारिक बन्धन, ५८ औदारिक तेजस बन्धन,

५९ औदारिक कर्मण बंधन, ६० औदारिक तेजस कर्मण बंधन, ६१ नरक गति  
६२ नरकानु पूर्वो, ६३ तेजस शरीर, ६४ कर्मण शरीर, ६५ अगुरुलघु ६६ निर्मा-  
ण, ६७ उघात, ६८ तेजस संघातन, ६९ कर्मण संघातन, ७० तेजस तेजस बंधन,  
७१ कर्मण कर्मण वेधन, ७२ तेजस कर्मण बंधन, ७३ अस्थिर, ७४ अशुभ ७५  
दोर्भाग्य, ७६ दुस्वर, ७७ अनादेय, ७८ अयशःकीति, ७९ वस, ८० वादर, ८१ पर्या-  
प्ता, ८२ प्रलेक, ८३ स्थावर, ८४ एकेन्द्रिय जाति, ८५ पचेन्द्रियजाति, ८६ अशुभ  
विहायो गति, ८७ उच्छ्वास ८८ आताप, ८९ पराघात ९१ गुरु स्पर्श, ९२ कठोर  
स्पर्श, ९३ रुक्षस्पर्श, ९४ शीत स्पर्श, और ९५ दुर्गन्ध, इन ५० प्रकृति की २०  
क्रोडा क्रोड सागर. ९६ तीर्थ कर नाम. ९७ आहारक शरीर, ९८ आहारक अङ्गो  
पाङ्ग, ९९ आहाराक संघातन १०० आहारक आहारक बंधन, १०१ आहारक ते-  
जस बंधन, १०२ आहारक कर्मण बंधन, १०३ आहारक तेजस कर्मण बंधन. इ  
न ८ प्रकृतिकी-एक क्रोडा क्रोड सागर की स्थिति.

७ गोव कर्म की जघन्य स्थिति ८ मुहूर्त की, उत्कृष्ट ऊंच गोत्र की १० क्रो-  
डा क्रोड सागर की और नीच गौव की २० क्रोडा क्रोड सागर की.

८ अंतराय कर्म की पांचों अंतराय की-जघन्य स्थिति अंतर मुहूर्त की, उत्कृष्ट-  
तीस क्रोडा क्रोड सागर की,

यह १४८ प्रकृति जघन्य उत्कृष्ट स्थिति जाननी.

उत्कृष्ट स्थिति बंधके श्वानी-पहिले नरकयुका बंध किया हुआ मनुष्य धयोपश-  
म सम्यक्त्व प्राप्तकर तीर्थकर नाम कर्म की उपार्जना करे! और फिर पूर्व बंधानुसार  
नरक में गमन करते सम्यक्त्व का वमन करता अंतिम समय में तीर्थकर नाम की उ-  
त्कृष्ट स्थिति का बंध करते हैं. और आहारक द्विक का उत्कृष्ट स्थिति बंध अग्रमत  
गुणस्थान चरम बंध मुनि के होता है. क्योंकि-इम बंध में येही अति संक्षिप्त है. औ-  
र देवायु तो अग्रमत गुणस्थान में आयु बंध का आरंभ कर अग्रमत गुणस्थान में च-  
ढते हुवे साधु के होता है. क्योंकि-शुभ आयु बंध के स्थानक में येही अति विगुह  
स्थानक है इन चारों प्रकृति निचाय बाकी की प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थिति बंध न-  
ही पर्याप्ता मिथ्यात्व दृष्टिके होता है. क्योंकि मनुष्य और तिर्यचायु बिना बाकी  
की सब प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थिति बन्ध उत्कृष्ट संक्षेप परिणाम से होता है. और  
मिथ्यात्वा से अधिक जोड़ संक्षेप परिणामी होता नहीं है. इसलिए. इन में भी अम-

हैं, जिसकी यह संक्षेप व्याख्या है.

जगन्मय रस बन्ध के भामी कहते हैं:-३ धीण त्रिक, ४ अनन्तान बन्धि दो क, और १ मिथ्यात्वमोह. इन आठों प्रकृतिका मन्द रस बन्ध ( अत्यन्त जघन्य रस बन्ध ) के अधिकारी चारित्र के सन्मुख हुवे ( आगे सम्यक्त्व युक्त चारित्र की प्राप्ति करेंगे ऐसे) अनिवृत्ति करण के चरम समय में वर्तते मिथ्यात्वी मनुष्य जानना, क्यों कि-इन आठों प्रकृतियों के बन्ध केलिये इतनी विशुद्धता दूसरे स्थान में नहीं मिलती है, जो कदापि मिथ्यात्वी से सास्वादनी के परिणाम विशुद्ध हैं, तथापि सास्वादनी तो पडवाइही होता है. इसलिये संक्षिप्तही कहा जाताहै. और यह ८ आठोंही पाप प्रकृतिहै, इनका मन्द रस बन्ध विशुद्धि मेंही होता है. और वो विशुद्धावस्थाय प्र-  
न्धी भेद करते होता है, उसमें भी सम्यक्त्व सहित चारित्र गृहण करने वालेकी विशुद्धि किम्विक्तही होती है. इसलिये इन्हे गृहण कियाहै. और सम्यक्त्व गृहण किये बाद तो इन ८ प्रकृति का अबन्ध है. या चारित्र गृहण करने के अधिकारी मनुष्य ही होते हैं, इसलिये यहां मनुष्यही कहे हैं परन्तु देवतादिक नाही कहा. । अप्रत्याख्याना वरण चौक के जघन्य रस बन्ध के अधिकारी जो आगे को संयम अङ्गीकार करेंगे ऐसे अविरति सम्यग् दृष्टि जानना. क्योंकि इसके बन्ध में इस से अधिक विशुद्ध और दूसरा स्थान नहीं है + । प्रत्याख्याना वरणीय के मन्द रस करने वाले-संयम सन्मुख हुवे देशविरति ( श्रावक ) जानना. अविरति से देशविरति,की विशुद्धि अनन्तगुण अधिक है. । अरति और शोक मोहनीय के जघन्य रस बन्धने वाले प्रमत्त गुणस्थान वर्ती साधु जो आगे को अप्रमत्त होवेंगे सो जानना. अप्रमत्त में इन दोनों का बन्ध नहीं है. । आहारादिक के बन्धाधिकारी अप्रमादि साधु अप्रमत्त गुणस्थान को प्रप्ता होने वाले संक्लेश परिणामी जानना, क्योंकि-यह दोनों पुण्य प्रकृति है, इनका मन्द रस बन्ध संक्लेश परिणामों सेही होता है. अप्रमादि जीवों इससे विशुद्ध होने के सबब से गृहण नहीं किये. । निद्रा, प्रचला, निद्रा निद्रा. अशुभ वर्ण चतुष्क, हांस्य, रति, दुर्गच्छा, भय, और उपघात. इन १२ प्रकृति में से १० प्रकृति

+ यहां कितनेक देशविरति संयम के सन्मुख हुवे को बताते हैं, परन्तु देशविरति के सन्मुख होनेमें सर्व विरति के सन्मुख होनेकी विशुद्ध अधिक होनेके सबब से यहां ग्रहण किया है. तत्र केवली गम्य.

का जघन्य रसबन्ध तो आठवे गुणस्थान के सात भाग में से छठे भाग के प्रान्त समय में जानना. और निद्रा तथा प्रचलाका जघन्य रस बन्ध आठवे गुणस्थान के प्रथम भाग में अपने बन्ध के प्रबन्ध व्यावृद्धि से प्रथम समय होता है, यहां उपशम श्रेणि प्रवर्तक गृहण करना. यद्यपि उपशम श्रेणिते क्षपक श्रेणी की विशुद्धता अधिक है, परन्तु जघन्य रस बन्ध सादि सान्त होता है. और क्षपक श्रेणी प्रवर्तक सादि अनन्त होते हैं (क्योंकि पड़ते नहीं हैं) इसलिये गृहण नहीं किये पुरुष वेद और संज्वलका चौ क इन पांचो का जघन्य रसबन्ध नववे गुणस्थान के पांचों भाग में अलग २ होता है, अर्थात्—पाहिले भाग में पुरुषवेद का, दूसरे में संज्वलके क्रोधका, तीसरे में संज्वल के मानका, चौथे में संज्वल की माया का और पांचवे में संज्वलके लोभ का. यों अलग २ बंध विच्छेद करने के अन्तिम समय अपने २ बंध के अन्तिम बंध में जघन्य रस बंध होता है. १ ज्ञानावरणीय, ४ दर्शनावरणीय. ५ अंतराय इन १४ का जघन्य रसबन्ध दशवे गुणस्थान वर्ती क्षपक श्रेणि प्रतिपन्न अपने बन्ध के अन्तिम समय करता है. सूक्ष्म. अपर्याप्ता. साधारण. तीनों बिल्केन्द्रिय, चारोंगंतिका आयुष्य, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगो पांग, देवगति, देवानु पूर्वी. नरगति, नरकानु पूर्वी, इन १६ प्रकृति का मन्द रसबन्ध मनुष्य और तिर्यच तत्त्वायोग्य विशुद्ध संज्ञेस में वर्तते होता है. इन १६ में से ७ तो पुन्य प्रकृति हैं, उनका मंद रस मलीन परिणामों से होता है. और ९ पाप प्रकृति हैं जिनका मन्दरस बहुत विशुद्ध अभ्याससाय. से होता है. इन १६ प्रकृति में से मनुष्यायु, तिर्यचायु छोड़कर १४ प्रकृतिका बंध तो देवता तिर्यच के भव प्रत्यय नहीं. और मनुष्य तिर्यचायुका जघन्य स्थिति बंध करते मंद रस होता है सो भी क्षुल्लक भव देवता नरक के नहीं होता है. इसलिये इन १६ प्रकृतिके मंदरस बंध स्वामी मनुष्य तिर्यचही है. उद्योत नाम, औदारिक शरीर, औदारिक अङ्गो पाङ्ग, इन तीनों प्रकृतिका रसबंध मिथ्यात्वी देवता और नरकी तिर्यच प्रयोग्य बन्धते संज्ञेस परिणामों कर करते हैं. मनुष्य और तिर्यचपचेन्द्रिय ऐसे प्रायोग्य कर नरक प्रयोग्य का बंध करे परन्तु नरक में यह प्रकृतियों नहीं है. इसलिये नहीं कही. १ तिर्यच गति, तिर्यचानु पूर्वी, और नीच गोत्र. इन प्रकृतिका जघन्य रस बन्ध सातवी नरक के नेरीये सम्यक्त्व सन्मुख हुवे मिथ्यत्व के च रस समय में वर्तते होता है. क्योंकि-ऐसे प्रायोग्यमें वर्तते देवता या दूसरी नरक होवे तो वो मनुष्य प्रयोग्य बान्धते हैं. और सातवी नरक वालों के तो भव प्रत्यय मनु-

प्य और ऊंचगोत्र का बन्ध नहींही होता है। तीर्थकर नाम कर्म का जघन्य रस बंध अविरति सम्यक् दृष्टि मनुष्य नरकायु बंध किये बाद क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर कथांचित् फिर भी नरक में जावे तब सम्यक्त्व का वमन करते अन्तिम समय करते हैं। एकेन्द्रिय जाति और स्थावर नाम का जघन्य रसबंध नरक गति विना बाकी तीनों गति के जीवों मिथ्यात्वी मध्यम परिणाम में प्रवृत्ते त्रसका बंध कर स्थावरका बंध करते, पचेन्द्रिय जाति का बंध कर एकेन्द्रिय जाति का बन्ध करते यों घोल के परिणामों में प्रवृत्ते हुवे करते हैं। क्योंकि अवस्थित परिणाम में वैसी विशुद्धि नहीं होती है। और नारकी के भवप्रत्यय एकेन्द्रिय का बंध न होनेसे उने छोड़ दियेहैं। आताप नाम कर्म का जघन्य रस बंध भवन पतिसे लगा इज्ञान देवलोक तक के देवता देवी मिथ्यात्वी अतिसंकलिष्ट परिणामी एकेन्द्रिय प्रायोग्य बांधते हुवे करतेहैं। साता असाता वेदनीय, स्थिर, अस्थिर शुभ अशुभ, यश अपयश, इन आठों प्रकृतिका मन्द रस बंध मिथ्यात्वी गुणस्थानसे लगाकर प्रमत गुणस्थान तक प्रवृत्ते हुवे अन्तर मुहूर्त साता अन्तर मुहूर्त असाता। यों घोलके परिणामों में प्रवृत्ते अध्यवसाय स्थानक में अवस्थित पर्ण रहते एक साथही बंध करते हैं। त्रस, वादर, पर्याप्ता, प्रत्येक, शुभ-वर्ण चतुष्क, तैजस, कर्मण, अगुरुलघु, निर्माण, मनुष्य द्विक, खगति द्विक, पचेन्द्रिय जाति, उन्वाश, पराघात, ऊंचगोत्र, छेसंघयण, छेसंस्थान, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, मुभग, दुभग, मुस्वर दुस्वर, आदेय, अनादेय, इन ४० प्रकृति का मन्द रस बंध चारों गति के मिथ्यात्वी जीवों बान्धते हैं-इसमें, त्रस वादर, पर्याप्ता, प्रत्येक, शुभवर्ण चतुष्क, तैजस, कर्मण, अगुरुलघु, निर्माण, पचेन्द्रिय जाति, पराघात, और उन्वाश, यह १५ प्रकृति तीर्थच मनुष्य मिथ्यात्वी तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणाम नरक प्रायोग्य नामकी २८ प्रकृतिका बंध करते मंदरस बान्धते हैं। यह पुण्य प्रकृतिका है इसलिये इनका संक्लेश से रस बंध होता है। और नारकी तथा सांत कुमार से सहस्रारांत आठवें स्वर्ग पर्यन्त के मिथ्यात्वी देवता संक्लेशसे तीर्थच गति प्रायोग्य नाम कर्म की २९ प्रकृति का बंध करते भी इन १५ प्रकृति का मंद रस बंध करते हैं। और इन १५ में पचेन्द्रिय जाति और त्रस नाम विना बाकी की १३ प्रकृति के मंद रस बंध भवनपति देवमे इज्ञान देवलोक तक के देवता देवीयों मिथ्यात्वी एकन्द्रिय प्रायोग्य बंध करतेवक्त बांधतेहैं। और त्रस नाम तथा पचेन्द्रिय जाति यह दोनों प्रकृतियोंकुलक उ समे भी अधिक विशुद्ध अध्यवसाय से पचेन्द्रिय प्रायोग्य बान्धते हुवे मन्द रस से बा-

न्यते है. यों १५ प्रकृति के मन्द रसके स्वामी चारों गति के मिथ्यात्मी होतेहैं, और स्त्री वेद तथा नपुंसकवेद का मन्द रस चारों गति के मिथ्यात्मी जीवों सम्यक्त्वसन्मुख हुवे विद्युद्धि भे करते. हैं क्योंकि यह पाप प्रकृति है । मनुष्य गति, मनुष्यानु पूर्व्वी, शुभत्व गति. छे संघयण. छे संस्थान, शुभग, दुभग. मुस्वर, दुस्वर, आदेय अनादेय, और उँच गोत्र. इन २३ प्रकृति का मन्द रस बन्ध-मिथ्यात्मी जीव घोल के परिणामी परावर्त इस के विरोध की प्रकृति का बन्ध करते ऐसे चारों गति के जीवों जानने; क्योंकि सम्यक्त्व दृष्टि देवता और नारकी तो मनुष्य प्रायोग्य बान्धते तिर्यचादि विरोधी प्रकृति का बन्ध नहीं करते हैं. और ऋषभनाराचादि संघयन भी नहीं बान्धते है. और सम्यक् दृष्टि मनुष्य तिर्यच देवता प्रयोग्य बान्धते समचतुरस्र संस्थानका बन्ध करे बाकी के पांचों संस्थानों का बंध नहीं करे. इसलिये सम्यक्त्व की विरोधकी प्रकृति के साथ प्रावर्तते बंध नहीं होताहै. और इसही लिये वो मन्द रस बंध के अधिकारी नहीं हैं. और मिथ्यात्मी भी अति भ्रष्ट पारिणामसे बीस क्रोड क्रोड सागरोपम प्रमाण स्थितिवंध अध्यवसाय स्थानक वर्तते तिर्यच द्विक, नरक द्विक. हुंड संस्थान. छेवटा संघयण. अशुभत्व गति. और नपुंसक वेदादि प्रकृतिका निरन्व पणे उत्कृष्ट बंध करे. वहां से भी और १८ क्रोडा क्रोड सागरोपम की स्थिति बंध अध्यवसाय स्थानक होवे तब कुञ्ज संस्थान. किलिक संघयण. परावर्त हुंड संस्थान और छेवटा संघयण का बंध करै वह मन्द रस बन्ध. और १५ क्रोडा क्रोड सागरोपम की स्थिति बन्धाध्वमाय स्थानक. भे तिर्यच द्विक का मनुष्य द्विक साथ परावर्ति बन्ध करे. तैसेही नपुंसक वेदका स्त्रीवेद के साथ परावर्त कर बन्ध करे. और १० क्रोडा क्रोड सागर स्थिति बन्धाध्वमाय स्थानक बाढ दौर्भाग्य विक. मोभाग्य विक. के साथ परावर्त कर बंध करे. वहां से क्रोडा क्रोड सागर कुछ कमी तक परावर्त कर बन्ध होवे. इसलिये हीन स्थिति बन्धाध्वमाय स्थानक में फक्त मनुष्यादिक. वज्रवृषभ नारच संघयण. समच तुरस्र संस्थान. शुभ विद्यायों गति. मोभाग्य विक. पुष्टवेद इन प्रकृतियों का निरन्व बंध करे; यरंतु वहां मंद रसमय बंध नहीं होता है. क्योंकि विरोध की प्रकृतियों के साथ परावर्त कर बंध करने मंद रस होता है. (यह जवन्य रस बंध के स्वामी कह.)

अब उत्कृष्ट रस बन्ध के स्वामी कहने हैं:-एजेन्द्रिय जानि. म्यावर नाम. और आताप नाम इन तीनों प्रकृतियों का तीव्र ( चौदावींयां ) रस बन्ध भवन पति.

व्यन्तर जोतिषी, सोधर्म और इशान इन पांच स्थानको के मिथ्यात्वी देवता ओंके हो ता है; इस में जो आताप नाम पुण्य प्रकृति है, उसका बन्ध भी मिथ्यात्वी के तत्मा योग्य विशुद्ध परिणाम से पड़ता है. और दोनों प्रकृति का बन्ध अशुद्ध परिणाम से पड़ता है. क्योंकि ऐसा जो संक्लेश परिणाम मनुष्य तिर्यच के होवेतो नरक प्रायोग्य बन्ध करे, और नरक के जीवों के यह तीनों प्रकृति नहीं है. और सनत कुमार श्वा-  
 र्ग के ऊपर के देवों भी तीनों प्रकृतिका बन्ध नहीं करते हैं, इसलिये ऊपरोक्त पांच स्थान को सिवाय तीनों प्रकृतिका उत्कृष्ट रस बन्ध नहीं होता है। सूक्ष्म, अपर्याप्ता, साधारण, तीन विक्लेन्द्रिय, नरक विक, तिर्यचायु, और मनुष्यायु, इन ११ प्रकृतिका उत्कृष्ट रस बन्ध सच्ची पर्याप्ता पचेन्द्रिय, मिथ्यादृष्टि, संख्यात वर्षायुवाला, तत्प्रायो-  
 ग्यो संक्लेश वर्तते ऐसे मनुष्य तिर्यच के होता है. क्योंकि इनमें की पहिली ९ प्रकृति का बन्ध तो देवता नारकी के भव प्रत्यय तो नहीं होता है, और मनुष्य तिर्यच का आयुष्य जो देवता नारकी बन्धते हैं, तोभी इसकी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की बन्धती वक्त उत्कृष्ट रस बन्ध होता है. ऐसा बन्ध देवता नारकी और जुगलीयों के नहीं होता है, इसलिये नहीं बान्धते हैं. और सास्वादन गुणस्थान में भी घोलके परि-  
 णाम होने से और उपर के गुणस्थानों में इन का बन्ध नहीं होने से इतनी स्थिति ब-  
 न्धती नहीं है, इसलिये मिथ्यात्वीही उत्कृष्ट रसबन्ध के अधिकारी होते हैं,। तिर्यच-  
 गति, तिर्यवानुपूर्वी, और छेवटा संघयण, इन तीनों प्रकृतिका उत्कृष्ट रसबन्ध अति-  
 संक्लिष्ट परिणामी सनन्त कुमार देवलोक से सहस्रान्त देवलोक तक के मिथ्यात्वी दे-  
 वता के और नरक के होता है; क्योंकि संक्लिष्ट परिणामी मनुष्य तिर्यच तो नरक-  
 प्रायोग्यही बन्धते हैं, सम्यक दृष्टि के यह बन्ध नहीं होता है. और भवन पतिते ल-  
 गा इशान देवलोक तक के देवता मिथ्यात्व युक्त संक्लिष्ट परिणाम में परिणामते एके-  
 न्द्रिय प्रायोग्य नाम कर्म की प्रकृति बान्धे हैं, परन्तु छेवटा संघयण का अनुकृष्ट रस-  
 बंध होता है. इसलिये इने नालिये। वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अङ्गो पाङ्ग, देवगति, देवा-  
 नु पूर्वी, आहारक द्विक, शुभलगति, शुभवर्ण चतुष्क, तैजस, कर्मण, अगुरु लघु,  
 निर्माण, तिर्यकर नाम, सातावेदनीय, ममचतुररस भंस्थान, पराघात, त्रसदशका, प-  
 ेन्द्रिय जाति, श्वाशो छात्राम, और उंच गोत्र. यह १३ पुण्य प्रकृतिका उत्कृष्ट रसबंध  
 श्रीण में चडने वाले मनुष्य के होता है. इस में भी साता वेदनीये, उंचगोत्र  
 यशः कीर्ती, इन प्रकृति का उत्कृष्ट रस बंध सूक्ष्म सम्पराय के चरम भाग

वर्ती क्षपक के होता है; क्योंकि-इन प्रकृति के बंध के लिये येही अत्यंत विशुद्ध स्थान है, और इन बिना बाकी रही जो २९ प्रकृति उनका उत्कृष्ट रस बंध अपूर्व करण के सात भाग में के छठे भाग में ३० प्रकृति का बंध विच्छेद होता है वहां-एक उपधात बिना बाकी की २९ प्रकृति के चरम बंध में क्षपक के अत्यन्त विशुद्ध परिणाम परवर्तते चौठाणी रस बंध होता है. उपशम श्रेणि में भी यह गुणस्थान है, परंतु क्षपक जितनी विशुद्धि नहीं होने से उत्कृष्ट रस बंध के अधिकारी नहीं है, और देवता नरक तिर्यंच मे तो यह गुणस्थान हेही नहीं. तो इन प्रकृति यों का उत्कृष्ट रस बंध होवे कहां से. । उद्योत नाम कर्म का उत्कृष्ट रस बंध सातवी नरक के जीवो अकाम निर्जरा कर कर्म क्षय करते विशुद्ध परिणाम कर सम्यक्त्व प्राप्त करने के लिये आनिष्टात्ते करण कर मिथ्यात्व की स्थिति के दो भाग करे. उस अंतकरण की प्रथम स्थिति के चरम समय उद्योत नाम का उत्कृष्ट रस बंध करे. और दुसरे नरक के या देवता के जीवों तो ऐसे परिणाम में प्रवृत्त ते मनुष्य प्रायोग्य का बंध करते हैं. सो बंध इस सप्तम नरक मे नहीं है. फल तिर्यंचायु ही बांधते हैं, इसलिये तिर्यंचायु की सहकारी उद्योत नाम कर्म का उत्कृष्ट रस बंध यहां ही होता है. मनुष्य-द्विक. औदारिक द्विक. वज्र ऋषभ नाराच संघयण. यह ९ प्रकृति मनुष्य गति प्रायोग्य अतिष्ठि शुद्ध सम्यक दृष्टि देवता-जिनास्थान श्रवण करते. जैन मोक्षति का कार्य करते. सम्यक्त्व उज्ज्वल ते. चारों संघ की भक्ति करते उत्कृष्ट रस बंध करते हैं. मनुष्य जो ऐसी विशुद्धि में प्रवर्तते तो देवायु बंधे. और देवता में यह प्रकृतियों है नहीं. इसलिये यहां सम्यक्त्वी देवही लिये हैं. और नरक के सम्यक दृष्टि को इन बंध के कारणों का अभाव होने से उत्कृष्ट रस बंध नहीं कर सकते हैं. देवायु का उत्कृष्ट रस बंध ३३ सागरोपम का प्रमत्त गुण स्थान से अप्रमत्त गुणस्थानाद्द होने हुवे साधु अति विशुद्धि कर बंधते हैं. क्योंकि देवायु में अति विशुद्धि का स्थानक येही है. उपर कही प्रकृतियों मे से शेष बाकी रही मोक्ष-ज्ञानावरणीय. ९ दर्शनावरणीय. १६ कपाय. १ मिथ्याभोहनी. ९ नो कपाय. प्रथम संघमण बिना ९ संघमण. प्रथम संस्थान बिना पांच संस्थान. अशूभ वर्ण चतुष्क. अस्थिर पट्टक. उपधात. कु खगति. नीच गांव और पांच अंतराय. यों ६८ प्रकृतिका उत्कृष्ट रस बंध चारों गति के पंचेन्द्रिय पर्याप्ता मिथ्यात्व दृष्टि जीवोंके होता है. इस में मध्य के संघयण और मध्य के चार संस्थान. स्त्रीवेद. पुरुषवेद. शस्त्र. गति. इन १२ प्रकृति वि-



ना बाकी रही सो ५६ प्रकृति यों का उत्कृष्ट रस बंधाध्वसाय स्थानक में जो अत्यंत मलीन संक्लेश अध्यवसाय स्थानक होवे वहां ही उत्कृष्ट रस बंध होता है, और हॉस्य तथा रति का उत्कृष्ट रस बंध मध्य संक्लेश स्थानक में बंध ते हैं, क्योंकि उत्कृष्ट संक्लेश तो नपुंसक वेद शोक और अरति का बंध करता है, और हुंड संस्थान तथा छेवटा संघयण का उत्कृष्ट रस बंध ते हैं। इसलिये इन १२ प्रकृति का उत्कृष्ट रस मध्यम संक्लेशी चतुर्णाति के जीवों जानना।

रस बंध के चार प्रकार-१. जिसमे हीन-कमी कोई रस बंध न होवे सो 'जय-न्य रस बंध.' २ और इस इस भिन्न दूतरे सब अजयन्य रस बंध. (इन दोनों भेदों में सब बंध का समावेश हो जाता है) तथा-१. जिस मे अधिक दुःख कोइ तीव्र रस बंध नहीं होवे सो 'उत्कृष्ट रस बंध.' २ और उम से एकादि रस विभान हीन-कम ऐसे सर्व रस बन्ध सो -'अनुत्कृष्ट रस बंध.' (इन दोनों में भी सब का समावेश होता है) इन चारों को कर्म प्रकृतियों पर उतारते हैं.

तेजस कार्मण, अगुरु लघु, निर्माण, और शुभ वर्ण चतुष्क इन ८ उत्तर प्रकृति का उत्कृष्ट रस बंध अपूर्व करण नामक अष्टम गुणस्थान के छठे भाग के प्रान्तमें अपने चरम बंधमें एक उत्कृष्ट रस स्थानक होता है. और उस बिना सब अनुत्कृष्ट रस बंध स्थानक जानने. और जिनको इस स्थानक की प्राप्ति नहीं हुई, उन को सदा अनुत्कृष्ट रस बंध स्थानक जानना. सो अनादि जानना. और जो जीव उमशम श्रेणे में उत्कृष्ट रस बंध कर फिर वहां से पड़ता हुआ हीन रस बंध करे, वहां अनुत्कृष्ट रस बंध की सादि जानना, और अभव्य को यह स्थानक प्राप्त होता नहीं है. तथा उत्कृष्ट रस बंध करना नहीं है इससे उनके अनुत्कृष्ट रस बंध अनंत जानना. और भव्य जीव होवेगा वो श्रेणि प्रतिपन्न हो उत्कृष्ट रस बंध करेगा वहां अनुत्कृष्ट रस बंध का सांत पणा होता है. साता वेदनिय ओर यश कीर्ति इन दोनों शुभ प्रकृति का उत्कृष्ट रस बंध क्षपक के दशवे गुणस्थान के अंत समय में पाता है. इसलिये उस स्थान-को जो नहीं प्राप्त हुवे उन के अनुत्कृष्ट की अनादि, और जो इस स्थानक को होकर पीछे पड़े, उन के फिर बंध होती वक्त सादि, अभव्य के अनंत, और जो उत्कृष्ट रस बंध करेगे इसलिये अनुत्कृष्ट रस बन्धका सांत पणा. और इन ११ प्रकृति का उत्कृष्ट रस बंध क्षपक के अपूर्व करण में होवे, उस ने प्रथम बंध कर-ना सुरु किया इसलिये सादि बंध एक समय होता है, परंतु आगे नहीं होता, इसलि

ये सांत दुमरा भांगा. तथा यह आठों शुभ प्रकृति है इसलिये इनका जयन्य रस स-  
र्वोत्कृष्ट संलेश में वर्तते मिथ्यात्वी जीव सझी पर्याप्त बंध करता है. सो एक अथवा  
दो समय पर्यन्त. फिर अजयन्य बंध बाधता है. फिर कालांतर में सर्वोत्कृष्ट संलेश  
को प्राप्त हो जयन्य रस बंध करे. यों जयन्य अजयन्य में फिरता जीव को सादि  
और सांत यह दो भांगे पाते हैं. । उपर कहे तेजस चतुष्क बिना बाकी रही जो-ज्ञा-  
ना वरणीय ५. दर्शनावरणीय १. कषाय १६. मिथ्यात्व मोहनीय १. अंतराय ५.  
भय १. दुगच्छा. उपघात. और अशुभ वर्ण चतुष्क, यह ४३ प्रकृति ध्रुव बंध की  
है. सो अशुभ है. इनका जयन्य रस बंध विशुद्धि कर के अपने चरम बंध में होता है.  
और उस स्थानक को जो प्राप्त नहीं हुवे उन के अजयन्य रस बंध की अनादि, और  
जो इस श्रेणि में पडकर फिर बन्ध करे उनके सादि. और अभव्य जयन्य रस बंध  
नहीं बंधता है. उसमे उनके अजयन्य रसबंध अनन्त, और भव्य जीव मन्मत्त्वकी प्रा-  
प्ति करेगे तब उन स्थान को प्राप्त हो जयन्य रसबंध करेगे वहां अजयन्य रसबंध का  
सान्तपणा. ज्ञानावरणीय. दर्शनावरणीय. मोहनीय और अन्तराय यह चारो घातिक  
कर्म हैं इन में ने मोहनिय का तो नव वे गुणस्थान के प्रांत में. और तनों कर्मों का  
दश वे गुणस्थान के प्रांत में जयन्य रस बंध होता है. बाकी रहे सर्व स्थानों में अ-  
जयन्य रस बंध होता है. . इनके चार भांग:-१ जिन के जयन्य रस बंध न हुवा  
उन के अजयन्य रस बंध अनादि. २ जो जयन्य रस बंध कर फिर श्रेणि में पडते  
अजयन्य रस बंध करे तहां नादि. ३ अभव्य के अजयन्य रस बंध अनंत. और ४ भ-  
व्य के अजयन्य रस बंध नान्त. इन चारों कर्मों के अजयन्य रस बिना बाकी के  
तीनों बन्ध में सादि नान्त भांगा पाता है. । गौत्र कर्म के अतुत्कृष्ट तथा अजयन्य इन  
दोनों रस बंध में चार भांगे:-१ नीच गौव का जयन्य रस बंध मातवी नरक में ग्रंथी  
भेद कर मिथ्यात्व के अंतिम समय में बंध करे. उन स्थानक को जो प्राप्त नहीं हुवे  
उनके अनादि का अजयन्य रस बंध होता है. २ जो एक समय में अजयन्य रस  
बंध कर फिर अजयन्य रस बंध करे उनके नादि. ३ अभव्य जीव उन स्थानक को  
कदापि नहीं स्पर्शे इसलिये उन के अनन्त. और ४ भव्य जीव जयन्य रस बन्ध करेगे  
और रस बंध का विच्छेद भी होगा इसलिये नान्त. ऐनेही उंच गौव का दिगुद्धता  
में उत्कृष्ट रसबन्ध दशवे गुणस्थान के प्रान्त में होता है. उन बिना और नव अनुत्कृ-  
ष्ट रस बंध जानना. वहां जिन ने श्रेणि नहीं कनी उन ने उत्कृष्ट रस बंध नहीं किया

उसके अनुत्कृष्ट रस बंध अनादि; और श्रोणीसे पड़ ते उत्कृष्ट रस बंध कर फिर अनुत्कृष्ट रस बंध करे तहां सादि, अभव्य के अनुत्कृष्ट रस बंध अनंत, और भव्य को अनुत्कृष्ट रस का सांत, इन ध्रुव बंध की ४७ प्रकृति मिवाय बाकी रही सो— औदारिक, वैक्रिय, आहारक-यह तीन शरीर, और इन तर्निों के अङ्गोपाङ्ग तीन, छे संघयण, छे संस्थान, ४ गाति, ५ जाति, खगाति द्विक, अनुपूर्वी चतुष्क, जिननाम उद्योत, आताप, पराघात, त्रस, दशका, स्थावर दशका, (यह ५८ नाम कर्मकी प्रकृतिभेद-नी द्विक, गात्र द्विक, तीन वेद, हांसयादि युगल द्विक, और ४ आयुष्य, यह ७३ अध्रुव बन्ध की प्रकृति के-उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट, जघन्य, अजघन्य, यह चारों बंध-सादि और सांत यह दो भागे पाते हैं. क्योंकि-इन प्रकृतियों का बंध कभी होता है, कभी नहीं भी होता है. जब होय तब सादि, और न होय तब सान्त जानना. (इति अनु-भाग बन्ध. )

### प्रदेश-बन्ध

जैसे किसी "कुची कर्ण" नामक गाथापाति के गौशाल में बहूत गाइयों होनेसे उनकी मुख से गिनती लगाने जो वर्णादि गुणकर मिलती हुई गाइयो के अलग २ टोले बंधे. तैसेही ज्ञानी महान् पुरुषोंने अनन्त पुद्गल स्कन्धों को अलग २ देख उनके भेदान्तर मुख से जानने में आवे इसकेलिये प्रमाणों की संख्या के सरीखे २ स्कंधों के टोले बंधे उनका नाम "वर्गणा" ऐसा स्थापन किया. जैसे १ जगत् में छुट्कर एकेक प्रमाणों हैं, उनका टोला सो प्रथम वर्गणा. तैसेही दोप्रमाणों एकत्र मिलने से जो स्कन्ध हुवा उसे द्वणुक कहना. उसका टोला सो दूसरी वर्गणा. तैसेही तीन प्रमाणों से निष्यन्न स्कंध सो 'त्रणुक.' उसका टोला सो तीसरी वर्गणा. यो एकेक प्रमाणों अधिक होते स्कंध के बरोवरी के टोले उसकी वर्गणा. अधिक २ होती जाती है. २ यों अधिक होती २ अभव्यजीवों से अनन्त गुण अधिक और सिद्धके जीवों के अनंतवें भाग प्रमाणें प्रमाणोंसे निष्यन्न जो स्कंध सो औदारिक शरीर निपजाने लायक होवे. इसलिये वो स्कंध औदारिक शरीर को गृहण करने योग्य होवें. इसलिये वो. औदारिक के गृहण करने योग्य जघन्य वर्गणा होती है. इससे एक प्रमाण कम स्कंध वर्गणा पर्यंत सब अगृहण योग्य वर्गणा. कहना, क्योंकि-वैसे स्कंधसे शरीर की निष्यन्ति नहीं होती है, अब वो जघन्य औदारिक शरीर आरंभक स्कंध वर्गणा उससे ए-

केक प्रमाणु अधिक स्कन्ध की ऐसी दूसरी-तीसरी-चौथी-पांचवीं यों बढ़ते २ अनन्त वर्गणा. औदारिक शरीर-गृहण योग्य पणे होवे, उस औदारिक शरीर गृहण योग्य जघन्य वर्गणा. से अनन्तवे भाग अधिक औदारिक शरीर गृहण योग्य उत्कृष्ट वर्गणा होवे, वो अनन्त वा भाग भी अनन्त प्रमाणु रूप जाणना. इसलिये औदारिक के ग्रहण करने योग्य भी अनन्त वर्गणा. होती है. ३ औदारिक शरीर की उत्कृष्ट वर्गणा-से एकेक प्रमाणु अधिक स्कन्ध की वर्गणा. सो औदारिक की अपेक्षा से बहुत प्रदे. शोपाचित तथा नृक्ष परिणाम परिणाम. उससे औदारिक के अग्रहण योग्य और वै-क्रिय शरीर आरंभक स्कन्ध की अपेक्षा से अल्पप्रदेशोपाचित तथा वादर परिणाम, इसलिये वैक्रिय शरीरके भी अग्रहण योग्य. यों एकेक प्रदेश अधिक होते स्कन्ध अनन्त की अभव्यसे अनन्त गुण और सिद्धके अनन्तवे भाग प्रमाण इतनी वर्गणासो वैक्रिय शरीर के अग्रहण योग्य जाणना. ४ उससे एक प्रदेश अधिक स्कन्ध की वर्गणा सो वैक्रिय शरीर आरंभ करते जघन्य ग्रहण योग्य वर्गणा जाणना. योंही और एकेक प्रदेश बढ़ते स्कन्ध की अनन्ती वर्गणा वैक्रिय शरीर निष्पादक होती है, वोभी जघन्य वैक्रिय गृहण योग्य वर्गणा से अपने अनन्तवे प्रमाण अधिक वैक्रिय शरीर के गृहण योग्य उत्कृष्ट वर्गणा होती है. इसलिये यह भी अनन्त वर्गणा जाणना. ५ उस वैक्रिय गृहण योग्य उत्कृष्ट वर्गणा से एक प्रदेश अधिक स्कन्ध की वर्गणा सो वैक्रियदल की अपेक्षा से बहुत प्रदेश निष्पन्न तथा नृक्ष परिणाम होती हैं. और आहारक शरीर प्रायोग्य दल की अपेक्षा अल्प प्रदेशी तथा वादर परिणाम होती हैं. इसलिये वै-क्रिय तथा आहारक इन दोनों शरीर के कान में नहीं आवे. इसलिये वो अग्रहण योग्य वर्गणा जाणना. वो भी एकेक प्रदेश अधिक होते २ स्कन्ध की अभव्य से अनन्त गुण और सिद्धके अनन्तवे भाग प्रमाण अनन्त वर्गणा जाणना. ( यह अनन्ति अग्रहण योग्य प्रदेश की वर्गणा होनी है ) ६ फिर उनमें भी एक प्रदेश अधिक स्कन्ध की वर्गणा उन करके वो आहारक शरीर की निष्पत्ति होवे. इसलिये वो आहारक प्रायोग्य जघन्य वर्गणा होनी है. वोभी एकादि प्रदेश अधिक होते. अनन्त स्कन्ध की अनन्ती वर्गणा होनी है. वो जघन्य वर्गणा के अनन्त वे भाग प्रमाण प्रदेश में बढ़ती ऐसी उत्कृष्ट आहारक शरीर के गृहण करने योग्य वर्गणा अनन्ती होती है. ७ उस आहारक गृहण योग्य उत्कृष्ट वर्गणा में एक प्रदेश अधिक स्कन्ध की वर्गणा सो आहारक की अपेक्षा बहुत प्रदेशिक तथा नृक्ष और तेजन की अपेक्षा अल्प प्रदेशिक

क वादर परिणत इसलिये दोनों शरीर के गृहण करने योग्य नहीं ऐसी जघन्य वर्गणा उससे एकाधिक प्रदेश बढ़ती यावत् अभव्यसे अनन्त गुण वर्गणा इन दोनों शरीर के अगृहण करने योग्य होवे, इसलिये अगृहण वर्गणा कहीं. ८ उस उत्कृष्ट अगृहण योग्य वर्गणा दलसे एक प्रदेश अधिक स्कन्ध की वर्गणा सो तैजस शरीर प्रो-योग्य जघन्य वर्गणा जाणना. फिर उससे एकेक प्रदेश वृद्धिहोते स्कन्ध की यावत् जघन्य तैजस शरीर वर्गणाके अनन्तवे भाग जो अनन्त प्रमाणुं उससे अधिक ऐसी उत्कृष्ट तैजस शरीर के गृहण करने योग्य वर्गणा अनन्त जाणनी. ९ उस तैजस शरीर के गृहण करने योग्य उत्कृष्ट वर्गणा के स्कन्धसे एक प्रदेश अधिक स्कन्ध सो तैजस की अपेक्षा से बहुत प्रदेशिक सूक्ष्म और भाषा दलकी अपेक्षा से अल्प प्रदेशिक वादर होती है इसलिये वो दोनों शरीर के काम में नहीं आने से गृहण करने को अयोग्य ऐसी जघन्य वर्गणा जाणना. यों एकेक प्रदेश अधिक होते स्कन्ध की अभव्य से अनन्त गुणी और सिद्ध के अनन्तवे भाग प्रमाण इतनी वर्गणा अगृहण योग्य होती है. १० उस उत्कृष्ट गृहण करने योग्य वर्गणा से एक प्रदेश अधिक स्कन्ध सो भाषा के दल के काम आवे इसलिये वो जघन्य भाषा गृहण योग्य वर्गणा होती है. उससे भी और एकाधिक प्रदेश अधिक होती यावत् जघन्य भाषा वर्गणा के अनन्त वे भाग जो अनन्त प्रमाणूओं, तहां बढ़ते स्कन्धकी ऐसी अनन्त वर्गणा भाषा के गृहण योग्य होती है. ११ उस भाषा के गृहण करने योग्य उत्कृष्ट वर्गणा से एकादिक प्रदेश वृद्धि होते यावत् अभव्य से अनन्त गुण प्रदेश पर्यन्त वृद्धि होते अनन्त वर्गणा सो सर्व भाषा शरीर की अपेक्षा से बहुत प्रदेशिक सूक्ष्म और, श्वाशोछ्वास की अपेक्षा से वादर अल्प प्रदेशिक स्कन्ध, इसलिये वो वर्गणा दोनों के शरीर के गृहण योग्य ऐसी अनन्त जाणनी. १२ और उससे एक प्रदेशाधिक स्कन्धकी वर्गणा उससे श्वाशोछ्वास निपजे इसलिये ऐसे स्कन्ध समुदाय सो श्वाशोछ्वास ग्रहण योग्य जघन्य वर्गणा जाणना. इस से एकादिक प्रदेश वृद्धिपाति यावत् जघन्य वर्गणा के संख्यातवे भागमें जितने प्रदेश तत्प्रमाण उतने प्रदेश वृद्धि जो वर्गणा सो श्वाशोछ्वास की गृहण करने योग्य उत्कृष्ट वर्गणा जाणनी, १३ उससे एक प्रदेश अधिक स्कन्ध की अगृहण योग्य वर्गणा. पूर्वकी तरह श्वाशोछ्वास की तथा मन को भी अगृहण योग्य तैसी एकादि प्रदेश वृद्धि पाति यावत् अभव्य से अनन्त गुणी वर्गणा अगृहण योग्य जाणनी. १४ ऐसीही तरह और भी उस वर्गणा से एकादि प्रदेश अधि-

क स्कन्ध उस करके द्रव्य मन उत्पन्न होवे. इसलिये वो जघन्य मनो द्रव्य गृहण योग्य वर्गणा जाणना. उससे एकादि प्रदेश अधिक स्कन्ध सो यावत् निज जघन्य वर्गणा स्कन्धके अनन्त वे भाग जो प्रदेश होवे उतने प्रदेश वृद्धपाति उत्कृष्ट मनो गृहण योग्य वर्गणा होवे. ११ उससे एक प्रदेश अधिक पुद्गल स्कन्ध की वर्गणा सो मनो द्रव्य की अपेक्षा से बहुत प्रदेशी सूक्ष्म जाणना. और कर्म दलकी अपेक्षा से अल्प प्रदेशिक वा दूर जाणना. इसलिये दोनों शरीर के गृहण करने योग्य नहीं ऐसी अभव्य से अनन्त गुणी वर्गणा जाणना. १६ और भी उससे एक प्रदेश वृद्धि होते पुद्गल स्कन्ध की वर्गणा सो कर्म दल गृहण योग्य होती है. इसलिये सो कर्म प्रायोग्य जघन्य वर्गणा जाणना. उससे भी एकादि प्रदेश वृद्धि पति यावत् अपनी जघन्य वर्गणा के अनन्त वे भाग प्रदेश प्रमाण प्रदेश से बढ़ती उत्कृष्टी कर्म गृहण योग्य पुद्गल की वर्गणा जाणनी. उस करके कर्म दलमे कर्म प्रकृति का वन्ध होता है! एक कर्म की जघन्य और उत्कृष्टी के बीच ये मध्यम अनन्त वर्गणा होती है. तैसे दल कर कर्म प्रकृति का वन्ध पडता है. इसलिये इसे कर्म गृहण योग्य वर्गणा कही जाती है.

उपरोक्त वर्गणा सो जीव को गृहण करने योग्य पुद्गल है. जीवके आश्रित रहते है इसलिये उपचार से इसको सचित्त वर्गणा कहना. और इसमे एकादि प्रदेश अधिक पुद्गलो का स्कन्ध जिमे जीवो गृहण करे सकै नहीं इसलिये उमे अचित्त वर्गणा कहना. वो अचित्त वर्गणा भी सब जीवोमे अनन्त गुण अधिक है. इन वर्गणा का स्वरूप सहज मे समझाने के लिये कल्पित दृष्टान्त कहते है:-जिमे एक मे लगाकर दशपर्यन्त प्रमाण निष्पन्न अगृहण योग्य वर्गणा जाणना. उनमे ११-१२-१३ प्रमाण निष्पन्न सो आद्वारिक गृहण योग्य वर्गणा जाणना. उनमे १४-१५-१६-१७-१८-१९-और २० पर्यन्त अगृहण योग्य वर्गणा जाणना. फिर २१-२२-२३ पर्यन्त वैज्यशरीरके गृहण करने योग्य वर्गणा जाणना. यों आठों वर्गणा गृहण योग्य, और बीच २ की आठो वर्गणा अगृहण योग. यों १६ वर्गणा सचित्त होती है.

१ यह उपरोक्त उत्कृष्ट कर्म वर्गणा मे एकादि प्रदेश अधिक स्कन्ध की सर्व जीव ने अनन्त वर्गणा. सो निरन्व-हमेसा मिलनी है. परन्तु वने स्कन्ध की वर्गणा. जीवो के गृहण करने योग्य नहीं होती है. इसलिये उमे ध्रुवाचित्त जघन्य वर्गणा कहना. उस जघन्य वर्गणा मे उत्कृष्ट वर्गणा के प्रदेश अनन्त गुणों होते हैं. उमे उत्कृष्ट ध्रुवाचित्त वर्गणा कहना. २ उनमे और भी एकादि प्रदेश अधिक स्कन्ध की वर्ग

णा अनाति, सब जीवोंसे अनन्त गुणी, ऐसे पुद्गल स्कन्ध कभी निरन्त्र भी होते हैं, और कभी सांतर पणे भी होती है, इसलिये अधुवाचित्त वर्गणा कहना. ३ उससे एकादि प्रदेश अधिक पुद्गल स्कन्ध की वर्गणा नहीं मिलती है, परन्तु आगेकी वर्गणा पक्ष का महत्व पणा बताने कही है, ऐसे भी अनन्ती शून्य वर्गणा होती है, उससे जघन्य वर्गणाके प्रदेश क्षेत्र पल्योपमके असंख्यातवे भाग प्रमाणा प्रदेशकी राशिमें गुणाकार करना तब उत्कृष्ट वर्गणा होती है. ४ उससे एक प्रदेशाधिक स्कन्ध वो साधारण तो नहीं परन्तु प्रत्येक जीवके औदारिकादि पांचो शरीर के प्रदेश, उनमेंके एक प्रदेश सर्व जीवोंमें अनन्त गुणा विश्रसा परिणत सूक्ष्म पुद्गल स्कन्ध का नाम प्रत्येक वर्गणा कहना. वो भी जघन्य वर्गणा से उत्कृष्ट वर्गणा क्षेत्र पल्योपम के असंख्यातवे भाग रूप असंख्याता प्रदेश गुणाकार करने से वो भी अनन्ती वर्गणा जाणना. ५ उससे अनन्त शून्य वर्गणा प्रदेशोत्तर कल्पिए. वोभी जघन्य वर्गणा से लगाकर उत्कृष्ट वर्गणा पर्यन्त अनन्त वर्गणा जाणना. ६ उससे भी एकादि प्रदेश अधिक पुद्गल की वर्गणा सो वादर निगोदिये जीव के तीनो शरीर प्रदेशों के आश्रित अनन्ता पुद्गल स्कन्ध विश्रसा होते हैं, उसकी भी एकादि प्रदेश वृद्धि पाती अनन्त वर्गणा जाणनी, वोभी जघन्य वर्गणा से उत्कृष्ट वर्गणा प्रदेश संख्यात असंख्यात गुणा होता है. ७ उससे भी और असत्कल्पना से अनन्ति शून्य वर्गणा पहिले की तरह जाणना. ८ उससे भी प्रदेशाधिक स्कन्ध वर्गणा सो सूक्ष्म निगोद शरीर प्रदेशाश्रित अनन्त पुद्गल स्कन्ध विश्रसा परिणत उसकी वर्गणा अनन्ती वर्गणा जाणना. वो भी जघन्य वर्गणा से आवली के असंख्यात वे भाग प्रमाण समय की राशिसे जघन्य वर्गणा को गुणा करते उत्कृष्ट वर्गणा होती है. ९ उससे भी और एकादि प्रदेशाधिक ऐसी असत्कल्पना से अनन्ती वर्गणा होती है. १० उससे भी और प्रदेशाधिक मिश्र स्कन्ध जिसका सूक्ष्म पणा से वादर पणा प्राप्त करने अभिमुख सो मिश्रस्कन्ध की वर्गणा अनन्ति जाणना. ११ उससे अचित्त महास्कन्ध जो पर्वत कूटादिक को विश्रसा परिणामें अश्रित अनन्त प्रदेशात्मक पुद्गल स्कन्ध जो विश्रसा परिण में (१) दंड, (२) कपाट, (३) मंथन, (४) अन्तर पूर्णादि करता केवल समुत्थात की तरह आठ समय का अजीव समुत्थात होता है, वहां चौथे समय सर्व लोका प्रमाण स्कन्ध होता है: अजितादि जिनश्वर के वारे में त्रस जीवो की उत्पत्ति अधिक होती है, उस वक्त वो स्कन्ध थोड़े होते हैं, और जिस वक्त त्रस जीव थोड़े होते हैं उस वक्त वो स्कन्ध बहुत होते

हैं, यह लोकस्थिति की वर्गणा भी अनन्ती जाणना. १२ इस से भी अधिक प्रदेश स्कन्ध पञ्चवणाजी सूत्र में फरमाये हैं.

और एकाणुकादिक द्रुणकादिक अर्थात्—एक प्रमाण की दोप्रमाण की वर्गणा, आदि शब्दसे तीन चार पांच जावत् संख्यात असंख्यात और अभव्य से अनन्त गुणी अधिक और सिद्धके जीवों के अनन्त वे भाग प्रमाण की वर्गणा सो औदारिक शरीर के गृहण करने योग्य होती है. ऐसी अनन्त वर्गणा जाणना. इससे भी एकादि प्रमाण अधिक बढ़ती ऐसीही अनन्त सो औदारिक शरीर के अगृहण करने योग्य जाणनी. ऐसीही दूसरी वैक्रिय शरीर के गृहण करने योग्य. तीसरी आहारक शरीरके ग्रहण करने योग्य. चौथी तेजस के ग्रहण करने योग्य, पांचवी भाषा के ग्रहणे योग्य. छठी श्वाशोश्वास के ग्रहणे योग्य. सातवी मन के ग्रहणे योग्य, और आठवी कर्मण के गृहणे योग्य. इन आठों वर्गणा का अनुक्रम से अवकाश क्षेत्र एकेक से एकेक का सूक्ष्म होता है. अर्थात्—औदारिक गृहण योग्य वर्गणा का अवगाहना क्षेत्र से औदारिक अगृहण योग्य वर्गणा का अवगाहना क्षेत्र सूक्ष्म. उस से वैक्रिय गृहण योग्य वर्गणा का अवगाहना क्षेत्र सूक्ष्म. यों अनुक्रमसे आठों का जानना. यद्यपि इन आठों वर्गणा का क्षेत्र अंगुल के असंख्यातवे भाग है. तद्यपि एकेक से एकेक की अवगाहना छोटी होती है. क्योंकि ज्यों विशेष पुद्गलों के प्रमाणों से मुद्राय मिलता है त्यों विशेष सूक्ष्म परिणाम होता है. जैसे कपास (रुड) के थोड़े प्रदेश भी विशेष क्षेत्र को रोकते हैं. और पार के बहुत पुद्गल थोड़ा क्षेत्र रोकते हैं.

प्रश्न—अमूर्ती आत्मा को मूर्तीमंत कर्मों से उपघात कैसे होता है?

उत्तर—जैसे मूर्तीमन्त मदीरापान करनेसे अरूपी ज्ञानका उपघात होता हुआ-बाबलापना प्राप्त होता हुआ. और सारस्वत चूर्ण का सेवन करने से ज्ञान वृद्धि होती हुई प्रत्यक्ष दृष्टि आती है, तैसे ही अगुरु लघु पुद्गल द्रव्य कर्म ढल का अगुरु लघु आत्म द्रव्य के साथ सम्बंध होता है. उस से ज्ञानादि गुणों का उपघात होता है, और जिन नामादि शुभ कर्म कर, एश्वर्य पूजादि अनुग्रह भी होता है.

उपरोक्त आठ वर्गण में से-१ औदारिक वर्गणा, २ वैक्रिय वर्गणा, ३ आहारक वर्गणा, और ४ तेजस वर्गणा. यह ४ वर्गणा में—५ वर्ण, २ गंध, ५ रस और ८ स्पर्श यह २० गुण पाते हैं. इसलिये गुरु लघु द्रव्य कहे जाते हैं. और-१ भाषा वर्गणा, २ श्वाशोश्वास वर्गणा, ३ मन वर्गणा, और ४ कर्म वर्गणा. इन ४ वर्गणा में.



५ वर्ण, २ गंध, ५ रस और ४ स्पर्श यों १६ गुण पाते हैं। इसलिये इने अगुरु लघु द्रव्य कहे जाते हैं। क्योंकि-शीत, उष्ण, रुक्ष, और लिग्ध, यह ४ स्पर्श अगुरु लघु द्रव्य हैं। एक प्रमाण में तो-१ वर्ण, १ गंध, १ रस और २ स्पर्श यह ५ गुण पाते हैं, क्योंकि रुक्ष और लिग्ध प्रमाण के परस्पर बंध होता है, इसलिये छुटे सर्व प्रमाणों में तो इन दोनों में का एकही स्पर्श जरूर पाता है, + तैसे ही शीत और उष्ण में का भी-एक स्पर्श पाता है। और अनन्त प्रदेशी यह सूक्ष्म परिणत स्कंध में कोई प्रमाण लिग्ध शीत, कोई लिग्ध उष्ण, कोई रुक्ष शीत और कोई रुक्ष उष्ण, यो चार जाति के प्रमाणों मिलते हैं। तब भाषा, आशोश्वास, मन, और कर्म, इन चारों के दल में चार स्पर्श मिलते हैं।

सर्व जघन्य रस से युक्त जो पुद्गल उसका रस × केवल ज्ञानी की प्रज्ञा कर छेद्यमान सर्व जीवों से अनंत गुण रस विभाग को देता है, वो विभाग अति सूक्ष्मता के योग्य से दूसरे भाव के अभाव से निरंश अंश अगुक्हे जाते हैं। ÷ उस रसाणू के प्रति स्कन्ध सर्व प्रमाणों में सर्व जीवों से अनंत गुण वर्तते हैं। ऐसे रसाणु युक्त परिणत कर्म स्कंध दलिक को जीव ग्रहण करता है। वो जैसे गौ घांस को खाती हुई दुग्धादि मिष्ट रस उत्पन्न करती है, और सर्प दुग्ध पान करता गरल (विष) उत्पन्न करता है, तैसे ही कर्म दल के अनंत प्रदेशी स्कंध के प्रदेश २ प्रति अलग २ अनन्त रसाणु (अनुभाग) युक्त कर्म पणे जीव ग्रहण करता है, वो स्कंध भी अभव्य से अनन्तगुण सिद्ध के अनंत भाग वर्ती हैं।

जिन आकाश प्रदेशों को आत्म प्रदेश ने आवगाहे उन ही आकाश प्रदेशों को कर्मों के पुद्गलों ने अवगाहे हैं। जब जीव रागादि परिणति में परिणमता है तब वो कर्म पुद्गल दल आत्म प्रदेश से लिप्त होते हैं, परंतु अनंतर परंपर प्रदेशस्थ

+ पाठान्तर चारों वर्गणा स्कन्ध में मृदुलघु स्पर्शतो जरूर होता है। और रुक्ष लिग्धमेंका एक तथा शीत उष्ण में का एक, यों ४ स्पर्श पाते है। ऐसी भी किंसा आचर्य का मत है।

× यहां रसाणु का अर्थ जीवके कषायी का अव्यवसाय जानित आनन्द विषाद हेतु शुभा-शुभ कर्मों का विपाक इष्टानिष्टपणे कर मिष्ट और कडुवारस जाणना। परन्तु पाचों रस में के किसी भी रसकी विवक्षा नहीं करनी। यहां तो भाव रसही कहना चाहिये।

÷ रसाणु-रसविभाग-रसपाच्छेद-भाव प्रमाण यह सब इसके पर्याय वाचिक नाम हैं।

कर्म पुद्गल द्रव्य के गृहण करते नहीं हैं। जैसे तीव्र अग्नि के ताप में तपता हुआ-उकलता हुआ पाणी ऊपरका नीचे-नीचेका उपर आता है। तैसे रागादि प्रणति के योग्य कर आत्मा के असंख्यात प्रदेश + (आठ रूचक प्रदेश विना) आहत लेते हैं। दो आत्म प्रदेश कषायिक अध्यवसाय रूप चीकणता कर कर्म रूप रज सहित धेव में आरित करते हुवे-जैसे तेल लगा हुआ शरीर कचरे में लोटने से कचरे कर लेपाता-धंवाता है, तैसे कर्म रज कर असंख्यात प्रदेश लेपाते-वांधते हैं। परन्तु ऐसा नहीं है कि-एक दोही प्रदेश लेपावें। क्योंकि-जीव के असंख्यात प्रदेशों का शृंखलावय की तरह परस्पर सम्बंध है। इसलिये जब एक प्रदेश कर्म दल गृहण करने प्रवर्तें तब सब प्रदेश प्रवृत्तते हैं। जैसे हास्त (हाथ) कर किसी वजनदार वस्तु को उठाते सब शरीर की शक्ति का उपर आकर्षण होता है। इतना विंगेष पंजे पर जोर ज्यादा लगता है। उनसे भुज पर कम उनसे खम्बे पर कम। उनसे अन्य शरीर पर कम। तैसेही कर्म गृहणके सम्बन्ध में नजदिके प्रदेश के विंगेष कर्म लगते हैं और दूरके प्रदेशोंके थोड़े कर्म लगते हैं। परन्तु लगते सब प्रदेशों के हैं।

अब जिन वक्त जीव आयु कर्म का बन्ध करता है उन वक्त अन्तर मुहूर्त प-र्यन्त मन २ जो कर्म दल गृहण करे उनके आठ विभाग कर आठों कर्मों को बाँट देता है। और जिस वक्त आयु कर्म विना मान कर्मोंका बन्ध करे तब मान कर्मोंको बाँट देता है। दशवे गुणस्थानमें आयुष्य और मोहनीय विना छे कर्मोंका बन्ध करे तब छे को बाँटदे। और जब एक वेदनीय का बन्धकरे तब उनका हिस्सा भी एकही रहता है। इसमें सब भे थोड़े अंश आयुका जाणना। क्योंकि-दूरके कर्मोंके अपना भे आयुष्य कर्म की स्थिति थोड़ी है। इसलिये थोड़े बाल में भोगकर पूरा करे। उनमें नाम और गैत्र का भाग परम्पर तुर्य आयुष्य में अधिक। क्योंकि इनकी स्थिति बिल कोड़ा कोड मागरोपम की है। आयु कर्म में भंग्यात गुण अधिक है। इसलिये + इन में

८ जो भाग्य की सूत्र में—“मन्वेन मन वंश” एव वक्त में अष्ट रज प्रदेश अश्रित नहीं है। इनके एकराज के अन्तर्गत प्रदेशों पर कर्म भेग लगाने के रजक प्रदेशों के पर वेदों के अति बड़े और वैश्व में कर्म के पूरा नहीं रहते।

× आयुष्य कर्म के भंग का अंश मन में होता है। क्योंकि-दूरके कर्मोंके अपने-अपने उपाय जो की स्थिति कर्म है। इसलिये उनका भंग भे होता है। भे-छोटे भे उपाय में भेनव वक्तव्य कर देता है।

ज्ञानावरणीय, दर्शना वरणीय, और अन्तराय इन तीनों कर्मोंका हिस्सा आपसमें तुल्य, और नाम गौत्र से विशेषाधिक, क्योंकि इन तीनों की स्थिति तीस क्रोडा क्रोड सागरोपमकी है। इससे मोहनीय कर्म का हिस्सा विशेषाधिक क्योंकि-दर्शन मोहनीय की स्थिति सीत्तर क्रोडा क्रोडी सागरोपम की है, और चारित्र्यमोहनीय की स्थिति चालीस क्रोडा क्रोडी सागरोपम की है।

जैसे लूखा आहार (रोटे-राव प्रमुख) अधिक होवे तोही क्षुधा का उपशम होता है, और चिक्रणा आहार (शीरा-मावा प्रमुख) थोड़ा भोगवने से क्षुधाका उपशम होजाता है। तथा पाषाणादि बहुत द्रव्यसे मृत्यु प्राप्त होताहै। और विष (हला हल) थोड़ासा ही मृत्यु प्राप्त करता है, तैसेही वेदनीय कर्मका अधिक भाग होने सेही अनुभव गौचर होता है, क्योंकि-इस कर्मका दल मंदरस वाला अघातिक है, इसलिये इसके मंदरस होते है। और मोहनीय कर्म कादल तीव्ररस वाला हैसो थोड़ा होवेतो भी आत्म गुण का घातिक होता है। इस में स्थिति की विशेषता नहीं लेनी। बाकी वर्स स्थान ६ ही कर्मों में स्थिति की विशेष जाणना। अर्थात्-जिसकी स्थिति ज्यादा उसका भाग भी ज्यादा और जिस की स्थिति कम उस का भाग भी कम होता है।

और उत्तर प्रकृति आश्रयः-प्रथम ज्ञानावरणीय कर्म का मूल भाग प्राप्त हुवा उसमें से स्निग्ध सरस दल थोड़ा होवे ऐसे अनन्त वे भाग दलतो केवल ज्ञानावरणीय पणे परिण में, और बाकी दल रहासो मति ज्ञानावरणी आदि चारों प्रकृति देश घातिकहे उस पणे परिण में। दर्शना वरणीय का जो मूल भाग प्राप्त हुवा उस का अनन्तवा भाग अत्यन्त सरस दल तो पांचों निद्रा और केवल दर्शना वरणीय यह ६ प्रकृति तर्ष घातिक है इस पणे परिण में और बाकी रहा जो निरस भाग सो चक्षुदर्शनावरणीयादि तीनों देशघातिक है उस पणे परिणमें। साता और असाता यह दोनों प्रकृति बन्ध विरोधकी है इसलिये एक समय में एकही का बन्ध होता है, और इसहीलिये इसका भागभी नहीं पडताहै। मोहनीयका मूल भाग जो प्राप्त होवे उसके अतन्त वे भाग सरस दलके दो विभाग होतेहैं-(१)दर्शन मोहनीयका और (२) चारित्र्य मोहनीयका। चारित्र्य मोहनीयके विभागके फिर १२भाग करना वो अनन्तान बन्ध चौक को चार, अप्रत्याख्याना वरणीय चौकको चार, और प्रत्याख्यानीवरणी चौकको चार यों १२भाग बाँटदेता। और बाकी रहै जो देशघातिक रस वन्त दल उसके दो विभाग

कर(१) कषाय और (२) नो कषाय को बाँट देना. उसमेंसेभी कषाय का भागतो सं-  
ज्वल के चौक की चारों प्रकृति को देना. और नोकषाय का एकवेद, एक युगल  
( भय और दुगंछा ) इन पांचों प्रकृति को बाँट देना. । आयुष्य कर्म की भी चारों  
प्रकृतियों बन्ध विरोधनी है-क्योंकि एक वक्त में एकही गति के आयुष्य का बन्ध हो  
ता है इसलिये इसका भाग-हिस्सा भी नहीं होता है. । नाम कर्म का मूल भाग प्राप्त  
होवे उसको १९ हिस्से में बाँट देना;—१ गति, २ जाति, ३ शरीर, ४ उपाङ्ग, ५ व-  
न्धन, ६ संघयण, ७ संस्थान, ८ अनुपूर्वी, १२ वर्ण चतुष्क, १३ अगुरुलघु, १४  
उपवात, १५ उन्नाश, १६ निर्माण, १७ जिन नाम, १८ आताप, १९ शुभा शुभ  
विहायो गति, २० त्रस दशाका. अथवा + स्थावर दशाका. इन २० में से जितनी का  
बन्ध पड़ता हो उतनेही भाग में बाँट देना. और इसमें भी जो शरीर नाम की प्रकृति  
है उसके तीन या चार भाग करना. उसमें वैक्रिय, आहारक, तेजस, और कर्मण, इ-  
न चारों का बंध होवे तब चार भाग करना. तथा औदारिक तेजस कर्मण. या वैक्रि  
य तेजस कर्मण. इनका बंध होवे तब तीन २ भाग करना. और बंधन नाम के ७ त  
या ११ भाग करना. उसमें मनुष्य और तिर्यच प्रायोग्य बंधते औदारिक के बंधन  
चार, और तेजस कर्मणके बंधन तीन, सो सात भागसे बंध होवे तब सात भाग में बाँ  
ट देना. और देव प्रायोग्य नाम कर्म की २१ प्रकृति का बंध करते वैक्रिय के बंधन  
चार, तथा आहारक का बंधन चार, और तेजस कर्मण के बंधन तीन, यों ११ भाग  
से बंध करे तब इग्यारे हिस्से में बाँट देना. और वर्णनाम के ५ भाग, गंधनाम के २  
भाग, रस नामके १ भाग, स्पर्श नाम के ८ भाग, यों २० भाग होते हैं. और बाकी  
रही प्रकृतियों उनका भाग, होता नहीं है. क्योंकि वो सब प्रकृतियों बंध विरोध की  
है-एक बंध होते दूसरी का बंध नहीं होता है. जैसे एक गतिका बंध करते बाकी की  
तीनों गतिका बंध नहीं होता हैं. ऐसेही जाति मघयण संस्थान आदि. तथा वसादिक  
दशाका बंध करते स्थावरादि विरोध की प्रकृतिका बंध नहीं पड़े. ऐसे सबस्थान जा-  
नना. । ऐसेही गोत्र कर्म का भी भागीदार दूसरा नहीं होता है. क्योंकि-एक समय

+ त्रस दशाके का भाग होवे तब स्थावर दशाके का नहीं और स्थावर का होवे तब  
त्रस का नहीं क्योंकि यह बन्ध विरोधकी प्रकृतियों है.

ऊँच या नीच दोनोंमें एकही गोत्रका बन्ध होता है। और अंतराय कर्मका मूल भाग जो प्राप्त होवे उसे अन्तराय के पाँचो भागों में बाँट देना।

जिस प्रकृतिका बन्ध होता हो वो अपने २ प्रदेश दालिक भाग को प्राप्त होती है, और बन्ध विच्छेद होते उसका भाग जो दूसरी सजाति प्रकृतिका बन्ध होता हो उसे प्राप्त होता है। और कभी सजाति का बन्ध नहोता हो तो बीजाति को भी हिस्सा मिल जाता है, जैसे धीणद्ध विक का बन्ध विच्छेद होते उसका भाग निद्रा और प्रचला को मिले, और निद्रा प्रचला का बन्ध विच्छेद होते उसका भाग चक्षुदर्शना वरणीयादिक को मिले, और दर्शना वरण का बन्ध विच्छेद होते उसका भाग विजाति प्रकृति वेदनीय है उसका बन्ध उसही गुणस्थान में होवे, इसलिये उसे हिस्सा मिले। और मिथ्यात्व मोहनीय के बन्ध विच्छेद से इसकी सजाति दर्शन मोहनीय प्रकृतिका भी बन्ध नहीं होता है इसलिये विजाति चारित्र मोहनीय की प्रकृतिको इसका भाग मिले। उममें भी सरस दल सर्व धातिक प्रकृति के योग्य होता है इसलिये सर्व धाति की वारेही कपायों को उसका हिस्सा मिलता है।

कर्म प्रकृतियों के उत्कृष्ट पदसे प्रदेश ( कर्म दालिक ) की अल्पा बहुत्वः-१. ज्ञानावरणीयः-(१) सब से थोड़े केवल वरणीय के उत्कृष्टपद से कर्म दल, (२) उस में मनः पर्यव ज्ञानावरणी के अनन्त गुणे. (३) उसमें अवधि ज्ञानावरणीय के विशेषादीये. (४) उसमें श्रुतज्ञानावरणीय के विशेषादीये. और (५) उसमें माति ज्ञानावरणीय के विशेषाधिक. । २ दर्शना. वरणीयः-(१) सर्व से थोड़े प्रचला के. (२) उस में निद्राके विशेषके. (३) उसमें प्रचला प्रचलाके विशेषादीये. (४) उसमें निद्रा निद्रा के विशेषादीये. (५) उसमें धीणद्री निद्रा के विशेषाधिक. (६) उसमें केवल दर्शना वरणीय के विशेषाधिक, (७) उसमें अवधि दर्शना वरणी के अनन्त गुणे. (८) उस में अचक्षुदर्शना वरणी के विशेषादीये. और उसमें चक्षुदर्शना वरणीय के विशेषादीये। ३ वेदनीय कर्म-(१) सर्वसे थोड़ा अमाता वेदनीय का भाग. (२) उस में मातावेदनीय का विशेषाधिक. । ४ मोहनीय कर्म-(१) वम में थोड़ा अप्रत्याख्याना वरणीय मान (२) उस में अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध विशेषाधिक, (३) उस में अप्रत्याख्यानी माया विशेष, (४) उस में अप्रत्याख्यानी लोभ विशेष. (५-८) पेंगही प्रत्याख्यानावरणीय चारों की और (९-१२) अनन्तान की चारों की अल्पा बहुत जानना. (१३) उस में दुग्च्छाके अन्त गुणे. (१४) उसमें भयके विशेष. (१६-१७)

उत्से हांस्य और शोक के विशेष, और आपस में तुल्य. ( १८-१९ ) उत्से रति और अरतिके विशेष, और आपस में तुल्य. ( २०-२१ ) उत्से स्त्रीवेद और नपुंसक वेदके विशेष और अपस में स्वस्थान तुल्य. ( २२ ) उत्से संज्वल के क्रोधके विशेष पाथिक. ( २३ ) उत्से संज्वल के मान के विशेषाथिक. ( २४ ) उत्से पुरुषवेद के विशेष पाथिक. ( २५ ) उत्से संज्वल की माया के विशेषाथिक और २६ उत्से संज्वल के लोभ के विशेषाथिक. १४ आयुष्य कर्म की चारों प्रवृत्तियों के दलिक अपने २ स्थान में तुल्य हैं. १५ नाम कर्म ( गति आश्रय ) ( २ ) सब में थोड़े देव गति और नरक गति के दल, आपस में तुल्य ( ३ ) उत्से मनुष्य गति के विशेष. ( ४ ) उत्से तियेच गति के विशेष. ( जाति आश्रय ) ( १-४ ) सब में थोड़े वेन्द्रिय तेन्द्रिय चारिन्द्रिय और पचेन्द्रिय, आपस में स्वस्थान तुल्य. ( ५ ) उत्से एकेन्द्रिय जाति के विशेष ( शरीर आश्रय )-( १ ) सब में थोड़े आहारक के. ( २ ) उत्से वैक्रिय के विशेष. ( ३ ) उत्से औदारिक के विशेष. ( ४ ) उत्से तेजस के विशेष, और ( ५ ) उत्से कर्मण के विशेष ( योही पाँचों संवातन की भी अल्पा बहुत जानना. )-( उपाङ्ग आश्रय )-( १ ) सब में थोड़े आहारक के. ( २ ) उत्से वैक्रिय के विशेष, और ( ३ ) उत्से औदारिक के विशेष. ( दन्धन आश्रय ) ( १ ) सर्व में थोड़े आहारक आहारक दन्धन. ( २ ) उत्से आहारक तेजस दन्धन के विशेष. ( ३ ) उत्से आहारक कर्मण दन्धन के विशेष. ( ४ ) उत्से आहारक तेजस कर्मण दन्धन के विशेष. ( ५ ) उत्से वैक्रिय वैक्रिय दन्धन के विशेष. ( ६ ) उत्से वैक्रिय तेजस दन्धन के विशेष. ( १ ) उत्से वैक्रिय कर्मण दन्धन के विशेष. ( ८ ) उत्से वैक्रिय तेजस कर्मण दन्धन के विशेष. ( ९ ) उत्से औदारिक औदारिक दन्धन के विशेष. ( १० ) उत्से औदारिक तेजस दन्धन के विशेष. ( ११ ) उत्से औदारिक कर्मण दन्धन के विशेष. ( १२ ) उत्से औदारिक तेजस कर्मण दन्धन के विशेष. ( १३ ) उत्से तेजस तेजस दन्धन के विशेष. ( १४ ) उत्से तेजस कर्मण दन्धन के विशेष और ( १५ ) उत्से कर्मण कर्मण दन्धन के विशेषाथिक. ( संस्थान आश्रय ) ( १-२ ) सब में थोड़े निग्रोध, नादि, वान, वृद्ध इन चार संस्थान के और आपस में तुल्य उत्से ( ५ ) समचतुरस्र संस्थान के विशेष, और ( ६ ) उत्से दंडक संस्थान के विशेष. ( नययण आश्रय ) ( १-५ ) सब में थोड़े दज, दपम नाच, दपम नाच, नाच, अघनार्य और विनिक नययण के ( ६ ) उत्से छेवटे नययण के विशेष. ( वर्ग आश्रय ) ( १ ) सब में थोड़े कृष्णवर्ण के ( २ ) उत्से हरेवर्ण के विशेष. ( ३ ) उत्से रक्त

वर्णके विशेष, (४) उससे पित वर्ण के विशेष, और (५) उससे शुक्र वर्णके विशेष, [ गंध आश्रिय ] [१.] सब से थोड़े सुभिगन्धके, (२) उससे दुभिगन्ध के विशेष. (२-२) स आश्रिय) (१) सब से थोड़े तिक्त रस के, (२) उससे कटुक रस के विशेष, (३) उससे कषायले रसके विशेष, (४) उससे आम्ल रसके विशेष, और (५) उससे मधुर रसके विशेष. (स्पर्श आश्रिय) (१-२) सब से थोड़े करकश और गुरु स्पर्श के, आपस में तुल्य. [३-४] उससे मृदु और लघु स्पर्शके विशेष और आपस में तुल्य. (५-६) उससे रुक्ष और शीतके विशेष आपस में तुल्य. (७-८) और उससे स्निग्ध और उष्ण स्पर्श के विशेष आपस में तुल्य. (आनुपूर्वी-आश्रिय) (१-२) सब से थोड़े देवानुपूर्वी नरकानुपूर्वी. आपस में तुल्य. (३) उससे मनुष्यानुपूर्वी विशेष. और (४) उससे तिर्यचानुपूर्वी विशेष. (स्वगति-आश्रिय) १. सब से थोड़ी शुभ विहायगति (२) उससे अशुभ विहाय गतिके विशेष. (व्रत और स्थावर आश्रिय) सब से थोड़े व्रत दशके के (२) उससे स्थावर दशके के विषाधिक. । सब से थोड़े वादर उस से सूक्ष्म विशेष. । सब से थोड़े पर्याप्त. उससे अपर्याप्त विशेष । ऐसे प्रत्येक साधारण दोनों । ऐसेही आताप उद्योत सम और परस्पर तुल्य । निर्माण, उन्वात, पराघात उपघात, अगुरु लघु, और जिननाम. इनकी अल्पा बहुत नहीं है. ॥ गोत्र कर्म-सर्वसे थोड़े नीच गोत्रके उससे ऊंचगोत्र विशेष । ८ अन्तराय कर्म (१) सब से थोड़े दाना न्तराय के (२) उसमें लाभान्तराय के विशेष (३) उसमें भोगान्तरायके विशेष (४) उससे उपभोग अन्तरायके विशेष. (५) और उससे वीर्यान्तराय के ढलिक विशेष. ॥ इति ॥

कर्म प्रकृतियोंके जयन्य पदसे अल्पा बहुत ॥ १. ज्ञानावरणीय (१) सब से थोड़े के बल ज्ञानावरणीय के (२) उसमें मनः पर्यव ज्ञानावरणीयके अनंत गुणे (३) उससे अवधि ज्ञानावरणीके विशेष. (४) उसमें श्रुत ज्ञानावरणीय के विशेष ५ और उसमें मति ज्ञानावरणीयके विशेष ॥ २. दर्शनावरणीय (१) सब से थोड़े निद्राके (२) उसमें प्रचलाका भाग विशेष (३) उसमें निद्रा निद्रा का भाग विशेष (४) उसमें प्रचला प्रचला का भाग विशेष, (५) उसमें शीणट्टी का भाग विशेष, (६) उसमें केवल दर्शनावरणीका भाग विशेष, (७) उसमें अवधि दर्शनावरणीयका अनंत गुणे. (८) उसमें अचक्षु दर्शनावरणी का विशेष. ( १. ) उसमें चक्षु दर्शनावरणीय विशेष ३ वेदनीय कर्म—( १. ) सब से थोड़े अमाना वेदनीय के. २) उसमें माना वेदनीय के विशेष. । ४ मोदनीय कर्म—( १ ) मनने थोड़ा अप्रत्याख्यानावरणीय मान. (२) उसमें अप्रत्याख्याना वरणीय क्रोधके

विशेष. (३) उससे अप्रत्याख्याता वरणीय माया के विशेष. [४] उससे अप्रत्याख्या-  
ना वरणीय लोभ के विशेष [५-८] ऐसेही प्रत्याख्याना वरणीय चौक और (९-१२)  
ऐसेही अतन्तान बन्धि चौक. (१३) उससे मिथ्यात्व का जघन्य भाग विशेष. (१४)  
उससे दुर्गन्धाका अनन्त गुणा. [१५] उससे भयके विशेष. [१६] उससे हंस्य के औ-  
र शोक के विशेष. परस्पर तुल्य. (१७) उससे रति और अरतिका विशेष. परस्पर  
तुल्य. (२२) उससे तीनों वेदों का भाग विशेष. [२६] उससे संज्वलका चौक विशेष  
॥ ५ आयुष्य कर्म [१-२] मव से थोड़ा तिर्यचायु नरायु. (३४) उसमें देवायु नरका  
यु असंख्य गुणा. ॥ ६ नाम कर्म [ गति आश्रिय ] (१) सब से थोड़ा तिर्यच गति  
का. (२) उसमें मनुष्य गतिका विशेष. (३) उसमें देवागति का संख्यात गुणा (४)  
उसमें नरक गति का संख्यात गुणा ( जाति विषय ) (१-४) मव से थोड़े वेन्द्रिय.  
तेन्द्रिय. चौरिन्द्रिय पचन्द्रिय और आपनमें तुल्यः (५) उससे एकेन्द्रिय विशेष. । (श  
रीर आश्रिय) (१) सब से थोड़े औदारिक शरीर के. (२) उसमें वैक्रिय के विशेष.  
(३) उसमें कर्मण शरीर के विशेष (४) उसमें तेजसके संख्यातगुण (५) उसमें आहारक  
शरीर के संख्यात गुणे ऐसेही ५ संघातन का और १५ बन्धनका उत्कृष्ट पदके जैसा  
कहदेना. । (अङ्गो पाङ्ग आश्रिय) (१) मव से थोड़ा औदारिक अङ्गो पाङ्ग (२) उ-  
समें वैक्रिय अङ्गो पाङ्ग के असंख्यात गुणे. (३) उसमें आहारक के संख्यात गुणा  
(अनुपूर्वी आश्रिय) (२) मव से थोड़ा नरकानुपूर्वी देवानुपूर्वी. परस्पर तुल्य (३)  
उससे मनुष्यानु पूर्वी विशेष (४) उससे तिर्यचानु पूर्वी विशेष (त्रय विमंति विषय) (१)  
सब से थोड़ा त्रय दशका (२) उसमें स्यावर दशका विशेष । यो बादर मूढम् । यों-  
ही पर्याप्ता अपर्याप्ता । योंही प्रत्येक माधारण । और बाकी का ४२ प्रकृति की ज-  
घन्य पदकी अल्पा बहुत्व उत्कृष्ट पदकी तरहही कहदेना ॥ ७ गोव कर्म (१) मव से  
थोड़ा नीच गोव. (२) उसमें ऊँच गोव के विशेष. ॥ ८ अन्नगय कर्म (१) मव से  
थोड़ा दानान्नराय के. (२) उसमें लाभान्नराय के विशेष. (३) उसमें भोगान्नराय  
के विशेष. (४) उसमें उपभोग अनन्नराय के विशेष. और [ ९ ] उसमें वीर्यन्नराय  
के विशेष.

॥ प्रकृत्यादि चारों बन्धों के कथन के गहन ज्ञान न्य मिन्धु में दीर्घ दृष्टि ने गो  
ता लगाते जीवकी शक्ति की अचिन्त्यता. और पुद्गलों के परिणामों की विचित्रता  
का अवलोकन करते आत्मा में जिनेश्वर के ज्ञान का अद्भुत चमत्कार प्राप्त होता है.



## ४२-५० दूसरे से दशवेतक बन्ध द्वारों का अर्थ

जैसे—लोहका और धातु का, फूलका और अतर का, पत्थर का और अग्निका अनादि से स्वभाविक कही बन्ध है। तैमहेही कर्म वर्गणा के दलके अनादि से जीव का सम्बन्ध है। ऐसे सकर्मि जीवों जब मिथ्यात्वादि आश्रय का सेवन कर कर्मों कर पुनः बन्धातेहैं वत ऊपर जो आठों कर्मों की १४८ प्रकृति कही उसमें से १२० प्रकृति का बन्ध आत्मा के साथ होता है। क्योंकि शरीर नाम कर्म में अपना २ बन्ध और संघात दोनों अविना भावी है अर्थात्-शरीर के बिना यह दोनोंही होसकते नहीं हैं। इस कारण ५ बन्ध, और ५ संघात यह १० प्रकृतियों बन्ध तथा उदय रूप नहीं है, अर्थात् कर्म बन्ध के अवस्था में यह प्रकृतियों अलग नहीं गिनी जाती है। और वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, इन चारके ५ वर्ण, २ गंध, ५ रस और ८ स्पर्श्यों, २० भेद होते हैं। परन्तु इनकी अभेद विवक्षा से इन २० भेदों में से बन्ध स्थान १ वर्ण, १ गंध, १ रस और १ स्पर्श्यों ४ ही प्रकृति लेना। बाकी की १६ प्रकृति नहीं लेना। यों- $10 + 16 = 26$  प्रकृतियों अभेद विवक्षा से बन्ध अवस्था में नहीं है। फक्त नामकी ६७ प्रकृति बंध रूपहोती है। और मोहनीय कर्मकी २८ प्रकृति में से सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्रमोहनीय इन दोनों प्रकृतियों का भी बन्ध नहीं पडता। इसलिये दो यह घटी, यो २८ हुई। सब कर्मोंकी १४८ प्रकृति में से इन २८ को कमी करने से १२० प्रकृतिही बन्ध रूप गिनी जाती है।

## ५१-५२ ध्रुव बन्ध कर्म प्रकृति द्वारोंका अर्थ

जिस कर्म बन्ध का मूल हेतु मिलने से उस कर्म का अवश्य बन्ध पड़े, परन्तु उसके स्थान दूसरी प्रकृतिका बन्ध नहीं पडनेदे, उसे ध्रुव बन्ध की प्रकृति कहते हैं। सो-१. ज्ञानावरणीय की ५, २ दर्शना वरणीय की ९, ३ मोहनीय की १२, ४ नामकी ९, और ५ अन्तराय की ५ यों ५ कर्मों की ४७ प्रकृतियों ध्रुव बन्ध की कही जाती है; जिसका सबब:-ज्ञानावरणीय कर्म की ५ प्रकृति और दर्शना वरणीय की ९ प्रकृति, इन १४ प्रकृति का आवरण-ढक्कन सब जीवों के अपना २ बन्ध विच्छेद स्थान पर्यन्त अवश्य बन्ध होता है, इसलिये ध्रुव बन्ध की जानना। - और भय मोहनीय तथा दुर्गच्छा मोहनीय यह दोनों बन्ध विरोध की प्रकृति नहोने से ध्रुव बन्धीही कहना। और मिथ्यात्व मोहनीय का भी निज हेतु मिथ्यात्वो दय के सद्राव

से अवश्य बन्ध पड़ता है. और अनन्तान बन्ध कषाय के उदय में अनन्तान बन्ध—क्रोध—मान—माया—और लोभ इन चारों का अवश्य बन्ध होता है. तैत्तिरी अमृत्याख्यानी के उदय में अमृत्याख्यानी क्रोधादि चारों का. मृत्याख्यानी के उदय में मृत्याख्यानी क्रोधादि चारों का. और गंजल के उदय में संजल की क्रोधादि चारों कषायों का यों १६ ही कषायों और तीनों मोहनीय मिल १२ ध्रुव बन्ध की प्रकृति हुई. और १ वर्षा. १ गंध. १ रस. १ स्पर्श. १ तेजस शरीर. १ कर्मण शरीर. १ अणु लघु नाम. और १ निर्माण नाम. यह १ प्रकृति नाम कर्म की. चारों गति—के सब जीवोंके अवश्य पाती है. क्यों कि—यह १ प्रकृति शरीरिक बंध की है. और ऐसे ही अंतराय कर्म की भी ५ प्रकृति द्वावे गुणस्यान तक सब जीवोंके अवश्य होती है. यों सब ४७ प्रकृति ध्रुव बंधी जानना. (वेदनीय और गाँव कर्म हूँ प्रकृति की अपेक्षामें तो ध्रुव बंध में लगे में कुछ रक्तन नहीं. पंगु उच्च प्रकृतियों ध्रुव बंधी न होने से यहां नहीं गिनी—

### ५३—२४ अष्टव बंध कर्म प्रकृति द्वारोंका अर्थ.

जो प्रकृति अपना बंध ऐह का मंद्य मिलने पर भी कभी बंध का और कभी बंध नहीं भी करे. तथा उस के स्थान उसके बंध विरोधनी प्रकृति का बंध पड़ जाये तो अष्टव बंध की प्रकृति कहना. गो:—१ वेदनीय की २. २ मोहनीय की ७. ३ आचुष्य की ४. ४ नामकी ५. और ५ गोवकी २. यों ५ कर्मों की ७३ प्रकृति अष्टव बंध की होती है. जिसका मंद्य:—माता और अनाता दोनों वेदनीय का बंध पड़ती नाय नहीं होता है. इत्यन्ति अष्टव बंधी जानना. और हॉम्प और रति का। बंध होतीवक्त शोक और अगति का बंध नहीं होता है तथा शोक और अगति का बंध होता वक्त हॉम्प और रति का बंध नहीं होता है इत्यन्ति यही अष्टव बंध की प्रकृति। अष्ट गुणस्यान तक होती है और इनके आगे 'निव बंध होनेसे अष्टव बंध की बंधी जाननी है यही पुरा और ननुनक-उन तीनों बंधों में से एक बंधों एक ही प्रकृति। वेद का बंध होता है. इस में ननुनक वेद तो दिव्यतर तक. अष्टव बंधों तक. इस के आगे निव बंध पुनः वेद का ही बंध होता है. इत्यन्ति यह ७ प्रकृति मोहनीय कर्म की भी अष्टव बंधी जानना. महाप. विवेका. ननु. और वेदात् इन चारों आचुष्य में से एक बंधों को एक ही. आचुष्य का बंध होता है. इत्यन्ति अष्टव बंध की बंधी प्रकृति—

ति अधुव बंध की जानना । औदारिक शरीर, वैक्रिय शरीर, आहारक शरीर. इन तीनों के अङ्गोपाङ्ग, यह ६ मनुष्य तिर्यच के तो औदारिक होती है, नारकी देवता के वैक्रिय होती है और फक्त साधुजी के आहारक होती है इसलिये अधुव बंधी कहना. और ६ संघयनों में का एक ही संघयन एक वक्त में पाता है, सो भी मनुष्य तिर्यच गतिका बंध करते ही पाता है, परंतु देव नरक के बंध में नहीं. पाता है. और ६ संस्थानों में का एक ही संस्थान एक वक्त मिलता है और एकेन्द्रिय वेन्द्रिय तेन्द्रिय चौरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय इन पांचों जाति में से एक ही वक्त में एक ही जाति का बंध पड़ता है. ऐसे ही चारों गति में से एक वक्त में एक ही गति का बंध होता है, तैसे ही शुभ विहायो गति और अशुभ विहायो गति, इन दोनों गति में से एक वक्त में एक ही गति का बंध होता है, तैसे ही चारों गति की चारों अनुपूर्वों में से एक वक्त में एक ही अनुपूर्वों का बंध होता है. जिन नाम का बंध फक्त सम्यक्त्वी के ही होता है सो भी कोइक बान्धते है, बाकी बहुत से नहीं बांधते हैं. उश्वाश नाम भी पर्याप्ता प्रायोग्य बांध ते वक्त बंधता है. अन्य वक्त नहीं. उद्योत नाम भी तिर्यचायु बांध ते कोइक बांधता है. आताप नाम भी पृथ्वी काय प्रायोग्य बंध ते कोइक बांधता है, पराघात नाम भी पर्याप्ता प्रायोग्य कोइक बंधता है, वस दशका और स्थावर दशका यह २० प्रकृतियों भी बंध विरोधकी है, यों ५८ प्रकृति नाम कर्म की, और नीच गौत्र का बंध होवे तब ऊंच गौत्र का बंध नहीं होवे और ऊंच गौत्र का होवे तब नीच गौत्र का बंध न होवे यह दोनों बंध विरोधकी प्रकृति है. यों सब ५ कर्मों की ७३ प्रति अधुव बंध की होती है.

इन दोनों वधों पर चार भाँगे :—१ आठों ही कर्मों की प्रकृतियों पहिले नहीं थी, नवाही बंध हुवा ऐसा कदापि नहीं होता है, इसलिये प्रथम अनादि भङ्ग, २ जिस प्रकृति का अनुबंधक पना हुवे वाद पहिले बान्धे सो सादि भङ्ग, ३ जिस प्रकृति का बंध विच्छेद न होवे वहां तक अनंत, और ४ जब बंध का अंत करे तब सान्त इन चारों भाङ्गों में से अनादि अनंत, और अनादि सांत यह दोनों भाँगे एक मिथ्यात्व मोहनीय बिना बाकी की २६ ध्रुवोदयी प्रकृति आश्रय मिलते हैं. क्योंकि अभव्य के निर्माणादि २६ की आदि नहीं है, नैसे आगे गुणस्थान चडने के अभाव से उदय विच्छेद भी नहीं है, इसलिये अनंत जानना. और भव्य जीवों की, अपेक्षा से इन २६ प्रकृतियों की आदि तो नहीं है, परंतु १२ वे, १३ वे, १४ वे, गुणस्थान

में अंत होवेगा ॥ और ध्रुव बंध की ४७ प्रकृति बंधकी अमेक्षामे ३ भाँगे होते हैं:—  
 १. जो अभव्य जीवों अनादि काल से इन ध्रुव बन्ध की प्रकृत्तिका बन्ध करते हैं, इसलिये अनादि, और आगे गुणस्थाना रोहण के अभाव में बन्ध व्यच्छेद कदापि नहोने का इसलिये अनन्त. २ भव्य जीवों अनादि में मिथ्यात्वी हैं, और आगे गुण स्थाना रोहण कर प्रकृत्तियों का घात करेगे सो अनादि सान्त. ३ और भव्य जीवों इग्यारवे गुणस्थान में इन प्रकृत्तियों का अवन्धक हो पीछे पडते हुवे बन्ध करे में सादि सान्त. ४ मिथ्यत्व मोहके बन्ध में और उदय में भी तीन २ भाँगे:—१. अभव्य आश्रिय अनादि अनन्त, २ भव्य आश्रिय अनादि सान्त, ३ पडवाड आश्रिय सादि सान्त, चौथा अनादि अनन्तका भाँगा शून्य जानना

### ५५६०, घातिक अघातिकर्म प्रकृत्तिके द्वारों का अर्थ.

जो प्रकृति आत्मा के गुणों का आवरे-अच्छादे-रके इन घातिक प्रकृति कहते हैं, जिसमें सर्व घातिक प्रकृति के सम स्पर्धक तो नाम पत्र के जैसे छिद्र रहित और स्फटिक की तरह निर्मल, द्राक्षकी तरह मृस्म, मार प्रदेशों पर बहुत गरम ले होते हैं, इसलिये सर्व घातिक प्रकृत्तिके प्रदेश छोटे होते हैं, तोभी बाँचे अधिक होता है, जिनके नाम:—१. केवल ज्ञानावर्णीय और २. केवल दर्शना वर्णीय यह दोनों प्रकृति जैसे सूर्य महामेघ के पडलो कर आवरता-रकाता हैं, तैने चैतन्य के, ज्ञान दर्शन गुणों को सर्वाश से आवरता है, तथापि महामेघ में दबा हुआ सूर्यका म-पल दिन राखी के विभाग को दर्शाता है, जिनसे जाना जाता है कि-कुछ अंश अना छादित है, तैसी जीवके ज्ञानादि गुणों सर्व घातिक प्रकृत्तियों के हैं, तोभी जल और चैतन्य का विभाग जानने में आता है, इतना अंश उग्राटा है, और बाँचे निजामी सर्व घातिक गिनी है, क्योंकि-केवल दर्शना वर्णीय में उग्राटा मार दर्शन का को भी सर्वोश से अच्छादित करनी है, बाँचे इन्द्रिय के प्रदेशों में रहनी है, इसलिये सर्व घातिक बाँचे पक्षों में उपयोग सूर्य मेघ पल के दृष्टान्त सुन्दर निज में भी वार प्रदेशों में गुला राता है, जिनमें जीवों इन्द्रिय सूर्य आदि से जल होते हैं, और अनन्तानु सान्त सौक मो सन्तः सम्बन्ध गुणों का अच्छादन करना है, अमन्याग्यानी सौक-देश दिगति गुणों का सन्तः अच्छादन करना है, और अमन्याग्यानी सौक-सन्तः सर्व दिगति गुणों का अच्छादन करना है, पक्षों में सूर्य मेघ

इलके दृष्टान्त मुजव-कितनेक मिथ्यात्वी अनेक प्रकारके तप करते हैं आविरति भी मांस-आहार आदि का त्याग करते हैं देश विरति सर्व विरति होने की इच्छा करते हैं तो भी इन १२ प्रकृतियों को सर्व धातिकही गिनी है. और मिथ्यात्व मोहनीय भी तत्त्व श्रद्धान गुणों का सर्वतः धात करे है. इसलिये यह भी सर्व धातिक है. यों १ ज्ञानावरणीयदर्शना वरणीय, १३ मोहनीय की सर्वमिल २० प्रकृतियों सर्व धातिक होती है

देशधातिक प्रकृतियों:—देश धातिक प्रकृति के रस स्पर्श स्थूल—सूक्ष्म—सूक्ष्म की तरह, मध्यम छिद्र—कम्बल की तरह, और सूक्ष्म छिद्र—वस्त्र की तरह गिने जाते हैं. स्थूल प्रदेश निरस असार बहुत प्रदेशी अल्पवीर्य वन्त होते हैं. जिनके नाम:— १ माति ज्ञानावरणीय, २ श्रुतिज्ञानावरणीय, ३ अवाधि ज्ञानावरणीय, ४ मनः पर्यव ज्ञानावरणी, ( यह ४ ज्ञानावरणीय की ) ५ चक्षुदर्शना वरणीय ६ अचक्षुदर्शना वरणीय, ७ अवाधि दर्शना वरणीय, ( यह ३ दर्शना वरणीय की, ) यों ७ प्रकृतियों देश धातिक है, केवल ज्ञानावरणीय केवल दर्शना वरणीय, के अच्छादन होने पर भी अनन्तवा देसांश भाग ज्ञान दर्शन का खुल्ला रखाया जिसका आवरण इन सातों प्रकृतियों ने किया है, इसलिये इने देशधाति कही है. और संज्वल का चौक भी सर्व विरति गुणों का देश से धात करते है. अर्थात्—देश से आतिचार लगाते हैं. इसलिये देश धातिक कहा है, और हॉस्यपटक तथा तीनों वेद यह नो कपाय भी देश धातिक है. क्योंकि-यह भी चारित्र में अतिचार उपजाती है, पन्तु अनाचार करता नहोने से देश धातिक गिनी हैं. और अन्तराय कर्म की पांचों प्रकृति भी देशधातिक होती है, क्योंकि पुद्गल द्रव्य का अनन्तवा भाग-दान लाभ भोगादि में होता है. अर्थात् ग्रहण करने जोग जो पुद्गल हैं वो पुद्गल द्रव्य के अनंत वे भाग में हैं. उस में भी सबका दान लाभ उपभोगादि कर नहीं सकता है अकर्म नो कर्मादि तथा आहार आदि दान लाभ भोग आदि सब जीवके होता है, सब जीवों को इसका क्षयोपशम-जूरही होता है. यद्यपि जो वीर्य अन्तराय का सर्व धातिक रस होवेतो जीवका सर्व वीर्य का अच्छा दान होनेसे जीवों सूके काष्ठ की तरह निचेष्टित होजावे, फिर आहार आदि ग्रहण करना और परगमाना भी नवने इसलिये इसे भी देश धातिक जान ना. यह २५ प्रकृतियों देश धातिक होती है. और जो उदय की अपेक्षा से गिनी तो मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्व मोहनीय यह दोनों प्रकृति भी देश धातिक होती होती है. यों २७ प्रकृति देश धातिक की दुइ.

२० सर्व धातिक और २७ देश धातिक यों दोनों मिलकर ४७ प्रकृति धा-  
तिक कर्मों की होती है.

अधातिक कर्म प्रकृति-ऊपर कहीमो ४७ धातिक प्रकृति. बाकी रही १०१ प्रकृति सो  
सब अधातिक जानना. क्योंकि यह १०१ ही प्रकृतियों से आत्मा के ज्ञानादि गुणों  
का कुछ धात नहीं होता है. फक्त जैसे चोरो की संगती से साहूकार भी चोर गिना  
जाता है. तैसेही यह १०१ प्रकृतियों भी धातिक प्रकृतियों की साथही वेदने में आ-  
ती हैं. इसलिये धातिक कही जाति हैं.

### ६१-६४ पुण्य पापकर्म प्रकृति द्वारों का अर्थ.

पुण्य प्रकृतिका बन्ध-शुद्ध परिणाम मे होता है. संलेश परिणामों से मन्द र-  
स बन्ध पडता है. और विशुद्ध परिणामों से तीव्र रस बन्ध पडता है. उसका उदयभी-  
दे-मधुरे-मनोज्ञ रस में होता है. उमे वेदता जीव सुख मानता है. उसे पुण्य प्रकृति  
कहते हैं. सो ४२ हैं:—१. माता वेदनीय ( यह १ वेदनीय कर्म की ) २. देवायु. ३  
मनुष्यायु. ४. तिर्यचायु × ( यह ३ आयु कर्म की प्रकृतिका बन्ध भी पुण्योदय मे  
होता है. जिस से आगे इन ३ गति में सुखकी विशेषता है. ) ५. मनुष्य गति. ६. म-  
नुष्यानु पूर्वो. ७. देवगति. ८. देवानु पूर्वो. ९. पचेन्द्रिय की जाति. १०-१४ पांच  
शरीर १५-१७ तीनों शरीर के अङ्गो पाङ्ग. १८ वज्र व्रपभ नारच मंघयण. १९ म  
मचतुरस्र भंस्यान. २० शुभवर्ण ( श्वेत. पित ) २१ शुभ गन्ध ( शुभी गन्ध ) २२  
शुभरस ( मिष्ट. अम्ल. कषायला ) २३ शुभ स्पर्श ( लह. कोमल. चिकणा. उष्ण )  
२४ अगुरु लघु नाम. २५ पराघात नाम. २६ उन्वाग नाम. २७ आताप नाम. २८  
उद्योत नाम. २९ शुभ चलनेकी गति. ३० निर्माण नाम. ३१ वम नाम. ३२ वादर  
नाम. ३३ पर्याप्ता नाम. ३४ प्रत्येक नाम. ३५ स्थिर नाम. ३६ शुभ नाम. ३७ मो-  
भाग्य नाम. ३८ सुस्वर नाम. ३९ आदेय नाम. ४० यशो कीर्ति नाम. ४१ तीर्थ करनाम.  
( यह ३७ नाम कर्म की ) और ४२ ऊंच गोत्र. यह ४ कर्मकी सब ४० प्रकृति जी-  
वों को सुख दायक होने मे पुण्य प्रकृति गिनी जानी हैं.

पाप प्रकृति बन्ध-अशुभ परिणामों मे होता है. संलेश परिणामों मे तीव्र रस

बन्ध होता है, जिसका उदय कडवे रस मय दुःख दायक होता है, उसे पाप प्रकृति कहते हैं। सो ८२ हैं:—२ ज्ञानावरणीय, १ दर्शना वरणीय, १ असाता वेदनीय, १ मिथ्यात्व मोहनीय, और २५ कपाय ( यह मोहनीय की २६ ) १ नरकायु (अपुण्य की १) १ स्यावर, १ सूक्ष्म, १ अपर्याप्ता, १ साधारण, १ अस्थिर, १ अशुभ, १ दौर्भाग्य, १ दुःस्वर, १ अनादेय, १ अयशः कीर्ति. १ नरक गति, १ नरकानु पूर्वी १ तिर्यच गति, १ तिर्यचानु पूर्वो, ४ पहिली चार जाति, १ अशुभ विहाय गति, १ उपघात नाम, १ अशुभ वर्ण ( कृष्ण हरित ) १ दुर्भिगन्ध, १ अशुभ रस ( तीखा, कडुवा ) १ अशुभ स्पर्श ( गुरु, क्षरस्वर, लुप्त, शीत ) ५ पीछेके पांच संघयण, ५ पीछे के पांच संस्थान, ( यह ३४ नाम, कर्म की ) १ नीच गोत्र और ५ अन्तराय की, यों आठों कर्मों की ८२ प्रकृतियों दुःख दायक होनेसे पापप्रकृति गिनी जाती है.

बन्धकी प्रकृति तो सब १२० है, और यह पुण्यकी ४२ पापकी ८२ मिल कर १२४ हुआ सो ४ प्रकृति बढने का सबब यह है. कि—वर्णादि ४ चारों प्रकृति को शुभ अशुभ दो भेद कर दोनों में ( पुण्य पाप में ) गिन ने से ४ प्रकृति बढ गई है.

६५-६८ परावर्त मान अपरावर्त मान कर्म प्रकृति द्वारो का अर्थ.

जिन कर्मों की प्रकृति अपने विरोधी प्रकृतियों के बन्ध को और उदय को रोक कर—दूरकर अपनाही बन्ध और उदय प्रत्यक्षमें देखाती है, और जिन प्रकृतियों का उदय अलग २ वक्त में होता है. अर्थात्—एक के उदय में दूसरी का उदय और बन्ध नहीं होवे, उनको “परावर्त मान” प्रकृति कही जाती है सो ११ प्रकृतियों हैं:—१ निद्रा, २ निद्रा निद्रा, ३ प्रचला, ४ प्रचला प्रचला, और ५ धीणद्री निद्रा, यह पांचों दर्शना वरणीय की प्रकृति उदय और बन्ध का विरोध धरानेवाली है, अर्थात्—एक निद्राका बन्ध और उदय होता है. उस वक्त दूसरी निद्रा का बन्ध और उदय नहीं होता है. तैत्तिरी—६ साता वेदनीय और ७ असाता वेदनीय इन दोनों वेदनीय कर्म की प्रकृतियों का बन्ध और उदय भी अलग २ वक्त में ही होता है. अर्थात्—जब माता वेदनीय का बन्ध पडता है. और उदय होता है. तब असाता का नहीं. और जब असाता का बन्ध और उदय होता है तब साता का नहीं. तैत्तिरी - अनंतानबन्धी आदि चारों चौक की क्रोधादि १६ ही कपाय का उदय और बन्ध भी विरोधी है.

अर्थात्—जब एक जीवके एक समय में-एक क्रोध का उदय होता है तब-मान माया लोभ इन तीनों कषाय का उदय नहीं होता है, और जब मानका उदय होता है तब क्रोध माया लोभ इन तीनों कषाय का उदय नहीं, ऐसे ही सोले ही कषायों का जान ना, तैसे ही २४ हांस्य, और २५ रति, तथा २६ शोक और २७ अरति, यह चारों प्रकृति भी बंध विरोधनी है, क्योंकि—हांस्य के वक्त शोक नहीं, और शोक के वक्त हांस्य नहीं, तैसे ही-रति के वक्त अरति नहीं और अरति के वक्त रति नहीं, । तैसे ही ३० तीनों वेदों भी उदय और बंध विरोधी हैं, एक जीवके एक वक्त में एकही वेद का बंध और उदय होता है, [यह मोहनीय कर्म की २३ प्रकृति] तैसे ही-३१ नरकायु, ३२ तिर्यचायु, ३३ नरायु, और ३४ देवायु, यह आयु कर्म को चारों प्रकृति भी उदय और बंध विरोधी है, क्योंकि-एक ही वक्त में एक जीव एक ही आयु बन्धता है और भोगवता है, तैसे ही-३८ चारों गति, ४३ पांचो जाति, ४६ पहिलेके तीनों शरीर, ४९ तीनों शरीर के अङ्गोपाङ्ग, ५५ छेही संघयण, ६१ छे सं, स्थान, ६३ दोनोगति, ६७ चारों अनुपुर्वी, ७७ त्रम दशका, ८७ स्थावर दशका + ८८ उद्योत नाम, और ८९ आताप नाम, यों नाम कर्म की ५५ प्रकृति यों भी उदय और बंध विरोधनी है, और तैसे ही-९० ऊंच गौवं और ९१ नीचे गौवं, यह दोनों गौवं कर्म की प्रकृति भी बन्ध विरोधनी है, यों सब ९१ प्रकृतिका उदय और बंध का विरोध होनेसे परावर्तमान की कही जाती है।

और अपरा वर्तमान प्रकृति मो इस से उलट स्वभाव वालीजानना अर्थात्—जिम का बंध तथा उदय दुमरी प्रकृतियोने विरोध नहीं रखते दुमरी प्रकृतियोंका बंध और उदयको बिना रोके ही अपना बंध दीपावे अर्थात्—अन्य प्रकृतियों का बंध पडनी वक्त उनका बंध पडे और अन्य प्रकृतियों के उदय में उनका उदय पावे-प्रत्यक्ष देखने में आवे ऐसी प्रकृतियों २९ हैं:—मो ज्ञानावरणीय की ५, दर्शनावरणीय की ४, यों दोनों कर्मों की ९ प्रकृतियों ध्रुव बन्ध की हैं, इनका बंध करते कोइ शुभ परिणाम विशेष दुमरी प्रकृति का बन्ध नहीं भी डाले तो भी रस बंध में भवों की मन्दना करती है, तैसे ही-१५ भय, १९ दुर्गच्छा, और २२ भिव्यान्व मोहनीय, यह ३

— क्योंकि उन की वक्त स्वभाव और स्वभाव वक्त उन का बन्ध और उदय नहीं होते हैं।



मोहनीय कर्म की, और १३ वर्ण, १४ गन्ध, १५ रस, १६ स्पर्श, १७ तेजस शरीर, १८ कर्मण शरीर, १९ पराघात नाम, २० निर्माणा नाम, २१ उपघात नाम, २२ अगुरु लघु नाम, २३ उश्वास नाम, और २४ तीर्थंकर नाम, (यह १२ नाम कर्म की) और २१ पांचों अंतराय. यह २१ प्रकृति यों ध्रुव बंधकी है, अर्थात् इनका उदय प्रायः सब जीवों को सर्वदा पाता है. और एकेक बंध में दूसरीका बंध पडता है. तथा एकेक उदय में दूसरी का उदय भी कायम रह जाता है. जैसे कृष्ण वर्ण का पदार्थ सुगन्धी मीठा और हलका है. यह चारो प्रकृति की एकही वस्तुमें एक स्थान में पाजाती है तैसे, ही सब जानना, इसलिये इन में आविरोधी पना होने से 'अपरावर्तमान' की प्रकृति इने कही जाती है.

परावर्तमान की ११ और अपरावर्तमान की २१ मिलकर सब ३२ प्रकृतियों बन्ध की होती है.

६१-७५ भूयस्कारादि चारों बन्धपर कर्म प्रकृति द्वारोंका अर्थ.

१ ज्ञानावरणीय कर्म का-एक ही बन्धस्थान होने के सबव से भूयस्कारादि किसी भी बन्ध का संभव नहीं है.

२ दर्शनावरणीय कर्म के-१ का, ६ का और ४ का, यह तीन बन्ध स्थान होते हैं; इस में दर्शनावरणीय की सब ९ ही प्रकृतियों का बंध पहिले और दुसरे गुणस्थान में होता है-जिसकी-जघन स्थिति अन्तर मुहूर्त की और उत्कृष्ट स्थिति तो अभव्य की अपेक्षा से अनादि अनन्त, और भव्य की अपेक्षासे अनादि सान्त होती है, तथा पडवाड की अपेक्षा से सादि सान्त भी होती है. २ उपरोक्त ९ प्रकृतियों में से-(१) धीणद्वी निद्रा, (२) निद्रा निद्रा, और (३) प्रचला प्रचला, इन तीनों का बंध विच्छेद होनेसे मिश्रादि गुणस्थान में ६ प्रकृतिका बंध रहता है, जिमकी स्थिति जघन्य अंतर मुहूर्तकी, और उत्कृष्ट सागरोपम ऊपर पूर्व कोटी पृथक्त्व झाड़ेरी. ३ इन ६में निद्रा और प्रचला इन दोनों प्रकृतियोंका बंध विच्छेद आठवे अपूर्वकरण गुणस्थानके पहिले भागमें होनेमे, अपूर्वकरणका बाकी रहे सर्व भागोंमें और नववे दशवे गुणस्थानमें ४ प्रकृतिका बंध रहताहै, जिमकी स्थिति-जघन्य एक समयकी श्रेणिमें मृत्यु पावे जिमकी अपेक्षा से और उत्कृष्ट अंतर मुहूर्त की जाणना. ४ इन बंधों में भूयस्कार और अल्पतर बंध तो दो दो होतेहैं. अवस्थित बंध तीन होते हैं. और अव्यक्त बंध भी दो होते हैं सो कहते हैं.-१ उपशम श्रेणि से पडते हुवे आठवे गुणस्था-

न के दुसरे भाग में आते हुवे दर्शनावरणीय चार प्रकृति का बन्ध करता हुवा-बंध से विच्छेद की हुई निद्रा और प्रचला का फिर बंध करे तब ८ प्रकृति का बंध होवे, सो प्रथम समय प्रथम भूयस्कार. २ और फिर नवका बंध करे सो दुसरा भूयस्कार बंध. (यह २ भूयस्कार) और नवके बंध मे से ३ का बंध विच्छेद कर ८ का बंध करते प्रथम समय पहिला अल्पतर बंध. और फिर अपूर्व करण गुणस्थान के प्रथम ८ प्रकृति का बंध कर फिर निद्रा और प्रचला का विच्छेद कर चार का बंध करे सो प्रथम समय दूसरा अल्पतर बंध. (यह २ अल्पतर बंध) और इन चारों के मध्या मे तीनों बंध स्थान में दुसरे समय से लगाकर उन २ बंध के स्थानों में अन्तिम समय पर्यन्त तीनों अवस्थित बंध जाणना. और इग्यारवे गुणस्थान में दर्शनावरणीय का अबंधकहो वहां से पडते दशमे गुणस्थान में चार प्रकृति का बंध करे नेके पहिले समय पहिला अव्यक्त बंध. तथा उपशांतमोह गुणस्थान में आयुलय होने से मरकर अनुत्तर विमान में देव हो छे प्रकृतिका बंध करे उस के पहिले समय दुसरा अव्यक्त बंध.

३ मोहनीय कर्म के १० बन्ध स्थानः—मोहनीय की बन्ध की २८ प्रकृति है, इसमें भी एक समय में तीनों वेदों में का १ वेद. हांस्य और रति. शोक और अरति इन दोनों युगल में का एक युगल काही बन्ध होता है. क्योंकि यह प्रकृतियों बन्ध विरोध की है. इमालिये—१ मिथ्यात्व गुणस्थान में २२ का बन्ध होता है. जिसकी स्थिति—अभव्य आश्रिय अनादि अनन्त. भव्य आश्रिय अनादि मान्त. और पडवा इ आश्रिय सादि मान्त. २ फिर मास्त्रादन गुणस्थान में मिथ्यात्व मोहनीय का बन्ध नहीं होने से २१ प्रकृति का बन्ध होता है. जिसकी स्थिति जयन्य एक समय की उत्कृष्ट ६ आंवलिका की. २ फिर मिश्र और अविराति मन्मथ दृष्टि गुणस्थान में अनन्तानु बन्ध चौक का बंध नहीं होने से १७ प्रकृति का बंध होता है. जिसकी स्थिति—जयन्य अंतर मुहूर्त की. उत्कृष्ट ३३ मागरोमप पृथक्त्व पूर्वकोडी अधिककी. क्यों कि—अनुत्तर विमानवासी देवताओं चक्कर जहां तक विगति पणा धाग्न नहीं करें तहां लग यह गुणस्थान रहता है. ४ फिर देग विरति गुणस्थान में अद्रन्याग्यानी चौक का बंध नहीं होने से १३ प्रकृति का बंध होता है. जिसकी स्थिति जयन्य अंतर मुहूर्त की. उत्कृष्ट पूर्व कोडी वर्षकी. ५ फिर प्रमत्त और अद्रमत्त गुणस्थान में यत्याग्यानी चौक का बंध नहीं होने से ९ प्रकृति का बंध होता है. जिसकी स्थिति—

ति जघन्य एक समय की क्योंकि—कोई जीव एक समय मात्र सर्वविरतिरहकर दूसरे समय मरण प्राप्त हो जाता है. ऐसे परिणामों की अपेक्षा से जानना. नहीं तो जघन्य अन्तर मुहूर्त की, उत्कृष्ट देशज्जा पूर्वकोडी वर्षकी. ६ फिर अनिवृत्ति वादर गुणस्थान के पहिले भाग में हांस्य रति भय और दुगंछा का बन्ध विच्छेद होने से १ प्रकृति का बन्ध होवे, १७ दूसरे भाग में पुरुष वेद का बन्ध विच्छेद होने से चार प्रकृतिका बन्ध होवे, १८ तीसरे भाग में संज्वल के क्रोध का बन्ध विच्छेद होने से तीन प्रकृतिक बन्ध होवे. १९ चौथे भाग में संज्वल के मान का बन्ध विच्छेद होने से दो प्रकृति का बन्ध होवे. १० फिर पांचवे भाग में संज्वल की माया का बन्ध विच्छेद होने से एक प्रकृति का बन्ध होवे. इन ६ से लगा कर १० वे स्थान तक की जघन्य स्थिति एक समय की, उत्कृष्ट अन्तर मुहूर्त की, उपरोक्त मोह के १० बन्ध स्थानों में—१ भूयस्कार, ८ अल्पतर १० अवस्थित, और २ अव्यक्त बन्ध होते हैं सो कहते हैं:—१ जो जीव उपशम श्रेणिसे चडकर इग्यार वे गुणस्थान में अन्तर मुहूर्त रह कर पड़े, दशवे गुणस्थान में आवे वहां भी मोहनीय का अबन्ध रहे, वहां से पड़ नववे गुणस्थान के पांचवे भाग में आकर १ संज्वल के लोभ का बन्ध करे उसके प्रथम समय पहिला अव्यक्त बन्ध होवे. और इग्यारवे गुणस्थान में ही आ युक्षय होने से मरण कर अनुत्तर वीमान में देव हो १७ प्रकृति का बन्ध करे, उस समय दूसरा अव्यक्त बन्ध, ( यह २ अव्यक्त बन्ध ) और नवने गुणस्थान के पांच वे भाग से पडकर चौथे भाग में आकर संज्वल की माया के साथ दो प्रकृति का बन्ध करते प्रथम समय प्रथम भूयस्कार, तीसरे भाग में संज्वल की माया के साथ तीन प्रकृति का बन्ध करे उस समय दूसरा भूयस्कार, ३ दूसरे भाग में संज्वल के क्रोध के साथ चार प्रकृति का बंध करे सो तीसरा भूयस्कार, ४ प्रथम भाग में पुरुषवेद सहित पांच प्रकृति का बंध करे सो चौथा भूयस्कार बंध. ५ वहां से आठवे गुणस्थान के अन्त में हांस्य रति भय दुगंछा इन प्रकृति सहित ९ प्रकृतिका बंध करे सो पांचवा भूयस्कार. ६ वहां से देश विरति गुणस्थान में प्रत्याख्याना वरणीय चौक सहित १३ प्रकृति का बंध करे सो छठा भूयस्कार. ७ वहां से चौथे गुणस्थान में अप्रत्याख्याना वरणीय चौक सहित १७ प्रकृति का बंध करे सो सातवा भूयस्कार. ८ वहां से दूसरे गुणस्थान में अनन्तानु बंधा चौक सहित २१ प्रकृति का बंध करे सो आठवा भूयस्कार. और वहां से प्रथम गुणस्थान में मिथ्यात्व मोहनीय सहित २२ प्रकृति का बंध करे सो नववा भूयस्कार. ( यह ९ भूयस्कार बंध ) और १ मिथ्यात्व

गुणस्थान में २२ प्रकृतिका बंध कर चौथे-गुणस्थान में १७ प्रकृति का बंध करे सो प्रथम अल्पतर बंध, २ फिर १३ प्रकृति का बंध रहै सो दूसरा अल्पतर बंध, यों ऊपरोक्त भूयस्कार बंध सब उलट कहना, इसमें विशेष इतनाही है, कि-२१ प्रकृति का अल्पतर बन्ध नहीं होता है, क्यों कि-मिथ्यात्व गुणस्थान में सास्वादन गुणस्थान में कोईभी आता नहीं है, बाकी के ८ अल्पतर बन्ध होतेहैं। और ऊपर मोह बन्ध के द्वागस्थान कहे सो दूसरे समय से लगा कर अन्तिम समय पर्यन्त दशोंही अवस्थित बन्ध जानना ॥

४ नाम कर्मके ८ बन्धस्थान-१ मिथ्यात्वी जीव मनुष्य तिर्यच अपर्याप्ता एकेन्द्रिय प्रायोग्य-१ वर्ण, २ गन्ध, ३ रस, ४ स्पर्श, ५ तैजस, ६ कर्मण, ७ अगुरुलघु ८ निर्माण, ९ उपधात, १० तिर्यच गति, ११ तिर्यवानु पूर्वी, १२ एकेन्द्रिय जाति, १३ औदारिक शरीर, १४ हुंड भंस्थान, १५ स्यावर नाम, १६ वादर नाम अथवा नृन्म नाम, १७ अपर्याप्ता नाम, १८ प्रत्येक नाम अथवा माधारण नाम, १९ अस्थिर नाम, २० अशुभ नाम, २१ दौर्भाग्य नाम, २२ अनादेय नाम, और २३ अयशः नाम, इन २३ प्रकृतियों का प्रथम बंध स्थान, १ इन २३ में-१ पगावात और २ उच्छ्वास यह दोनों प्रकृतियों भिलाने से, और अपर्याप्ता के स्थान पर्याप्ता कहने से २५ प्रकृति का बंध पर्याप्ता एकेन्द्रिय प्रायोग्य मिथ्यात्वी देवता और मनुष्य के होता है, ३ इन २५ प्रकृतिमें आताप अथवा उद्योत दोनों मेंमे एक प्रकृति भिलाने से २६ प्रकृति का बंध पर्याप्ता एकेन्द्रिय प्रायोग्य तीनों गतिके मिथ्यात्वी जीवोंके होता है, ४ फिर-२ देव द्विक, ३ पचेन्द्रिय जाति, ४ वैक्रिय शरीर, ५ वैक्रिय अङ्गोपाङ्ग, ६ मनुचतुरत्त भंस्थान, ७ पराधान नाम, ८ उन्नाग नाम, ९ शुभ स्वगति, १० व्रत नाम, ११ वादर नाम १२ पर्याप्ता नाम, १३ प्रत्येक नाम, १४ स्थिर अथवा अस्थिर, १५ शुभ अथवा अशुभ, १६ यमः अथवा अयमः, १७ मुभग, १८ सुस्वर, १९ आदेय, २० वर्ण चतुष्क, २४ तैजस, २५ कर्मण, २६ अगुरुलघु, २७ निर्माण, और २८ उपधात, यह २८ प्रकृति देवगति प्रायोग्य मिथ्यात्वी तथा मनुचत्वी मनुष्य और तिर्यच बंधने हैं, ऐसे ही नन्क गति प्रायोग्य भी २८ काही बन्ध होता है, वहां इतना विशेष कि-देव द्विक के स्थान नन्क द्विक बहना, और मनुचतुरत्त भंस्थान के स्थान हुंड भंस्थान कहना, और अयगवर्तमान प्रकृति यों अशुभ गृहण करनी, यह २८ प्रकृति का चौथा बन्ध स्थान हुवा, ॥ ५, मन्मग

दृष्टि जिन नाम सहित देव प्रायोग्य २८ का बन्ध करते २९ का बंध स्थान होते। अथवा मनुष्य द्विक, ३५ चेन्द्रिय जाति, ५ औदारिक द्विक, छे संघयणों में का-एक संघयण, ७ छे संस्थानों में का-एक संस्थान, ८ वस, ९ वादर, १० पर्याप्ता, ११ प्रत्येक, १२ स्थिर अथवा अस्थिर, १३ शुभ कथवा अशुभ, १४ सोभाग्य अथवा दौर्भाग्य, १५ सुस्वर अथवा दुस्वर. १६ आदेय अथवा अनादेय, १७ यशः अथवा अयशः १८ शुभ खगति अथवा अशुभ खगति, १९ पराघात, २० उन्नाश, २१ वर्ण चतुष्क, ५ तेजस, २६ कार्मण, २७ अगुरु लघु, २८ निर्माण, और २९ उपाघात. यह २९ का मनुष्य प्रायोग्य बंध स्थान होता है. । ६ देवगति प्रायोग्य २८ प्रकृति के साथ आहारक द्विक सहित बन्ध करते ३० प्रकृति का बन्ध अप्रमत्त साधु के होता है, और मनुष्य प्रायोग्य २९ प्रकृति को जिन नाम सहित ३० प्रकृति का बन्ध सम्यग् दृष्टि देवता के होता है. । जिन नाम सहित देव प्रायोग्य ३० प्रकृति का बन्ध करने ३१ प्रकृति का बन्ध अप्रमत्त और अपूर्व करण गुणस्थान वर्ती साधु के होता है. । ८ आठवे गुणस्थान के छठे भाग में नाम कर्म की ३० प्रकृति का बन्ध विच्छेद कर एक-यशः कीर्ती का बन्ध करे.

इन ८ बन्ध स्थानों में—भूयस्कार बंध ६, अल्पतर बंध ७, अवस्थित बंध ८, और अन्यक्त बंध ३ होते हैं सो कहते हैं:—१. प्रथम २३ का बंध कर, तथा विधि विशुद्धि कर फिर २५ का बंध करते प्रथम समय प्रथम भूयस्कार, मिथ्यात्वी के होता है. । इन २५ को आताप अथवा उद्योत सहित २६ का बंध करते दूसरा भूयस्कार. । विशुद्धया संकेश परिणामों से देव प्रायोग्य या नरक प्रायोग्य, २८ का बन्ध करते तीसरा भूयस्कार, । देव प्रायोग्य २८ इने जिन नाम सहित २९ का बन्ध करते चौथा भूयस्कार । येही ३० प्रकृति मनुष्य प्रायोग्य अथवा देव प्रायोग्य बन्धते पांचवा भूयस्कार । देव प्रायोग्य ३० और जिन नाम सहित ३१ का बन्ध करते छठा भूयस्कार. ( यह ६ भूयस्कार बन्ध ) और अपूर्व करण में देवगति प्रायोग्य—२८—का,—२९—का, ३० का, और ३१ का बन्ध कर श्रेणि चढ़ते हुवे सब बन्ध का विच्छेद कर एक यशः कीर्ती काही बन्ध करे सो प्रथम अल्पतर । कोई आहारक द्विक और जिन नाम सहित देव प्रायोग्य ३१ का बन्ध करना मृत्यु पाकर देव लोक में जावे वहां प्रथम समय मनुष्य प्रायोग्य ३० प्रकृति का बंध करे सो दूसरा अल्पतर । देवलोक से चव मनुष्य पणे उत्पन्न हो जिन नाम

सहित देवगति प्रायोग्य २९ का बंध करे उस वक्त तीसरा अल्पतर. । कोई मनुष्य देवगति प्रायोग्य २९ का बंध करते परिणामों की विशुद्धि कर देवगति प्रायोग्य २८ का बंध करे उस समय चौथा अल्पतर. । इनही २८ का बंध करते सक्लिष्ट परिणामों से एर्केन्द्रिय प्रायोग्य २६ का बंध करे सो पांचवा अल्पतर. । वोही २६ वाला २५ का बंध करे सो छठा अल्पतर. और २५ वाला २३ का बंध करे सो सातवा अल्पतर. ( यह ७ अल्पतर बंध हुवे ) और ऊपर कहे सो आठों बंध के स्थान कों में दूसरे समय से लगाकर अन्तिम समय पर्यन्त आठो अवस्थित बंध होते है ( यह ८ अवस्थित बंध ) और-१श्रेणिसे पडते हुवे नाम कर्म का सर्वथा अवंध होकर फिर यशः कीर्ती नाम का बंध करे उसके पहिले समय पहिला अव्यक्त बंध. और २ उपशान्त मोहगुणस्थान मे मर कर अनुत्तर विमान में देवता होवे, वहां प्रथम समय मनुष्य से मनुष्य प्रायोग्य २९ का बंध करे सो दूसरा अव्यक्त. और वहां ही जिन नाम सहित ३० का बंध करे सो तीसरा अव्यक्त बंध ( यह ३ अव्यक्त बंध. )

ऊपरोक्त इन तीनो कर्मों सिवाय बाकी रहे सो-१. ज्ञानावरणीय, २ वेदनीय, ३ आयुष्य, ४ गोत्र, और ५ अन्तराय. इन पांचो कर्मों का एकही बंध स्थान है. क्योंकि—ज्ञानावरणीय और अन्तराय यह दोनों कर्म तो ध्रुव बंधी हैं इसलिये दग्धे गुणस्थान तक इन दोनों की पांच पांच प्रकृति का साथही बंध होता है जिस से इनका भूयस्कार और अल्पतर बंध नहीं होता है. फक्त एक अवस्थित बंधही मढ़ा बना रहता है. और वेदनीय आयुष्य गोत्र इन तीनों कर्मों की प्रकृतियों बंध विरोध की है. इसलिये एक समय में एकही का बंध होता है. और बंध स्थान भी एकही होता है. जिसमे इन का भी भूयस्कार और अल्पतर बंध नहीं होता है. और वेदनीय का बंधतो तेरेवे गुणस्थान तक होता है. इसलिये इस बिना बाकी के चारों कर्मों का व्यक्त बंध एकही होता है. क्योंकि—इग्यारेवे गुणस्थान में अवंधक हो फिर बंध करते प्रथम समय व्यक्त बंध होता है. फिर अवस्थित बंध जाणना.

ऊपरोक्त बंध में मूल प्रकृति का जयन्य एक का बंध है. और उत्कृष्ट ८ का बंध है. । और उत्तर प्रकृति का जयन्य एक का उत्कृष्ट ७४ का बंध होता है. इसमे—१ अनादि, २ नादि ३ अनन्त. और ४ नान्त इन चारों भांगों को विचारने हैं मूल प्रकृति के बंध स्थान में औव मे ५ नादि नान्त भांगा पाता है. क्योंकि—भवां भव में एकही वक्त आयु का बंध होता है. यह आठ का बंध. और बाकी के काल

में सात का बंध होता है। और उत्तर प्रकृति में ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय का एकेक बंध स्थान, वेदनीय का एक बंध, मोहनीय का २२ का बंध, गोत्र का एक का बंध, और अन्तरा का पांच का बंध। इन बंधोंमें १ अभव्यकी अपेक्षा से अनादि अनन्त भांगा, २ भव्य की अपेक्षा से अनादि सान्त भांगा, और ३ पडवाइ की अपेक्षा से सादि सान्त भांगा यों तीन भांगे मिलते हैं। और बाकी रोह बंध स्थानोंमें फक्त एक सादि सान्त ही भांगा पाता है। सो स्थिति मान जानना।

७७—१११

उदय द्वारोंका अर्थ।

जैसे मदिरा पान किये बाद कालान्तर से नशा का प्रभाव प्रत्यक्ष होता है—आत्माको विवहाल बना देता है, तैसे ही बन्धे हुवे कर्मों का अवाधा काल परी पक सेने से वो कर्म तीव्र, मन्द, घातीया, अघातीया, कटु, मिश्र इत्यादि विपाक रूप उनका प्रभाव प्रत्यक्ष आत्मा पे होवे उनको आत्मा से वेदे--अनुभवे--भोग--वो उसे उदय कहते हैं। इसकी १२२ प्रकृतियों हैं; सो १२० तो बंध मे कही सोही जानना, और यहां १ सम्यक्त्व मोहनीय और मिश्रमोहनीय यह २ प्रकृति अधिक ग्रहण करना, क्योंकि इन दोनोंका उदय मिथ्याव मोहनीय से कुछ अन्यही रूपमे देखताहै।

उय के ३४ द्वारों में से ८ विपाकोदय के द्वारो और ध्रुवो दय अध्रुवोदय छोडकर बाकीके द्वारोका खुलासा तो बन्धके द्वारोमें कहे मुजबही जानना। और बीपाकोदय का खुलासा यहां करते हैं।

चार विपाक द्वारोंका अर्थ।

यद्यपि सर्व प्रकृतियों अपना २ विपाक जीव कोही देखाती है, तो भी कितनीक १ क्षेत्र को मुख्यता कर देखाती है, सो क्षेत्र विपाक की कही जाती है। २ जीव की मुख्यता कर विपाक देखातीहै सो भव विपाक की, ३ जो बाह्य शरीर पर विपाक देखातीहै सो पुद्गल विपाक की। और ४ जो इन तनिकी अपेक्षा विना आत्मा मेही साक्षात विपाक बतावे सो जीव विपाक कि प्रकृति जानना। इसका स्वरूप यहां कहते हैं।

१ जीव विपाकः—जैसे मृग की प्रभाव का अच्छादन बदल करते हैं। तैसे ही आत्मा के ज्ञान, दर्शन-श्रद्धान, चारित्र, और दानादि लब्धि इन गुणोंका अच्छा-

दन करने वाली जो - ज्ञानावरणीय की ५, दर्शनावरणीय की ९, मोहनीयकी २८ और अन्तर्गय की ९, ऐसे चारो घन घातिक कर्मों की ४७ प्रकृतियों शरीर पुद्गलकी अपेक्षा बिना अपना विपाक जीव कोही देखाती है, तैसे ही ४८-४९ साता और असाता वेदनीय, तथा-५०-५१ नीच और ऊंच गोत्र, यह चारो प्रकृतियों सुखी दुःखी व ऊंच नीच जीव कोही बनाती है. और ५२ तीर्थंकर गोत्र के उदय से परम एश्वर्य पुजातीशय वचनातीशय और अपयागमतीशय यह चारो अतिशय जीवके ही होतेहैं जिससे जीवही तीर्थंकर परमात्मा कहलाते हैं. ऐसे ही-५३ वस, ५४ स्यावर, ५५ सूक्ष्म, ५६ वादर, ५७ पर्याप्ता, ५८ अपर्याप्ता, ५९ सौभाग्य, ६० दौर्भाग्य, ६१ सुस्वर, ६२ दुस्वर, ६३ आदेय, ६४ अनादेय, ६५ यशःकीर्ति, ६६ अयशःकीर्ति. यह सब प्रकृतियों जीवके ही प्राप्त होतीहै, जिस प्रकृतिके नाम मुख्य ही (वस स्यावरादि नामने) जीवको बोलाया जाता है. ६७ आशोछ्वात्त, यद्यपि पुद्गल रूप है, परन्तु यह लघ्वि जीवको ही होती है. ६८-७२ एकेन्द्रिययादि पांचों जाति, ७३-७६ नरकादि चारों गति, ७७-७८ दोनों स्वगति, यह भी जीव परही प्रवर्तती है. इसलिये भव ७८ प्रकृति जीव विपाक की गिती जाती है.

२ भव विपाककी-प्रकृति फक्त एक आयुष्य कर्म की ही चारों गिनी जातीहै क्योंकि-देवतादिक का भव प्राप्त हुवे बाद भवके प्रथम समय से लगाकर अन्तिम समय तक निरन्तर अपनी शक्ति बताती है. आत्मा का खोडे की तरह निरुन्धन करती है. परभवमें जाने नहींदेती है, और जब उन प्रकृतियों का क्षय करते हैं तब परभव का आयुका उदय होनेसे परभव में जीव जाता है. इसलिये भव की मुख्यता कर के १ नरकायु, २ तिर्यचायु, ३ नरायु, और ४ सुरआयु. इन चारों प्रकृतिको भव विपाक की जानना. और दुसरा कारण यह भी हैकि-चरम शरीरी जीव बाकी रहे तीनों गति के दलिये को मनुष्य गति के एक आयुष्य में संक्रमा कर-उदयावली में लाकर वेदकर क्षयकरे. क्योंकि प्रदेश मे कर्म वेदे बिना छुटका नहीं होता है. और आयुका संक्रम किये बिना मोक्ष भी नहीं होती है. इस लिये आयुका संक्रम किये बाद फिर उस के किसी भी प्रकार का परभव का आयुष्य का उदय नहीं होनेसे स्वभावकाही उदय रहा है. इसलिये आयुष्यकी चारों प्रकृति भव विपाक की जानना.

३ पुद्गल विपाककी प्रकृति-जो अपनी शक्ति शरीरादि पुद्गलों में देखावे उन प्रकृतियों से हुवाहुवा गुण दुर्गुण अनुग्रह उपधात शरीरादि नो कर्म पुद्गलों में होवे



ऐसे द्रुपुल विपाक की फक्त १ नाम कर्म की ३८ प्रकृतियों हैं:—१ निर्माण, २ स्थिर, ३ अस्थिर ४ शुभ, ५ अशुभ, ६ तैजस, ७ कार्मण, ८ वर्ण, ९ गंध, १० रस, ११ स्पर्श, १२ अगुरुलघु, इन १२ के अङ्गोपाङ्ग नो कर्म पुद्गल के जिसस्थान चाहिये वहांही जो देना, हाड दांत आदि कर्म पुद्गलों का स्थिर बन्धन, लोही लाल आदि कर्म पुद्गलों का अस्थिर बन्धन, तैसे ही मस्तकादि शुभ, पग प्रमुख अशुभ, शरीर के वर्ण गंध रस स्पर्शादि पुद्गल के होते है. ऐत्सेही १३-१५ तीन शरीर, १६-१८ तीनों शरीरके अङ्गोपाङ्ग, १९-२४ छे संघयण, २५-३० छे संस्थान, यह प्रकृतिभी शरीरके पुद्गल पणे परगमी है. ३१ उपघात नाम अंगुली प्रमुख अधिक होवे, सो भी पुद्गल विपाक की है. ३२ साधारण नाम भी शरीर पर्याप्ति पूरी किये बाद उदय होनेसे एक शरीर में अनेक जीव रहते हैं. ३३ ऐत्सेही प्रत्येक नामभी शरीराश्रित ही है. ३४ उद्योत नाम, ३५ आताप नाम, ३६ पराघात नाम यह भी शरीरके ही होते हैं. यो सब ३८ प्रकृति पुद्गल विपाक की होती है,

४ क्षेत्र विपाक—जो आकाश के प्रदेशों में जिसका मुख्यता कर उदय होवे अर्थात्-जब जीवों परभव को जाते दो समय या तीन समय की वक्र गति रूप श्रेणि करे उस जीवको जो जैसे बेल को नाथ (रस्ती) खेचकर रस्ते पर लाती है त्यों जीव को जिस गति मे जाना होवे उस गति के रस्ते लगावे उन्हे क्षेत्र विपाक की प्रकृति कही जाती है, सो फक्त १ नाम कर्म की चार प्रकृति है:—१ नरकानु पूर्व्वी २ तिर्यचानुपूर्व्वी, ३ मनुष्यानु पूर्व्वी और ४ देवानु पूर्व्वी. यह चारों अनुपूर्व्वी नामक प्रकृति रस्ते भूल जीवों को खेचकर अपने नाम जैसी गति मे-क्षेत्र मे ले जाती है इसलिये क्षेत्र विपाक की प्रकृति कहीजाती है.

### ध्रुवादय अध्रुवादय कर्म प्रकृतियों का अर्थ.

ध्रुवादय प्रकृति—१ पांच ज्ञानावरणीय, ४ दर्शना वरणीय, और ५ अन्तराय. इन १४ प्रकृति का उदय बारबे गुणस्थान तक रहताहै. १५ मिथ्यामोहनी का उदय अभव्य के सदा रहता है. और १६ निर्माण, १७ स्थिर, १८ अस्थिर १९ अगुरु लघु. २० शुभ. २१ अशुभ. २२ तेजस २३ कार्मण, और २४ वर्ण चतुष्क, यह नाम कर्म की १२ प्रकृति का उदय भी तेरबे गुणस्थान तक है. इसलिये चारों ग-

ति के जोषे के सदा पाता है. इसमें जो-स्थिर अस्थिर तथा शुभ अशुभ यह चारों प्रकृति आपत्तमें विरोध की है. सो वन्ध आश्रय जानना. परन्तु उदय आश्रय नहीं अर्थात् इन चारोंका एकही वक्त वन्ध नहीं, पडता है. परन्तु उदय रहता है जैसे रक्त मूत्र आदिका आस्थिर वन्ध अस्थिर कर्मेदय से होता है. और हाड दांत आदिका स्थिर वन्ध स्थिर कर्मेदय कर होता है, तैसे मस्तकादि शुभ अंग की प्राप्ति शुभ कर्मेदय कर होती है. और पादादिक अशुभ अंगका उदय अशुभोदय से होता है. और चारोंही वस्तु एक शरीर में सदा देखने में आती है जिससे ध्रुवोदय की कही जाती है.

अध्रुवोदय की प्रकृति:—दर्शना वरणीय कर्म की पांचों निद्रा का उदय किसी वक्त होव किसी वक्त नहोवे. ऐसेही दोनों वेदनीय × मिथ्यात्व मोहनी विना २ प्रकृति ÷ मोहनी की. चारों आयुष्यकी. ४ गति. ५ जाति. ३ शरीर. ६ संघयण, ६ संस्थान. दोनों स्वगति. चारो अनुपूर्वी. जिन नाम. उद्योत, आताप. अपघात पराघात. वत दशका इयावर दशका और उपघात नाम. यो नाम कर्म की ५५ और गोत्र की २. यो सब १५ प्रकृति उदय विरोध की होने के सबब से अध्रुव उदय की गिनी जाती है.

### ११३-१२४. ऊर्दीरगा द्वारों का अर्थ.

जो कर्मों अभितक अत्राया काल परिपक्व नहोने में उदय अवस्था को-फल देने को समर्थ नहीं हुवे हैं. ऐसे कर्मों को अत्रा करण वीर्य की विशेषता कर-उन्हे आकर्ष कर-खेचकर उदया वली में लाकर अत्रात काल में भोगवे-जैसे वृषके अपरिपक्व फल को आन्त्रिके व घांस ( पराल ) के जोग से पाका कर भोगवते हैं. उसे ऊ-

× सम्पक्व मोहना उदय वेदक सम्पक्व की होता है और निध्र मोह दोनों के मन्वसे होता है. इसलिये यह दोनों प्रकृति अध्रुव गिनी जाती है

- सौत्तेह कपाय. १७ भय. १८ दुर्गन्ध. यह १८ मोहनीय कर्मकी प्रकृति अध्रुवोदय में गिनी है. क्योंकि-क्रोध के उदय में मानदिक का उदय नहीं होता है. यों न्व प्रकृतियों उदय विरोधी होने के कारण से अध्रुवोदय में गिनी हैं. परन्तु वन्ध विरोधकी नहीं हैं. और भय तथा दुर्गन्ध का उदय भी सन्तर है. अर्थात् कभी होवे और भी नहीं भी होवे. जिनसे अध्रुवोदय की गिनी है.

दरिणा करी कही जाती है इसकी भी उदय की माफक १२२ ही प्रकृतिसे हैं इसके १२ द्वारों का खुलासावार अर्थ बन्ध के द्वारों के माफक ही जानना.

### १२५-१४६ सत्ता के द्वारों का अर्थ.

जीवका और कर्मों का सुवर्ण मटी की तरह अनादि सम्बन्ध है, इसलिये वो कर्मदल आत्मा के प्रदेशों पर बना रहै-दूरन होवे अथवा दूसरी प्रकृति में संक्रमें न ही निधान की तरह रहे वहां तक उसकी सत्ता गिनी जाती है. वो कर्म कैसे हैं? तो कि-उनके बन्ध से तथा संक्रमण से प्राप्त हुवा है आत्म लाभ मतिज्ञानावरणीय अदि आत्म स्वभाव जिससे ऐसे कर्म अर्थात्-सजातीय उत्तर प्रकृति में निज स्थिति रस दल का परिक्रमावना, जैसे देव गति मनुष्य गति में संक्रमा कर सत्ता में रहना ऐसी सत्ता की प्रकृतियों सब १४८ ही हैं इसके २२ द्वारों में से ध्रुवा ध्रुव सत्ता के ४ द्वारों छोड कर बाकी के द्वारों के अर्थ का खुलासा तो बंध के द्वारों मुझवही जानना. ध्रुवा ध्रुव सत्ता का खुलाशा यहां करते हैं.

### ध्रुवा ध्रुव कर्म प्रकृति सत्ताका अर्थ.

ज्ञानावरणीय की ५, दर्शना वरणीय की ९, इन का बन्ध ध्रुव है. तो सत्ता तो जरूर ही होय. वेदनी की-२ दोनो प्रकृति का परस्पर सक्क्रान्तदल की अपेक्षा से ध्रुव है. मोहनीय कि-१६ कपाय. १ भय, १ दुंगछा, १ मिथ्यात्व. यह ध्रुव बंधी हो नेमे तुव सत्ता बली जरूर होती है ३ तीनों वेदाका उदयतो अध्रुव है परन्तु एक वेद के उदय में तीनों वेदों की सत्ता पाती है. और हांस्य और रति, तथा शोक और अरति इन दोनों जुगलों की सत्ता भी क्षपक श्रेणि में नववे गुणस्थान तक सब जीवों के रहती है, ( यह मोहकी २६) नाम की १० वस दशका, या १० स्थावर दशका, और वर्णादि २० सब शरीर धारिकेही होते हैं ! तेजस शरीर, कर्मण शरीर, तेजम संघातन, कर्मण संघातन. तेजम बंधन कर्मण बन्धन. ( यह दोनों शरीर सर्व स्थान पाने मे ६ प्रकृति मद्रा पाती है, औदारिक शरीर, औदारिक अद्रो पाद्र, औदारिक संघातन, औदारिक बन्धन, इनकी सत्ता भी सर्वाद्रा पाति है, क्योंकि-मनुष्यति र्यच के तो इनका उदय है. और नारकी देवता के सत्ता हैं-( मर कर इमी में आने वाले हैं ) तिर्यच गति और तिर्यचानु पूर्वी इन दोनों की सत्ता प्राथम सर्व जीवों के रुदा होती है. क्योंकि-बहुत काल इमी में गमाया है. तथा दूसरी गति में भी इस का बंध पाता है. निर्माण, उपघात, अगुल्लु, उन्नास उघात, आनाप, पराघात, "

जाति. ६ संघयण, ६ संस्थान. और २ खगति [ यह नाम कर्म की ७८ ] १. नीच गोत्र की अधु सत्ता तिर्यच में गति नियमा से होवे, और ५ अन्तराय की सत्ता सब जीवों के सर्वदा पाती है. यों ७ कर्मों की १२६ प्रकृति ध्रुव सत्ता वाली जानना.

अध्रुव सत्ताकी प्रकृति उसे कहते हैं. कि—जिसका उदय कभी होवे कभी न होवे ऐसी २ प्रकृति है—१. सम्यक्त्व मोहनीय और मिश्र मोहनीय इन दोनों की सत्ता अनादि मिथ्यात्व की होती है यों सम्यक्त्व का वमन कर जो मिथ्यात्व गुणस्थान में आया हो उसके होता है. अन्य के नहोने से अध्रुव गिनी जाती हैं. और चारों गति के आयुष्य की सत्तामें से किसी जीवके एक गति के आयुष्य की सत्ता होती है किसी के दो गतिके आयु की सत्ता होती है परन्तु सर्वों के एकसी सत्ता न होने से आयुष्य की प्रकृति अध्रुव गिनी है. मनुष्यगति और मनुष्यानु पूर्व्वी इन दोनों प्रकृति की तेज और वायु में बहुत काल रहने वाला उवेलना करता है इसलिये उनकी सत्ता में नहीं पाने से अध्रुव गिनी जाती है. वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अङ्गो पाङ्ग, वैक्रिय संघात, वैक्रिय वन्धन, देवगति. देवानु पूर्व्वी. नरक गति, नरकानु पूर्व्वी. इन ११ प्रकृति की सत्ता अनादि निगोदीये जीवों के वन्ध के अभाव से नहीं होती है, तथा उवेलते भी नहीं हैं. इसलिये अध्रुव है. जिन नाम की सत्ता भी जो सम्यक्त्व प्रत्यय वन्धन कर फिर मिथ्यात्व में जावे जिसके अन्तर मुहूर्त लग होती है दूसरे के नहोती है इसलिये अध्रुव गिनी है. आहारक शरीर अहारक अङ्गो पाङ्ग आहारक संघातन आहारक वन्धन. इन का अप्रमत्त गुणस्थानी विशुद्धा चारी मुनि वन्धन कर फिर संक्लेश परिणामों से मिथ्यात्व में जावे उनके सत्ता में होती है दूसरे के नहोने से अध्रुव गिनी है, और ऊंच गोत्र की सत्ता भी अध्रुव है, क्योंकि—ते ३ और वायु में रहे हुवे जीव ऊंच गोत्र की उवेलना करते हैं. उस वक्त उसके ऊंच गोत्र की सत्ता नहीं. रहे तीहै इसलिये अध्रुव. ऐसे मिथ्यात्व गुणस्थान में वर्तते भी जिन प्रकृतियों की सत्ता किसी के होवे किसी के नहोवे ऐसी यह २८ प्रकृति अध्रुव सत्ता की जानना.

१४७-१५५ कर्मों के भङ्ग द्वारों का अर्थ.

वन्ध उदय. और सत्ता इन तीनों की प्रकृतियों के स्थान बताते हैं:—मूल आठ प्रकृति वन्ध की अपेक्षा से—८ का. ७ का. ६ का. और १ का. यह ४ स्थान होते हैं. और उदय की अपेक्षा से—८ का. ७ का. और ४ का. यह तीनों स्थान हो

ते हैं, और सत्ता की अपेक्षा से—८ का, ७ का और ४ का, यह तीनो स्थान होते हैं। सोही कहते हैं:-

जिस वक्त जीव सब कर्मों का बन्ध करता है तब आठ प्रकृति के बन्ध का स्थान होता है, सो जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर मुहूर्तही रहता है। जब आयुष्य का बन्ध नहीं होता है तब सात प्रकृति का बन्ध स्थान होता है यह जघन्य अन्तर मुहूर्त, \* और उत्कृष्ट ३३ सागर में ६ महीने कम और अन्तर मुहूर्त कम पूर्व कोटी वर्ष का तीसरा भाग अधिक इतना होता है. + । और जब आयुष्य मोहनीय बिना छे कर्म का बन्ध दशवे गुणस्थान में होता है वो जघन्य १ समय ÷ उत्कृष्ट अन्तर मुहूर्त ! क्योंकि-इसकी स्थिति इतनी है । और १ वेदनीय कर्म का बन्ध इग्यारवे और

\* कोई अन्तर मुहूर्त आयुष्य वाला जीव अपने आयुष्य का तीसरा भाग बाकी रहे तब परभव के आयुष्य का बन्ध करे, तब आठों कर्म का बन्ध कर फिर सात प्रकृति के बन्ध स्थान में आवे। वहा फिर कुछ कम अन्तर मुहूर्त के तीसरे भाग पर्यन्त सात प्रकृति के बन्ध कर्ता सात प्रकृति के बन्ध स्थान में रहकर फिर मृत्यु पाकर अन्तर मुहूर्त के आयुष्य के स्थान में अवतरे वहा भी उस आयुष्य के दो भाग पर्यन्त सात प्रकृति का बन्ध करे, फिर तीसरे भाग के धुर में आयु बन्ध करे तब आठों कर्म के स्थान को प्राप्त होवे इसलिये अन्तर मुहूर्त का जघन्य काल कहा है।

+ कोई पूर्व कोटी वर्ष के आयुष्य वाला अपना आयुष्य का तीसरा भाग रहे तब अन्तर मुहूर्त पर्यन्त ३३ सागर का देवताका आयुका बन्ध करे वहा ८ प्रकृति का स्थान में रहकर फिर पूर्व कोटी वर्ष का तीसरा भाग में अन्तर मुहूर्त कम रहे वहा तक सात प्रकृति के बन्ध स्थान में रहे, फिर वहा से चव कर देवता होवे वहा भी तेतीस सागर ६ महीने कम पर्यन्त तो ७ प्रकृति काही बन्ध करे। फिर छे महीना बाकी आयुष्य रहे तब परभव का आयुष्य बन्धे, तब आठ प्रकृति के बन्ध स्थान में आवे। इस अपेक्षा से उत्कृष्ट इतने कालका संभव है।

— कोई जीव पमश श्रेणिकर दशवा गुणस्थान एक समय लग स्पर्श वहा भव क्षय से मरण पाकर अनुत्तर विमान में देवता होवे वाह फिर अत्राति सम्यक दृष्टि पने सात प्रकृतिका बन्ध करे इस अपेक्षासे जघन्य एक समय जानना-

× दशवे गुणस्थानकी स्थिति अतर मुहूर्त कीही है वहाभी छे प्रकृतिका बन्ध होता है।

तेरवे गुणस्थान में होता है, जिसकी स्थिति-जयन्त्य १ समय की, + उत्कृष्ट देश ऊ  
णा क्रोड पूर्व की \* । यह चार बन्ध के स्थानक ॥ आयुष्य कर्म का बन्ध करते ए  
क आठ कर्मोंका बन्ध करने का स्थानक होता है, मोहनीय कर्म का बन्ध करते-एक  
आठ का और दूसरा मात का यो दो बन्ध स्थान होते हैं, वेदनीय कर्म का बन्ध क  
रते-आठ का, सात का छेका और एक का यो चार बन्ध के स्थानक होते हैं, वा-  
की रहे-ज्ञानवरणीय, दर्शना वरणीय, नाम गोत्र और अन्तराय इन पाँचों कर्मोंका  
बन्ध करते आठ का, मातका और छेका यह तीन कर्मोंके बन्ध के स्थान होते हैं ॥

२ उदय के तीन स्थानक कहते हैं:-नव आठों कर्मोंका उदय का पहला  
स्थानक, यह अभव्यकी अपेक्षा अनादि अनन्त, भव्यकी अपेक्षा अनादि मान्न, औ  
र पदराड की अपेक्षा सादि नान्त, इनकी स्थिति-जयन्त्य अन्तर मुहूर्त की, + उ-  
त्कृष्ट देशजणी आधा पुडल परावर्तन की x । मोहनीय जिन सात कर्मों का दूसरा  
उदय स्थानक इग्यारवे बारवे गुणस्थान में होता है, जिनकी स्थिति जयन्त्य एक समय  
की, + और उत्कृष्ट अन्तर मुहूर्त की (!) । और चारों यात्रिये कर्मों का भय  
किपेवाद, वेदनीय आयुष्य, नाम और गोत्र यह चारों भूषण ग्रामी कर्मों का उदय  
तेरवे चउदवे गुणस्थान में होता है जिसकी स्थिति-जयन्त्य अन्तर मुहूर्त, उत्कृष्ट देश  
जणी क्रोडपूर्व ॥ इसमें मोहनीय कर्म का उदय एकती आठ प्रवृत्ति के उदय स्थानमें

+ इग्यारवा गुणस्थान को १ समय मात्र समझ कर कि सब धुव हो मान करे,

\* क्रोड क्रोड पूर्व के आयुष्य बन्ध मान महीने गर्व में समझ जने, जने दस दस  
ट दस के अंगे में चारित्र प्रहय करे, उन्ही बन्ध भुवन श्रेणी चउदकर वेदना इन दस  
को इन अपेक्षा से जानना,

x क्योंकि-क्रोड क्षेत्र अन्तर मुहूर्त के अन्तर कि कि वेदि प्रवृत्ति है जानने

- क्योंकि इसमें श्रेणी दूसरी बन्ध समझने का उत्कृष्ट अन्तर इग्यारवा है, ज  
रा की समयकर समझने दस समझ में समझे उत्कृष्ट बन्ध इग्यारवा है, इग्यारवा  
अधे कर्मों का उदय स्थान है,

(!) क्रोड क्षेत्र इग्यारवा गुणस्थान समझने का पूर्व समझ लो, इस स्थिति से जानने,

x इग्यारवा क्षेत्र बन्ध गुणस्थान का बन्ध इग्यारवा है, इग्यारवा उदयस्थान  
में स्थिति है,

होता है; ज्ञानावरणीय, दर्शना वरणीय और अन्तराय, इन तीनों कर्मों का उदय आठ के और सात के दोनों स्थानों में होता है। बाकी के चारों कर्मों का उदय दश-वे गुणस्थान तक आठों के उदय होता है, इग्यारवे बारवे गुणस्थान में सात के उदय स्थान में होता है, तेरवे चउदवे गुणस्थान में चारों के उदय स्थान में होता है।

३ तीन सत्ता के स्थानकः—आठों कर्मों का सत्ता का स्थानक तो इग्यारवे गुणस्थान तक पाता है, सो अभव्य की अपेक्षा अनादि अनन्त, और भव्य की अपेक्षा अनादि सान्तः। मोहनीय कर्म का क्षय कियेवाद् सात कर्मों का सत्ता स्थानक-बारवे गुणस्थान में अन्तर मुहूर्त पर्यन्त पाता है। और चारों घातिये कर्म क्षय कियेवाद्, चारों अधातिये कर्मों का सत्ता स्थान तेरवे चउदवे गुणस्थान में जघन्य अन्तर मुहूर्त × उत्कृष्ट देशदृष्टा क्रोड पूर्व लग पाता है॥ इसमें-एक मोहनीय की सत्ता में आठों कर्मों का सत्ता स्थानक, मोहनीय बिना तीनों घातिये कर्मों की सत्ता में-आठका और सातका यह दो स्थानक पाते हैं। और चारों अधातिक कर्मों की सत्ता में आठका सातका और चारका यह तीन सत्ता के स्थानक पाते हैं।

आठों कर्मों का बन्ध उदय और सत्ता का सम्बन्ध कहते हैंः—अष्टविधि बन्धक सप्तविधि बन्धक और पडाविधि बन्धक, इन तीनों बन्ध में अलग १ आठ, कर्मों का उदय और सत्ता होती है, जिसके तीन भाँड़े हैंः—१ आठों का बन्ध आठों का उदय, और आठों की सत्ता; यह प्रथम भङ्ग आयुबन्ध के वक्त अन्तर मुहूर्त प्रमाण मिथ्यात्व गुणस्थान से लगा प्रमत्त संयति गुणस्थान तक पाता है। १ सात का बन्ध आठ का उदय और आठ की सत्ता; यह दूसरा भङ्ग आयुबन्ध के अभाव से जघन्य अन्तर मुहूर्त, उत्कृष्ट छे मनहीने कम तेतीस सागर पूर्व कोडीका तीसरा भाग अधिक, मिथ्यात्व से लगा कर आनिष्टात्ति वादर गुणस्थान तक पाता है, २ छेः का बन्ध, आठ का उदय, और आठ की सत्ता; यह तीसरा भङ्ग, सूक्ष्म, सम्पराय गुणस्थान में जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर मुहूर्त प्रमाण जानना। क्योंकि—यहाँ मोहनीय का बन्ध नहीं है, ॥ एक वेदनीय के बंध के तीन भाँड़े होते हैंः—२ एक का बंध सातका उदय और आठ की सत्ता, यह प्रथम भङ्ग-उपशान्त मोहके स्थान जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर मुहूर्त लग मिलता है, क्योंकि—यहाँ मोहका उदय तो

— यह अन्तगड केवली की अपेक्षासे जानना.





गुणस्थान तक पाता है सो जवन्य एक समय ÷ और उत्कृष्ट अन्तर सुदूर्तः ॥ दर्शना वरणीय के सत्ता के तीन स्थानः-१. नवका सत्ता का स्थानक-अभ्यन्त की अपेक्षा अनादि अन्त, और भव्यकी अपेक्षा अनादि सान्त होता है; यह स्थान उपशम श्रेणिक अपेक्षा से तो मिथ्यात्व गुणस्थान से लगाकर उपशान्तमोह गुणस्थान तक पाता है, और क्षपक श्रेणिकी अपेक्षा से मिथ्यात्व गुणस्थान से लगा अनिवृत्ति वादर गुणस्थान के पहिले भाग तक पाता है. यहां थीणाद्वि विक का क्षय होने से- १. २ छः प्रकृति का सत्ता स्थान अनिवृत्ति वादर गुणस्थान के दूसरे भाग से लगा कर बारवे गुणस्थान के द्विचरम समय लग पाता है, इसकी स्थिति अन्तर सुदूर्त की १. ३ और बारवे गुणस्थान के अन्तिम समय-निद्रा और प्रचला का क्षय होने से चारों प्रकृतिका सत्ता स्थानक एक समय तक रहे. ॥ दर्शना वरणीय के उदय के दो स्थानकः-१ चक्षुदर्शना वरणीय, अचक्षुदर्शना वरणीय अवाधि दर्शना वरणीय और केवल दर्शना वरणीय इन चारों प्रकृतिका ध्रुवोदय मिथ्यात्व से लगा क्षीणमोह गुणस्थान तक होता है. १. २ और इन चारों के साथ जब निद्रा का उदय होवे तब पांच के उदय का दुसरा स्थान जानना. +

अब दर्शनावरणीय कर्म प्रकृति का बन्धादि का सम्बन्ध कहते हैं:-दर्शनावरणीय में-नवका बंधस्थान मिथ्यात्व और सेस्वादन गुणस्थान में होता है, इस में-१. चक्षुदर्शनावरणी आदि चारों के उदय स्थान होवे, और २ पांचो निद्रा में की एक वक्त में एक ही निद्रा का उदय होनेके पांचका उदय स्थान होवे इन दोनों भांगेमें सत्ता का स्थान तो १. प्रकृतिका ही होता है. अर्थात्-१ नवका बंध चारका उदय और २ की सत्ता यह प्रथम भद्र, २ नवका बंध पांच का उदय, और नवकी सत्ता यह दु-

× कोड जीव आठवे गुणस्थान में मरकट देवता होवे वहा ६ प्रकृति का वय करे इस ओपक्षाने.

- पांचो निद्रा अध्रुवोदय की प्रकृति है, इसलिये उदय विरोधी है, अर्थात्-पांचों मेंमे प्रकृति वक्त में प्रकृति निद्रा का उदय होता है. इसका नहीं होता है. और जब निद्राका उदय नहीं होवे तब चक्षु दर्शनावरणी आदि चारों का उदय रहता है. इसलिये निद्राव्य अवस्था में पांच के उदय का भाग पाना है नहीं तो चारका भाग पाना है. यों दो भाग होते हैं.

सरा भङ्ग, + ऐसे ही निश्चय से छेके बंध में और चारक बंध में वी दोदो भाँगे होते हैं सो कहते हैं:-१ छ का बंध, चारका उदय, और नवकी सत्ता; २ छे का बंध पांचका उदय, और नवकी सत्ता. यह दोनों भाङ्गे तीसरे गुणस्थान से लगाकर आठवे गुणस्थान के प्रथम भाग तक पाते हैं. क्योंकि-तीसरे गुणस्थान से धीणद्वी त्रिक की नास्ति होती है. और उदय तो चारका ध्रुव होता है और जिस वक्त निद्राका उदय होवे उत्तवक्त पांचों प्रकृति का उदय पहिले कहे मुजब जानना और सत्तातो नवकी ही होती है. और क्षपक साधु के आठवे गुणस्थान के प्रथम भाग में-छे का बंध, चार का उदय, और छे की सत्ता यह एकही भाँगा पाता है. परिणामो की अत्यंत विशुद्धता से निद्रा का उदय होता नहीं है. + ऐसे ही चार के बंध में भी तीन भाँगे जानना:-१ पांचों निद्रा त्रिना-चार का बंध, चारका उदय, और नवकी सत्ता जब निद्रा और प्रचला दोनों में से एक का उदय होवे तब चार का बन्ध. पांचका उदय और नवकी सत्ता, यह दोनों भाङ्गे आठवे गुणस्थान के दुमरे भाग से लगाकर इग्यारवे गुणस्थान तक तो उपशम श्रेणि में पाते हैं. और क्षप के तो निद्राके अभाव से पहिले कहे मुजब एकही भाङ्गा पाता है. ॥ और चार के बन्ध में नववे गुणस्थान के दुमरे भाग से धीणद्वी त्रिक नववेके प्रथम भाग में प्रक्षेपे उस वक्त छ की सत्ता होती है उत्तवक्त चार का उदय और छे की सत्ता पाती है यह भाङ्ग दश वे गुणस्थानके अन्तिम समय तक क्षपकमें पाता है॥ फिर बंधसे निवृत्ते बाद इग्यारवे गुणस्थान में चार का उदय और नवकी सत्ता. १ तथा पांच का उदय और नव की सत्ता. यह दो भाङ्गे पातेहैं \* और बारवे गुणस्थान के अन्तिम समय के पहिले समयतक-चार का उदय और छेकी सत्ता, और अन्तिम समय में चार का उदय

× दूसरे भाँगे में ऐक्य वक्त पांचों निद्रामे से एक निद्रा उदय होवे उमका नाम ले अत्र २ भाँगे कहने से दूसरे भाँगे के पांच उत्तर भाँगे होजाते है.

× जितनेक आचार्य बारवे गुणस्थान तक निद्रा का उदय नान कर क्षपक को भी निद्रा का उदय फरमाते है. परन्तु यह बात मिलनी कम है.

+ क्योंकि-उपमान मोह वालों के निद्राका उदय ज. भी सम्व है. इन्हीं पांचका उदयभी निश्चयतक है. और सत्ता तो नव कीही है.

और चार की सत्ता + ॥ यह सब मिल कर (११) भाङ्गे दर्शनावरणीय कर्म क होते हैं. = ॥

## वेदनीय कर्म के भंगादि

वेदनीय कर्म की-साता वेदनीय और असाता वेदनीय यों दोनों प्रकृति बन्ध विरोधकी है. अर्थात्-एक समय में दोनों में से एक काही बन्ध पडता है. तैसे ही उदय विरोध की भी है:-अर्थात् एक समय में उदय भी एक काही होता है. साता का तब असाता का नहीं और असाता का तब साताका नहीं इसलिये बन्ध का और उदयका एक एकही स्थान होता है और सत्ता स्थान तो दो काभी होता है और एक का भी होता है. । वेदनीय कर्म के ८ भाङ्गे:-१ असाता बन्ध, असाता का उदय और साता असत्ता दोनों की सत्ता. २. असाता का बन्ध साताका उदय और साता असाता दोनों की सत्ता. ( यह दोनो भाङ्गे मिथ्यात्व गुणस्थान से लगा कर प्रमत्त गुणस्थान तक पाते हैं, फिरे आगे असाता का बन्ध छिेद होता है फक्त एक साताही का बन्ध रहै तब ) ३ साता का बन्ध असाता का उदय और दोनो की सत्ता ४ साता का बन्ध साताका उदय और दोनों की सत्ता. ( यह दोनो भाङ्गे मिथ्यात्व से लगाकर संयोगी केवली गुणस्थान तक पाते हैं. । फिर आगे बन्ध के अभाव से ) ५ साता का उदय और दोनों की सत्ता, ६ असाता का उदय और दोनो की सत्ता ( यह दोनों भाङ्गे अयोगी गुणस्थान के द्विचरम समय तक पाते हैं । फिर (७२ प्रकृति मे जिनो ने असाता क्षयका किया उन के) ७ साता का उदय और साता की सत्ता यह भाङ्गा अयोगी गुणस्थान के अन्तिम समय मे पाता है । और (जिनोने साता का क्षय कि-

÷ द्विचरम समय में निद्रा का और प्रचला का क्षय होता है, इसलिये चारही-की सत्ता रहती है.

= और जो क्षपक श्रेणि मे निद्रा का उदय मानते है उनके मत से-१ चार का बन्ध, पाच का उदय छेकी सत्ता. यह भाङ्गा नववे दशवे गुणस्थान वृत्ति क्षपक में पाता है और बन्ध के अभाव से पाच का उदय छेकी सत्ता यह भागा गीण मोहके द्विचरम समय तक पाता है. यों यह दोनो भागे बढने से दर्शना वरणीय के १३ भाग भी होजाते है. और भी जहा जितनी निद्रा का उदय होवे वहां उतनी निद्रा को अलग २ कहने से २५ भागे होजाते हैं

या उनके ) ८ असाता का उदय और असाता की सत्ता ( यह भाज्ञा भी अयोगी गुणस्थान के अन्तिम समय पाता है ) यह वेदनीय कर्म के ८ भाज्ञे

## मोहनीय कर्म के भङ्गादि.

मोहनीय के २२ का, २२ का २७ का, २३ का, ९ का, ५ का, ४ का, ३ का, २ का, और १ का यह २० बन्ध स्थान हैं—२ प्रथम २२ प्रकृति का बन्ध स्थान मो मोहनीय की सब २८ प्रकृति में से १ मिश्रमोह और २ सम्यक्त्व मोहका तो बंध पडताही नहीं है. और तीनों वेदों में से एक वक्त में एकही वेदका बंध पडता है तथा हांस्य और रतिगोक और अराति इन दोनों युगलों मेंसे एक वक्त में एकही का बंध पडता है यों २ दोमोहनीय, २ वेद और २ एकयुगल की मिल ६ प्रकृति कमी होने से एक वक्त में २२ ही प्रकृति का बंध पडता है, यह बंध मिथ्यात्व गुणस्थान में पाता है. मो—अभव्य की अपेक्षा अनादि अनन्त, भव्य की अपेक्षा अनादि सान्त और पडवाइ की अपेक्षा सादि सान्त. । इन २२ में से जब मिथ्यात्व मोहनीय का बन्ध नहीं होवे तब २१ प्रकृति का दूसरा बन्ध स्थान सेस्त्रादन गुणस्थान में पाता है. मो जयन्य एक समय, उत्कृष्ट आवलि का × । पूर्वोक्त २२ प्रकृति में से—अनन्तान बन्ध चौक और मिथ्यात्व मोहनीय का बन्ध नहोवे, तब मिश्र गुणस्थान में, १ का अविराति गुणस्थान में तीसरा १७ प्रकृति का बन्ध स्थान जयन्य अन्तर मुहूर्त, उत्कृष्ट मागार आज्ञेरा काल तक पाता है. ÷ । इन २७ प्रकृति में से—जिमवक्त अप्रत्याख्याना वरणीय चौक का बन्ध नहीं होता है तब २३ प्रकृति का चौथा बन्ध स्थान देगविराति गुणस्थान में जयन्य अन्तर मुहूर्त उत्कृष्ट देगज्जणा क्रोडपूर्व पर्यन्त पाता है । इन २३ में से जब प्रत्याख्याना वरणीय चौक का बन्ध नहीं होता है तब प्रमत्त अप्रमत्त और अयुर्व करण गुणस्थान तक ९ प्रकृति का पांचवा बन्ध चौथे बन्ध जितने काल

× यहां नपुंसक वेदका बन्ध नहीं है तो भी, त्रिवेद पुत्र्यवेदका तो है.

÷ कर्माङ्गे-अनुत्तर विद्वान् के देवता चक्रर जहांतक विराति पना न पावे वहांतक इसी बन्ध स्थान में रहते हैं.

की चौबीसी भी तीन होती है। उपरोक्त चारोंमेंसे भय और दुर्गंछा, तथा भय और सम्यक्त्व मोहनीय, तथा दुर्गंछा और सम्यक्त्व मोहनीय—यों दो दो प्रकृति को मिलाने से—तीन प्रकार से छे का उदय होता है। वहां भी भाङ्गे की चौबीसी तीन होती है। और उपरोक्त चारों में—भय, दुर्गंछा, और सम्यक्त्व मोहनीय यह तीनों प्रकृति साथ मिलाने से—सात प्रकृति का उदय होवे वहां भी भाङ्गे की चौबीसी १ होती है। यों नवके बन्ध के चारो उदय स्थानों की भाङ्गे की चौबीसी ८ हुआ। चार तो क्षायिक और उपशम सन्निकृति की और चार वेदक समकृति की। ॥ पांच प्रकृति के बन्ध में—दो प्रकृति का एकही उदय स्थान होता है; संज्वलके चौक में की १ कपाय, १ वेद, इने दोनों प्रकृति का उदय स्थान होवे। यहां भाङ्गे १२ होते हैं। क्योंकि—यहां हांत्यादिक का उदय नहीं है, इसलिये भाङ्गे की चौबीसी नहीं होगी है। फल चारों कपायों की तीनों वेदों के साथ गिनने से १२ भाङ्गे होते हैं। यह १२ भाङ्गे नवके गुणस्थान के पांच भागों में के पहिले भाग में पाते हैं। ॥ ऊपर कहा पांच का बन्ध स्थान उसके आगे चारका बन्ध, तीनका बन्ध, दोका बन्ध, और एकका बन्ध। इन चारों बन्ध स्थानों में—एकके प्रकृति का उदय स्थान तर्जस्थान पाता है, जो कहते हैं—यहां पुरुष वेदका बन्ध बिच्छेद हुवे बाद—संज्वल के चौक दाहिनी बन्ध रहा और पुरुषवेद के बन्ध के साथ में उदय भी दृष्टा, इसलिये चारों बन्ध में एकही भाग पाता है। क्योंकि—संज्वल की चारों कपायों में—किनी जो फल क्रोधा उदय, किनी जो फल मान का उदय किनी जो फल मायका और किनी जो फल लोभ का उदय होने नेही चार भाङ्गे उदय के अनिवृत्ति करण गुणस्थान के दुसरे भाग में पाते हैं। \* । उसके बाद संज्वल के क्रोध का बिच्छेद होने से अनिवृत्ति करण

—यहां कितनेका आचार्य चतुर्विध बन्ध के संक्रमण काल में तीनों वेदों में के एक वेद का उदय भी मान लेते हैं। इसलिये उन के मनमें चतुर्विध बन्ध के संक्रमण काल में संज्वल का चौक और तीनों वेदों के साथ गिनने में—१२ भाङ्गे द्विकोदय के यहां भी होते हैं। और पांच विध बन्ध में भी द्विकोदय के बोर लागे होते हैं। यों दोनों द्विकोदय के २४ भाग प्रथम काल में होते हैं। उनके बाद चतुर्विध बन्ध के द्विकोदय के चार भाग होते हैं।

के तीसरे भाग में-द्विविध बन्ध होता है, तदा एक का उदय होवे, जिसके भाङ्गे तीन बन्धते है। फिर चौथे भाग में-दोके बन्ध में संज्वल की माय तथा लोभ इन दो नो में ने एक उदय में दो भाङ्गे होते हैं। और एक संज्वल के लोभ के बन्धस्थान में-एक संज्वल लोभ का उदय होवे, उदयका एक भांगा नववे गुणस्थान के पांचवे भाग में होता है, ॥ फिर बन्ध बिना फल उदय का एक भाङ्गा होवे, सो कहते हैं - मोहनीय कर्म बन्धक अभाव भेदी-रूढ़ सम्पराय गुणस्थान में-एक संज्वलके लोभका उदय स्थान होवे, वहां एकही भाङ्गा जानना, यों चारके बन्ध स्थान में भाङ्गा चार तीनके बन्ध स्थान में भागे तीन, दोके बंध स्थान में भाङ्गे दो एकके बंध स्थान में भांगा एक और बंध के शुन्य स्थान में भाङ्गा एक, सब मिल भाङ्गे ११, एकेके के उदय में होते हैं, । यद्यपि यहां संज्वल के क्रोधादिक के उदय में विशेष नहीं है, तथापि बन्ध स्थान के विशेष कर विशेष जानना, ॥ फिर उदय के अभावमें भी उपगन्त मोह गुणस्थान में-कपाय उपशान किया परन्तु सत्ता है इमलिये प्रसङ्गानु पेन यह भी एक भाङ्गा ग्रहण करना, परन्तु यहां बन्ध और उदय के भेद में सत्ता का भाङ्गा कहना सो निष्कारण है, और क्षीणरोह में तो सत्ता भी नहीं है।

सब भाङ्गो की संख्या कहते हैं — १ दशके उदय की-१ चौथीमी, २ नवके उदय की ६ चौथीमी, ३ आठ के उदय की ११ चौथीमी, ४ मान के उदय में दश चौथीमी, ५ छे के उदय में ७ चौथीमी, ६ पांचके उदय में चार चौथीमी, और उंचा रके उदय में एक चौथीमी-यों सब मिल भाङ्गे की ४० चौथीमी यों दुह, और दे के उदय के १२ भाङ्गे एक के उदय के ११ भाङ्गे सब मिल चालिस चौथीमी के तो  $४०+२४=६४$  और  $११+१२=२३$  यों  $६४+२३=८७$  भाङ्गे होते हैं, इन सब उदयो के भाङ्गे में का एक भाङ्गा जयन्त एक समय रहे और उत्कृष्ट अन्तर मुहूर्त पर्यन्त × रहता है.

+ और अन्तर में दोके उदय में २४ भागे रहे हैं उन के मन में ४१ चौथीमी के १८४ भाग होते हैं.

× बन्ध स्थान मिले का सत्ता उदयान्तर जाने की उच्छेद में, गुणस्थान के भेद में अनुस्थान जान है.

= वेदोदय और वीर्य सुगल में एक अन्तर मुहूर्त में उत्पन्न होता है.

= पद वृत्त कहते हैं, - दशके उदय में भागे की १ चौथीमी इमको १० गुना कर

अब सत्ता स्थानक का सम्बन्ध कहते हैं:—२२ प्रकृति का बन्ध मिथ्यात्वकिते होता है, वहां- ७ का, ८ का, ९ का और १० का यह चार उदय स्थान पाते हैं, (१) सात के उदय में एकही अठावीस का सत्ता स्थान होता है. क्योंकि सातका बन्ध अनन्तान बन्धिये के अभाव से होता है. बोभी सम्यक्त्व युक्त अनन्तान बांधी-की उदरिणा की हो, वो जिसवक्त मिथ्यात्वमें जावे उस वक्त फिर मिथ्यत्व प्रत्ययी अनन्तानुबन्धि चौक बन्धना सुरु करे. उस मिथ्यात्वकिते बन्ध आवालिका तथा संक्र-मावालिका लग अनन्तान बन्धिये के उदय रहित सत्ता उदय होता है, वहां निश्चय से उसके २८ की सत्ता होती है. (२) आठ प्रकृति के उदय स्थान में २८ का, २७ का, और २६ का यह तीन सत्ता स्थान होते हैं:—जिसके अनन्तान बन्धिये रहित ८ का उदय होता है. वहां पूर्वोक्त युक्ती से एक २८ का स्थान होता है, और अनन्तान बन्धिये सहित जो ८ का उदय होवेतो-उस में तीन सत्ता स्थान होते हैं:— १. जहांलग सम्यक्त्व मोहनीय की उदरिणा नहीं करे तहांलग २८ का सत्ता स्थान २. सम्यक्त्व मोहनीय उदरे बाद २७ का सत्ता स्थान. ३. मिश्र मोह उदरे बाद २६ सत्ता स्थान अनादि मिथ्यात्वी में पाता है. योंही नवके उदय में भी तीन सत्त स्थान पाते हैं. । और दशका उदय तो अनन्तान बन्धि सहित होता है इसलिये वहां भी येही तीनों सत्ता स्थान जानना. ॥ २१ के बन्ध में-७ का, ८ का और ९ का यह तीनों उदय स्थान में भी एक अठाइस का सत्ता स्थान होता है. । १७ के बन्ध में-२८ का, २७ का, २४ का, २३ का, २२ का, और २१. यों ६ सत्ता स्थान होते हैं. १७ प्रकृति का बन्ध तीसरे चौथे गुणस्थान में होता है. वहां ६ का, ७ का ८ का और ९ का. यह ४ उदय स्थान सम्यक दृष्टि के होते हैं. जिस में ६का उदय

नेसे १० चौवीसी होवे ऐमेही ९ के उदय में ६ चौवीसी को- $९ \times ६ = ५४$  होवे. आठके के उदय ११ चौवीसी को  $८ \times ११ = ८८$  होवे. सात के उदय १० चौवीसी के  $७ \times १० = ७०$  होवे. छंके उदय ७ चौवीसी के  $६ \times ७ = ४२$  होवे पाचके उदय ४ चौवीसीके  $५ \times ४ = २०$  होवे. चारके उदय चौवीसी ४ होवे, दो के उदय एक चौवीसी के २ होवे, यों १० -  $५४ - ८८ - ७० - ४२ - २० - ४ - २ = २१०$  मव मितके चौवीसी हउ. इनको २४से गुना कर ने मे  $२१० \times २४ = ५०४०$  इतने भागे होते हैं. इस में एकौडय के ११ भागे मिलनेमें  $५०४०$  इतने पद बृन्द मोम्के होतें हैं! इतने विकल्पों का समारा नीच मूर्छित होतह हैं!

स्थान तो धायिक सम्यक् दृष्टि के और धयोपगम सम्यक् दृष्टि के होता है. और धायिक सम्यक्त्वी के २१ का मत्ता स्थान होता है.— और उपगम सम्यक्त्वी के प्रथम ग्रन्थिभेद करते ओपगम सम्यक्त्वी प्राप्त होते तथा उपगम श्रेणिमें जिनोंने अनन्तान वन्धि का उपगम किया हो उनके २८ का मत्ता स्थान होता है. और जिनोंने अनन्तान वन्धि की विभंयोजना कर श्रेणिका आरंभ किया हो उनके २४ प्रकृति का मत्ता स्थान होता है. यों दो मत्ता स्थान उपगम सम्यक्त्वी के पाते हैं. यह १७ के वन्धि के और ८ के उदय के सब मिल-२८ का २४ का. और २१ का. यह तीनों मत्ता स्थान हुवे. । मिश्र दृष्टिके-७ का ८ का. और १ का. यह तीन उदय २८ का. २७ का. और २४ का. यह तीन मत्ता स्थान होते हैं. इनमें जो २८ की मत्ता वाला मिश्र गुणस्थान में प्रवृत्ते उनके २८ की मत्ता होती है. और जिनने भिगान्य होते सम्यक्त्व की उद्दीरण की हो और भिषपणा उद्दीरण कर किया नहीं होतें वो सम्यक्त्व उदरे मिथमान्त्र भे निवृत्त फिर परिणामों कर मिश्रमें आत उनके २४ की मत्ता होती है । चौथे गुणस्थान में १७ के वन्धि में-मत्ता में-उदय में-२८ का-२४ का. २३ का. २२ का और २१ का. यह ७ मत्ता सम्यक्त्वी पाते हैं. इनमें भे-२८ का. तो उपगमिक और वेदक सम्यक्त्वदृष्टि के होता है और अनन्तान वन्धि की विभंयोजना किये बाद २४ का मत्ता स्थान भी इनदोनों केही पाते हैं । भिगान्य के भाग में-२३ का मत्ता स्थान । भिग्यात्त और मिश्र दोनों के भाग में २२ का मत्ता स्था

— होमगम पणा ओपगम निज सम्यक्त्व का कान हवे होत है. इस एक गुणस्थान सम्यक्त्व भिग्यात्त के उदय में-२७ सम्यक्त्व होती, ७ मिश्र होती, १ और १ मत्ता होती या तीन भुज विभे इसविधे होते । और ओपगम के मत्ता स्थान के होते हैं : २४ का मत्ता स्थान है ।

\* उपगम दृष्टि होत है : १ होत है ओपगम दृष्टि होत है । इसविधे सम्यक्त्व होती :  
 \* यह २४ की मत्ता का मत्ता है : १ होत है ओपगम दृष्टि होत है । इसविधे सम्यक्त्व होती :  
 \* उपगम दृष्टि होत है : १ होत है ओपगम दृष्टि होत है । इसविधे सम्यक्त्व होती :  
 \* उपगम दृष्टि होत है : १ होत है ओपगम दृष्टि होत है । इसविधे सम्यक्त्व होती :



न ( यह दोनों वेदक सम्यक दृष्टिके होते हैं. x ) और २१ की सत्ता तो क्षापिक सम्यक्त्वी के होती है. ॥ ८ के उदय में मिश्र गुणस्थानी की सत्ता के उदय की तरह-२८ का, २७ का, और २४ का. यह तीन सत्ता स्थानक होते हैं. और अविरति सम्यक दृष्टिके जो-७ के उदय में पांच सत्ता स्थानक हैं. वैसीही तरह ५ सत्ता स्थानक आठके उदय में भी कहना. ॥ तेसीही ९ का उदय भी अविरति वेदक सम्यक दृष्टिके होता है-तो क्षयोपशम समाप्ति केलिये-२१ और २७ इन दोनों सत्ता स्थानक बिना बाकी का २८ का २४ का २३ का और २२ का यहचार सत्ता स्थानक होते हैं, तो पहिले की तरह कहना. और १३ के वन्ध में तथा ९ के वन्ध में अलग २-२८ का, २७ का, २४ का, २३ का, २२ का, और २१ का, यह पांच २ सत्ता के स्थानक होते हैं. इसमें से-१३ का. वन्ध देश विरति के होते उनके दोषदः—(१) तिर्यगाश्रय और २ मनुष्याश्रय. इसमें तिर्यचके-५ का, ६ का, ७ का, और ८ का, इन पांच उदय स्थानों में-२८ का, और २४ का, यह दो सत्ता स्थानक होते हैं-यों ५ के, ६ के, और ७ के, उदय में ओषणमिक सम्यक दृष्टिके २८ की सत्ता होती है-उन कोऊक ग्रन्थी भेद कर सम्यक्तर युक्त देश विरति पाता आदरे निमकी अपेक्षा में होता और क्षयोपशमिक सम्यक दृष्टि तिर्यच के-६ का ७ का और २८ का, यह तीनों उदय २४ की सत्ता में होता है-तो अन्तानुबन्ध चारों की विन्योजना. पहिले पाँचो गति में करी है उन अपेक्षा में, और दूसरे-२३ का, २२ का और २१ का यह ३ सत्ता स्थानक देश विरतिनिर्यच के ली होते हैं—और है

x ध्यान-अन्तर्गत क्षापिक और क्षिप्यत्व तथा मिश्र भौत इन ६ प्रकृति को क्षय कर सम्यक्त्व मोर्तनार आता उसके अन्तिम समय-ग्राम में दृढता जोंद पूर्व गन्धायु जीव बढ़ती आयु २५ पर जाने गति में की किन्ती एक गति में जाये उमाय्ये २० की सत्ता की गति में पार्य है.

— क्रमिक-२२ और २३ यह दोनों सत्ता स्थान क्षापिक सम्यक्त्व उपलब्ध होना एक पार्य और निर्यचके क्षापिक सम्यक्त्वकी प्राप्ति होती नहीं. किन्तु क्षापिक सम्यक्त्वकी प्राप्ति में निर्यच के क्षापिक होने निर्यच होने तो भी अन्तर्गत आयु का (युग्म) में उपलब्ध, उस के देश विरति पाता होना नहीं है. तब अन्तर्गत वर्ष का आयु का क्षापिक क्षापिक

शिविरति मत्पुत्र के २ के उदय में २१ का, २४ का, और २८ का यह तीन सत्ता स्थानक पाते हैं, तथा ८ के ओर ९ के उदय में २ सत्ता स्थानक होते हैं, और ८ के उदय में—२१ के सत्ता स्थानक बिना, बाकी के चारों सत्ता स्थान न पाते हैं, क्योंकि ८ का उदय सम्यक्त्व मोहनीय के साथ होता है, वहाँ २१ का, सत्ता स्थान न होता है, बाकी के ४ होते हैं, सो भी वेदक सम्यक् दृष्टि मत्पुत्र के देश विरति गुणस्थान के नार के उदय में—२८ का, २४ का, और २१ का, यह ३ सत्ता स्थान न पाते हैं, और ८ के उदय में, तथा ९ के उदय में जो देश विरति में कहे वेही २ सत्ता स्थान होते हैं, और ९ के उदय २१ की सत्ता बिना बाकी के ४ सत्ता स्थानक होते हैं सो भी पहिले की तरह नहीं कहना, ॥ ७ के दन्ध में और ८ के दन्ध में अन्ध १० के २ सत्ता स्थानक होते हैं, उनके के—२८ और २४ का यह दो सत्ता स्थानक तो उपरान्त श्रेणि में उपनिमित्त सम्यक् दृष्टि के होते हैं, यहाँ जिसमें तब वे गुणस्थान के मत्पुत्र पद में अन्तर्गत वन्धन चौक की विनियोजन की उनके २४ का सत्ता स्थान, और २१ का सत्ता स्थान तो—सायिक सम्यक्त्व की उपरान्त श्रेणि में तथा उपरान्त श्रेणि में जहाँ तक—अग्रन्याख्यानी चौक और प्रत्याख्यानी चौक इन ८ कपाय का अन्ध नहीं होते वहाँ तक २१ का सत्ता स्थान होता है, और ८ कपाय कपाय का उनी दन्ध में—१३ का सत्ता स्थान रहता है, उनके में तपुंसकवेद कपाय वाद १२ की सत्ता रहे, तबिद कपाय वाद ११ की सत्ता रहे, पुरुष वेदका दन्ध करने हांन्यादि ९ महात्ति का अन्ध नहीं होता है, इन्धिये वहाँ पांचादि का सत्ता स्थान नहीं होता है, ॥ ४ के दन्ध में—२८ का, २४ का, और २१ का, यह तीन सत्ता स्थान तो उपरान्त श्रेणि में पहिले की तरह ही जानना, बाकि के—२ सत्ता स्थान उपरान्त श्रेणि में होते हैं, सो कहते हैं—कोई जी तपुंसक वेदोदयेन प्रवर्तना उपरान्त श्रेणि प्रारंभ करी जो जी और तपुंसक वेदो वेदो की साथही खपावे, उन दत्त ही पुरुष वेदके दन्ध का विच्छेद होवे, फिर पुरुष वेद और ८ हांन्यादि यत् ७ महात्ति साथही खपावे, और जितने ही वेदो दन्धे श्रेणि प्रारंभ करी—जो पहिले तपुंस

क सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती है, इन्धिये देश विरति विच्छेद के—१३ के दन्ध में—२१ का सत्तास्थान नहीं होता है,

क वेदका क्षयकरे, फिर अन्तर मूर्त वाद खीवेद का क्षयकरे, उसके साथही पुरुष वेदका बन्ध वीच्छेद होवे, और पुरुष वेदका बन्ध छेदकिये बाद, पुरुषवेद और ६ हांस्यदि इनका साथही क्षय करे, यह जहां लग क्षय नहोवे वहां तक इन दोनों स्थान में—चार के बन्ध में वेदोदय रहित एकोदय वर्तते को ११ प्रकृति का सत्ता स्थान होता है और पुरुष वेद ६ हांस्यादि इनका साथही क्षय हुवे बाद चार प्रकृतिका सत्ता स्थान होवे. यों ५ सत्ता खीवेद में और नपुंसक वेदमें श्रेणि प्रारंभे उनके होवे. और जो पुरुषवेद में खपक श्रेणि प्रारंभे—उनके हांसादि ६ के क्षयके साथ पुरुष वेद का बन्ध टले—इसलिये उनके चतुर्विध बन्ध वक्त ११ का सत्ता स्थान होवे. पुरुषवेद बिना हांस्यादि ६ वर्जे उसवक्त ९का सत्ता स्थान होवे, वो दो समय कम दो आंश्लिका तक रहे. फिर पुरुष वेद का क्षय हुवे बाद चार का सत्ता स्थान रहे. वो भी अन्तर मूर्त रहे. इसलिये इनके भी ११ का सत्ता स्थान छोड़ बाकी के ५ सत्ता स्थान होवे, यों ४ के बन्ध में ६ सत्ता स्थान पाते है ॥ बाकी रहै ३ का, २का, और १ का इन तीनों बन्ध स्थानों में अलग २ पांच २ सत्ता स्थान होते हैं. वहां—३ के बन्ध में २८ का २४ का २१, ४ का, और ३ का यह ५ सत्ता स्थानक पावे. इसमें के पहिले तीन सत्ता स्थान तो उपशम श्रेणि में होते हैं. बाकी के—४ का और ३ का यह दो सत्ता स्थान क्षपक श्रेणि में होते हैं:—मंजुल के क्रोध की अन्तः कर्ण प्रथम स्थिति—एक आंश्लिका मात्र बाकी रहे. उसका बन्ध उदय और उदीरणा एक ही वक्त विच्छेद होय उस वक्त मानादि तीनों का बन्ध होवे. उसवक्त मंजुल के क्रोधका प्रथम स्थिति नव आंश्लिका मात्र और दो समय कम दो आंश्लिका बन्ध सत्ता छोड़कर और सब क्षय हुवा और उन क्रोधकी सत्ता भी दो समय कम दो आंश्लिका काट में क्षयगामी वो जहां लग न जावे तहां लग त्रिविध बन्ध चार प्रकृतिके सत्ता में होवे. और उस मंजुल के क्रोधका क्षय हुवे बाद तीन प्रकृति का सत्ता स्थान होवे. वो अन्तर मूर्त लग जाणना. । त्रिविध बन्ध में २८ का, २४ का २१ का और १ का. यों पांच सत्ता स्थान होते हैं. इसमें के तीन तो पहिले की तरह उपशम श्रेणि में कहना और दो क्षपक श्रेणि में कहना सो पूर्णता क्रोधकी नगदी मान को भी आवादेका मात्र प्रथम स्थिति मत को तर मंजुल के मान की भी बन्ध उदय उदीरणा का मायवी स्थिति न होवे. तर त्रिविध बन्ध होवे. वहां दो समय कम दो आंश्लिका तक मंजुल का सत्ता रहै तब तीन प्रकृति का सत्ता स्थानक जाणना. और फिर मान के क्षय में प्र-

न्तर मूर्धन पर्यंत दो प्रकृति का सत्ता स्थान जानना । और एक के बंध स्थान में, भी पांच सत्ता स्थान जानना । उसमें से तीन तो पहिले की ही तरह उपशम श्रेणि में कहना । और क्षपक श्रेणि में कहने । सो कहते हैं:—जिसवक्त संज्वल के माया की प्रथम स्थिति आवलिका मात्र रहे उस वक्त संज्वल की माया का बन्ध उदय और उदीरणा का साथही विच्छेद होवे । तब—एक का बंध स्थान रहता है, और दो समय कम दो आवलिका तक माया की सत्ता रहती है । इसलिये दो की सत्ता होवे । उसके बाद अन्तर मूर्धन पर्यंत एक लोभ की सत्ता होवे यह व्याक्तव्य सब नववे गुणस्थान वर्तनी की जानना ॥ अब बंध का विच्छेद होने से सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान में—२८ का, २४ का, २१ का, और १ का, यह ४ सत्ता स्थान होते हैं, उसमें से तीन तो पहिले की तरही उपशम श्रेणिके कहना । और एक संज्वल के लोभ की सत्ता का स्थान क्षपक श्रेणि में पाता है और बंध तथा उदय के अभाव से उपशान्त मोह नामक ११ वे गुणस्थान में—२८ का, २४ का, और २१ का, यह तीन सत्ता के स्थानक होवे । यह भी पहिले की तरही कहेंना यो उपशम श्रेणि और क्षपक श्रेणि का सम्बन्धन जानना ॥ यह सब १० बंध के, ९ उदय के, १५ सत्ता के स्थान इनके अलग २ भाँड़े और बंधोदय सत्ताका सम्बन्ध युक्त प्रकृति स्थान मोहकर्मकेकेहे ।

### आयुष्य कर्म के भाँड़े

आयुष्य कर्म का सामान्य प्रकार में एकही बंध स्थान होता है, क्योंकि चारो गतिके आयु का बंध विरोधी है—इसलिये एकही वक्त में दो आयु का बंध तथा उदय होता नहीं है और सत्ता स्थान तो कभी एक का और कभी दो का भी पाजाता है:—जैसे जहाँ लग आगे के भवका आयुका बन्ध पडा न होवे वहाँ तक एकही आयु वर्तता है । उसकी सत्ता जानना । और परभव के आयुके बन्ध के कालमें तथा बान्धे बादमें वहांतकदो आयुकीसत्तातीतीहै आयुका संबध:-आयुकी तीन अवस्था होतीहै १.परभव का आयु बन्ध के पहले की अवस्था अवस्था, २.परभव का आयु बान्धे उत्सवक्त की नदन्ध अवस्था, और ३ आयु बन्ध किये बाद की परा अवस्था इन तीन अवस्था के अनुसार में भाँड़ा करते हैं —नरक गति आश्रिय ९ भाँड़े:— १. नरकायुका उदय और नरकायुकी सत्ता, यह प्रथम भाँड़ा परभव के आयु बन्ध पहिले बन्ध के अभाव से प्रथम के चार गुणस्थान में पाता है, २ जो वर्तमान में तो

क वेदका क्षयकरे, फिर अन्तर मूहूर्त बाद खीवेद का क्षयकरे, उसके साथही पुरुष वेदका वन्ध विच्छेद होवे, और पुरुष वेदका वन्ध छेदकिये बाद, पुरुषवेद और ६ हांस्यदि इनका साथही क्षय करे, यह जहां लग क्षय नहोवे वहां तक इन दोनों स्थान में—चार के वन्ध में वेदोदय रहित एकोदय वर्तते को ११ प्रकृति का सत्ता स्थान होता है और पुरुष वेद ६ हांस्यादि इनका साथही क्षय हुवे बाद चार प्रकृतिका सत्ता स्थान होवे. यो ५ सत्ता खीवेद में और नपुंसक वेदमें श्रेणि प्रारंभे उनके होवे. और जो पुरुषवेद में स्वपक श्रेणि प्रारंभे—उनके हांनादि ६ के क्षयके साथ पुरुष वेद का वन्ध टले—इसलिये उनके चतुर्विध वन्ध वक्त ११ का सत्ता स्थान होवे. पुरुषवेद बिना हांस्यादि ६ वर्जें उसवक्त ५ का सत्ता स्थान होवे, वो दो समय कम दो आंवलिका तक रहे, फिर पुरुष वेद का क्षय हुवे बाद चार का सत्ता स्थान रहे. वो भी अन्तर मूहूर्त रहे. इसलिये इनके भी ११ का सत्ता स्थान छोड़ बाकी के ५ सत्ता स्थान होवे, यो ४ के वन्ध में ६ सत्ता स्थान पाते हैं ॥ बाकी रहै ३ का, २ का, और १ का इन तीनों वन्ध स्थानों में अलग २ पांच २ सत्ता स्थान होते हैं. वहां—३ के वन्ध में २८ का २४ का २१, ४ का, और ३ का यह ५ सत्ता स्थानक पावे. इसमें के पहिले तीन सत्ता स्थान तो उपशम श्रेणि में होते हैं. बाकी के—४ का और ३ का यह दो सत्ता स्थान क्षपक श्रेणि में होते हैं;—संज्वल के क्रोध की अन्तः करण प्रथम स्थिति—एक आंवलिका मात्र बाकी रहे. उसका वन्ध उदय और उदीरणा एक ही वक्त विच्छेद होवे उस वक्त मानादि तीनों का वन्ध होवे. उसवक्त संज्वल के क्रोधका प्रथम स्थिति गत आंवलिका मात्र और दो समय कम दो आंवलिका वन्ध सत्ता छोड़कर और सब क्षय हुवा और उस क्रोधकी सत्ता भी दो समय कम दो आंवलिक काल में क्षयशोगी वो जहां लम न जावे तहां लग द्विविधि वन्ध चार प्रकृतिकें सत्ता में होवे. और उस संज्वल के क्रोधका क्षय हुवे बाद तीन प्रकृति का सत्ता स्थान होवे. सो अन्तर मूहूर्त लग जाणना. । द्विविधि वन्ध में २८ का, २४ का २१ का और २ का, यह पांच सत्ता स्थान होते हैं. इसमें के तीन तो पहिले की तरह उपशम श्रेणि में कहना और दो क्षपक श्रेणि में कहना सो पूर्णत्ता क्रोधकी तरह ही मान को भी आंवलिका मात्र प्रथम स्थिति गत करे तब संज्वल के मान की भी वन्ध उदय उदीरणा का साथही विच्छेद होवे. तब द्विविधि वन्ध होवे. वहां दो समय कम दो आंवलिका तक संज्वल की सत्ता रहै तब तीन प्रकृति का सत्ता स्थानक जाणना. और फिर मान के क्षय से अ-

१७६+२-११५२ हुवे. इने आदेय अनादेय से दुगुने करने से-११५२+२-३०४ हुवे. इने यश और अयशः से दुगुने करने से-४६०८ भाङ्गे हुवे. यह भाङ्गे सन्नि पचेन्द्रिय तिर्यच गति प्रायोग्य-२९ प्रकृतिके वन्ध स्थान में होते हैं। इसमें विशेष-से, स्वादन आश्रिये वन्धते हुंडक संस्थान और छेवटे संघयण को वन्ध नहीं गिन्ते, फक्त पांचही से २५ होते हैं. जिनको ऊपरोक्त रीति से फलाने से ( ७ वक्त दुगुने करने से ) सब ३२०० भाङ्गे होते हैं, परन्तु यह भाङ्गे ४६०८ के अन्दर के होने से अलग नहीं गिन्ते. । और २९ प्रकृति मे नद्योत नाम मिलाने से ३० प्रकृति के वन्धस्थान के भाङ्गे भी ४६०८ होते हैं सो २९ के वन्ध की तरहही करना. यों पचेन्द्रिय के तीनों स्थान के मिलकर ९२१७ भाङ्गे होते हैं. ॥ मनुष्य गति प्रायोग्य वन्ध करते- २५ का. २९का और ३०का यह वन्ध स्थान होते हैं-जिनके भाङ्गे कहने हैं:-२५ का वन्ध स्थान अपर्याप्ता मनुष्य प्रायोग्य वान्धे. वहां भाङ्गा एकही होता है. तिर्यच के २५ के वन्ध स्थान की तरह कहना. विशेष इतनाही की तिर्यच के स्थान मनुष्य का नाम लेना. । २९ प्रकृति का वन्ध स्थान सो प्रथम के चारों गुणस्थानों में होता है. इनमें मिथ्यात्वी और भे स्वादनी तो चारों गतिके जीवो वन्धते हैं. और मिश्र तथा अविरति सम्यक दृष्टि सो देवता तथा नरकके जीवो वन्धते हैं. इसमें भी जैसे-पचेन्द्रिय तिर्यच प्रायोग्य २९ प्रकृति के वन्ध स्थान में-४६०८ भाङ्गे कहे तैसी कहना. परन्तु इतना विशेष कि-भेस्वादनी के ३२०० भाङ्गे कहना. और मिश्र दृष्टि तथा सम्यक दृष्टि-नारकी और देवता के-९ नाम कर्म की पुत्र प्रकृति १० मनुष्य गति ११ मनुष्यानु पूर्वी. १२ पचेन्द्रिय की जाति. १४ आदार्गिक द्विक. १५ वज्र-रूपभ नारच संघयण. १६ समचतुरस्र संस्थान. १७ परादात १८ उन्माद. १९ शुभ विहाय गति २० धन. २१ वादर. २२ पर्याप्ता. २३ प्रत्येक. २४ म्रिग अम्रिग में का-एक. २५ शुभा शुभ में का-एक. २६ सुभग. २७ सुखर. २८ आदेय. और ६९ यगः अपयगः से एक. इन २९ प्रकृति के वन्ध में-भाङ्गे ८ उपजते हैं. क्योंकि-यहां प्रथम संघयण और प्रथम संघनन बिना बाकी के पांच पांच नहीं हैं. और कुस्वगति. दौभाग्य. दुःस्वग. अनादेय का भी वन्ध नहीं है. इनलिये इन्हे विजल्प भाङ्गे उपजते नहीं हैं. और बाकी की-शुभ अशुभ के नाथ पञ्च. म्रिग अम्रिग के नाथ दो दो. और यग अपयग के नाथ चार चार आठ आठ भाङ्गे पञ्च गुणस्थान में होते हैं. सोभी पाहिले कहे ४६०८ भाङ्गोंके ही हैं. पूर्वोक्त २९ प्रकृति में नार्यज

द्वे आस्थिर के यों ४ हुवे. यह ४ यशः के और ४ अयश के गिनने से ८ भाङ्गे हो-  
 ते हैं । और इन २९ प्रकृति में—उद्योत नाम मिलोन से—३० प्रकृति का वन्ध स्था-  
 न भी पर्याप्ता वेन्द्रिय प्रायोग्य मिथ्यात्वी के होता हैं. यहां भी ऊपरोक्त रीति से ८  
 भाङ्गे निपजते हैं. । यों सब मिल वेन्द्रिय प्रायोग्य तीन भङ्ग स्थान के—१७ भाङ्गे हो-  
 ते हैं ॥ ऐतेही तेन्द्रिय प्रायोग्य मे भी यही ३ वन्ध स्थान और १७ भाङ्गे कहना, वि-  
 शेष मे—वेन्द्रिय के स्थान तेन्द्रिय जाति कहना ॥ और ऐमेही चौरिन्द्रिय प्रायोग्य भी  
 तीन वन्ध स्थान के १७ भाङ्गे कहना. विशेष—तेन्द्रिय के स्थान चौरिन्द्रिय कहना. ॥  
 यों विहेन्द्रिय के ५१ भाङ्गे हुवे. ॥ पचेन्द्रिय प्रायोग्य वन्ध करते—२५ का, २९ का  
 और ३० का, यह ३ वन्ध स्थान होते हैं. इसमें से—२५ का वन्धतो अपर्याप्ता पचे-  
 न्द्रिय तिर्यच प्रायोग्य मिथ्यात्वी—तिर्यच और मतुष्य के वन्धता है. इन २५ प्रकृति  
 के नाम तो अपर्याप्ता वेन्द्रिय प्रायोग्य की तरह ही कहना. परंतु विशेषतः इतना की  
 वेन्द्रिय के स्थान पचेन्द्रिय का नाम लेना. यही एकही भाङ्गा अशुभ का पहिले की  
 तरह ही जानना. और २ तिर्यच द्विक, ३ पचेन्द्रिय जाति, ५ आदारिक द्विक ६ तै-  
 जस, ७ कर्मण, ८ छे संघयणो मे का—१ संघयण. ९ छे संस्थानों में का—१ संस्था-  
 न, १३ वर्ण चतुष्क, १४ अगुरु लघु, १५ उपघात, १६ पराघात १७ उन्वात, १८  
 दोनो मे की एक खगति. १९ वस. २० वादर २१ पर्याप्ता २२ प्रत्येक २३ स्थिर  
 अस्थिर मे का एक, २४ शुभ अशुभमें का एक, २५ सौभाग्य दुर्भाग्यमें का एक, २६  
 सुखर दुस्सर में का एक, २७ आदेय अनादेय में का एक, २८ यश अपशः में का  
 एके, और २९ निर्माण. इन २९ प्रकृति का वन्ध पर्याप्ता तिर्यच पचेन्द्रिय प्रायोग्य  
 मिथ्यात्वी और सेस्वादनी चारो गति के जीवो के होता है. जिसमें इतना विशेष कि-  
 —जो सेस्वादनी है उनके पांच २ में का कहना. क्योंकि—हुंड संस्थान तथा छेवटा सं-  
 घयण का वन्ध से स्वादनी के नहीं होता है. इसलिये इसस्थान में भाङ्गे ४६०८ उ-  
 पजते है सो अलग २ बताते हैं:—छे संघयणों में से—एक संघयण के साथ २९ प्रकृ-  
 ति का वन्ध करने से—१ भांगा होता है, ऐसे ६ संघयण के ६ भाङ्गे इन को एकेक सं-  
 स्थान से ६ गुण करने से—६×६—३६ हुवे, इन को शुभा शुभ दोनो खगति से दुगु-  
 ने करने से—३६×२—७२ हुवे- इन को स्थिरा स्थिर से दुगुने करने से—७२×२—१४४  
 हुवे. इनको शुभा शुभ से दुगुने से—१४४×२—२८८ हुवे. इनको सुस्वर दुस्वर से  
 दुगुने करने से—२८८×२—५७६ हुवे. इनको सौभाग्य दुर्भाग्य से दुगुने करने से—

१७६+२-११५२ हुवे. इने आदेय अनादेय से दुगुने करने से-११५२+२-३०४ हुवे. इने यश और अयश; से दुगुने करने से-४६०८ भाङ्गे हुवे. यह भाङ्गे सन्नि पचेन्द्रिय तिर्यच गति प्रायोग्य-२९ प्रकृतिके बन्ध स्थान में होते हैं। इसमें दिशेय-से, स्वादन आश्रिये बन्धते हुंडक संस्थान और छेवटे संघयण को बन्ध नहीं गिनते. फक्त पांचही मे २५ होते हैं. जिनको ऊपरोक्त रीति से फलाने से ( ७ वक्त दुगुने करने से ) सब ३२०० भाङ्गे होते हैं, परन्तु यह भाङ्गे ४६०८ के अन्दर के होने से अल मे नहीं गिने. । और २९ प्रकृति मे नद्योत नाम मिलाने से ३० प्रकृति के बन्धस्थान के भाङ्गे भी ४६०८ होते हैं तो २९ के बन्ध की तरहही करना. यों पचेन्द्रिय के तीनों स्थान के मिलकर ९२१७ भाङ्गे होते हैं. ॥ मनुष्य गति प्रायोग्य बन्ध करते- २५ का. २९ का और ३० का यह बन्ध स्थान होते हैं-जिनके भाङ्गे कहते हैं:-२५ क बन्ध स्थान अपर्याप्ता मनुष्य प्रायोग्य बान्धे. वहां भाङ्गा एकही होता है. तिर्यच के २५ के बन्ध स्थान की तरह कहना. विशेष इतनाही की तिर्यच के स्थान मनुष्य का नाम लेना । २९ प्रकृति का बन्ध स्थान सो प्रथम के चारों गुणस्थानों मे होता है. इसमे मिथ्यात्वी और मे स्वादनी तो चारो गतिके जीवो बन्ध तेह. और मिश्र तथा अविराति मम्यक दृष्टि सो देवता तथा नरकके जीवों बन्धते हैं. इसमें भी जैम-पचेन्द्रिय तिर्यच प्रायोग्य २९ प्रकृति के बन्ध स्थान मे-४६०८ भाङ्गे कहे तैनेही करना. परन्तु इतना विशेष कि-मे स्वादनी के ३२०० भाङ्गे कहना. और मिश्र दृष्टि तथा मम्यक दृष्टि-नारकी और देवता के-९ नाम कर्म की ध्रुव प्रकृति १० मनुष्य गति ११ मनुष्यानु पृथ्वी. १२ पचेन्द्रिय की जाति. १४ औदारिक द्रिक. १५ वज्र-रूपम नारच संघयण. १६ समचतुरस्र संस्थान. १७ पराद्यान १८ उन्माग. १९ शुभ विहाय गति २० क्षम. २१ वादर. २२ पर्याप्ता. २३ प्रत्येक. २४ म्पिग अम्पिग में का-एक. २५ शुभा शुभ में का-एक. २६ सुभग. २७ सुस्वर. २८ आदेय. और २९ यगः अपयगः में एक. इन २९ प्रकृति के बन्ध में-भाङ्गे ८ उपजते हैं. क्योंकि यहां प्रथम संघयण और प्रथम संघयन विना बाकी के पांच पांच नहीं हैं. और नृ खगति. दौभाग्य. दुःस्वग. अनादेय का भी बन्ध नहीं है. इनलिये इनके निश्चय भाङ्गे उपजते नहीं हैं. और बाकी की-शुभ अशुभ के नाप एक्के. म्पिग अम्पि के ना थ दो दो. और यग अपयग के नाप चार चार आठ आठ भाङ्गे एक्के गुणस्थान में होते हैं. सोनी पालि कहे ४६०८ भाङ्गोंके ही हैं. एवोल २६ प्रकृति में निश्चय



नाम मिलाने से ३० प्रकृतिका वन्ध मनुष्य प्रायोग्य देवता तथा नारकी के सम्यक् दृष्टि जीवों के होता है। यहां भी भांगे ८ होने हैं। क्योंकि तीर्थंकर नाम का वन्ध पहिलेके तीनों गुणस्थानों में नहीं होता है। इनलिये ३० के वन्ध में ज्यादा भांगे नहीं होते हैं। यों मनुष्य गति प्रायोग्य तीनों वन्ध के मिलकर ४८१.७ सब भांगे हुं॥ देवगति प्रायोग्य -२८ का, २९ का, ३० का और ३१ का यह ४ वन्ध स्थान होते हैं। सो पचेन्द्रिय तिर्यच तथा मनुष्य वान्वते हैं। इस में: —२ देवादिक, ३ पचेन्द्रिय जाति, ४ वैक्रियद्विक, १४ नव प्रकृति ध्रुव वन्धकी, १५ समचतुरस्र संस्थान, १६ शुभ स्वगति, २० वस चतूष्क, २१ पराघात, २२ उश्वास, २३ स्थिर अथवा आस्थिर, २४ शुभ अथवा अशुभ २५ सुभग, २६ सुस्वर, २७ आदेय, २८ यशः कीर्ति अथवा अयशःकीर्ति, इन २८ प्रकृति का वन्ध स्थान निष्पात्यसे लगाकर देश विरति गुणस्थान तक मनुष्य तिर्यच के होता है। इसके आगे छोटे गुणस्थान में फक्त मनुष्यकेही होता है। यहां स्थिर और अस्थिर, शुभ और अशुभ, यशः और अयश इनके परावर्त से- ८ भांगे होते हैं। और अप्रमत्त तथा अपूर्व करण गुणस्थान में वंघ होता है, स्थिर शुभ और यशः काही वन्ध होता है इसलिये भाङ्गा एकही पाता है वोभी आठ के अन्दरकाही है। इसलिये अलग नहीं गिना। उपरोक्त २८ में जिन नाम मिलानेसे-२९ का वन्ध देव प्रायोग्य चौथे पांचवे और छोटे गुणस्थान में होता है, वहांभी-स्थिर अस्थिर, शुभ अशुभ, यशः और अयशः से परावर्त करते ८ भाङ्गे होते हैं। और इन २९ का वन्ध फक्त स्थिरादिक शुभ प्रकृति लीत अप्रमत्त और अपूर्व करण गुणस्थान में होता है, यहां भी एकही भाङ्गा होता है सो इसके अन्तर भूत जानना। उपरोक्त २८ में-आहारक द्विक मिलाने से ३० प्रकृति का वन्ध देव गति प्रायोग्य अप्रमत्त और अपूर्व करण गुणस्थानी कहते हैं। यहां भी स्थिर शुभ और का ही वन्ध करते हैं। इसलिये-एकही भाङ्गा पाता है। इन ३० में जिन नाम मिलाने से-३१ प्रकृति का वन्ध-देवगति प्रायोग्य अप्रमत्त और अपूर्व करण गुणस्थानी वान्वते हैं। यहां भी शुभ प्रकृतियोंका ही वन्ध होनेके सुबब से भाङ्गा एकही पाता है। सब मिल देवगति प्रायोग्य चारो वन्ध स्थानोंके-१८ भांगे हुं॥ नरकगति प्रायोग्य वान्वते वाले जीवोंके एकही-२८ प्रकृति का वन्ध स्थान होता है—नरक द्विक, ३ पचेन्द्रिय जाति, ५ वैक्रिय द्विक, ६ हुंड संस्थान, ७ पराघात, ८ उश्वास ९ अशुभ विहायोगति, १० वन, ११ वादर, १२ पर्याप्ता, १३ प्रत्येक, १४ अस्थिर,

१५ अशुभ, १६ दौर्भाग्य, १७ दुस्वर, १८ अयश कीर्ति, १९ अनादेय, और २० नव प्रकृति का ध्रुव वन्ध की। इन २० प्रकृति का वन्ध पचेन्द्रिय तिर्यच तथा मनुष्य भिन्न्यात्त्र गुणस्थान वाञ्छेके होता है। यशं नव परावर्तने की अशुभ प्रकृतियोंका ही बंध होनेसे विकल्प न होते एकही भांगा पाता है, ॥ देवगति प्रायोग्य बंध विच्छेद होनेसे भी-अपूर्व करण के मातृत्रे भाग भे लगाकर सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान के अंत पर्यन्त-एक यशः कीर्ति नामका बंध मनुष्य करता है, वहांभी एकही भांगा लेना, ॥ अब बंध स्थानके भांगे की संख्या कहते हैं:—अपर्याप्ता एकेन्द्रिय प्रायोग्य २३ प्रकृति के वन्ध के ४ भांगे, २५ प्रकृति वन्ध के २० भांगे; वेन्द्रिय प्रायोग्य १, तेन्द्रि-प्रायोग्य १, चौरिन्द्रिय प्रायोग्य १, पचेन्द्रिय तिर्यच प्रायोग्य १, मनुष्य प्रायोग्य १, यो २५ के बंध में २५ भांगे एकेन्द्रिय प्रायोग्य २६ के बंध में १६ भांगे; देव प्रायोग्य २८ के बंध के ८ भांगे; नरक प्रायोग्य २८ के बंध का १ भांगा, यों २८ के बंध के १ भांगे; वेन्द्रिय प्रायोग्य ८, तेन्द्रिय प्रायोग्य ८, चौरिन्द्रिय प्रायोग्य ८, पचेन्द्रिय प्रायोग्य ४६०८, मनुष्य प्रायोग्य ४६०८ और देव प्रायोग्य ८, यों सब मिल २९ के बंध के १२४८ भांगे, वेन्द्रिय प्रायोग्य ८, तेन्द्रिय प्रायोग्य ८, चौरिन्द्रिय प्रायोग्य ८ पचेन्द्रिय प्रायोग्य ४६२८, मनुष्य प्रायोग्य ८, और देव प्रायोग्य १, यों सब मिल ३० के बंध के ४७४१ भांगे होते हैं। और ३१ का बंध स्थान में देव प्रायोग्य १, यो नाम कर्म के आठोंही बंध स्थानोंके सब मिलाकर १३२४५ भांगे होते हैं।

नाम कर्म के १२ उदय स्थान:—२० का, २१ का २४, का, २५ का, २६ का, २७ का, २८ का, २९ का, ३० का, ३१ का, १ का और ८ का इन १२ ही उदय स्थानोंको अलग २ बताते हैं; इसमें से-एकेन्द्रिय के-२१ का, २४ का, २५ का, २६ का और २७ का, यों ५ उदय स्थान होते हैं सो कहते हैं:—१ तैजस, २ कर्म ण, अगुरुलघु, ४ स्थिर, ५ अस्थिर, ६ शुभ, ७ अशुभ, ८ वर्ण, ९ गंध, १० रस, ११ स्पर्श, और १२ निर्माण। (इन १२ प्रकृति का ध्रुवादय होता है, क्योंकि यह १२ प्रकृति १३ वे गुणस्थान पर्यन्त उदय आश्रित्य सब जीवों के होती है। इसलिये इनको सर्व स्थान लेनी।) १३ तिर्यचादिक, १४ स्थावर, १५ एकेन्द्रिय जाति, १६ वादर अथवा सूक्ष्म, १७ पर्याप्ता, अथवा अपर्याप्ता, १८ दौर्भाग्य, १९ अनादेय, और २० यशः अथवा अयशः, इन २० प्रकृति का उदय एकेन्द्रिय जीवोंके भवके

अन्तराल में वर्तते = पाता है. यहां भांजे ५ उपजते हैं:- १. सूक्ष्म पर्याप्ता के साथ २१. उदय, सूक्ष्म पर्याप्ता के साथ २१. उदय, सूक्ष्म अपर्याप्ताके साथ २१. उदय, ३ वादर अपर्याप्ताके साथ २१. का उदय. अपर्याप्ता. यह तीन भांजे तो फक्त अयशः के साथ होते हैं, क्योंकि-यहां यशःका उदय नहीं है. और ४ वादर पर्याप्ता के साथ यशः सहित-२१. का उदय, तथा अयशः साथ २१ उदय. । फिर उस शरीरस्थ के उपरोक्त २१ प्रकृति के उदय में-१. औदारिक शरीर, २ हुंड सस्थान, ३ उपघात, ४ प्रत्येक अथवा साधारण, इन चारों प्रकृति को मिलाना, और १. तिर्यचानुपूर्वी कभी करना तब २४ प्रकृति का उदय रहता है. और प्रथमोक्त ५ भांग को प्रत्येक और साधारण के साथ दुगुणे करने से-१० भांजे होते हैं, इस में एक भांगा वैक्रिय-का मिलाना - क्योंकि-वादर प्रत्येक पर्याप्ता और यशः कीर्ति के साथ एकही भांजा होता है. × यों २४ प्रकृति के उदय में सब ११ भांजे हुवे । फिर उस शरीर पर्याप्ताके-२४ के उदय मे पराघात मिलाने से २५ का उदय होता है. सो शरीर पर्याप्ता पूरी किये वाद पाता है. इसे वादर पर्याप्ता के साथ और प्रत्येक तथा साधारण के साथ गिनने से दो भांजे होते हैं. इने यशः और अयशः से दुगुने करते ४ भांजे होते है. इने वादर के स्थान सूक्ष्म के साथ प्रत्येक साधारण मे विकल्प करने से, ६ भांजे होते हैं, + । और वादर वायु काया के वैक्रिय करती वक्त शरीर पर्याप्ति

= पूर्व भवका शरीर छोडे वाद जहा तक दुसरा शरीर धारण नहीं करे उसे भवका अन्तराल कहते हैं.

\* जिस के जितन पर्याय है उतनी सब पूरी करेगा उसे लब्धि पर्याप्ता कहा जाता है.

- क्योंकि वादर वायुकाय वैक्रिय शरीर करती है वहा भी २४ का उदय होता है, परन्तु इतना विशेष की औदारिक के स्थान वैक्रिय शरीर कहना.

× क्योंकि- तेजकाय और वायुकाय के साधारण तथा यशः कीर्ति का उदय नहीं है. इसलिये १. भागा.

+ यह दोनों भांजे फक्त अयशः कीर्तिमेंही मिलते है; परन्तु यश कीर्ति में न मिलने से भांगा न गिनना.

पूरी हुवे बाद पराघात का उदय मिलाने से भी २५ का उदय होता है वहां भी प्रथमोक्त रीति से—१ भाङ्गा पावे. यों सब २५ के उदय में ७ भाङ्गे होते हैं। श्वाशो श्वास पर्याप्ति पूरी किये बाद २५ के उदय में श्वासो श्वास का उदय मिलाने से २६ का उदय स्थान होता है. यहां भी पहिले की तरह ६ भाङ्गा पाते हैं. अथवा शरीर पर्याप्ति पर्याप्ता के श्वाशो श्वास के अनुदय से + वादर और उद्योत सहित २६ के उदय भे-प्रत्येक के साथ एक भाङ्गा साधारण के साथ दूसरा भाङ्गा, यह दोनों यशः और अयशः से दुगुने करने ४ हुवे. । और उद्योत के साथ आताप का उदय मिला ने से भी २६ का उदय स्थान होता है. वहां प्रत्येक के यशः और अयशः से दोभां गे × । और वादर वायु काम को वैक्रिय करते श्वाशो श्वासः पर्याप्ती कर पर्याप्ता हुं वे-२५ प्रकृति में उश्वास का उदय मिलाने से २६ का उदय होता है. यहां भी भाङ्गा १ ही होता है. क्योंकि वायु काय के आताप उद्योत और यशः कीर्ति का उदय नहीं है. यों २६ के उदय में सब १३ भाङ्गे हुवे. । श्वासो श्वास पर्याप्ति कर पर्याप्ता श्वाशो श्वास सहित २६ के उदय में आताप तथा उद्योत इन दोनों में का एक मिलाने से-२७ का उदय होता है. यहां पुरोक्त रिति से २६ भाङ्गे पाते हैं. । यों ए-केन्द्रिय के उदय स्थान में—२१ उदय ९, २४ के उदय ११ २५ के उदय ७, २६ के उदय १३, और २७ के उदय ६ यों ५ उदय के मिल ४२ भाङ्गे होते हैं. ॥ वेन्द्रिय में—२१ का, २६ का, २८ का, २९ का, का, ३० का, और ३२ का यह ६ उदय स्थान हैं. इसके भाङ्गे कहते हैंः—इसमें—२ तिर्यच द्विक, ३ वेन्द्रिय जाति, ४ त्रस, ५ वादर, ६ पर्याप्ता, ७ दौर्भाग्य, ८ अनोदय, ९ यशः कीर्ति अथवा अयशः कीर्ति, यह ९ और इसमें ध्रुवोदय की २२ प्रकृति मिलाने से २२ प्रकृतिका उदयवि

+ क्योंकि-आताप पृथ्वी कामसे ही होता है. इसलिये २ प्रत्येक ही लिया है, और उद्योत पृथ्वी तथा वनस्पति दोनों में होता है. इसलिये यहां प्रत्येक और साधारण दोनों लिये. और आतापका तथा उद्योतका उदय वादर के ही होता है. परंतु सूक्ष्म के नहीं इस लिये यहां सूक्ष्म का उदय नहीं लिया.

= जहातक श्वासो श्वास पर्याप्ति पूरी न करे वहां तक-उश्वास के उदय बिना उद्योतका उदय नहीं होता है.

अन्तराल में वर्तते = पाता है. यहां भांजे ५ उपजते हैं:- १. सूक्ष्म पर्याप्ता के साथ २१ उदय, सूक्ष्म पर्याप्ता के साथ २१ उदय, सूक्ष्म अपर्याप्ताके साथ २१ उदय, ३ वादर अपर्याप्ताके साथ २१ का उदय. अपर्याप्ता. यह तीन भांजे तो फक्त अयशः के साथ होते हैं, क्योंकि-यहां यशःका उदय नहीं है. और ४ वादर पर्याप्ता के साथ यशः सहित-२१ का उदय, तथा अयशः साथ २१ उदय. । फिर उस शरीरस्थ के ऊपरोक्त २१ प्रकृति के उदय में-१. औदारिक शरीर, २ हुंड संस्थान, ३ उपधात, ४ प्रत्येक अथवा साधारण, इन चारों प्रकृति को मिलाना, और १. तिर्यचानुपूर्वी कभी करना तब २४ प्रकृति का उदय रहता है. और प्रथमोक्त ५ भांग को प्रत्येक और साधारण के साथ दुगुणे करने से-१० भांजे होते हैं, इस में एक भांगा वैक्रिय-का मिलाना - क्योंकि-वादर प्रत्येक पर्याप्ता और यशः कीर्ति के साथ एकही भांजा होता है. × यो २४ प्रकृति के उदय में सब ११ भांजे हुवे । फिर उस शरीर पर्याप्ताके-२४ के उदय में पराधात मिलाने से २५ का उदय होता है. सो शरीर पर्याप्ता पूरी किये बाद पाता है. इसे वादर पर्याप्ता के साथ और प्रत्येक तथा साधारण के साथ गिनने में दो भांजे होते हैं. इने यशः और अयशः से दुगुणे करते ४ भांजे होते हैं. इने वादर के स्थान सूक्ष्म के साथ प्रत्येक साधारण में विकल्प करने में, ६ भांजे होते हैं, + । और वादर वायु काया के वैक्रिय करती वक्त शरीर पर्याप्ता

= पूर्व भयका शरीर छोड़ बाद जहा तक दुसरा शरीर धारण नहीं करे उसे भयका अन्तगाल कहते हैं.

\* जिन-के जितन पर्याय है उतनी सब पूरा करेगा उसे लब्धि पर्याप्ता कहा जाता है.

- क्योंकि वादर वायुकाय वैक्रिय शरीर करती हैं वहा भी २४ का उदय होता है, परन्तु इतना विशेष की औदारिक के स्थान वैक्रिय शरीर कहना.

× क्योंकि- नेत्रकाय और वायुकाय के साधारण तथा यशः कीर्ति का उदय नहीं है, इसलिए १ भांजा.

+ वह दोनो जगह एक अयशः कीर्तिवर्ती मिलते है, परन्तु यशः कीर्ति में न मिलने से जगह न बनता.

पूरी हुवे वाद पराघात का उदय मिलाने से भी २५ का उदय होता है वहां भी प्रथमोक्त रीति से-१ भाङ्गा पावे. यों सब २५ के उदय में ७ भाङ्गे होते हैं। श्वासो श्वास पर्याप्ति पूरी किये वाद २५ के उदय में श्वासो श्वास का उदय मिलाने से २६ का उदय स्थान होता है. यहां भी पहिले की तरह ६ भाङ्गा पाते हैं. अथवा शरीर पर्याप्ति पर्याप्ता के श्वासो श्वास के अनुदय से + वादर और उद्योत सहित २६ के उदय प्रत्येक के साथ एक भाङ्गा साधारण के साथ दूसरा भाङ्गा, यह दोनों यशः और अयशः से दुगुने करने ४ हुवे. । और उद्योत के साथ आताप का उदय मिला ने से भी २६ का उदय स्थान होता है. वहां प्रत्येक के यशः और अयश से दोभां गे  $\times$  । और वादर वायु काम को वैक्रिय करते श्वासो श्वासः पर्याप्ति कर पर्याप्ता हुं वे-२५ प्रकृति में उश्वास का उदय मिलाने से २६ का उदय होता है. यहां भी भाङ्गा १ ही होता है. क्योंकि वायु काय के आताप उद्योत और यशः कीर्ति का उदय नहीं है. यो २६ के उदय में सब १३ भाङ्गे हुवे. । श्वासो श्वास पर्याप्ति कर पर्याप्ता श्वासो श्वास सहित २६ के उदय में आताप तथा उद्योत इन दोनों में का एक मिलाने से-२७ का उदय होता है. यहां पुरोक्त रित से २६ भाङ्गे पाते हैं. । यों ए-केन्द्रिय के उदय स्थान में-२१ उदय ९, २४ के उदय ११. २५ के उदय ७, २६ के उदय १३. और २७ के उदय ६ यों ५ उदय के मिल ४२ भाङ्गे होते हैं. ॥ वेन्द्रिय में-२१ का, २६ का, २८ का, २९ का, का, ३० का, और ३२ का यह ६ उदय स्थान हैं. इसके भाङ्गे कहते हैं:-इसमें-२ तिर्यच द्विक, ३ वेन्द्रिय जाति, ४ त्रस, ५ वादर, ६ पर्याप्ता, ७ दौर्भाग्य, ८ अनोदय, ९ यशः कीर्ति अथवा अयशः कीर्ति, यह ९ और इसमें ध्रुवोदय की २२ प्रकृति मिलाने से २२ प्रकृतिका उदयवि

+ क्योंकि-आताप पृथ्वी कामसे ही होता है. इसलिये २ प्रत्येक ही लिया है, और उद्योत पृथ्वी तथा वनस्पति दोनों में होता है. इसलिये यहां प्रत्येक और साधारण दोनों लिये. और आतापका तथा उद्योतका उदय वादर के ही होता है. परतू सूक्ष्म के नहीं इस लिये यहां सूक्ष्म का उदय नहीं लिया.

= जहातक श्वासो श्वास पर्या पूरी न करे वहा तक-उश्वास के उदय बिना उद्योतका उदय नहीं होता है.

ग्रह गति में प्रवृत्तते भवके अन्तराल गति में—वेन्द्रिय जीवों के होता है. यहां अपर्याप्ता के साथ अयशः कीर्ती मिलाने से भागा—२ होता है. और पर्याप्ता के साथ अयः तथा यशः दोनों अलग २ मिलाने से भागे दो होते हैं. यों सब ३ भांगे होते हैं. फिर उस वेन्द्रिय को स्वस्थान में अवतरे वाद, ऊपरोक्त २२ के उदय में से तिर्यचा नु पूर्वी निकालने से और—२ औदारिक द्विक, ३ हुंड संस्थान, ४ छेवटा संघयण, ५ उपघात और ६ प्रत्येक, यह ६ प्रकृति मिलाने से २६ का उदय स्थान होता है, यहां भी ऊपरोक्त राति से भाङ्गे ३ ही होते हैं. फिर पर्याप्ता पूरी हुवे. वाद—२ पराघात, और २ कूखगति यह २ प्रकृति मिलाने से—२८ प्रकृतिका उदय स्थान होता है. यहां यशः और अपयशः कर भाङ्गे दो होते हैं. = फिर श्वाशो श्वास पर्याप्ता पूरी हुवे वाद, श्वाशो श्वास अधिक होने से २९ के उदये भी ऊपरोक्त २ भांगे होते हैं. अथवा शरीर पर्याप्ति पर्याप्ति को उस—२८ के उदय में श्वास के उदय विना उद्योत का उदय मिलाने से—२९ का उदय स्थान होवे, यहां भी भांगे २ होते हैं. यो २९ के उदय के सब ४ भांगे होते हैं. इन २९ के उदय में—सुस्वर दुस्वरमें का—एक मिलाने से ३० का उदय स्थान होवे, इसके यशः अपयशः से भाङ्गे दो, और सुस्वर दुस्वर से भांगे ४ होते हैं. और श्वाशोश्वास करके पर्याप्ताने जहांतक भाषा पर्याप्त पूरी नकरी होवे वहांतक—दोनों श्वरके उदय विना उद्योतका उदय मिलानेसे भी ३० का उदय स्थान होता है. यहां यशः और अयशः कर दो भांगे होते हैं. यों सब मिल ३० के स्थान के ६ भांगे होते हैं. और स्वर सहित ३० के उदय में—उद्योत का उदय मिलाने से—३१ उदय स्थान भाषा पर्याप्ता कर पर्याप्त जीव के होता है, यहां यशः, अयशः सूस्वर और दुःस्वर कर ४ भांगे होते हैं. यों २१ उदय के ३, २६ के उदय, ३, २८ के उदय के २, २९ के उदय के ४, ३० के उदय के ६ और ३१ के उदय के ४, सब मिल वेन्द्रीय के उदय के २२ भांगे होते हैं. ऐसे ही तेन्द्रिय के उदयके २२, ऐसेही चौरिन्द्रिय के उदय के २२, यों तीनों त्रिकेन्द्रिय के मिलकर सब ६६ भांगे होते हैं. सामान्य से तिर्यच पचेन्द्रिय के—६ उदय स्थान होते हैं. II:—२१ का, २६ का, २८ का, २९ का, ३० का और ३१ का. II इस में—२

क्योंकि—अशुभ विहाय गति (कु खगति) में अपर्याप्ता नामका उदय नहीं होता, इसलिये पहिले कहे तीनों भागों में से यह १ भागा कम हुवा. बाकी के—दो भागों पाते हैं.

तिर्यच द्विक, ३ पचेन्द्रिय जाति, ४ व्रत, ५ वादर, ६ पर्याप्ता. ७ सौभाग्य तथा दौर्भाग्य, ८ आदेय तथा अनादेय, ९ यशः तथा अयशः १. यह ९ और १२ ध्रुवोदय की मिल २१ का उदय स्थान-तिर्यच पचेन्द्रियके पहिले का शरीर छोड़े बाद रस्तेमें विग्रह गाति करता होवे तब पावे. यहां जो पर्याप्ता नाम के उदय वर्तता होवे तो-सुभग दुभग के उदय में भागे दो, आदेय अनादेय के विकल्प से भागे चार, और यशः अयशः सभाग ८ होते हैं. और जो अपर्याप्ता नाम के उदय वर्ततो-सुभग आदेय. और यशः के आभाव से अन्य भाङ्गा न उपजते एकही भाङ्गा होता है. यों ९ भाङ्गे हुवे. ÷ वोही पचेन्द्रिय तिर्यच शरीरस्थ अवतरे बाद-२१ के उदय में से तिर्यचानु पूर्व्वी का उदय निकाले और-२ औदारिक द्विक. ३ छे संघयण, मे का १ संघयण, ४ छे संस्थान में का एक संस्थान ५ उपघात और ६ प्रत्येक. इन ६ का उदय मिलाने मे-२६ का उदय स्थान होता है. इमे पर्याप्ता के साथ ६ संघयण से गिने से ६ भाङ्गे होवे. इने ६ संस्थान से ६ गुने करने मे  $६ \times ६ = ३६$  भाङ्गे होवे. इने सौभाग्य दौर्भाग्य से दुगुने करने से- $३६ \times २ = ७२$  भाङ्गे होवे. इने आदेय अनादेय सेदो गुने करने से- $७२ \times २ = १४४$  होवे. इने यशः अयशः मे दुगुने करने मे- $१४४ + २ = २८८$  भाङ्गे होते हैं. । और अपर्याप्ता के-हुंडक संस्थान, छेवडा संघयण, दौर्भाग्य, अनादेय और अयशः इनही का उदय होने से एकही भाङ्गा होता है = यों २८९ भाङ्गे हुवे. । वो पर्याप्ता हुवे बाद-१ पराघात. २ दोनों में की एक खगति. इन दोनों को मिलाने मे २८ का उदय होवे. इनके पहिले कहे २८८ भाङ्गे को शुभा शुभ विरायो गति से दुगुने करने मे- $२७२$  भाङ्गे होते हैं - । और उपरोक्त २८ में

- यहाँ जोह आचार्य कहते हैंकि-सुभग का और आदेय का एकही वक्त उदय होता है, तेने ही दुभग का और अनादेय का भी-उदय एकही वक्त होता है. इन्तिये इन दोनों के साथ दो भागे इने यशः और अयशः से दुगुने करनेमे ४ भागे तो पर्याप्तके साथ होता हैं. और १ अपर्याप्ता का भागा, में ५ हुवे. यों सुभग दुभग आदेय, अनादेय से अगे भी मतान्तर से परज होता है सो हउडे से निचारना.

÷ अपर्याप्ताके शुभम प्रकृति का ही उदय होता है, परन्तु सुभग उदय न होने से एकही भागा गिना है.

× यहाँ अपर्याप्ता न होने से उपरका एक भागा गिना नही है.



आशोश्वास पर्याप्ति से पर्याप्ता के—उच्चाज नाम का उदय वदने में—२१ का उदय होता है, यहां भी प्रथमोक्त गीति में भाङ्गे ५७३ होते हैं। अग्रा-शरीर पर्याप्ति में पर्याप्ता के आशोश्वास बिन एक उद्योत का उदय पाठिले की तरह २८ में मिलाने में २९ का उदय स्थान होता है। यहां भी प्रथमोक्त गीति में भाङ्गे ५१३ होते हैं। यों २९ के उदय में सब भाङ्गे ११५२ होते हैं। फिर भाषा पर्याप्ति पर्याप्ता हो। वाद-२९ में सुस्वर या दुस्वर में में एक प्रकृति मिलाने में—३० प्रकृति का उदय स्थान होता है। यहां पाठिले कहे हुए आशोश्वास के—१७३ भाङ्ग को सुस्वर दुस्वर में दुगुने करने से—१७३—२—११५२ भाङ्गे होते हैं। अग्रा-आशो आश पर्याप्ति में पर्याप्ता के स्वर के उदय बिन उद्योत का उदय प्रथमोक्त २९ प्रकृति में मिलाने में भी ३० प्रकृति का उदय होते हैं। यहां भी प्रथमोक्त गीति में भाङ्गे ५७३ होते हैं। यों सब मिलकर ३० प्रकृति के उदय स्थान के १७२८ भाङ्गे होते हैं। और श्वर मति ३० के उदय में उद्योत का उदय मिलाने से—३१ का उदय स्थान होता है। यहां पाठिले स्वर मति ३० उदय में—११५२ भाङ्गे कहेये उतनेही जानना। यों त्रियंच पंचेन्द्रिय के ६ उदय स्थान के सब मिलकर ४१०६ भाङ्गे होते हैं। और त्रियंच पंचेन्द्रिय के वैक्रिय करते—२५ का, २७ का, २८ का, २९ का, और ३० का यह पांच उदय स्थान पाते हैं। इसमें—२ वैक्रिय द्विक, ३ समचतुरस्र संस्थान, ४ उपघात ५ त्रियंच गति, ९ वसत चतुष्क, १० पंचेन्द्रिय जाति, ११ सौभाग्य अथवा दौर्भाग्य १२ आदेय अथवा अनादेय १३ यशः कीर्ति अथवा अयशः कीर्ति, इन १३ प्रकृति में ध्रुवोदय की १२ प्रकृति मिलाने से—२५ प्रकृति को उदय होता है। जिनके—सौभाग्य दौर्भाग्य से २ भाङ्गे, इने आदेय अनादेय से दुगुने किये ८ भाङ्गे होते हैं, और इनको यशः अयशः से दुगुने किये ४ भाङ्गे और इसको आदेय अनादेय से दुगुने किये ८ भाङ्गे होते हैं। = । फिर वैक्रिय शरीर की पर्याप्ति पूरी हुवे वाद १ पराघात २ शुभ विहायो गति यह दोनों मिलने से—२७ का उदय होता है यहां भी भाङ्गे ८ जानना। फिर वैक्रिय शरीर की आशोश्वास पर्याप्ति पूरी हुवे वाद उच्चाज का उद-

= यहां वैक्रिय शरीर होनेके सब्र से सघयण तो होता नहीं है। और संस्थान फक्त ५ समचतुरस्र पाता है। इसलिये इनके भागे न होनेसे विशेष भागे नहीं पाते हैं।

य मिलाने से २८ का उदय होता है. यहां भी वोही ८ भाङ्गे जानना. अथाव शरीर पर्याप्ति के के उश्वास के अनुदय में उद्योत का उदय मिलाने से भी २८ का उदय होवे वहां भी येही ८ भाङ्गे जानना. यों २८ के उदय के सब मिल १६ भाङ्गे योते हैं. । वैक्रिय शरीरी के भाषा पर्याप्ति पर्याप्ता के मुस्वर के उदय को पू वोंक्त ऊश्वास सहित २८ प्रकृति में मिलाने से २९ का उदय होता है वहां भी भाङ्गे ८ होते हैं. यों २९ के उदय के भी सब १६ भाङ्गे होते हैं. । और मुस्वर सहित २९ के उदय में उद्योत का उदय मिलाने से ३० का उदय होता है. यहां भी भाङ्गे ८ होते हैं. यों सब मिल तिर्यच पचेन्द्रिय के ४९६२ भाङ्गे होते हैं. और एकेन्द्रिय या दि सब तिर्यच के भाङ्गे मिलाने से—५०७० भाङ्गे होते हैं. ॥ अब मनुष्य के मामा न्या पने २२ का, २६ का, २८ का, २९ का, और ३० का यह ५ उदय स्थान होते हैं. इन पांचोंही उदय स्थान के भाङ्गे तिर्यच पचेन्द्रिय की तरह ही कहना, परन्तु इतना विशेष तिर्यच गति और तिर्यचानु पूर्वी के स्थान मनुष्य गति और मनुष्यानु पूर्वी कहना. तथा २९ प्रकृति का उदय उद्योत सहित कहा है सो नहीं कहना. ३ सालिये २९ के उदय के ५७६ भाङ्गे होते हैं. और ३० के उदय के भी—११५२ भाङ्गे होते हैं. परन्तु ज्यादा नहीं होते हैं क्योंकि—वैक्रिय और आहारक शरीर करती वक्त फक्त साधु केही उद्योत का उदय होता है. इसलिये मनुष्य के सब २६०२ भाङ्गे ही होते हैं. । और मनुष्य के वैक्रिय करती वक्त—२५ का २७ का, २८ का २९ का, और ३० का यह ५ उदय स्थान पाते हैं. इनमें—१ मनुष्य गति, २ उपधान नाम ३ पचेन्द्रिय जाति, ५ वैक्रियवृत्ति, ६ नवचक्षुरक्त संस्थान १० वम चतुष्क, ११ सौभाग्य, अथवा दौर्भाग्य, १२ आदेय अथाव अनदेय, १३ यगः अथवा अयगः और १२ प्रकृति ध्रुवोदय की यों २९ का उदय होता है. यह भी तिर्यच में कहे माफिक ८ भाङ्गे पाते हैं । फिर वैक्रिय शरीर पर्याप्ता के पगयान और शुभ खगति के उदय २७ का उदय होता है. यहां भी ८ भाङ्गे जानना किन आगो आग पर्याप्ति पृरी किये बाद-२७ के उदय में उश्वास का उदय मिलाने से २८ के उदय में भी ८ भाङ्गे जानना. अथवा साधु के वैक्रिय करती वक्त गति पर्याप्ति पृरी किये बाद आगो आग के उदय बिना उद्योत का उदय मिलाने से २८ का उदय होता है. यहां पूरही भाङ्गा होता है. यों २८ के उदय में सब ५ भाङ्गे होते हैं. । और मुस्वर सहित २९-

= क्योंकि साधु के वैक्रिय, अनदेय, और आग आगो आग उदय में भी ८ भाङ्गे होते हैं.

के उदय में उद्योत का उदय मिलाने से ३० का उदय स्थान होता है. यहां भी प हिले के तरह साधु के एकही भाङ्गा जाणना. यों सब वैक्रिय के पांचों स्थानको के २५ भाङ्गे होते हैं. । और संयति के आहारक शरीर करती वक्त-वैक्रिय मनुष्य के कहे वोही ५ उदय स्थान पाते हैं. परन्तु इतना विशेष वैक्रिय द्विक, के स्थान आहारक द्विक कहना, और सब प्रसस्त प्रकृति ही लेना इपलिये २५ के उदय में एक ही भाङ्गा जाणना. । फिर शरीर पर्याप्ता पर्याप्ता के-परायात और शुभ खगति मिलाने से २७ का उदय होता है. यहां भी एकही भाङ्गे होता हैं फिर प्राणापान (श्व शोश्वाश ) पर्याप्ता के श्वाशोश्वाश का उदय मिलाने से-२८ के उदय में भी एक ही भाङ्गा होता हैं. अथवा शरीर पर्याप्ति पर्याप्ता के-उश्वात का अनुदय और उद्योत का उदय मिलाने से भी २८ प्रकृति का उदय होता है. यहां भी एकही भाङ्गा यों २८ के उदय के दो भाङ्गे होते हैं. । फिर भाषा पर्याप्ति पर्याप्ता के उश्वाश सहित २८ के उदय में सूस्वर का उदय मिलाने से २९ का उदय स्थान होता है. यहां भी एक भाङ्गे अथवा श्वाशोश्वाश पर्याप्ति के सुस्वर के अनुदय और उद्योत के उदय में भी २९ का उदय स्थान होता है. यहां भी एक भाङ्गा यों २९ के उदय में २ भाङ्गे । फिर भाषा पर्याप्ति पर्याप्ता के सुस्वर सहित २९ के उदय में उद्योत का उदय मिलाने से ३० का उदय होता है. यहां भी एक भाङ्गा । यों आहारक शरीर के पांचों उदय स्थान के ७ भाङ्गे होते हैं. । अब केवल ज्ञानी मनुष्य के-२० का, २१ का, २६ का, २७ का, २८ का, २९ का, ३० का, ३१ का, ९ का और ८ का, यह १० उदय स्थान होते हैं. इसमें-१ मनुष्य गति, २ पचेन्द्रिय जाति, ३ व्रत, ४ वादर ५ पर्याप्ता ६ सुभग, ७ आदेय, ८ यशः कीर्ति और १२ ध्रुवोदय की प्रकृति मिलाने से २० का उदय होता है. सो केवल समुत्थात करती वक्त बीच के ३ समय पर्यन्त कार्मण जोग वर्तते के होता है. यहां भाङ्गा १ ही होता है. और तीर्थकर केवल ज्ञानी के तीर्थकर नाम युक्त-२१ का उदय होता है, यहां भी भाङ्गा एक होता है. । और ऊपरोक्त २० में-२ औदारिक द्विक, ३ छे संस्थान में का एक संस्थान, ४ प्रथम-संघयण, ५ उपघात, और २ प्रत्येक, यह २ प्रकृति मिलाने से २२ का सामान्य केवली के समुद्र घात करते, दूसरे, छट्टे और सातवे इन ३ समय में और मिश्र जोग वर्तते होता है. यहां ६ संस्थान से २ भाङ्गे होते हैं, परन्तु सामान्य मनुष्य आश्रिय होने से गिनती में नहीं लिये. । ऊपरोक्त २६ में-तीर्थ कर नाम

भिलाने २७ का उदय तीर्थकर के समुदघात होती वक्त दूसरे तीसरे और सातवें समय में होता है. यहां भांगा १ ही । ऊपरोक्त २२ में—१ पराघात, २ उन्वास, ३ शुभ अथवा अशुभ स्वतागि ४ सुस्व अथवा दूस्वर. यह ४ प्रकृति भिलाने से—३० का उदय सामान्य केवली के—औदारिक काया योग वर्तते होता है. यहां २ संस्थान से २ भांगे. इने दोनों विहाय गति से दुगुने करते १२ भांगे और इने सुस्वर दुस्वर से दुगुने करते २४ भांगे होते हैं. परन्तु सामान्य मनुष्या मिश्र होने से नहीं गिने । ऊपरोक्त ३० प्रकृति में तीर्थकर नाम भिलाने से ३१ का उदय स्थान तीर्थकर के सयोगी केवली के औदारिक काया योग वर्तते होता है. यहां समचतुरस्र संस्थान शुभ विहाय गति, और सुस्वर का उदय होने से एकही भांगा होता. । इन १३ में से औदारिक काय योगका निरुधन करे तब वचन जोगका भी निरुधन होवे जिससे स्वरका भी निरुधन होवे. इसलिये स्वरके उदय बिना ३० का उदय स्थान रहै. यहां भी एक भांगा तीर्थकर के जानना. । फिर उन्वास रुंये तब २९ का उदय रहै. यहां भी एक भांगा तीर्थकर के जानना. । और सामान्य केवली पूर्वोक्त ३० में से वचन जोग का निरुधन किये २९ का उदय रहै—यहां २ संस्थान और विहायो गति में—१२ भांगे होते हैं. परन्तु सामान्य मनुष्य के होने में गिने नहीं । इन २९ में से उन्वास का निरुधन करने में २८ का उदय रहै यहां भी २ संस्थान और २ विहायो गति से १२ भांगे होते हैं. सामान्य मनुष्य के होने में गिने नहीं । और १ मनुष्य गति २ पचेन्द्रिय जाति ३ व्रज, ४ वादर ५ पर्याप्ता, ७ सुभग, ७ आदेय, ८ यगः कीर्ति और ९ तीर्थकर नाम. इन ९ प्रकृति का उदय तीर्थकर अयोगी केवली के चरम समय वर्तते होता है. यहां भी १ भांग । इन ९ में से तीर्थकर नाम निकालने में ८ का उदय सामान्य अयोगी केवली के चरम समय होता है वहां भी १—भाया यों के वली के १० उदय स्थान के मिलके ६० भांगे होते हैं. जिनमें—२० का, २१ का, २७ का, २९ का, ३० का, ३१ का, ९ का, और ८ का. इन ८ स्थानों में नौ एकैकी भांगा पाता है. जिसमें दो स्थान सामान्य केवली के और ६ स्थान तीर्थकर हैं नौनो गिने हैं. और बाकी के ५४ भांग सामान्याश्रित होने में इन भांगों के अन्तर भूत समये जिनमें अलग नहीं गिने यो मनुष्य समस्तान्त्रि मद मिलकर २६०० भांगे होते हैं ॥ अब देवता के २२ का, २५ का, २७ का, २८ का, २९ का, और ३० का. यह ६ उदय स्थान पाते हैं इनमें—२ देवद्विज, ३ पचेन्द्रिय जाति, ४ व्रज

५ वादर, पर्याप्ता, ७ सुभग, दुर्भग में का एक, ८ आदेय अनादेय में का एक, ९ यश; अयशः में का एक और २२ ध्रुवोदय की प्रकृति मिल २२ का उदय भवके अन्तराल गति में वर्तते देवता कहेता है. यहां सुभग, आदेय अनादेय, यश; और अयश; इनके साथ गिनने से ८ भांगे होते हैं. \* । फिर वो शरीरस्थ हुवे बाद ऊपरों त्त २२ प्रकृति में—२ वैक्रिय द्विक, ३ उपघात, ४ प्रत्येक, ५ समचतुरस्त संस्थान. यह ५ प्रकृति मिला वे, और देवानु पूर्वी निकाले तब २५ प्रकृति का उदय रहै, यहां भी पाहिले की तरह ८ भांगे होते हैं. । फिर शरीर पर्याप्ति पर्याप्ता के—१ परावा-त, और प्रसस्त विहायोगति यह दो प्रकृति विशेष होनेसे—२७ का उदय स्थान होवे यहां भी. ८ भांगे \* फिर प्राणापान पर्याप्ता के उश्वास का उदय अधिक होनेसे—९८ का उदय स्थान होता है. यहां भी ८ भांगे, अथवा शरीर पर्याप्ताके उश्वास के अनुदय और उद्योत के उदय में भी ९८ का उदय होता है. यहां भी ८ भांगे, यों २८ के उदय में सब १६ भांगे होते हैं. ॥ फिर भाषा पर्याप्ति पर्याप्ताके सुस्वर का उदय अधिक होनेसे - २९ का उदय स्थान होता है. यहां भी ८ भांगे होते हैं! - अथवा श्वाशोश्वास पर्याप्ति से पर्याप्ताके सुस्वर के अनुदय और उद्योत के उदय में २९ का उदय होता है. यहां भी ८ भांगे, — ॥ यों २९ के उदय के सब १९ भांगे हुवे. फिर भाषा पर्याप्ति पर्याप्ता के सुस्वर सहित २९ के उदय में उद्योत का उदय मिलने से ३० का उदय होता है. यहां भी ८ भांगे, यों देवता के ६ उदय स्थान के सब मिल ६४ भांगे होते हैं. ॥ अब नारकीके २१ का, २५ का, २७ का, २८ और २९ का, यों ५ उदय स्थान होते हैं. । इस में—२ नर्क द्विक, २ पचेन्द्रिय जा-ति, ४ वन, ५ वादर ६ पर्याप्ता, ७ दुर्भग, ८ अनादेय, ९ अयशः कीर्ति और १२ ध्रुवोदय की प्रकृति. यों २१ प्रकृति का उदय-विग्रह गति में वर्तते नर्क के जीवोंके होते हैं, यह भांगा एक ही होता है = ॥ फिर १८ में ८ वैक्रिय द्विक, हुंडक

× दौर्भाग्य अनादेय, और अयशः का उदय पीगाच्छाद हीन जानके दबोंके होता है.

\* देवताके अशुभ विहायो गति का उदय नहीं होने से भागे बड़े नहीं.

+ क्योंकि—देवता दुस्वर का उदय नहीं होता है.

— उन्न वैक्रिय करने देवता के उद्योत का उदय होता है. = नर्कके जीवोंके प्रायःमान प्रकृति मेंका अशुभ प्रवृत्तिवादी उदय होनेसे विकल्प उठता नहीं है जिसमें भागा बढ़ता नहीं है

संस्थान. ३ उपघात ५ प्रत्येक, इन ५ प्रकृति का उदय मिलाने से और पूर्वी का उदय कम करनेसे २५ का उदय स्थान नर्क में उत्पन्न हुवे बाद शरीरस्थ के पात है. यहां भी भांग एकही होता है. फिर शरीर पर्याप्ति पर्याप्ता के पराघात और अशुभ खगाति इन दोनों का उदय बढ़ने से २७ का उदय होता है. यहां भी भांगा एकही। फिर प्राणा पाना पर्याप्ति पर्याप्ता के स्वाशो स्वाश का उदय बढ़ने से २८ का उदय होता यहां भी भांगे १। फिर भाषा पर्याप्ति पर्याप्ता के दुस्वर का उदय बढ़नेसे—२९ का उदय होता है, जिसका भांगा एकही होता है. यों नर्क के ५ स्थानोंके ५ भांगे होते हैं. और चारों गति के सर्व उदय स्थानोंके मिल सब १७९१ भांगे होते हैं तो कहते हैं.

उदय स्थानों के सब भाङ्गों की संख्या:—२० प्रकृति के उदय स्थान में—१ भांगा केवली के होता है. २१ प्रकृति की उदय स्थान में—एकेन्द्रिय के ५ विह्वेन्द्रिय के ९. पचेन्द्रिय तिर्यच के ९ मनुष्य के ९, केवली का १, देवता के ८, और नर्क का १. यों सब मिल ४२ होते हैं, २४ प्रकृतिक उदय स्थान में—एकेन्द्रिय के ११, भांगे होते हैं, २५ प्रकृति के उदय स्थान में—एकेन्द्रिय के ७ वैक्रिय तिर्यचके ८, वैक्रिय मनुष्य के ८, आहका १, देवता के ८ और नर्क का १, यों सब ३३ भांगे होते हैं. २६ प्रकृति के उदय में एकेन्द्रिय के १३, विह्वेन्द्रिय के ९, पचेन्द्रिय तिर्यच के २८९, और सहज मनुष्य के २८९, यों सब ६००० भांगे होते हैं, २७ प्रकृति के उदय में—एकेन्द्रिय के ६, वैक्रिय तिर्यच के ८, वैक्रिय मनुष्य के ८, आहारक का १. केवली का १. देवता के ८, और नर्क का १, यों ३३ होते हैं. २८ के उदय में—विह्वेन्द्रिय के ९. पचेन्द्रिय तिर्यच के ५७६, मनुष्य के ५७६, वैक्रिय तिर्यच के १६ वैक्रिय मनुष्य के ९, आहारक के २, केवली का १. देवता के १६ और नर्क का १. यों सब १२०२ भांगे होते हैं. २९ प्रकृति के उदय में विह्वेन्द्रिय के १२ पचेन्द्रिय तिर्यच के ११५२. मनुष्य के ५७६, वैक्रिय तिर्यच १६ वैक्रिय मनुष्य के ९ आहारक के २. केवलीका २ देवता के १६ और नर्क का १. यों सब १७८५ भांगे होते हैं; ३० प्रकृति के उदय में विह्वेन्द्रिय के १८ तिर्यच पचेन्द्रिय के १५२८. मनुष्य के ११५२. वैक्रिय तिर्यच के ८. वैक्रिय मनुष्य के १, आहारक का १. केवली का १. देवता के ८. यों सब २९१७ भांगे होते हैं. और ३१ का प्रकृति के उदय में—विह्वेन्द्रिय के १२, पचेन्द्रिय तिर्यच के ११५२, और केवलीका

१, यों सब ११६५ भांगे होते हैं. यों ९ ही उदय के सब मिलकर १७९१ भ होते है.

अब नाम कर्म के सत्ता स्थानक कहते हैं:-१. नाम कर्म की सर्व प्रकृति समुदाय की सत्ता होवे तब ९३ की सत्ता, २ इस में से जिन नाम की सत्ता न होवे तब ९२ की सत्ता, ३-९३ वेमें से- (१) आहारक शरीर, (२) आहारक झोपाइ, (३) आहारक बन्धन, और (४) आहारक संघातन, इन चारों की सत्ता हीं होवे तब ८९ का सत्ता स्थान, ४ इस में से- जिन नाम की सत्ता न होवे तब ८८ का सत्ता स्थान, ५ इस में से-देव द्विक, या नर्क द्विक की प्रकृति कमी करे तब ८६ की सत्ता. ६ तथ्य ८८ में से-तेज और वायु में वैक्रियाष्टक उवेलकर ८० का सत्ता वन्त हुआ पचेन्द्रिय पना पाकर देव गति योग्य बन्ध करे तो देव, द्विक और वैक्रिय चतुष्क बन्ध में ८६ का सत्ता स्थान होवे. तथा पचेन्द्रिय योग नरक प्रायो ग बान्धे तो नरक द्विक और वैक्रिय चतुष्क बन्ध में भी ८६ का सत्ता स्थान होवे. ७ फिर नरक द्विक और वैक्रिय चतुष्क का निकाल होनेसे ८० का सत्ता स्थान होवे. फिर मनुष्य द्विक उवेलनेसे ७९ का सत्ता स्थान होता है. यह सातों सत्ता स्थान भ-पक छोड़कर दुमरे जीवों के होते हैं. इस में अभव्य के तथा पहिले सम्पत्त्व प्राप्त न करी हो उन के-७८ का. ८० का, ८६ का, और ८८ का, यह चार सत्ता स्थान पाते हैं। अब भषक के-६ सत्ता स्थान कहते हैं:-१३ में से ८ नरक द्विक, ४ वि देव द्विक, ८ प्रथम की चार जाति, ९ स्यावर, १ आताप, ११ उद्योत, १२ नृक्ष और १३ मायागण इन १३ प्रकृति का भय होनेसे-७९ की सत्ता पानी है. और ९ में से-१३ खपाने से ७८ की सत्ता, और ८८ में से-१३ क्षपाने से-७७ की सत्ता. और-८ मनुष्य गति, २ पचेन्द्रिय जाति, ३ वम, ४ वाटर, ५ पर्याप्ता, ६ सुभग, ७ आदेन, ८ दशः और तीर्थकर नाम इन ९ की स्वनः और इन ९ में से-तीर्थकर नाम कमी करने से ८ की सत्ता, यह ८-९ के दोनों सत्ता स्थान अयोगी केवलसे अ-न्तिम समय में होती है यह नाम कर्म के १० सत्ता स्थान हुवे.

अब नाम कर्म के अन्य उदय और सत्ता स्थान का सम्बन्ध कहते हैं: ७३ का अन्य अर्थात् पचेन्द्रिय प्रायोग्य होता है, उसके बन्धन वाले-एकेन्द्रिय, पचेन्द्रिय, विदेव पचेन्द्रिय और मनुष्य होते हैं. इनके-७१ का, ७४ का, ७७ का, ७८ का,

२७ का, २८ का, २९ का, ३० का, और ३१ का यह ९ उदय स्थान होते हैं इसमें के हरेक उदय स्थानमें वर्तते एकेन्द्रिय प्रायोग्य-२३ प्रकृतिका बन्ध स्थान करता है, वहां २१ उदय तो विग्रह गति में वर्तते-एकेन्द्रिय विभेन्द्रिय, तिर्यच पचेन्द्रिय और मनुष्यके होता है। वहां सत्तास्थान-२२ का, ८८ का, ८६ का, ८० का, और ७८ का यह ५ स्थान सब जीवों के पाते हैं, परन्तु मनुष्य के ७८ की सत्ता नहीं होती है, क्यों कि-७८ की सत्ता मनुष्य द्विक उबेलने सेही होती हैं, इसलिये मनुष्य के चार सत्ता स्थान नहीं होते हैं। और २४ का उदय एकेन्द्रिय पर्याप्ता अपर्याप्ता दोनों के होता है, वहां भी ऊपर कहे सो ५ सत्ता स्थान होते हैं, परन्तु इतना विशेष-जो वायु का य वैक्रिय करे तो-२४ के उदय में वर्तते को ८० का, और ७८ का यह दोनों सत्ता स्थान पाते हैं, क्योंकि उसके वैक्रिय पटक और मनुष्य द्विक निश्चय से पाता है, + इसलिये ८० का और ७८ का स्थानक छोड़ कर-२२ का, ८८ का और ८६ का यह ३ सत्ता स्थान पाते हैं। और २५ के उदय में वर्तते एकेन्द्रिय वैक्रिय तिर्यच और वैक्रिय मनुष्य के होता है, तहां तेउ और अवैक्रिय वायु के जो पांच सत्ता स्थानक हैं वोही ५ सत्ता स्थानक कहना, क्योंकि-७८ की सत्ता उसीकेही है, अन्य के नहीं ×। और दूसरे पर्याप्ता के ७८ की सत्ता बिना बाकी के ४ सत्ता स्थानक वैक्रिय तिर्यच मनुष्य के बन्धते हैं, और २५ का उदय होता है। और २६ का उदय पर्याप्ता एकेन्द्रिय तथा पर्याप्ता अपर्याप्ता वेन्द्रिय तिर्यच पचेन्द्रिय और मनुष्य के होता है, वहां भी पहिले की तरह ही ५ सत्ता स्थानक, उसमें से ७८ का स्थानक तो तेउ तथा वैक्रिय वायु की अपेक्षा से लेना, और बाकी रहै ४ सत्ता स्थानक दूसरे जी

+ वैक्रिय तो साक्षात् अनुभव रहा है इसलिये उसे उबेलता नहीं है, और उसके उबेल विन नरक द्विक तथा देव द्विक नहीं होता है, समकाल ही वैक्रिय पटक उबेलता है, और वैक्रिय पटक उबले बाद मनुष्य द्विक उबेलता है, परन्तु उसके पहिले नहीं उबेलता है

× क्योंकि-दूसरे सब पर्याप्ता जीवों मनुष्यद्विक का बन्ध करते हैं, और एकेन्द्रिय के विभेन्द्रिय, तिर्यच पचेन्द्रिय जो तेउ वायु से आकर अवतरते हैं वो जहां तक मनुष्य द्विक का बन्ध नहीं करे बहातक अपर्याप्ता अवस्था में उनके ७८ की सत्ता होता है, इसलिये ५ सत्ता स्थान पाते हैं।



वों आश्रित्य २३ के बन्ध में और २६ के उदय में लेना । और २७ का उदय तेज वायु छोड़ कर पर्याप्ता वादर एकेन्द्रिय तथा वैक्रिय तिर्यच मनुष्य के होते हैं । वहां ७ ८ विना बाकी रहै ४ सत्ता स्थानक जाणना । = । और २८ का, २९ का, और ३० का यह तीनों उदय स्थान पर्याप्ता विह्वेन्द्रिय तथा तिर्यच पचेन्द्रिय और मनुष्य के होते हैं । और ३८ उदय स्थान पर्याप्ता विह्वेन्द्रिय तथा तिर्यच पचेन्द्रिय मिथ्यात्मी के होता है, यहां मनुष्य द्विक की सत्ता होती है । इसलिये एक ७८ का सत्ता स्थान छोड़ बाकी के ४ सत्ता स्थान पाते हैं, यो २३ के बन्ध के योग्य ९ उदय स्थानक के स व मिलकर ४० सत्ता स्थान होते हैं । और २९ के, २६ के बन्ध में भी योही नव नव उदय स्थान में सत्ता का सम्बन्ध ४०-४० स्थान सामान्य आदेशसे जाणना । और विशेषा देशमें पर्याप्ता एकेन्द्रिय प्रायोग्य २५ का बन्ध करने वाले देवता के-२१ का, २७ का, २७ का, २८ का, २९ का, और ३० का, इन ६ उदय स्थान में-२२ का, और ८८ का यह दो सत्ता के स्थानक अलग २ होते हैं । और पर्याप्ता विह्वेन्द्रिय तथा अपर्याप्ता तिर्यच पचेन्द्रिय और मनुष्य प्रायोग्य २९ प्रकृति का देवता के बन्ध नहीं है क्योंकि-अपर्याप्ता देवता में उपजता नहीं है । इसलिये २३ का, २७ का, और २६ बन्ध स्थान में सब ९ उदय स्थान के मिलकर १२० सत्ता स्थान मिथ्यात्मी के ही होते हैं । और २८ के बन्ध में-२१ का, २५ का, २६ का, २७ का, २८ का, २९ का, ३० का, और ३१ का यह ८ उदय स्थान होते हैं, और ९२ का, ८८ का, ८६ का, तथा ८९ का यह ४ सत्ता स्थान एकेन्द्र के उदय में होते हैं । यह ८ का बन्ध दो नष्टने होता है:- देवगति प्रायोग्य और रनर्कगति प्रायोग्य २५ में देवगति प्रायोग्य २८ के बन्ध में ८ उदय स्थान अनेक जीवों आश्रित्य होते हैं । और रनर्क गति प्रायोग्य २८ के बन्ध में-३० का और ३१ का यह दो उदय स्थान होते हैं, जिस में देवगति के प्रायोग्य २८ के बन्ध में २२ का उदय क्षायिक मम्यस्वी अथवा क्षयोन्नामिक मम्यक दृष्टि पचेन्द्रिय तिर्यच तथा मनुष्य की भवन्तगल गति में होते

= तेज और वायु के आश्रय का और उदय का उदय नहीं है, इसलिये उनके २७ का उदय स्थान भी नहीं है, और तेज वायु विना ७८ का मनुष्य दूसरे किमीमी स्थान में नहीं है इसलिये, २६ के बन्ध में और २७ के उदय में ४ सत्ता स्थान पाते हैं ।



९२ का, ८९ का, ८८ का, और ८६ का यह ४ सत्ता स्थान होते हैं; और विशेष से—पचेन्द्रिय तिर्यच मनुष्य मिथ्यात्व दृष्टि के नर्कगति प्रायोग्य २८ का बन्ध करते ३० के उदय—२२ का, ८९ का, ८८ का, और ८६ का यह चार सत्ता स्थान होते हैं। इस में २२ का और ८८ का तो प्रथमोक्त रीति से कहना। और ८९ की सत्ता सो—किसी जीवने नर्कायु बन्ध किये बाद सम्यक्त्व प्राप्त कर के तीर्थंकर नामका बन्ध किया, वो जीव नर्क जानेक सन्मुख हुवा। तब सम्यक्त्वका समन कर मिथ्यात्व में गये बाद तीर्थंकर का बन्ध है इसलिये तीर्थंकर नाम की सत्ता होवे, परन्तु तीर्थंकर की सत्ता होते भी आहारक की सत्ता मिथ्यात्वी के नहीं होती है वहां, ८९ की सत्ता पाती है। अब ८६ की सत्ता का स्वरूप कहते हैं:—कोई सर्व पर्याप्ति से पर्याप्ता ऐसा तिर्यच पचेन्द्रिय अथवा मनुष्य वो तीर्थंकर नाम, आहारक चतुष्क, वैक्रिय चतुष्क, देवद्विक, नरकद्विक, इन १३ प्रकृति बिना ८० की सत्ता में वर्तता संकृष्ट परिणाम से नरक गति प्रायोग्य २८ का बन्ध करते वैक्रिय चतुष्क और देवद्विक का अवश्य बन्ध करता है, तब ८६ का सत्ता स्थान होता है। यों २८ के बन्ध में, ३० के उदय में, ४ सत्ता स्थान होते हैं ॥ और ३१ के उदय में—२२ का, ८८ का, ८६ का यह तीन सत्ता स्थान होते हैं, यहां ८९ की सत्ता नहीं होती है +। यों २८ के बन्ध में ८ उदय स्थान के मिल चार सत्ता स्थान के संवेध से १९ भात्रे पाते हैं ॥ २९ के बन्ध में और ३० के बन्ध में अलग अलग:—२१ का २४ का, २५ का, २६ का, २७ का, २८ का, २९ का, ३० का, और ३१ का, यह ९ उदय स्थान होते हैं। और—२३ का, २२ का, ८९ का, ८८ का, ८६ का, ८० का, और ७८ का, यह ७ सत्ता स्थान होते हैं। इस में पचेन्द्रिय तिर्यच और मनुष्य प्रायोग्य २९ का बन्ध करते पर्याप्त अपर्माता ऐसे एकेन्द्रिय, द्विकेन्द्रिय तिर्यच पचेन्द्रिय मनुष्य देवता और नर्क विग्रह गति में—२१ का उदय होता है उस में—२२ का, ८८ का, ८६ का, ८० का, और ७८ का यह ५ सत्ता स्थान होते हैं। परन्तु

+ क्योंकि ३१ का उदय तिर्यच के होता है और उस तिर्यचमें तीर्थंकर नामकी सत्ता नहीं होती है, और ८९ की सत्ता तो तीर्थंकर नाम साधन ही होती है, इसलिये ८९ छोड़कर बाकी के तीनों सत्ता स्थान पाते हैं।

इतना विशेष कि—वायुकाय विना दुसरे पर्याप्ता एकेन्द्रिय, विह्लेन्द्रिय, तिर्यच पचेन्द्रिय मनुष्य देवता और नार की इन के ७८ विना वाकी के ४ सत्ता स्थान पाते हैं। (इ-सका कारण प्रथमोक्त) ऐसे ही—२४ के, २५ के और २६ के उदय में भी येही पांच २ सत्ता स्थान जानना। इसमें जो २३ के बन्ध मे उदय सत्ता सम्बन्ध के भागे कहेंसो ही यहां भी जानना, परन्तु इतना विशेष कि—यहां २५ के उदय में मिथ्या त्वी देवता और नार की के २९ का बन्ध होता है। और २७ के उदय पर्याप्ता ए-केन्द्रिय देवता, नारीकी, वैक्रिय तिर्यच मनुष्य मिथ्यात्वी की, विह्लेन्द्रिय के तिर्यच मनुष्य के प्रायोग्य २९ का बन्ध बान्धता हुवे—१२ का, ८८ का, ८६ का और ८० का यह चार सत्ता स्थान पाते हैं—। और २८ का २९ का उदय विह्लेन्द्रिय, तिर्यच पचेन्द्रिय, चतुष्य, वैक्रिय तिर्यच पचेन्द्रिय, मनुष्य देवता, और नारकी २९ का बन्ध करते होता है, यहां भी वोही चारो सत्ता स्थानक पाते हैं। और ३० का उदय-विह्लेन्द्रिय, तिर्यच पचेन्द्रिय, और मनुष्य के; तथा उद्योत के उदय में देवता के होता है। और ३१ का उदय-विह्लेन्द्रिय और तिर्यच पचेन्द्रिय के उद्योतके उ-दयमे होता है वहां मनुष्य गति प्रायोग्य २९ का बन्ध करते चार सत्ता स्थानक-एके-न्द्रिय विह्लेन्द्रिय और तिर्यच पचेन्द्रिय के होते हैं। और तिर्यच गति मनुष्य गतिके प्रायोग्य २९ का बन्ध करते नको अपने २ उदय स्थान में—यथा योग्य पने वर्तते को भी ७८ का सत्ता स्थान होता है, क्योंकि—मनुष्य द्विक होते ७८ सत्ता नहीं होती हैं इसलिए वोही चारों सत्ता स्थानक पाते हैं, और देवता नारकी पचेन्द्रिय तिर्यच तथा मनुष्य प्रायोग्य २९ का बन्ध करते अपने अपने उदय में वर्तते—१२ का, और ८८ का यह दो सत्ता स्थान होते हैं, वहां मिथ्यात्वी नरक को तिर्यच नाम कर्म होते मनु-ष्य गति प्रायोग्य २९ का बन्ध अपने २ उदय में यथा योग्य पने वर्तते को एक ८९ का सत्ता स्थान होता है, क्योंकि—मिथ्यात्वी के आहारक चतुष्क जिन नाम होते भी नहीं पाता है। विह्लेन्द्रिय और तिर्यच पचेन्द्रिय के येही चारों सत्ता स्थान कहना, जैसे २३ के बन्धमें वही हमें नरक स्थान जानना, परन्तु इतना विशेष जो मनुष्य गति प्रायोग्य २९ का बन्ध करे उसके ७८ विना चार सत्ता स्थान होते हैं। तिर्यच गति प्रायोग्य २९ के बन्ध में पांचों सत्ता स्थान पाते हैं। और देवगति प्रायोग्य २९ का, बन्ध करते अविरति सम्यक् द्रष्टि के—२१ का, २६ का, २८ का, २९ का, और ३० का, यह ५ तथा आहारक और वैक्रिय कर्मे नायु के—२७ का, २७ का, २८

का, और ३० का यह ५ उदय स्थान होते हैं। और देश विराति मनुष्य के वैक्रिय करते उद्योत का उदय नहीं होवे इसलिये ३० के उदय विना अन्य चार उदय स्थान होते हैं। वहां देवगति प्रायोग्य तीर्थकर नाम सहित २९ का बन्ध करते—२३ का और ८९ का, यह दो सत्ता पांचों उदय स्थान मों ती है। और आहारक साधु के देवगति प्रायोग्य २९ का बन्ध करते एक ९३ का, सत्ता स्थान होता है। यों सामान्य पने २९ के बन्ध में ९३ के उदय कर सब ५ भां गे होते हैं। और ३० के बन्ध स्थान में—जैसे तिर्यच गति प्रायोग्य २९ का बन्धक न्यते—एकेन्द्रिय, विक्लेन्द्रिय, तिर्यच पचेन्द्रिय, मनुष्य, देवता, और नारकी के जैसे उदय स्थानक कहै तैसे उद्योत सहित तिर्यच गति प्रायोग्य ३० के बन्ध में—एकेन्द्रि या दिक के भी उदय और सत्ता स्थान का सम्बन्ध कहना ॥ और मनुष्य गति प्रा योग्य तीर्थकर नाम सहित ३० प्रकृति का बन्ध करते देवता नारकी के जो विशेष होता है। सो कहते हैं—देवता के २१ के उदय में प्रवृत्तते—२३ का और ८९ का दो सत्ता स्थान होते हैं। और नारकी को २१ के उदय में प्रवृत्तते—मनुष्य गति प्रायोग्य ३० प्रकृति का बन्ध करते—एक ८९ प्रकृति का सत्ता स्थान होता है। परन्तु नार की के ९३ की सत्ता नहीं होती है. ÷ । और २५ का, २७ का, २८ का, और २९ का इन चारों उदय स्थानों में भी देवता के ऊपरोक्त दो दो सत्ता स्थान होते हैं। जिम नारकी के ३० का उदय स्थान होता है उस नारकी के उद्योत का उदय नहीं होता है। यों सामान्य पने ३० के बन्ध में २१ के उदय में—२४ के उदय में ५ और २५ के उदय में ७, २६ के उदय ४, २७ के उदय ६, २८ के उदय ६, २९ के उदय ६, ३० के उदय ६, और ३१ के उदय ४, यों सब मिल ३० के बन्ध के

÷ क्योंकि—तीर्थकर नाम तथा आहारक चतुष्क इन दोनों की सत्ता नारकी के भेदी नहीं होती है.

x नाम कर्म की एकही यय. कीर्ति प्रकृति का बन्ध अपूर्व करण के मानव भागमें ल्याकर दशवे गुणस्थान तक होता है। वो अति विगुह है। इसलिये आहारक और वैक्रिय करने नहीं इच्छते वनके दूसरे २५ आदिक उदय स्थान वैक्रियदिक की पर्याप्तिक योग्य नहीं होते हैं। पन् १ की ३७ प्रकृति का उदय स्थान होता है.

१ उदय के ५२ भागें होते हैं। और ३१ के बन्ध में १ उदय स्थान और १ सत्ता स्थान होता है। क्योंकि—देवगति प्रायोग्य जिन नाम तथा आहार द्विक सहित २१ का बन्ध स्थान अप्रमत्त और अपूर्व करण गुणस्थान में होता है। वहां वैक्रिय और आहारक शरीर का कारण नहीं है। इसलिये इन विना—अन्य—२५ का, २६ का इसादि अल्प प्रकृति का उदय नहीं होता है। और औदारिक शरीर की तो सब पर्याप्ता कर पर्याप्ता है। इसलिये उनके ३० काही उदय होता है। वहां एकही ९३ का सत्ता स्थान पाता है। दूसरे सत्ता स्थान नहीं है। क्योंकि—३१ का बन्धतो आहारक चतुष्क जिन नाम सहित होता है। और एक यशः कीर्तिके बन्ध में भी एक ३० प्रकृति काही उदय स्थान होता है। और वहां १३ का, १२ का, ८९ का, ८८ का, ८० का ७१ का ७६ का, और ७५ का यह ८ सत्ता स्थान होते हैं। इसमें के—१३ का, १२ का ८१ का, और ८८ का, य ४ तो उपशम श्रेणिकी अपेक्षा से होते हैं। और भपक श्रेणि में भी जहां तक—निवृत्ति वादर के प्रथम भाग में जाकर—१ स्यावर २ सूक्ष्म, ४ निर्व्यच द्विक, ६ नरक द्विक, १० जाति चतुष्क, ११ साधारण १२ आताप, और १३ उद्योत, इन १३ प्रकृतियों का भयकरे वहां तक अनेक जीवों की अपेक्षा से—८० का, ७९ का, ७८ का, और ७५ का, यह ४ स्थान तपक श्रेणि में होते हैं। इसके ऊपर वचन के अभाव से—२० का, २१ का, २६ का, का, २७ का, २८ का, २९ का, ३० का, ३१ का, ९ का, और ८ का, यह १० उदय के स्थान और ९३ का, १२ का, ८९ का, ८८ का, ८० का, ७१ का, ७६ का, ७५ का, ९ का, और ८ का, यह १० स्थान होते हैं। इसमें केवली के—आठ समय का, समुद्रघात करते बीच के—तीसरे चौथे और पांचवे समय पर्यन्त कार्माण जोग वर्तते—१ पचेन्द्रिय जाति, ४ वस द्विक, ५ सुभग, ६ आदेय, ७ यशः कीर्ति, ८ मनुष्य गति, और १२ प्रकृति ध्रुवोदय की यों १० प्रकृति का उदय होता है। वहां—सत्ता स्थान ७१ का, तथा आहारक चतुष्क विना ७५ होता है। और तीर्थंकर के समुद्रघात करते ऊपर-क्त बीचके तीनों समय में तीर्थंकर नाम सहित २७ का, उदय स्थान होता है। और वो जिन नाम युक्त होने से—८० का, और ७६ का यह दो सत्ता स्थान पाते हैं। और केवली समुद्रघात करते औदारिक मिश्र योग वर्तते—१ औदारिक द्विक, ३ वज्र, ४ वृषभ नारच संवयण, ४ छे संस्थान में का १ संस्थान, ५ उपघात, और ६ प्रत्येक यह ६ प्रकृति उपरोक्त २० में मिलाने में २६ का उदय स्थान होता है। सो—दुमरे छ

है, और सातवें समय पर्यन्त ७१ का, और ७५ का, यह दो स्थान होते हैं। और तीर्थकर को इसी स्थान में जिन नाम सहित २७ के उदय में—८० का, और ७६ का यह दो सत्ता स्थान होते हैं। ऊपरोक्त २६ में—१. पराघात, २ उश्वास, ३ दोनों में की १ खगाति, यह ४ प्रकृति मिलाने से ३० का, उदय औदारिक योग वर्तते केवली के अथवा इग्यारवें गुणस्थान में भी होता है। यहां—२३ का, २२ का, ८१ का, ८८ का ८० का, ७९ का, ७६ का और ७५ का हय ८ सत्ता स्थानों में से पहले के ४ तो उपशम श्रेणि की अपेक्षा से और पीछे के ४ क्षीण कषाय के सयोगी केवली के, और तीर्थकर के होते हैं यहां आहारक चतुष्क की सत्ता सहित तीर्थकर के ८० का, और अतीर्थकर के ७९ का आहारक चतुष्क छोड़कर तीर्थकर के ७६ का और अतीर्थकर के ७६ का यह दो सत्ता स्थान पाते हैं और ३१ के उदय ८० का और ७६ का यह दो सत्ता स्थान तीर्थकर केवली के जानना क्योंकि—सामान्य केवली के तो २१ का उदय नहीं होता है। यन ३१ में से—तीर्थकर के वचन जोग निरुधन होने से २९ का उदय होवे वहां ८० का और ७६ का यह दो सत्ता स्थान होवें। और सामान्य केवली के औदारिक योग वर्तते ३७ का उदय और ७९ का, ७५ का, यह दो सत्ता स्थान। इन ३० में से वचन जोगका निरुधन करने से सामान्य केवली के २९ का उदय होता है, वहां—७९ और ७५ का यह दो सत्ता स्थान पाते हैं। और तीर्थकर के वचन जोग का निरुधन होने से ३० प्रकृति रहै, और ३० में से भी, श्वाशोश्वास का निरुधन होने से २९ का उदय होता है। वहां—८० का और ७६ का यह दो सत्ता स्थान पाते हैं यों २९ के उदय में चार सत्ता स्थान पाते हैं। और सामान्य केवली के वचन जोगका निरुधन होने से २९ का उदय रहै, और उस में से श्वाशोश्वास का उदय कमी कर ते २८ का उदय होता है उस में—७९ और ७५ का दो सत्ता स्थान पावे, और ९ के उदय में तीर्थकर के अयोगी गुणस्थान में ८० का, ७६ का और अन्तिम समय में ९ का यह ३ सत्ता स्थान पाते हैं, और सामान्य केवली के ८ के उदय में—अयोगी केवली गुणस्थान के द्विचरम समय तक, ७९ का और ७५ का अथा अन्तिम समय ८ का यह ३ सत्ता स्थान पाते हैं ॥

यों नाम कर्म के सम्बन्ध के भाङ्गे ३० होते हैं।

## चउदह गुणस्थान पर नाम कर्म के भांणे.

१. मिथ्यात्व गुणस्थान में—२३ का. २५ का. २६ का. २८ का. २९ का. ३० यह ६ वन्ध स्थान होते हैं. सो कहते हैं:—( १ ) अपर्याप्ता एकन्द्रिय प्रायोग्य २३ का वन्ध करते—वाटर मूष्म प्रत्येक और माधारण इन ४ पदमे ४ भांड़े होते हैं. ( २ ) पर्याप्ता एकन्द्रिय प्रायोग्य २५ का वन्ध करते २० भांड़े होते हैं. ( ३ ) पर्याप्ता एकन्द्रिय प्रायोग्य २६ का वन्ध करते १६ भांड़े. ( ४ ) देवगति प्रायोग्य २६ का. वन्ध करने ८ भांड़े. नरक गति प्रायोग्य २८ का वन्ध करते १ भांड़ा यों ९ भांड़े २८ के वन्ध के होते हैं. और पर्याप्ता धेन्द्रिय तेन्द्रिय चांगिन्द्रिय प्रायोग्य २९ का वन्ध करते. अलग २ आठ २ भांड़े होते हैं. पर्याप्ता नियंच पचेन्द्रिय प्रायोग्य २० का वन्ध के ४६०८ भांड़े पर्याप्ता मनुष्य गति प्रायोग्य २९ का वन्ध करने ४६०८ भांड़े यों २९ के वन्ध के सब ९२४० भांड़े होते हैं. × । और पर्याप्ता तीनों विह्वेन्द्रिय प्रायोग्य ३० का वन्ध करते अलग २ आठ २ भांड़े. नियंच पचेन्द्रिय प्रायोग्य ३० का वन्ध करते ४६०८ भांड़े. यों ३० के वन्ध के सब ४६३२ भांड़े होते हैं. और सब ६ ही वन्ध स्थान के मिलकर—१३९२६ हुवे ॥ मिथ्यात्व गुणस्थान में—२१ का. २४ का. २५ का. २६ का. २७ का. २८ का. २९ का. ३० का और ३१ का. यों ९ उदय स्थान होते हैं. जिनके—सब  $४१ + ११ \times ३० \times ६०० + ३१ \times ११२९ + १७८१ + २९१४ \times ११७४ = ७५७३$  भांड़े होते हैं. + ॥ मिथ्यात्व गुण.

× यह तीर्थकर नाम सहित देवगति प्रायोग्य २९ प्रकृति के वन्ध के ८ भांड़े. और आहारक द्विक सति ३० के वन्ध के १ भांड़ा. तथा जिन नाम सहित मनुष्य गति प्रायोग्य ३० के वन्ध के ८ भांड़े. ये सब १७ भांड़े का समूह है. जो देवद्वय वन्ध करने और मायु द्विक सति होते हैं.

+ पहिले समस्त देव से—उदय स्थान के ११२९ भांड़े करने, इन में से—देवता के ८, आहारक के ७, उदय सति द्वेन्द्रिय मनुष्य के २९—३०—३१ का ३. इनके वन्ध का समूह भांड़ा. उदय सति द्वेन्द्रिय मनुष्य के वन्ध देवता के होते हैं. इन में देवता के उदय द्वेन्द्रिय के भांड़े आहार ७ नाम होते हैं. और आहारक मनुष्य के वन्ध के वन्ध के होते हैं वन्ध के वन्ध के होते हैं. इनमें १८ उदय के भांड़े होते हैं. ७५७३ भांड़े सब ६ वन्ध स्थान के होते हैं.



स्थान में—६ सत्ता स्थान होते हैं—जिनमें से—१२ की सत्ता तो सबजीवों के होती है. और किसी वेदक सम्यक् दृष्टि जीवने प्रथम नर्कायुका बन्ध किया हो वो आयुके अन्तमें सम्यक्त्व का वमन कर नर्क में जाता है. उसके अन्तर मुहुर्त पर्यन्त ८१ की सत्ता पाती है. फिर अन्तर मूहुर्त बाद वो सम्यक्त्व की प्राप्ति करता है. \*। ८८ का सत्ता स्थाना भी चारों गति के मिथ्यात्वी में पाता है. । ८६ का सत्ता स्थान—एकेन्द्रिय में देवगति प्रायोग्य तथा नर्कगति प्रायोग्य उबेलने से पाता है, ८० का सत्ता स्थान तो—२३ वे में से—१. तीर्थकर नाम, ५ आहारक चतुष्क, ११ वैक्रिय पृष्ठक, १३ नरक द्विक, इन १३ प्रकृत्तियों को उबेलने से—एकेन्द्रिय में पाता है. फिर एकेन्द्रिय में से निकल विक्लेन्द्रिय तथा त्रिपंच पचेन्द्रिय मनुष्य में अवतर पर्याप्त भये बाद भी अन्तर मुहुर्त तक उसमें ८० का स्थान पाता है. अन्तर मुहुर्त बीते बाद अवश्य वैक्रियादि का बन्ध होता है. और उन ८० में से—मनुष्य गति और मनुष्यानु पूर्व्वी उबेले बाद तेज वायु में ७८ की सत्ता पाती है, । और तेज वायु में से आकर विक्लेन्द्रिय होवे वहां ७८ की सत्ता अन्तर मुहुर्त पर्यन्त पाती है, वो पर्याप्त हुवे बाद अवश्य मनुष्य द्विक का, बन्ध करे तब ७८ की सत्ता नहीं पावे. । यो सामान्य प्रकारे १२ सत्ता स्थान मिथ्यात्व गुणस्थान में पाते हैं. ॥ अब इनका सम्बन्ध कहते हैं—मिथ्यात्वी के अपर्याप्ता एकेन्द्रिय प्रायोग्य २३ का बन्ध करते सब ९ उदय स्थान का भव्य होता है, परन्तु उसमें २५ के उदय में देवता के भाङ्गे ८, नर्क का भाङ्ग १, यो ९, और २७ उदय देवता के ८, नर्कका १, और २८ के उदय देवता के १९ नर्क का, १ इतनेही २९ के उदय में ३० के उदय देवता के ८, यो सब ६० भाङ्गे २३ के बन्ध में नहीं पाते हैं, क्योंकि—नर्क तो एकेन्द्रिय में जातेही नहीं है. अपर्याप्ता देवाता भी और एकेन्द्रिय में जाते नहीं है, इसलिये इनके ६० भाङ्गे छोड़कर बाकी के ७७१३ उदय के भाङ्गे २३ के बन्ध में पाते हैं. यहां १२ का ८८का, ८६ का, ८० का, और ७८ का, यह ५ सत्ता स्थान तो—२१ का, २४ का, और २६ का, यह ३ उदय स्थान प्रत्यय होते हैं. उसमें २५ के उदय में जो तेज वायु उद-

\* यहा आहारक चतुष्क और जिन नाम कर्म इन दोनों की एकही वस्तु में नरकमें सत्ता नहीं होती है इसलिये २३ का सत्ता स्थान नर्क में पाता नहीं है

य सत्ता भाङ्गे हैं. तहां ७८ की मत्ता. परन्तु दूसरे भाङ्गे नहीं होते हैं. और दूसरे—  
 २७ का. २८ का. २९ का. ३० का. और ३१ का. इन ५ उदय में—७८ बिना वा-  
 की के चार २ सत्ता स्थान होते हैं. यो सब २३ के बन्ध में ४० सत्ता स्थान होते हैं  
 परन्तु इतना विशेष—जो पर्याता एकेन्द्रिय प्रायोग्य २९ के बन्ध में अपने उदय में दे-  
 वता के भी भाङ्गे पाते हैं. इनलिये ७७८८ भाङ्गे इन दोनों बन्ध स्थान में पाते हैं. फ-  
 क्त नरक के ५ उदय के भाङ्गे नहीं पाते हैं. और देवता जो एकेन्द्रिय प्रायोग्य २९ प्र-  
 कृति का. बन्ध करे. क्योंकि—रूप साधारण और अपर्याता में देवता उपजते नहीं  
 हैं. । और २८ के बन्ध में भी मिथ्यात्वी के ३० का और ३१ का यह दो उदय  
 स्थान होते हैं. उनमें ३० का तो पचेन्द्रिय तिर्यच तथा मनुष्य के होते हैं. और ३१  
 का बन्ध पचेन्द्रिय तिर्यच के होवे. ३० के उदय पचेन्द्रिय तिर्यच अथवा मनुष्य दे-  
 वगति प्रायोग्य तथा नरक गति प्रायोग्य २८ का बन्ध होता है. बाकी त्रिलेन्द्रिय के  
 ३० भाङ्गे उदय के नहीं होते हैं. इन दोनों उदय के मिलकर ४०४८ भाङ्गे २८ के  
 बन्ध में होते हैं. उनमें—३० के उदय में—२२ का. ८९ का. ८८ का. और ८६ का  
 यह ४ मत्ता होती है. और ३१ के उदय ८९ की मत्ता नहीं होती है. तीर्थकर ना-  
 म सहित ८९ की मत्ता होती है. सो तिर्यच में नहीं पाती है. इनलिये ३ की मत्ता  
 होती है. और ३० उदय में भी जो वेदक मम्यवत्त्व का बन्धन कर जिन नाम सहित  
 मिथ्यात्व में गया उनके नरक प्रायोग्य २८ का बन्ध करते भी ८९ की मत्ता होती है  
 यों २८ के बन्ध में ७ मत्ता स्थान होते हैं. । देवगति प्रायोग्य बिना दूसरी मनुष्य  
 तिर्यच गति प्रायोग्य २९ के बन्ध में २० का. ९ का. और ८ का. इन ३ उदय बि-  
 ना नव उदय स्थान पाते हैं. और २२ का. ८९ का. ८६ का. ८० का. और ७८  
 का. यह ६ मत्ता स्थान होते हैं. यहां २१ के उदय ६ मत्ता स्थान होते हैं. सो कह-  
 ते हैं. जिन नाम का बन्ध कर फिर मम्यवत्त्व का बन्धन कर जो नरक में जावे उनके  
 बीचमें २१ का उदय होता है. तहां ८९ की मत्ता होती है. और २२ का तथा ८८  
 का. यह दोनों मत्ता स्थान चारों गति के जीवों के विग्रह गति में २० के उदय में  
 होते हैं. और ८६ तथा ८० यह दोनों मत्ता देवता नरक बिना दूसरे जीवों के होती  
 हैं. और ७८ की मत्ता देव नरक और मनुष्य बिना दूसरे जीवों के होती है. यों २०  
 के उदय में ६ मत्ता स्थान पाते हैं. । और २४ के उदय में एक ८९ बिना बन्धन  
 ७ मत्ता स्थान एकेन्द्रिय के होते हैं. दूसरे जीवों के यह उदय नहीं हैं. और २० के

उदय मे ६ सत्ता होते हैं. २६ के के उदय में ८९ की सत्ता बिना वाकी के ५ सत्ता स्थान होते हैं. क्योंकि—८९ की नारकी के होती है. उनके २६ का उदय स्था हेही नहीं. और २७ के उदय ७८ बिना ५ सत्ता स्थान होते हैं, सो २१ के उदय की तरह कहना. क्योंकि—तेउ वायु में २७ का उदय नहीं है. वाकी के एकेन्द्रिय क के भी पर्याप्ता अवस्था में यह उदय होता है. वो मनुष्य द्विक, का बन्ध अवस्था रता है. इसलिये ७८ की सत्ता यहां उदय में नहीं होती है. और २८ के उदय में सत्ता स्थान होते हैं. उसमे ८६ की सत्ता विह्लेन्द्रिय तिर्यच पचेन्द्रिय मनुष्य की अपेक्षा से लेना- और दूसरे तरह स्थान पहिले की तरह ही कहना. और २९ के उदय मे भी यही ५ सत्ता पहिले के तरह ही कहना. । और ३० के उदयमें ८९ बिना वाकीके वोही चार सत्ता विह्लेन्द्रियद तिर्यच पचेन्द्रिय और मनुष्य की अपेक्षासे होती हैं. ८९ की सत्ता तो जिन नाम का बन्ध कर सम्यक्त्व का वमन कर नर्कमें वे ऐसे मिथ्यात्वी नारकी के होती है. वहां ३० का उदय स्थान नहीं होता है. और वोही ४ सत्ता स्थान ३१ के उदय में भी मनुष्य बिना ३१ के उदय में भी मनुष्य बिना दूसरे जीवों के होती है. क्योंकि—३१ का उदय सामान्य मनुष्य के नहीं केवली के होता है. यो सब २९ के बंध मे ४९ सत्ता स्थान होते हैं. ॥ देवर्गा प्रायोग्य ३० के बन्ध बिना विह्लेन्द्रिय तथा पचेन्द्रिय प्रायोग्य ३० के बन्ध में सामान्य मे—२० का, ८ का, और ९ का, यह ३ उदय स्थान बिना वाकी के—९ उदय गुणस्थान होवे, वह ८९ बिना ५ सत्ता स्थान होवे, क्योंकि—तिर्यच गति में जिननाम की मता नहीं पाती है. तहां २१ का, २४ का, २५ का, और २६ का, इन चारों उदय मे पांच २ सत्ता स्थान होते हैं. और दुसरे पांच उदय में ७८ बिना चार २ सत्ता स्थान होते हैं. यों ९ उदय के मिल ४० सत्ता स्थान होते हैं. यहां ८९ का सत्ता स्थान तो देवगति प्रायोग्य, अहारक द्विक सहित ३० के बंध मे और जिन नाम सहित मनुष्य प्रायोग्य ३० के बंध में होता है. यह दोनों मिथ्यात्वी बांध ते नहीं है, २ मिथ्यात्व गुणस्थान में ६ बंध स्थान के नव उदय स्थान मिलकर २१२ सत्ता स्थान होते हैं.

२ मास्वादन गुणस्थान में—२८ का, २९ का और ३० का यह ३ बंधस्थान हैं सो कहते हैं;—देवगति प्रायोग्य २८ के ८ भाद्रे मास्वदन में बंधते हैं. उसमे चार पचेन्द्रिय तिर्यच तथा मनुष्य होते हैं. और नर्क प्रायोग्य २८ का बंध

तो मिथ्यात्व प्रत्ययि है इसलिये सास्वादन में नहीं है। तिर्यच पचेन्द्रिय प्रायोग्य और मनुष्य प्रायोग्य २९ प्रकृति बंध के भाङ्गे ६४०० का बंध-एकेंद्रिय, विक्लेन्द्रिय, तिर्यच पचेन्द्रिय मनुष्य देवता नारकीकों इनो के सास्वादन गुणस्थान में होता है। यहां—हुं डक संस्थान और छेवटा संघयण का बंध नहीं होनेसे पांच संघयण और पांच संस्थान तथा सात गुणलो के विकल्पों कर ३२०० भाङ्गे प्रत्येक मनुष्य तिर्यचच गति प्रायोग्य २९ के बंध में होते हैं। दोनोंके ६४०० भाङ्गे होते हैं। और पहिला कहा जो एकेंद्रियान्हीक के सास्वादन में उद्योत सहित ३० का बंध तिर्यच पचेन्द्रिय प्रायोग्यही करते हैं वहां भी ३२०० भाङ्गे होते हैं। इन का विस्तार सहित वरणन पहिले ही कर दिया है। सो जानता। यों सब बंध के भाङ्गे १६०८ होते हैं। ॥ सास्वादन गुणस्थान में २१ का, २४ का, २५ का, २६ का, २९ का, ३० का, और ३१ का, यह ७ उदय स्थान होते हैं। तहां नर्क विना तीनों गति के जीवोंकी अपेक्षासे-२१ का उदय दो गति की के बीच में रस्ते चलते जीवोंके होता है। वहां उदय के भाङ्गे ३२ होते हैं। यद्यपि-२१ के उदय में सब ४२ भाङ्गे कहे थे। परंतु उस में १ अपर्याप्ता के, एक सूक्ष्म पर्याप्ता का, एक नरक का, और १ केवली का यो १० भाङ्गे इस गुणस्थान में नहीं पाते हैं। और २४ का उदय तो एकेंद्रिय के उत्पन्न होते ही होता है। यहां भी वादर पर्याप्ता अपर्याप्ता के यश; अपयश; के विकल्प से दो भाङ्गे सास्वादन गुणस्थान में पाते हैं। वाकी के सूक्ष्म साधारण के भाङ्गे नहीं पाते हैं। और वाक्रिय वाला भाङ्गा तो वायु काय केही होता है। जो भी सास्वादन में नहीं पाता है। और २५ का उदय तो देवगति में उत्पन्न होतही होता है। तथा किसी के नहीं भी होता है। वहां देवता के ८ भाङ्गे—सुभग दुभग, आदेय अनादेय, यश; अयश में उपजते हैं। और २६ का उदय विक्लेन्द्रिय तिर्यच पचेन्द्रिय मनुष्य में उत्पन्न हो तेही पाता है। वहां अपर्याप्ता का एकेक भाङ्गा छोड़कर विक्लेन्द्रिय पर्याप्ता के ६ पचेन्द्रिय तिर्यच के २८७, मनुष्यके भी २८८, यों ५८२ भाङ्गे २६ के उदय में पाते हैं। और २७-२८ का, उदय तो सास्वादन में होता ही नहीं है। क्योंकि—यह दोनों स्थान उत्पन्न हुवे। से—अन्तर मुहूर्त बाद पाते हैं। और सास्वादन तो ६ आवलिका मा ठेरी मावही होता है। इसलिये यह भी पावे। और २९ का उदय देवता नारकी के पर्याप्ता अवस्था में प्रथम प्राप्त सम्यक्त्व में पड़ने हुवे होता है। वहां देवता के ८, और नर्क का १, यों ९ भांगे पाते हैं। और ३० का उदय तिर्यच पचेन्द्रिय मनुष्य के

सर्व स्थान पर्याप्ति पूरी किये बाद औपशाभिक सम्यक्त्व में पड़ते हुये होता है। तथा उत्तर वैक्रिय करते हुये देवता के उद्योत के वक्त में होता है। वहां मनुष्य और तिर्यच के अलग अलग ११९२ भाँजे होते हैं, और देवता के ८ भाँजे होते हैं। यों सब मिल २३१२ भाँगे उदय के होते हैं, । और ३१ का, उदय पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्ति के प्रथम सम्यक्त्व का वमन करते पाता है, वहां भाँजे ११५२ होते हैं। यों सब उदय के ४०९७ भाँगे सास्वादन गुणस्थान में पाते हैं। सास्वादन में ९२ का और ९८ यह दो सत्ता स्थान होते हैं। और ८८ की सत्ता तो चारों गति के सास्वदनी के पाती है। ॥ अब सम्बन्ध कहते हैं:—२८ के बन्ध में सास्वादन में ३१ का और ३१ का, यह दो उदय स्थान होते हैं। क्योंकि—देवगति प्रायोग्य २८ प्रकृति का, बंध अपर्याप्ता के होता है, इसलिये दूसरे उदय स्थानक इसके नहीं होते हैं। वहां मनुष्य बन्ध की अपेक्षा से ३० का उदय और ९२ की ८८ की सत्ता स्थान होते हैं। और तिर्यच के उपशम श्रेणि होती नहीं है। इसलिये उपशम श्रेणि के पड़ने के अभाव से—९२ की सत्ता नहीं पाती है। फक्त ८८ की सत्ता ही पाती है। और तिर्यच मनुष्य के प्रायोग्य २९ का बन्ध करते सास्वदनी के ७ उदय स्थान होते हैं। वहां अपने २ उदय स्थानों में एकेक ८८ का सत्ता स्थान पाता है। और मनुष्य के ३० के उदय में वर्तते—९२ का और ८८ का। यह दो सत्ता स्थान पाते हैं। बाकी के सब के फक्त ८८ का ही सत्ता स्थान पाता है। ऐसे ही ३० के बन्ध का भी सम्बन्ध कहना। यों सब मिलकर सास्वादन गुणस्थान में १८ सत्ता स्थान पाते हैं।

३ मिश्र गुणस्थान में—२८ का और २९ का यह दो सत्ता स्थान होते हैं। वहां मिश्र दृष्टि तिर्यच मनुष्य के देवगति प्रायोग्य २८ का बन्ध होता है। वहां भाँजे ८ पाते हैं और मनुष्य प्रायोग्य २९ का बन्ध मिथ्यात्व दृष्टि देवता नर्क के होवे वहां स्थिर अस्थिर, शुभ अशुभ, यशः अयशः के विकल्प से भाँजे ८ होते हैं। दूसरे जो छे स्थान कादि के विकल्प से भाँजे उत्पन्न होवे। वो यहां नहीं पाते हैं। (यों आगे के गुणस्थान में भी जानना) सब बन्ध के भाँजे १६ होते हैं। ॥ मिश्र गुणस्थान में २९ का, ३० का, और ३१ का यह ३ उदय स्थान पाते हैं। तहां २९ के में देवता भाँजे ८, और नर्क का भाँगे १, यों ९ भाँजे पाते हैं। और ३० के उदय-तिर्यच चन्द्रिय के १७२८ और मनुष्य के ११५२ यों सब २८८० भाँजे ३० के उदय में हैं। और ३१ के उदय पंचेन्द्रिय तिर्यच के होता है वहां ११७१ भाँजे पाते हैं।

यो सव सर्व मिश्र गुणस्थान मे उदय के ४०४१ भाङ्गे पाते है । यहां सत्ता स्थान १२ का और ८८ का यह दोही होते है ॥ अब सम्बंध कहते हैं—२८ के बन्ध में मिश्र दृष्टि के ३० का और ३१ का यह दो उदय स्थान है. उस मे अलग अलग १२ का और ८८ का यह दो सत्ता स्थान होते है और २९ के बन्ध के एक २९ काही उदय स्थान होता है. वहां भी वोही दो सत्ता स्थान होता हैं.

४ अविरति सम्यक दृष्टि गुणस्थान में—२८ का, २९ का. और ३० का यह ३ बन्ध स्थान होते हैं. वहां तिर्यच मनुष्य के चौथे गुणस्थान में देव प्रायोग्य का बन्ध करते २८ का बन्ध होता है. वहां भाङ्गे ८ उपजते हैं, और मनुष्य के देवगति प्रायोग्य जिन नाम सहित बन्ध करे तो. २९ का बंध होता है वहां भी ८ भांगे. और देवता तथा नर्क के चौथे गुणस्थान में मनुष्य गति प्रायोग्य २० का बंध करते भाङ्गे ८ होते है. देवता नारकी के सम्यक्त्व प्रत्यय ३० जिन नाम सहित मनुष्य प्रायोग्य ३० का बंध करते भी भांगे ८ होते हैं. यों बंध के सब ३२ भांगे होते है.

— ॥ चौथे अविरति सम्यक्त्व दृष्टि गुणस्थान मे—२१ का, २५ का, २६ का, २७ का, २८ का, २९ का, ३० का, और ३१ का. यह ८ उदय स्थान पाते है. इस में २१ के उदय में देवता के भाग ८, मनुष्य के ८, तिर्यच पचेन्द्रिय के ८, × नर्क का १. यो २९ भांगे २१ के उदय के होते हैं. (टीप है धायिक सम्यक दृष्टि पूर्व आयु बन्ध वाला. चारों मे उपजता है और पुरा पर्याप्ता होता है. इस मे अपेक्षा मे - २१ उदय ग्रहण करना. २५ का तथा २७ का उदय देवता के नर्क के और वैक्रिय-तिर्यच मनुष्य के होता है. इन मे नर्क के जीवो तो धायिक तथा वेदक सम्यक दृष्टि जानना. और देवता तीनो सम्यक्त्वी होते है । और २६ का उदय पचेन्द्रिय तिर्यच मनुष्य वेदक तथा धायिक सम्यक दृष्टि के होता है. = । और २८ तथा २९ का

+ अविरति सम्यक दृष्टि अपर्याप्ता मे उपजता नहि है अर्थात् पुनर्जन्म जरूरी होता है इस अपर्याप्ता का एकेक भाङ्गा कनी होनेसे बाकीके ८ ही पते है

× उपज्म. क्षयोपज्म और धायिक यह तीनो सम्यक्त्व पाते है

≡ उपज्म सम्यकदृष्टी तिर्यच मे और मनुष्य मे उपज्म नहि है और उपज्म वेद-क सम्यक दृष्टितो मोहनाकी २८ प्रकृति की मन्त्र बर्णहि होता है.

यह दोनो उदय नर्कतिर्यच और देव .के होते है। ३० का उदय नर्क विना तीनों गतिमें होता है और ३१ का उदय पचेन्द्रिय तिर्यचके होता है। यहां सर्वस्थान अपने अपने उदयके भाग ग्रहण करना। ॥ चौथे अविरति सम्यक दृष्टि गुणस्थानमें चार सत्ता स्थान होते हैं:- अमृत और अपूर्व करण गुणस्थान मे आहारक द्विक और जिन नाम सहित देव प्रायोग्य ३१ का बन्ध कर पडता हुआ मरकर देवता होवे, उस अपेक्षा से १३ की सत्ता जानना और आहारक चतुष्क का बन्ध कर फिर परिणामों प्रवर्ति से मिथ्यात्वीही चारों गति मे से किसी गति में उत्पन्न होकर फिर सम्यक्त्व प्राप्त करे, उसके १२ की सत्ता पाती है। यह सत्ता देवता और मनुष्य के मिथ्यात्व मे गये विना भी पाती है, इसलिये यहां ग्रहण करी है। और ८९ की सत्ता तो-देवता नारकी और मनुष्य अविरति सम्यक दृष्टि के जिन नामका बन्ध है इसलिये पाती है। और ८८ की सत्ता चारो गति के सम्यक दृष्टि जीवों के पाती है। ॥ अब सत्ता का सम्बन्ध कहते हैं:- अविरति सम्यक दृष्टि पचेन्द्रिय तिर्यच मनुष्य देव प्रायोग्य २८ के बन्ध मे ८ उदय स्थान होते हैं, तहां २५ का और २७ का उदय वैक्रिय तिर्यच मनुष्य के होता है, दुसरे ६ स्थान सामान्य से पाते हैं, उन एकेक उदय में-१२ का और ८८ का यह सत्ता स्थानक पाते हैं। यों आठो उदय के १६ सत्ता स्थान होते हैं। और २९ का बन्ध एक देवगति प्रायोग्य, दुसरा मनुष्य गति प्रायोग्य होता है, वहां देवगति प्रायोग्य, जिन नाम सहित २९ का बन्ध मनुष्यके होता है, परन्तु तिर्यचके नहीं होता है, उनके ३१ का उदय विना सात ही उदय स्थान होते हैं, क्योंकि-मनुष्य के ३१ का उदय नहीं है। उन एकेक उदय में १३ और ८९ यह दो दो सत्ता स्थान होते हैं, और मनुष्य गति प्रायोग्य २९ का बन्ध देवता नर्क के होता है वहां-२१ का, २५ का, २७ का, २८ का, २९ का, यह ५ उदय स्थान होते हैं, एकेक उदय मे-१२ का और ८८ का, यह दो दो सत्ता स्थान होते हैं। और मनुष्य गति प्रायोग्य जिन नाम सहित ३० का बन्ध भी देवता नारकी के होता है वहां-२१ का, २५ का, २७ का, २८ का, २९ का, और ३० का, यह ६ उदय स्थान होते हैं। उन मे अलग अलग १३ का और ८९ का यह दो सत्ता स्थान होते हैं, क्योंकि-नरक मे जिन नामकी सत्ता होते आहारक की सत्ता नहीं होती है, इसलिये १३ की सत्ता होती है, और ३१ के उदय में दो सत्ता होती है। यों सब मिल ५४ सत्ता स्थान होते हैं।

५ पांचवा देश विरति गुणस्थान में-२८ का और २९ का यह दो बन्ध स्थान

न होते हैं. वहां मनुष्य तिर्यच देश विरति देवगति प्रायोग्य २८ का बन्ध करे उसके ८ भाङ्गे. और येही जिन नाम सहित २९ का बन्ध मनुष्य देश विरति करे ( परन्तु तिर्यच के नहीं होवे ) जिसके ८ भाङ्गे. सब १६ भाङ्गे. । देश विरति गुणस्थान में सामान्य-२९ का. २७ का. २८ का. २९ का. ३० का. और ३१ का, यह ६ उदय स्थान होते हैं. वहां २८ के बन्ध में पहिले के उदय तो वैक्रिय तिर्यच मनुष्य के होते. इनका एकेक भाङ्गा करने से चार भाङ्गे होवे. और २८ का. २९ का. यह दो नौ उदय सामान्य तिर्यच मनुष्य के होवे. तथा वैक्रिय के भी होवे. वहां उदय के भङ्गे ६ होते हैं. और ३० का उदय तिर्यच मनुष्य के होवे. वहां ६ संघयण ६. संस्था के विकल्प से ३६ भाङ्गे होवे. इने सुस्वर दुस्वर से दुगुने करने से ७२ होवे. इने शुभा शुभ गति से दुगुने करने से १४४ होवे. इनमें अलग २ एकेकका. उदय होता है. यहां दौर्भाग्य अनदेय और अयशः कीर्तिका उदय यहां गुण प्रत्यय करके नहीं होता है. और वैक्रिय तिर्यच के उदय में भाङ्गा—१. यो सब मिल २८१ भाङ्गे होते हैं । और ३१ का. उदय तिर्यच के होता है. वहां भाङ्गे १४४ होते हैं. और सब मिल ४४१ भांगे २८ के बन्ध में पाते हैं. ॥ और २९ के बन्ध में मनुष्य के-२९ का २७ का. २८ का. २९ का. और ३० का. यह ५ उदय स्थान होते हैं. इनमें पहिले के चार उदय स्थान तो वैक्रिय के हैं. उनका भांगा एकेक. और ३० के उदय में भांगे १४४. यो मिलकर १४८ भांगे होते हैं. और सब उदय स्थान के १२१ भांगे होते. ॥ देश विरति गुणस्थान में १३ का. १२ का. ८१ का. और ८८ का. यह ४ नत्ता स्थान होते हैं. इनमें जो अप्रमत्त अपूर्व करण वाले-तीर्थकर नाम तथा आहारक का बन्धन कर पड़ते हैं. उन परिणामों में देश विरति होवे उनके ९३ की मत्ता होती है. और बाकी की सब चौथे अविरति गुणस्थान की तरह कहना. ॥ अब सम्बोध कहते हैं:—देश विरति मनुष्य के २८ के बन्ध में-२९ का. २७ का २८ का २९ का. और ३० का. यह ५ उदय स्थान होते हैं. तहां अलग अलग १२ का. और ८८ का. यह दो दो मत्ता स्थान होवे. तैने तिर्यच के भी-३१. मत्ति ६ उदय में दो दो मत्ता स्थान होवे. और २९ का बन्ध देश विरति मनुष्य के ही होता है. वहां २९ और ३० वाले उदय स्थान पहिले के मोदी. पांचों उदय स्थान कहना. और वहां १३ का. तथा ८१ का. यह दोनों मत्ता स्थान होते हैं. देश विरति में सब मिल २२ मत्ता स्थान होते हैं.



६ प्रमत्त भंगति गुणस्थान का, वन्धादि सम्बन्ध कहते हैं—प्रमत्त मातृ के २८ का, और २९ का, दोनों वन्ध स्थान देश विनि की तर्क कहना, यहां अलग वन्ध में मनुष्य के आठ भागों में १९ भागों होते हैं, १ ओर २८ का, २९ का, २९ का, और ३० का, यह पांच २ उदय स्थान होते हैं, इसमें के पहिले के चारों उदय तो आहारक और वैक्रिय करने वाले मातृ की अपेक्षा में लेना, वहां २९ के और २९ के उदय में दो दो भागों वैक्रिय करने वाले मातृ की अपेक्षा में लेना, वहां २९ के और ३० के उदय में दो दो भागों, और २८ तथा २९ के उदय में चार २ भागों, ३० के उदय में सहज मनुष्य के होते, वहां दो भागों आहारक और वैक्रिय के यों, १४६ सहज के मिल १४६ सर्व मिल एकेक वन्ध में १४८ भागों करते ३१६ उदय के भागों होते हैं वहां १३ का, १२ का, ८ का, और ८ का, यह ४ सत्ता स्थान पाते हैं, ॥ अब सम्बन्ध कहते हैं—२८ के वन्ध में ९ के उदय २९ का, और ८ का यह दो सत्ता होती है, इनमें आहारक के २२ की मता होती है, और निन नाम की सत्ता होवे तब २८ का वन्ध नहीं होता है, इसलिये २३ का और ८ का यह दो सत्ता २९ के वन्ध में पांचो उदय स्थानक में अलग ३ होती है, इसलिये २९ का, वन्ध जिन नाम वान्ध होती होता है, यो सब मिलकर २० सत्ता स्थान छे प्रमत्त संयति गुणस्थान में पाते हैं,

७ अप्रमत्त संयति गुणस्थान में—२८ का, २९ का, ३० का, और ३१ का, यह चार वन्ध स्थान होते हैं, इसमें के पहिले दोनों स्थान तो छे गुणस्थान की तरफ ही कहना, और आहारक द्विक सहित वन्ध करते अनुक्रम में—३० का और ३१ का वन्ध होता है, इन चारों वन्ध स्थानों में अलग २ एकेक भागों होने से चर भागों होते हैं, क्योंकि—अप्रमत्त के—अस्थिर अशुभ अयशः का वन्ध नहीं होता है, और इन एकेक वन्ध स्थान में—२९ का, और ३० का, यह दो उदय स्थान होते हैं, इसमें जो प्रमत्त पण वैक्रिय तथा आहारक का आरंभ कर अप्रमत्त में आते हैं, उनके उद्योत का उदय होने से—२९ का उदय होता है, तथा ३० का उदय सहज होता है, उन अलग २ उदय में एक भाग वैक्रिय का और एक आहारक का यो दोनों उदय भेदों भागों और सहज शरीर से अप्रमत्त के ३० के उदय में पहिले देश विरति के स्थान १४६ भागों कहे सोही होते हैं, यह सब मिलकर एकेक वन्ध में उदय के १४८ भागों होते हैं, चारों वन्ध के मिल ५९२ भागों उदय के होते हैं, वहां २८ के वन्ध में

दोनों उदय में अलग अलग २८ की सत्ता होती है. और २९ के बन्ध के दोनों उदय में अलग अलग ९२ की मत्ता होती है. और ३१ के बन्ध में दोनों उदय में अलग अलग १३ की सत्ता होती है. = यो सब ८ सत्ता पाती है.

८ अपूर्व करण गुणस्थान मे-२८ का. २९ का. ३० का. ३१ का. और १ का. यह पांच बन्ध स्थान होते हैं. इसमें के चारों तो अप्रमत्त की तरह ही कहना. और १ यशः कीर्ति का बन्ध सो सातवें भाग में देवगति प्रायोग्य बन्ध कर विच्छेद करत है. वहां अलग २ एकेक भाङ्गा होता है. सब मिल बन्ध के ५ भाङ्गे होते हैं. इन प्रत्येक बन्ध स्थानों में ३१ काही उदय स्थान होता है. यहां ६ संघरण से ६ संस्थान के विकल्प कर ६ भांगे होत है. इने शुभा शुभ खगति में गिनने में-१२ भां गे होते हैं. इने मुखर दुस्सर से गिनने में २४ भांगे हाते हैं. + सब पांचों उदय में ३० भांगे होते हैं. इसमें पहिले के चारों बन्ध स्थान में ३० के उदय में अनुक्रम में ८८ का. ८९ का. ९२ का. और ९३ का. यह एकेक सत्ता स्थान होता है. और १ के बन्ध में ३० के उदय में यह चारों सत्ता स्थान पाते हैं. सब ८ स्थान. ९-१० अ निष्ठाति वादर और सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान मे-१ यशः कीर्ति का बन्ध और ३० का. उदय इसमें क्षपक के भाङ्गे २४ और आत्मशक्ति के तीनों भंयवर्णों के विकल्प में ७२ भांगे उदय के होते हैं. और ९३ का. ९२ का. ८९ का. ८८ का. यह चार सत्ता स्थान पाते हैं.

११ उपशान्त मोह गुणस्थान मे-बन्ध के अभाव में ३० का १ ही उदय स्थान होता है. यहां भांगे ७२ होते हैं. और ९३ का ९२ की. ८९ का. और ८८ का. यह चार सत्ता स्थान पाते हैं.

१२ क्षीणमोह गुणस्थान में-एक ३० प्रकृति का उदय स्थान होता है. यहां भी तीर्थकर नाम सति के स्थानादिक सब प्रगल्भ होते हैं. इसलिये ८० का. सत्ता

+ यहा तीर्थकर नाम सति आहारज निधन में लगते हैं इनके लिये ३० ही सत्ता होती है.

+ किन्तु यह अपूर्व करण के ८ संघरण में लगाने से ही ३० सत्ता मिलती है. इनके सबके उदय के ७२ भांगे होते हैं.

और ७६ का, सत्ता स्थान तीर्थकर के और ७१ का, और ७८ का, सत्ता स्थान अ तीर्थकर होते हैं, यो ४ सत्ता स्थान इस गुणस्थान में पाते हैं.

१३ सयोगी केवली के—२० का, २१ का, २७ का, २८ का, २९ का, ३० का, और ३१ का, यह ८ उदय स्थान होते हैं. जिसके ६०० भांगे पहिले सामान्य देश मुझवही कहना. यहां सत्ता स्थान ४ क्षाणमोह गुणस्थान मे कहै सोही पाते हैं.

१४ अयोगी केवली गुणस्थान में—९ का, और ८ का, उदय स्थान होते हैं जिसके २ भांगे, और ८० का, ७१ का, ७६ का, ७८ का, १ का, और ८ का, यह तीन सत्ता स्थान पाते हैं. इसमे तीर्थकर के ९ का, उदय और ८० का, ७६ का और ९ का, सत्ता स्थान, और सामान्य केवली के ८ का, उदय में—७१ का, ७८ का और ८ की सत्ता पाती है.

## गोल कर्म के भाङ्गे.

गोत्र कर्म की दो प्रकृतियों में से सामान्या प्रकार से एक वक्त मे एक का, बन्ध और एककाही उदय होता है. क्योंकि—दोनो प्रकृति बन्ध और उदय विरोध कीहै. और सत्ता एककी तथा दोनोंकी पाती है. जैसे—जिस वक्त तेऊ काय और वायु काय में रहता हुवा जीव ऊंच गोत्र को उवेल कर सत्ता से निवारै, तब तेउ वायु में अथवा वहां से मरकर दूसरे जन्म में जहां तक ऊंच गोत्र का बन्ध नहीं करै, वहां तक एक नीच गोत्र की सत्ता जानना. और अयोगी केवली गुणस्थान के चरम सम य एक ऊंच गोत्र की सत्ता जानना. यो बन्ध का और उदय का स्थान एकेक और सत्ता के स्थान दो होते हैं. अब इसके भांगे कहते हैं:—१. नीच गोत्र का बन्ध, नीच गोत्र का उदय और नीच गोत्र की सत्ता यह प्रथम भांगा तेउ वायु में उंच गोत्र के उवेले वाट पाताहै. २. नीच गोत्र का बन्ध ३. नीच काही उदय और नीच तथा उंच दोनों की सत्ता ३. नीच का बन्ध उंच का उदय और उंच नीच दोनों की सत्ता, यह दूसरा तीसरा भांगा—मिथ्यात्व और सेस्वादन इन दोनों गुणस्थान में पाताहै क्योंकि—आगे के गुणस्थान में नीच गोत्र का बन्ध नहीं है. ४ उंच गोत्र का बन्ध नीच का उदय और दोनो की सत्ता यह भांग मिथ्यात्व से लगा देशविरति गुणस्थान तक पाता है. क्योंकि—आगे के गुणस्थान में नीच गोत्र का उदय नहीं है. ५ उंच का व

न्य उंच का उदय और दोनो की मत्ता, यह भांगा दशवे गुणस्थान तक पाता है. ६ उंच गोव का उदय और उंच नीच दोनो की मत्ता, यह भांगा इग्यारवे गुणस्थानमे लगा चउदवे गुणस्थान के द्विचरम समय पर्यन्त पाता है. ७ उंच गाव का, उदय, और उंच की ही मत्ता यह भांगा अयोगी केवली गुणस्थान के अन्तिम समय पर्यन्त पाता है. यह ७ भांगे गौव कर्म होते हैं.

## अन्तराय कर्म के भांगे.

अन्तराय कर्म की पांचों प्रकृति ध्रुव बंध की हैं अर्थात्-एक ही माथा पांचों का ही बन्ध होता है. और उदय भी ध्रुव होता है. और मत्ता भी ध्रुव ही पाती है इमलिये-१ अन्तराय कर्म की पांचों प्रकृति का बन्ध, पांचों का उदय, और पांचों की मत्ता, यह एक ही भांगा होता है. मो दशवे गुणस्थान पर्यन्त पाता है, और आगे बंध के अभाव मे-२ पांचों प्रकृति का उदय और पांचों की मत्ता यह दुसरा भागा इग्यारवे बारवे गुणस्थान तक पाता है.

## बन्धिके भागों का खुलासा.

१ धंधि बंधन्ति बंधेति मो-गत कालमे कर्म बंधे. वर्तमानमे कर्म बंधता है. और आगे काल मे बन्धन करेगा सर्व भनारी जीवों. २ बन्धि, बन्धन्ति नबन्धति. मो गत काल मे बंधे वर्तमान, मे बंधता है. भविष्य मे नहीं बंधेगा-चरम शरीरी. ३ बंधि, नदंधि, बन्धन्ति, गत काल मे बंधे. वर्तमान मे नहीं बंधे. आगे को बंधेगा. स्वर्ग प्राप्त होने वाले मुनि. और ४ बंधि, नदबंधति, नबन्धति. अतिन काल मे बंध किन. प्रत्युत्तल मे बंध नहीं करते है. और अनागत मे भी बन्ध नहीं करेंगे. मो केवल शाली.

## इर्यावही के भांगे का खुलासा.

१ बंधि, बंधन्ति, बंधेति मो-गत कालमे उपगम श्रेणी वर इग्यान्वा गुणस्थान स्पर्श इर्यावही का बन्ध कर पडवा हुवे. और वर्तमान काल मे (दुसरे वक्त) फिर उपगम श्रेणी चउ इग्यारवे गुणस्थान जा इर्यावहीका बन्ध करवा है. वो फिर वहां मे फिर पडेगे, और फिर तीसरी वक्त उपगम श्रेणी मे या क्षय श्रेणी मे चउ वर इर्यावही का बन्ध करेंगे. २ बंधि, बंधन्ति, नबन्धति. मो-गत कालमे उपगम श्रेणी चउ

इर्यावही का बंधकर पडवाइ हुवे, वर्तमान में तेरवे गुणस्थानमें हैं सो इर्यावहीका बन्ध कर रहे हैं. आवते काल में चउद वे गुणस्थान में जायंगे तब फिर इर्यावही बंध नहीं होगा. ३ बंधि, नबंधे, बंधेती सो-गत काल में श्रेणी कर पडे, वर्तमान में श्रेणी नहीं करते हैं, परन्तु आगमिक काल में श्रेणी कर चढेंगे इर्यावही का बंध करेंगे. ४ बंधि नबंधे, नबंधेति, सो गये काल में तेरवे गुणस्थान में इर्यावही का बन्ध किया, वर्तमान में चउदवे गुणस्थान में है सो बंध नहीं करते हैं. आगमिक मोक्ष जावेंगे सो भी बंध नहीं करेंगे. ५ नबन्धि, बंधेती बंधेति सो-गये काल में कभी श्रेणी चडा नही, वर्तमानमें श्रेणी चढ बन्धन कर रहे हैं. आगमिक तेरवे गुणस्थान को प्राप्त हो बंध करेंगे. ६ न बंधि, बंधे, नबंधेति सो-गये कालमें श्रेणी चढे नहीं, वर्तमानमें चढता है. परन्तु आगमिक काल मे श्रेणी चढेगा नही, यह भांगा शुन्य है, कही भी नही मिलता है. ७ नबंधि, नबंधेति, बंधेति सो-गये काल में श्रेणी चडा नहीं, वर्तमान में चढे नहीं, परंतु आगमिक काल में चढकर इर्यावही का बंध करेगा. और ८ नबंधि, नबंधे, नबंधेति गये काल मे बंधे नही, वर्तमान में भी बंधे नही, और आवते काल मे बंधेंगे नहीं यह भांगा अभव्य आश्रय जानना.

### भावद्वार का खुलासा.

उवसम खय भिसोदय, परिणामा दु नव ठार इगवीसा॥

तिअ भेए सन्निवाइय, सम्मं चरणं पढम भावे ॥१॥

वीए केवल जुअलं, सम्मं दाणाइ लद्धिपण चरणं ॥

तहए से सुव ओगा, पण लद्धि सम्म विरइ दूगं ॥२॥

अन्नाण मसिद्धता, ऽसंयम लेसा कसाय गइ वेआ ॥

मिच्छे तूरिए भव्वा, ऽ भव्वत्त जिअत्त परिणामि ॥३॥

१. औदयिक भाव के २१ भेदः—(१) अज्ञान—मिथ्यात्व मोहनीय के उदय कर जो मिथ्यात्वी का ज्ञान है सो अज्ञान. = (२) असिद्धत्व—अष्ट कर्मोदय कर जीव

= जैसे—अनाचार, अशील आदि अष्टो चार से आचार की और शील की नास्ति न

सिद्धावस्था को प्राप्त नहीं कर सकें—तंतारीही बना रहें सो आसिद्धत्व.(३) अविरत-अ-प्रत्याख्यानारवणीय कषायोदय कर जी वृत्त प्रत्याख्यान नहीं कर सकें—सो (अविर-ति (४-२) छेड़इया जिन अध्यवसायो कर आत्मा लेपाय सो—कृष्ण—नील—कापुत—तेजो—पशु—और शुक्ल—यह छे प्रकार की लेइया है. x (१०-१३] चार कषाय—मोह कर्मोदय कर जिस प्रणतिसे ससारका कस-रस आवे सो—क्रोध—मान—माया और लोभ यह चार कषाय. (१४-१७) चारगति—जो नाम कर्मोदय कर जीवों गमनागमन करे ऐसी—नर्क—तिर्यच—मनुष्य और देव चारों गति. (१८-२०) जो मोह कर्मोदय से विषयाभिलाषा रूप विकार को वेदे सो—स्त्री पुरुष नपुंसक—यह तीन वेद हैं. और २१. मिथ्यात्व मोह भी मोह कर्म के उदय से होता है.

२ ओप शमिक भाव के दो भेदः—(१) ओपगम सम्यक्त्व सो अनंतान वं-धि चौक और तीन दर्शन मोहनीय इन सातों प्रकृति यों-रमोदय और प्रदेगोदय को प्राप्त न होवें सो उपगम भाव. और उस से जो प्रगट हुइ तत्त्वों की रुचि सो उ-पगम सम्यक्त्व. और. (२) जो बाकी रही २१ चारिव मोहनीय की प्रकृतियों उपगम होनेसे जो स्थिरता रूप चारिव होवें सो ओपशमिक चारिव

९ क्षयोपशमिक भाव के १८ भेदः—४ चार ज्ञान (केवल विना) ७ तीन अ-ज्ञान. १० तीन दर्शन (केवल दर्शन विना) १० पांच क्षयोपगम लब्धि छद्मस्तकी. १६ क्षयोपगम सम्यक्त्व. १७ क्षयोपगम चारिव. और १८ संयमासंयम. (इन का खुलासा इस में माति ज्ञानावरणीय. श्रुति ज्ञानावरणीय. चक्षु दर्शनावरणीय. अचक्षु दर्शनावर

ही मन्त्र ते-कु आचार और कुमील समझा जाता है. तैस ही यहा अज्ञानका अर्थ कु ज्ञान जानना सो अनादि और स्वभाविक होनेसे—औदयिक भाव में ग्रहण किया है.

x (१) जो आचार्य अष्ट कर्मोदय से लेइयाको मन ने है. उनके मनमें 'लेइया' औ-दयिक भाव में है.

(२) जो कर्मोदय से लेइया मने उनके मन में मोहका औदयिक भाव में लेइया और जो.

(३) योगों की प्रकृति में लेइया मने उन के मन में मान कर्म औदयिक भाव. यों तीन मन हैं.

इर्यावही का बंधकर पडवाइ हुवे, वर्तमान में तेरवे गुणस्थानमें हैं सो इर्यावहीका कर रहे हैं. आवते काल में चउद वे गुणस्थान में जायंगे तब फिर इर्यावही बंध करेगा. ३ बंधि, नबंधे, बंधेति सो-गत काल में श्रेणी कर पडे, वर्तमान में श्रेणी कर करते हैं, परन्तु आगमिक काल में श्रेणी कर चढेंगे इर्यावही का बंध करेंगे. ४ बंधि नबंधे, नबंधेति, सो गये काल में तेरवे गुणस्थान में इर्यावही का बन्ध किया, वर्तमान में चउदवे गुणस्थान मे है सो बंध नहीं करते हैं. आगमिक मोक्ष जावेगे सो भी बंध नहीं करेंगे. ५ नबन्धि, बंधेति बंधेति सो-गये काल में कभी श्रेणी चडा नही, वर्तमान में श्रेणी चढ बन्धन कर रहे हैं. आगमिक तेरवे गुणस्थान को प्राप्त हो बंध करेगे. ६ न बंधि, बंधे, नबंधेति सो-गये कालमे श्रेणी चढे नहीं, वर्तमानमें चढता है. परन्तु आगमिक काल मे श्रेणी चढेगा नही, यह भांगा शुन्य है, कही भी नही मिलता है. ७ नबंधि, नबंधंति, बंधेति सो-गये काल में श्रेणी चडा नहीं, वर्तमान में चढे नही, परंतु आगमिक काल में चडकर इर्यावही का बंध करेगा. और ८ नबंधि, नबंधे, नबंधेति गये काल मे बंधे नही, वर्तमान में भी बंधे नही, और आवते काल में बंधेगे नही यह भांगा अभव्य आश्रय जानना.

### भावद्वार का खुलासा.

उवसम खय मिसोदय, परिणामा दु नव ठार इगवीसा॥  
 तिअ भेए सन्निवाइय, सम्मं चरणं पढम भावे ॥१॥  
 वीए केवल जुअलं, सम्मं दाणाइ लद्धिपण चरणं ॥  
 तहए से सुव ओगा, पण लद्धि सम्म विरइ दूगं ॥२॥  
 अन्नाण मसिद्धता, ऽसंयम लेसा कसाय गइ वेआ ॥  
 मिच्छे तूरिए भव्वा, ऽ भव्वत्त जिअत्त परिणामि ॥३॥

१ औदयिक भाव के २१ भेदः—(१) अज्ञान-मिथ्यात्व मोहनीय के उदय कर जो मिथ्यात्वा का ज्ञान है सो अज्ञान. = (२) असिद्धत्व-अष्ट कर्मोदय कर जीव

= जैमे-अनाचार, अशील आदि शब्दो चार से आचार की और शील की नामि न

५ परिणामिक भाव के ३ भेदः—( १ ) मुक्ति जाने जोग जीव का स्वभाव सो भव्य पना. ( २ ) मुक्ति कदापि नहोवे ऐसा जीव का स्वभाव सो अभव्य पना. और ( ३ ) द्रव्य तथा भाव प्राणो का स्वभाव सेही धारण करने वाला सो जीव पना. यह तीनों स्वभाव अनादि-अनन्त उत्पन्न और नाश रहित सो परिणामिक भाव जानना. यों-पांचो भावो के-सब भिन्न ५३ भेद होते हैं. =

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय. इन तीनों कर्मों मे एक ओपगामि भाव बिना चारों भाव पाते हैं. वेदनीय, आयुष्य नाम और गोव इन कर्मों मे—१ ओदयिक, रक्षायिक और परिणामिक यह तीन भाव पाते हैं. और मोहनीय कर्ममे फल एक ओपगामिक भाव पाता है.

### पांचों भावों के विशेष भेद सूत्र से.

१ ओदयिक भाव—जैने धतुरा का भक्षण करने मे श्वेत रङ्ग की वस्तु पीले रङ्ग मे देखती है. तैमेही जीवनो शुद्ध निष्ठ ममान है. परन्तु अष्ट कर्म रूप धतुरे के शो के उदय कर जीव कर्म स्वभाव मे परिण मे सो ओदयिक भव. और जैने सुवर्ण नामक धातुतो एकही है. परन्तु सुवर्ण कार मञ्जुके मंयोग मे मुक्त कुंडल हारादि अनेक रूप मे परिणनावै तैमे ओदयिक भाव के स्वभाव मे आत्मा अनेक रूप में परिण मे जैने-अहंस्त्री, अहंपुरुष, अहंरूप, अहंशुल, अहंस्त्रुल, अहंरुस्य इत्यादि. इन उदय भावके दो भेदः—१ जिनमे आठो कर्मोंका उदय होवेनो उदय और २ उदय निष्यन्न इसके दो भेदः—१ जीव उदय निष्यन्न और २ अजीव उदय निष्यन्न. इनमें जीव उद

=आस्ति काय,अधमस्ति काय,आकास्ति काय काल द्रव्य,और पुद्गलस्ति काय.यह पांचो द्रव्य अनादि परिणामी भाव में परिणमे है. अपने स्वभाव में ही रम रहे है. कदापि पर स्वभाव में रमन नहीं करने में-अनादि परिणामी भाव में गिने जाते है. इन में पुद्गल द्रव्यकादि स्वभाव है मे-आदि भाव एते परिणमना है. तैमेही अनन्त प्रेमी स्वभाव जानना. सो ओदयिक भाव में गिने जाते हैं. क्योंकि—जैने पुद्गल के स्वभाव जीव के सम्बन्ध से पुद्गल विषय की जमे प्रवृत्ति के ओदयिक मे जमे के गिने वर्गीकृत होते है. इसलिये अनन्त प्रेमी स्वभाव जमे वर्गीकृत पुद्गल मे ना ओदयिक भाव में होते है. यह उदय अजयि भाव के भेद जे.



णीय, इन चारों का उदय वारवे गुणस्थान पर्यन्त देशघातिक होता है. उस उदय वाली प्रविष्ट रस के क्षयसे अप्रविष्ट रस के अनुदय रूप उपशम में, और किन्तु स्पर्दकके उदय से उदयानुविध क्षयोपशमिक होते हैं. और अवाधि ज्ञानावरणीय पर्याव ज्ञानावरणीय, और अवाधि दर्शनावरणीय इन के सर्व घातिक रस के स्पर्दक के उदय से फक्त उदय भाव होता है. और निमग्न विथुद्धाव माय में देश घातिक पने परिणाम के मंदरस कर उदयावली प्रविष्ट अंज के क्षय में तथा प्रविष्ट उपशम से और वर्तमान के उदय में जो आधि. मनः पर्यव. चक्षु दर्शनादि गुणमत् सो क्षयोपशमिक उदयानु विधि होती है. और मोहनीयकी प्रकृति जो १२ कपाय. जो १३ वा विथ्यात्व मोह सर्व घातिक है, उसका रसोदय होते हुवे क्षयोपशम नहीं होते हैं, सो प्रदेशो दय में होता है. रस उन प्रदेशों को वेदते देशघातिक रस में लक्ष वेदते हैं जिस से सर्व घातिक नहीं होते हैं. बाकी रस मोहनीय की प्रकृतियों रसो दय. प्रदेशोदय होते भी क्षयोपशमिक अविरोध पने होता है. जिस से सब जीवों को पांचो लब्धि क्षयोपशमिक भाव से होती है. और तीनों अज्ञान भी मती श्रुति-अवि ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम विशेष कर होते हैं. अनन्तान बन्धि चौक मिथ्यात्व मोह नीय के क्षयोपशम से होता है. और सम्यक्त्व मोहनीय के उदय में वेदते है. तब वेदक सम्यक्त्व पाती है. देशविरति पना अप्रत्याक्यनावरणीय के क्षयोपशम से होता है. और सामायिकादिक तीनों चरित्र प्रत्याख्यान्यादिक के क्षयोपशम से होता है. इसलिये इन १८ ही भेदों को क्षयोपशम भाव में लिये हैं.

४ क्षायिक भाव के ९ भेदः—केवल ज्ञानावरणीय और केवल दर्शनावरणीय इन दोनों सर्व घातिक कर्मोंका सर्वथा नाश होनेसे आत्मा के सर्व गुण रूप केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्रकट हुवा, अनन्तानू बन्धि चौक और तीनों दर्शन मोहनीय का का क्षय होने से आत्मा में अक्षय तत्त्वरूपी रूप गुण प्रगट हुवा सो-क्षायिक सम्यक्त्व, और २१. चारित्र मोहनीय की सर्व प्रकृतियों के क्षय होनेसे सर्व जीवोंको अभय देने रूप जो गुण प्रगट हुवा सो यथाख्यात चारित्र, और अन्तराय की दानादि पांचों प्रकृति के क्षय होनेसे-१ अनन्त दान लब्धि, २ अनन्त लाभ लब्धि, ३ अनन्त भोग लब्धि, ४ अनन्त उपभोग लब्धि, और ५ अनन्त बलवीर्य लब्धि, गुण प्रकटे. यह ९ भेद क्षायिक के. यह क्षायिक भाव सो क्षयकी हुई प्रकृतियों को पछि उदयादिक भावको कदापि प्राप्ति नहीं होने देता है.

५. परिणातिक भाव के ३ भेदः—( १ ) मुक्ति जाने जोग जीव का स्वभाव भव्य पना. ( २ ) मुक्ति कदापि नहोवे ऐसा जीव का स्वभाव सो अभव्य पना. और ( ३ ) द्रव्य तथा भाव प्राणो का स्वभाव गेही धारण करने वाला सो जीव पना. यः तीनों स्वभाव अनादि अन्त उत्पन्न और नाश रहित सो परिणातिक भाव जानता. यों-पांचो भावो के-मय भिन्न ५३ भेद होते हैं. =

ज्ञानादवर्णीय, दर्शनादवर्णीय और अन्तर्गत. इन तीनों कर्मों में एक ओपगमि का भाव बिना चारों भाव पाते हैं. वेदनीय, आनुष्य नाम और सोव इन कर्मों में-१ ओदयिक, श्लाघिक और परिणातिक यः तीन भाव पाते. और मोक्षनीय कर्मों में एक ओपगमिक भाव पाता है.

### पांचों भावों के विशेष भेद सूत्र ने.

१ ओदयिक भाव—जैसे धतुरा का भक्षण करने में भवन रुद्ध की वस्तु पीने में मय देखाती है. तैसी जीवतो शुद्ध निष्ठ समान है. पन्त अष्ट रम मय धतुरा के रस के उदय का जीव कर्म रसाय में परिण में सो ओपगमि भव. और जो अन्तर्गत नामक धातवो एकती है. पन्त रुग्ण काग मस्त्रो संयोग में शुद्ध रसाय कागमि भव मय में परिणमवै तैसे ओपगमि भाव के स्वभाव में जाना अन्त मय में परिण में जने-अंतर्ही, अंतर्पुष्प, अंतर्पुष्प, अंतर्गुह, अंतर्गुह, अंतर्गुह, अंतर्गुह, अंतर्गुह. इन उदय भावो दो भेदः-१ जिनमें आगे कसोता उदय होतो उदय और उदय निष्पन्न रसो दो भेदः-१ जीव उदय निष्पन्न और अजीव उदय निष्पन्न इनमें जीव उदय

य निष्पन्न के-३६ भेदः-४ गति, ६ काय, ६ लेख्या, ४ कपाय, ३ वेद ( एवं २३ और) २४ असत्नीपणा, २५ अज्ञानी पणा, २६ मिथ्यात्व पणा, २७ अविरति पणा, २८ आहारिक पणा, २९ संसारिक पणा, ३० छद्मस्त पणा, ३१ सयोगी पणा, ३२ अ-केवली पणा, और ३३ असिद्ध पणा। और दूसरे अजीव उदय निष्पन्न के ३० भेद-५ वर्ण, २ गन्ध, ५ रस, ८ स्पर्श, ५ शरीर, और पांचों के परिण में प्रयोग से पुद्गल।

२ ओपशमिक भाव—जैसे राख कर ढकी हुई अग्नि किसीभी वस्तु को दग्ध नहीं कर सकती है। परन्तु अभ्यन्तर में दग्ध करने की सत्ता बनी है वो वायु आदि संयोग से प्रकट होती है। तैसेही-जीवके परिणाम अन्तर्मुहूर्त काल शुद्ध परिण में-ज्ञान दर्शनादि शुद्ध उपयोग में प्रवृत्ते जिससे मोहनीय कर्म की शक्ति का अच्छादन (ढक्कन) होवे सो उपशम भाव, इसके दो भेदः-१. अनन्तान बन्धी चौक और तीनों मोहनीय इन सातों प्रकृति का रस और प्रदेश नहीं होता है। उसे उपशम कहते हैं। और उससे तत्त्वकी राखी प्रगटे सो उपशम सम्यक्त्व। बाकी रही २१ प्रकृति के उपशम से जो चारित्र्य में स्थिर भाव होवे सो ओपशमिक चरित्र. +

३ क्षायिक भाव—जैसे पाणी करके साफ बुझाई हुई अग्नि पीछी प्रज्वलित नहीं होती है। तैसेही जगन्मोह कर्म की ७ ( अनन्तान बन्धी चौक और दर्शन बि-क) प्रकृति, उत्कृष्ट २८ ही प्रकृति का ऐसा क्षय करे कि पीछी वो कदापि प्रगट नहीं होवे सो क्षायिक भाव। इसके २ भेदः-१. प्रथम मिथ्यात्व मोह, फिर अनन्तानु बन्धि चौक, फिर प्रयाख्यानी चौक, यों अनुक्रम से क्षय करे सो क्षायिक, और २ क्षायिक, निष्पन्न इसके ९ भेदः-१. ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयसे अनन्त केवल ज्ञान प्रगट हुवा, २ दर्शनावरणी के क्षयसे अनन्त केवल दर्शन प्रगट हुवा. ३ अनन्तान बन्धि चौक और तीनों मोहनीय के क्षयसे अनन्त क्षायिक सम्यक्त्व प्रगट हुवा. ४ मोहनीय की बाकी रही २१ प्रकृति के क्षयसे क्षायिक यथाख्यात चारित्र्य प्रगट हुवा. ( और अन्तराय कर्म की पांचों प्रकृतियों के क्षयसे प्रगट हुई पांचों लब्धियों अर्थात् ) ५ दानान्तराय के क्षयसे अनन्त दानलब्धि प्रगटी, ६ लाभान्तराय के क्षयसे अनन्त लाभ लब्धि प्रगटी

+ पाठान्तर-उपशम भाव के ११ भेदः—४ कपाय, ५ राग, द्वेष, ६ दशनमोह, ७ चारित्र्यमोह, ८ दर्शनलब्धि, ९ चारित्र्य लब्धि, १० छद्मस्त और ११ वीतरागी.

७ भोगान्तराय के क्षयसे अनन्त भोग लब्धि प्रगटी, ८ उप भोगान्तराय के क्षयसे अनन्त उपभोगा लब्धि प्रगटी, और ९ वीर्यान्तराय के क्षयसे अनन्त बलवीर्य लब्धि प्रगटी. +

४ क्षयोपशमिक भाव—जैसे बदलोंकी गहरी घटासे अच्छादित हुवा सूर्य का तेज, वायु के प्रयोग्य से ज्यों ज्यों बदल पतले पड़ते जाते हैं. त्यों त्यों तेज—प्रकाश अधिक बढ़ता जाता है ! तैसेही कर्म रूप बदलों से अच्छादित हुई आत्मा ज्ञानादि गुणो रूप तेज के मन्दता में स्थित, शुभ परिणाम रूप वायु के प्रयोग्य से—उदयावसी रस के क्षयसे, अप्रविष्ट रसके अनुदय रूप उपशम से और कितनेक स्पर्द्धक के उदय से उदयानुविधि क्षयोपशम होता है. सो फक्त चारों घातिये कर्मों काही होता है. अघातिये का नहीं. इसलिये जो घातिये कर्म उदयमें आयेये उनको तो क्षयकिये. वा-की के कर्म सत्ता में रहै वोभी पतले पड़गये, ऐसी मिश्रता होनेसे इसे मिश्र भावतथा क्षयोपशम भाव कहते हैं, इसके दो भेद—१ ऊपरोक्त विधिसे चारों घन घातिक कर्मों क्षयोपशम करे सो—क्षयोपशम और क्षयोपशम निष्पन्न कर्मों का क्षयोपशम होने से ३२ गुण प्रगटे:—प्रथम ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम होने से ८ गुणों की प्राप्तिहो वै:—१ मतिज्ञान, २ श्रुतिज्ञान, ३ अवाधि ज्ञान, ४ मनःपर्यव ज्ञान, ५ मतिअज्ञान, ६ श्रुतिअज्ञान, ७ विभङ्ग ज्ञान, और ८ आचाराङ्गादि सूत्रका जान पना. । दूसरा दर्शनावरणीय कर्म का क्षयोपशम होने से ८ गुण प्रगटे:—१ चक्षुर्दर्शन, १० अचक्षुर्दर्शन ११ अवधि दर्शन, १२ श्रोतन्द्त्रिय का जानपना. १३ चक्षुर्इन्द्रियका जान पना. १४ घणेन्द्रिय का जान पना. १५ रसेन्द्रिय का जान पना. और १६ स्पर्शेन्द्रिय का जान पना. । तीसरे मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से ८ गुण प्रगट हुवे:—१७ सम्यग दृष्टि पना. १८ मिथ्यात्व दृष्टि पना. १९ सममिथ्यात्व दृष्टि पना. २० सामायिक चारित्र्य पना. २१ छेदो स्थापनीय चारित्र्य पना. २२ परिहार विशुद्ध चारित्र्य पना. २३ सू-

× पठान्तर.—क्षायिक निष्पन्न के ३७ भेद:—५ ज्ञानावरणीय की, ९ दर्शनावरणीयकी, २ वेदनीय की, ८ (क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, दर्शनमोह और चारित्र्य मोह यह ८) मोहनाय की, ४ आयुष्य की, २ नामकी, २ गोत्रकी, और ५ अन्तरायकी, यों आठों कर्मोंकी सब ३७ प्रवृत्तियों का क्षय—सर्वथा नाश करे सो क्षायिक निष्पन्न भाव.

क्षम सम्यराय चारित्र पना. और २४ यथाख्यात चारित्र पना. । चौथे अन्तराय कर्म के क्षयोपशम से ८ गुण प्रगट हुवे, २५ क्षयोपशम दानलब्धि, २६ क्षयोपशम लाभ लब्धि, २७ क्षयोपशम भोगलब्धि, २८ क्षयोपशम उपभोग लब्धि, २९ क्षयोपशम व लब्धि, ३० बाल वीर्य, ३१ पण्डित वीर्य. और ३२ बाल पण्डित वीर्य + ॥

+ यह क्षयोपशम भाव सम्यगदृष्टि और मिथ्यात्व दृष्टि दोनोंके ही होता है. क्योंकि-चारो धातिये कर्मोंकी-देहसे निर्जरा होवे उसे क्षयोपशम भाव कहने है.—यह निर्जग दो-नो प्रकार के जीवो कर सकते हैं. जिस में सम्यग दृष्टिके ज्ञानावरणी आदि कर्मों का ज्यो पशम होनेसे मति ज्ञानादि चारों ज्ञान की प्राप्ति-होती है. और मिथ्यात्व दृष्टि के ज्ञानावरणीय कर्मोंका क्षयोपशम होनेसे मति अज्ञानादि तीनो अज्ञानकी प्राप्ति होती है. क्योंकि-मिथ्यात्वने ज्ञानावरणीय कर्म का तो क्षयोपशम किया. परन्तु मिथ्यात्व मोहनीय का उदय प्रवर्तता है. और सम्यक दृष्टिने दोनों का क्षयोपशम किया है. ऐसीही क्षयोपशम दानादि लब्धि में भी जानना. सम्यग दृष्टि पात्रापात्र का विचार कर दान कर्ता है. और मिथ्यात्वो समझे नहीं. और भी कितनेक ग्रन्थों में—क्षयोपशम काव्य के-५ भेद किये है:—१ क्षयोपशम लब्धि सो जैसे निगोद में जीवो जन्म मरण कर रहे है. वहा मोहनीय कर्म की वर्गण अकाम निर्जरा से कुछ पतली हुई, तब वहा से निकल पृथ्व्यादि पाचो स्थावरों में आया, फिर वहा भी कर्म पतले पड़े तब त्रस पनापाया, योही कर्म वर्गणा पतली पड़ते २ तेन्द्रिय, चो रिन्द्रिय, असंज्ञी पचेन्द्रिय, संज्ञीपचेन्द्रिय, नर्क, देव जावत मनुष्य पर्याय को प्राप्त हुआ. यो ज्यो ज्यो उज्जल होता गया त्यो त्यो ऊचा आता गया, सो क्षयोपशम लब्धि. २ विशुद्धता लब्धिसो—क्षयोपशम लब्धि में जो विशुद्धता करिथी उस से अधिक विशुद्धता होनेसे—सम्यक की प्राप्ति तो नहीं कर सका परन्तु मतिकी विशुद्धताकर जिनेश्वरका और जिनेश्वर के मार्ग में प्रवर्तक चारो तीर्थों का भाक्तिवन्त बना. दानादि धर्मा राधन करने लगा. त्याग वैराग्यादि भाव भी प्रवर्ते—यथा शक्ति किये भी-स्वत जिन वचनों का पठन मनन करे, दुसरे से करावे. नर्क निगोदादि के दुख से कम्पाय मान होवे. परन्तु आत्म पुद्गलो का भेद विज्ञान न होवै. । जिससे पुद्गलोंपर से ममत्व घटे नहीं. बावलेकी माफिक तप संयमका आचरण कर नवग्रीवैग तक उत्पन्न होवै, परन्तु एक भी भय उठावै नहीं. अभव्यवत्. सो विशुद्धता लब्धि. । ३ उपदेगना लब्धि सो—विशुद्धता लब्धि से अधिक विशुद्ध होने से-तीर्थकर के-

५ परिणामिक भाव—जो जीव अजीव के परिणाम परिणमे सो परिणामिक भाव, इसके दो भेदः—१. मादि परिमाण सो पलटे उसे कहते हैं, जिसके अनेक भेदः—

वर्ज गगनर साधु साध्वी श्रावक श्राविका सम्यक दृष्टि के मुख से निग्रन्थ प्रवचना का श्रवण कर तत्त्वज्ञ बने, सम्यक्त्व को प्राप्त करे, महोदयकी प्रवृत्ता से पीछा पड़े, वो उच्छृष्ट अर्थ पुष्ट परावर्तन बाद अग्र्य सम्यक्त्व को प्राप्त करे, सो उपदेश लब्धि, ४ प्रयोग्य लब्धि सो—उपदेश लब्धिसे भी अधिक विमुद्ध ता होनेसे—संसार घटावे—१७ प्रकार समय पाले १२ प्रकार तप करे, २२ परितह सम भावसहै, तथा—श्रावक के—१२ व्रत, ११ प्रतिमा आदरे पाले, जिस से अनन्त कर्म वर्णणाकी निर्जरा होवे, परन्तु महोदय कर-निन्दव, एका न्न वादि जमाजीवन होवे, कुछ संसार भ्रमण वाजी रहैसो प्रयोग्यसा लब्धि और ५. करण लब्धि सा प्रयोग्य लब्धि से भी परिणामों की अधिक विमुद्धता होने से जाविकी भवस्थिति काल स्थिति परिपक्व होवे तब मिथ्यात्व ग्रन्थी का भेद कर, उसवक्त तीन करण होतेहैं सो कहते हैं (१) अथ करण सो—आयुष्य विना सातों कर्मोंकी स्थिति एक कोडाकोड सागर ने कुछ जन होवे तब अथ करण होता है, उस वक्त सम्यक्त्व और मिथ्यात्वाकी तुल्यता हो अन्तर सुहृत् पर्यन्त रहे, तब मिथ्यात्व मोहका क्षय करने प्रवर्तना सम्यक्त्व दर्शने योग्य बने, जैसे कृमि क्षेत्र को स्मारकर बीज डालने लायक बनावें, त्यो आत्म बोध बीज ग्रहण करने योग्य बने सो अथ करण, यह करण भव्य अभव्य दोनों के होता, बहून से जावों यहा तक आकर पीछे पड़जाते हैं, और कितनेक जावों आगे चडते हैं, तब—(२) अपूर्व करण को प्राप्त होते हैं, जैसी परिणामोंकी उज्जलता अपूर्व करण में होतीहै वैसी पहिले कदापि नहीं हुई इनलिये इने अपूर्व करण कहते हैं, यहा अन्तर सुहृत् काल रहे बाद—(३) अनिर्वाति करण होना है—जिस से पीछा निवृत्तता नहीं होता है, अर्थात् यहा अपे बाद सम्यक्त्व जरूरही स्मरणा है, भेद विज्ञान की प्राप्ति होती है, आत्माका और पुद्गलों का भिन्न २ स्वरूपा अनुभव होता है, जिन्मे पुद्गल प्रणामि मे इन्द्रियों के विषय की लोलुप्ता बढ जाती है—लुखवृत्ति बन जाती है, आत्मानुभव होता है, तब भव भ्रमण घटने का खर करता है, यहाँ सम्यक्त्व रत्न की प्राप्ति होती है, यह तीनों करण जिस के होते हैं सेही चतुर्थ गुणस्थान स्पर्श गत्ता है, सम्यक्त्वो कहा जाता है, ॥ यह पाचों लब्धियोंकी क्षययोग्य भाव में समाजति है.

जैसे जीवके परिणाम-गति जाति कषाय, लेश्या, इत्यादि पलटे सो, और अजीव के परिणाम वस्तु के विषय उत्पात व्यय क्षय हेवै सो. और अनादि परिणाम-सो कदापि पलटे नहीं जिसके ३ भेदः—१ जीव परिणामी, २ भव्य परिणामी, ३ अभव्य परिणामी. यह तीनों शाश्वते भाव हैं.

६ सन्नीवाइ भाव सो—जैसे दही के और सक्कर के मिलने से दोनों का एकर स हो श्रीकरण नाम का पदार्थ बनता है. ऐसेही—एक दो तीन चार या पांचो भावों एकस्थान संयोग होवे उसे—सन्नीवाइ भाव कहते हैं. जिसमें दो भावों का मिलाप होवे सो द्विसंयोगी भङ्ग कहा जाता है, जिसके—१० भाङ्गे होते हैंः—१ उदय उपशम २ उदय क्षायिक, ३ उदय क्षयोपशम, ४ उदय परिणामी, ५ उपशम क्षायिक, ६ उपशम क्षयोपशम, ७ उपशम परिणामी, ८ क्षायिक क्षयोपशम, ९ क्षायिक परिणामी, और १० क्षयोपशम परिणामी. । ऐसेही तीन भाव मिलने से तीन संयोगी भी १० भाङ्गे होते हैंः—१ उदय उपशम क्षायिक, २ उदय उपशम क्षयोपशम. ३ उदय उपशम परिणामी. ४ उदय, क्षायिक, क्षयोपशम. ५ उदय क्षायिक परिणामी. ६ उदय क्षयोपशम परिणामी. ७ उपशम क्षायिक क्षयोपशम, ८ उपशम क्षायिक परिणामी. ९ उपशम क्षयोपशम, परिणामी. और १० क्षायिक क्षयोपशम परिणामी. । चार भाव मिलने से चउ संयोगी ५ भाङ्गे होते हैंः—१ उदय उपशम क्षयोपशम परिणामी. २ उदय उपशम क्षायिक परिणामी. ३ उदय उपशम क्षयोपशम परिणामी. ४ उदय क्षायिक क्षयोपशम परिणामी. ५ उपशम क्षायिक, क्षयोपशम और परिणामी. । और पांच संयोगी—एकही भाङ्गा होता हैः—१ उदय उपशम क्षायिक क्षयोपशम और परिणामिक. । यों पांचों भावों के सब मिल २६ भाङ्गे होते हैं. इन २६ भाङ्गो में से २० भाङ्गे तो शुभ्य है. कंठी मिलते नहीं. और ६ भाङ्गे मिलते हैं. सो कहते हैंः—१ द्विक संयोगी नववा भाङ्गा क्षायिक और परिणामिक भाव वाल सिद्ध भगवन्त में पाता है. २ त्रीसंयोगी पांचवा भाङ्गा उदय क्षायिक और परिणामिक भाव वाला—केवली भगवन्त में मिलता है. ३ और त्रिसंयोगी छटा भाङ्गा उदय क्षयोपशम परिणामिक वाला—दुसरा गुणस्थान छोड़ पाहिले गुणस्थान से दशवे गुणस्थान तक—क्षयोपशम सम्यक्त्वी में मिलता है. ४ चौसंयोगी का तीसरा भाङ्गा—उदय उपशम क्षयोपशम परिणामिक भाव वाला उपशम सम्यग् दृष्टि में मिलता है, ५ चौसंयोगी चौथा भाङ्गा—उदय क्षायिक क्षयोपशम परिणामिक भाव वाला—क्षायिक सम्यक्त्वी में मिलता है. और ६ पांच संयो-

१. भाङ्गा इग्यारवे गुणस्थान में भिलता है.

श्रेणिद्वार का बहुतही विस्तार से खुलासा प्रथम खण्डके ५वे लक्षण द्वारा में किया हैं सो सब यहां जानना

वेदे द्वार सो उदय में आये हुवे कर्म पुद्गलों का शुभा शुभ परिणाम को आत्म प्रदेशों कर चैत्वन्यता-उपयोग युक्त अनुभवे सो वेदना जानना. इसका विशेष खुलासा अन्य स्थान मेरे देखने में न आया इसलिये यहां संशेष मेंही लिखाहै. परन्तु रचना विशेषत्व उदय द्वार के जैसी देखाती है.

ऐसेही निर्जरा का भी खुलासा विशेष नकर सका परन्तु इसकी रचाना विशेष ऊदीरणा द्वार जैसी जानना.

### दश करण द्वार का खुसासा

वन्धुकट करणं । सं संकम मोकद दीरणा सत्तं ॥

उदयुव समा मणिधत्ती । णिकाचणा होदिपाडि पयडी ॥

गोम्पट मार कर्म काण्ड गो- १४७

१. कर्मों का सम्बन्ध होना अर्थात्-मिध्यात्वा परिणामों में जो पृथक्द्रव्य का ज्ञानवरणीयादि रूप होकर परिणमन करने में ज्ञानादि को आवरण करना सो बन्ध करण है. २. कर्मों का स्थिति तथा अनुभाग का बढाना सो - उन्कट्टण करण है. ३. बन्ध रूप प्रकृति का दुमरी प्रकृति रूप परिणमना सो संक्रमण करण है. ४ स्थिति तथा अनुभाग का कम होना सो " अपकर्षण करण " है. ५ जिनके उदय का अभि समय नहुवा. ऐसे जो कर्म द्रव्य उनको अपकर्ष के बलमे उदया बली बलमे प्राप्त करना सो-"ऊदीरणा करण" है. ६ जो पृथक् कर्म रूप रहे सो नचा करण है. ७ जो कर्म अपनी स्थिति को प्राप्त होवे. अर्थात्-फलदेने के समय को प्राप्त होवे. सो " उदय करण " है. ८ जो कर्म उदयावली में प्राप्त नहीं किया जाय. अर्थात्-ऊदीरणा अवस्थाको प्राप्त नहीं होमके. सो " उपसान्न करण .. है. ९ जो कर्म उदयावली में भी प्राप्त नहोमके. और संक्रमण अवस्थाको भी प्राप्त नहो मके सो " निगमि करण .. है. और १० जिन कर्म की उदीरणा. संक्रमण. उन्कट्टण. और उपसन्न. यह चारोंही अवस्थाओं नहो मके सो-निवादिन करण है. अवस्था बान्न बन्दे ॥



इन दशोही करणों में से—आयुष कर्म में तो संक्रमण करण बिना नव करण पाते हैं और वाकी के सातोही कणों में दशोही करण पाते हैं । इसका विशेष खुलामा यह है कि—उपशान्त कपाय गुणस्थान में—मिथ्यात्व और मिश्र मोहनीय का संक्रमण करण होता है, अर्थात्—इन दोनों के कर्म प्रमाणों में सम्पत्त्य मोहनीय रूप परगम जाते हैं । और वाकी की प्रकृतियों का संक्रमण नहीं होता है । दही करण होते हैं । वन्ध करण और उत्कर्षण करण यह दोनों प्रकृतियों अपनी २ वन्ध व्युच्छितिके स्थान होती हैं और प्रकृतियों अपनी २ जाति की जहां वन्ध से व्युच्छिति है । वहां संक्रमण करण होता । अयोगी के ८५ सत्ता की प्रकृतियों का, सयोगी के अन्त समय तक अपकर्षण करण होता है । तथा क्षीण कपाय गुणस्थान में सत्ता से व्युच्छेद हुआ १६ प्रकृति । और सूक्ष्म स्मरपाय गुणस्थान में सत्ता से व्युच्छेद रूप हुआ जो सूक्ष्म लोभ, यो २७ प्रकृतियों का क्षय देश पर्यन्त अपकर्षण करण जानना । दो क्षयदेश काल यहां पर एक समय अधिक आवली माव है । क्योंकि—यह १७ प्रकृतियों स्वमुखो दयी है । \* देवायु का अपकर्षण करण उपशान्त कपाय पर्यन्त है । मिथ्यात्वादि तीनों अनिष्टाति, करण में क्षय हुआ १६ प्रकृतियों इनके क्षय देश । ÷ ( अन्त काण्डा के अन्त काली पर्यन्त अपकर्षण करे है । और क्षपक अवस्था में—अनिष्टाति करण में क्षय हुआ जो ८ कपाय से लेकर २० प्रकृतियों है, उनका भी अपने २ क्षय देश पर्यन्त अपकर्षण करण है । उपशम श्रेणि में उपशान्त गुणस्थान पर्यन्त मिथ्यात्वादि तीनों दर्शन मोहनीय और नर्क द्विकादि १६ इन प्रकृतियों अपकर्षण करण है । तथा ८ कपायादि को का अपने २ उपशम करने के स्थान तक अपकर्षण करण है । अनन्तायु वन्ध चौक का असंयतादि चारों गुणस्थानों में यथा संभव जहां विसंयोजना (अन्य रूप परिणमन ) होवै, वहां तकही अपकर्षण करण है । तथा नर्कायु के असंयति गु-

× प्रकृतियों दो प्रकार की होती है.—१. स्वमुखोदयी सो—अपनेही रूप उदय फल देकर नाश होजाय । इसका काल एक समयाधिक आवली—प्रमाण है, वही क्षय देश—क्षय होनेका स्थान है । और २. परमुखोदयी सो— जो प्रकृति अन्य प्रकृति रूप उदय फल देकर नष्ट होनाय इसके अन्न काण्ड की अन्तफली सो क्षय देश है ।

= जिम स्थान में क्षय हुआ हो सो क्षय देश होता है ।

णस्थान तक और तिर्यचायु के देश संयति गुणस्थान तक—ऊदीरणा, सता, उदयय है तीनो करण प्रसिद्ध हैं. क्योंकि—पहिले कहे हैं. । उपशम सम्यक्त्व के सन्मुख हुवे जीवके—मिथ्यात्व गुणस्थान के अन्त मे एक समयाधिक आंवली काल पर्यन्त मिथ्यात्व प्रकृति का उदीरणा करण होता है. उतनेही काल तक उसका उदय है. और सूक्ष्म लोभका सूक्ष्म सम्पराय मे ही ऊदीरणा करण है, इसके आगे उदय नहीं. ॥ जो कर्म उदया वलीमे प्राप्त नहीं किया जावे अर्थात्—जिसकी निर्जरा नहोसके जो ऊदीरणा रूप भी नहोसके और सक्रमण रूप भी नहो सके उत्कर्षण और चपकर्ष भी नहो सके, चारो किरिया नहो सक्ति हो ऐसे क्रमसे उपशान्त करण विधत्ति करण और निका चित करण यह तीनो करण अपूर्व करण गुणस्थान तक ही होते हैं. इसके ऊपरयथा सभव उदयावली आदि प्राप्त होनेकी सामर्थ्य वलेही कर्म प्रमाणू पायेजातेहै.

## गुण श्रेणीका झूलासा

जैमे कोइ दुर्बल रोगिष्ट अतिवृद्ध अवस्था कर जीर्ण शरीर को प्राप्त हुवा पुरुष बोटे कुहाडे से खेरके बचल के काष्टा को महा परिश्रम कर थोडा भाग छेड सकता है. और कोड जन्म से अरोग्य प्रबल तरुण पुरुष तीक्ष्ण फरमी फरमी कर मूके हुवे आकडे के थता एरन्ड के काष्टा को थोडेही परिश्रम मे और थोडेही काल में बहुत कट डालता है. चकना चूर कर डालता है. तैमेही जो मिथ्यात्वी जीवों है. वो कर्म रूप रोग की प्रबलता का वीर्यहीन—जीर्णहुवे अपने अत्यन्त चीकने कर्म रूप काष्टा को बाल तपश्चरणादि बोटेसख कर बहुत काल तक महा कष्ट महन करही अल्प-थोडे कर्मों की निर्जरा कर सक्ते हैं. और जो सम्दग दृष्टि जीवों हैं. ज्ञानादि आन्माके निज गुणों कर बलिष्ट हुवे, शुभ परिणामों की दृष्टि रमयात स्थिनियात कर. निःमाग हुवे कर्मों को अपूर्व करणादि तीक्ष्ण शखकर थोडे काल में और थोडेही प्रयास कर बहुत कर्मों का चकना चूर कर डालते हैं. वो कैसी तरह मे कौन २ जीवों ईनादिक कर्मों को निर्जरा कैसी तरह मे करते हैं. जिसका स्वल्प अनुक्रम मे ११ गुणश्रेणि में दर्शाया है सो यहां कहते हैं:—

१. प्रथम सम्यक्त्व के निमित्त ग्रन्थि भेद करने तथा दृढग द्रव्य करण करने—स्थिति घात रमयात गुणश्रेणि और अपूर्व वन्दन इन चारों का मोजो करण—प्रति

समय असंख्यात गुणि निर्जरा की वृद्धि होती है. तैसेही अपूर्व निवृत्ति करण में भी जानना. और सम्यक्त्व प्राप्त हुवे बाद भी सम्यक्त्व प्रत्यय कर अन्तर मुहूर्त प्रमाण बाकी रहै कर्मों के दलको खपाने गौपूच्छ के संस्थान जैसी दलोंकी रचना करे सो प्रथम सम्यक्त्व गुण श्रेणि जाणना. यह आगे कहेगे उन दूसरी श्रेणियों की अपेक्षा कर सम्यक्त्व प्रत्यायिक मन्द विशुद्धि वेदने के वासते दीर्घ अन्तर मुहूर्तमें वेदने लायक और अल्प पदशों की गुणश्रेणि होती है.

२ इससे देशविरति निमित्त अपूर्व करण करता पहिली गुणश्रेणि के संख्यात गुणहीन ऐसे अन्तर मुहूर्त वेदने लायक और पूर्वकी श्रेणिसे संख्यात गुणवृद्धि प्रदेश दलकी रचना से देश विरति गुण प्रत्यायि श्रेणि सो प्रथम गुणश्रेणि की निर्जरा से असंख्यात गुण निर्जरावन्त दूसरी श्रेणी है.

३ उस देश विरति गुणसे अनन्त गुण विशुद्धि में वृद्धि पाते सर्व विरति की लाब्धि निमित्त अपूर्व करण करता सर्व विरति गुण प्रत्यायिक देश विरति गुणश्रेणि के अन्तर मुहूर्त से संख्यात गुणहीन ऐसी अन्तर मुहूर्त में वेदने योग्य असंख्यात गुणवृद्धि प्रदेशात्मक असंख्यात गुण निर्जरा हेतु ऐसी सर्व विरति रूप तीसरी सर्व विरति गुण श्रेणि होती है.

४ इनमे अनन्त गुण वृद्धि अनन्तान बन्धि कपाय की विसंयोजना कर्ता सर्व विरति गुण श्रेणि के अन्तर मुहूर्त से संख्यात गुणहीन अन्तर मुहूर्त वेदने लायक असंख्यात गुण वृद्धि दलिक ऐसी चौथे गुण श्रेणि जाणना.

५ इसमें भी अत्यन्त विशुद्ध परिणाम से पहिले की गुण श्रेणी के अन्तर मुहूर्त के संख्यात गुण हीन अन्तर मुहूर्त में वेदने लायक असंख्यात गुण वृद्धि दलिक तीनों दर्शन मोहनीय खपाने के लिये गुण श्रेणिकरे सो क्षायिक सम्यक्त्व प्रत्यायिक असंख्यात गुण निर्जरा रूप पांचवी गुण श्रेणि होती है.

६ इसमें भी संख्यात गुणहीन ऐसी अन्तर मुहूर्त वेदने लायक असंख्यात गुण वृद्धि दलिक असंख्यात गुण निर्जरा हेतु चारित्र मोहनीय को उपगमाने अपूर्व करण अनिवृत्ति करण गुणम्यान छट्टी गुणश्रेणि करे.

७ इसमें अनन्त गुण विशुद्धि उपगान्त मोह प्रत्यायिक संख्यात गुणहीन मुहूर्त में वेदने योग्य असंख्यात गुण वृद्धि दलिक उपगान्त मोह गुण श्रेणी.

८ इसमें भी अनन्त गुण विशुद्धि संख्यात गुणहीन मुहूर्तमें वेदने योग्य अम-

ख्यात गुण वृद्धि दलिक असंख्यात गुण निर्जरा से वृद्धि पाते चारित्र मोहनीय ख पाते आठवे और दशवे गुणस्थान मे दलिक रचना करे.

९ इससे अत्यन्त विशुद्ध संख्यात गुणहीन अन्तर मुहूर्त में वेदने योग्य असंख्यात गुण वृद्धि दलिक क्षीणमोह गुणस्थान प्रत्यायि की करे.

१० इससे संख्यात गुणहीन अन्तर मुहूर्त मे वेदने लायक असंख्यात गुण वृद्धि दलिक संयोगी केवली के असंख्यात गुणी निर्जरा हेतु दलिक रचन करे सो दशवी श्रेणि. और

११ इससे भी इतर अयोगी केवली गुणस्थान कर्म खपाने निमित्त संयोगी गुण-श्रेणि के अन्तर मुहूर्त से संख्यात गुणहीन अन्तर मुहूर्त वेदने योग्य असंख्यात गुण वृद्धि दलिक कर्मदल रचना करे सो ११ वी गुण श्रेणी. यो इग्यारेही गुणश्रेणिकी. रचना कर बहुत काल में वेदने योग्य कर्मों की थोड़ेही काल मे निर्जरा कर डालते हैं. अर्थात्-गुणा कारसे कर्म दलको वेदकर निर्जरा अर्थ कर्म दलको व्यवस्थासेस्थापन करना. उपर की स्थिति से उतार २ कर उदयावली स्थिति के समय २ स्थिति में असंख्यात गुण वृद्धि पाता संक्रमावते जोदल श्रेणीसो गुणश्रेणि कहना. यो थोडे काल में बहुत कर्मदल निर्जरता है. । इसमें प्रथम गुण श्रेणि का काल अपूर्व करण और अनिष्टात्ति करण के काल से किंचित विशेष अन्तर मुहूर्त प्रमाणे जाणना. उस वेद्यमान अन्तर मुहूर्त से उपर की स्थिति के दलिये उतार २ कर वेद्यमान स्थिति के उदय प्रति समय असंख्यात गुण २ वृद्धिपाता अन्तिम समय तक संक्रमाता है अर्थात् व-ऊपर की स्थिति का उतारा हुवा जो दल उसमें पहिले समय थोडा संक्रमावे. उससे दूसरे समय असंख्यात गुणा संक्रमावे. उससे तीसरे समय असंख्यात गुणा संक्रमावे. यों समय २ असंख्यात गुण वृद्धि कर्ता अन्तर मुहूर्त के अन्तिम समय सर्वोत्कृष्ट संक्रमाकर-भोगवकर खपावे परन्तु गुणश्रेणि के काल में वृद्धि करे नही. ऐसी तरह से सब गुण श्रेणी का स्वरूप जाणना. परन्तु एकेक से श्रेणिका अन्तर मुहूर्त में ख्यात गुण हीन २ पहिले की श्रेणिके अपेक्षा से होता है. और कर्म दल असंख्यात बढ़ता होता है. । इसमें देश विरति और मर्द विरति पणा प्राप्त कर्ता तो दो करण करे परन्तु तीसरा अनिष्टात्ति करण नही करे. तथा देश विरति मे सर्व विरति मे अ भोग पडा और फिर जो देशात्ति अङ्गीकार करे. उम वक्त भी दो करण करे. और अनाभोग पडातो उन करणों के क्रिये विनाही चडता है इन दोनो करणों कर देना-

व्रत गुण प्राप्त करेतो वो जीव अवश्य बृद्धमान परिणामी होवे वहां बृद्धमान परिणाम में किसी वक्त संख्यात गुण अधिक किसी वक्त असंख्यात गुण अधिक किसी वक्त संख्यात भाग अधिक, कभी असंख्यात भाग अधिक दलकी रचना करे. और जोहा य मान परिणाम होवे तो इन चारो की हायमान दलिक रचना करे. और तुल्य परिणाम में तुल्य दलों की रचना होती है. परन्तु अपनी २ गुणश्रेणि का अन्तर मुहूर्त एकसाही होता है. और अनन्तानु बन्धिकी वीसंयोजना देवता मनुष्य और देवता पयार्त्ता अविरति सम्यग दृष्टि देशविरति और सर्व विरति यह सब तीनों करणों का करते हैं. जिसमें अपूर्व करण अनिष्टात्ति करण के काल में गुणश्रेणि करे. इसमें प्रथम की तीनों गुणश्रेणि सम्यक्त्वी देशविरती सर्व विरति सहसात्कारे पडता हुवा कि-तनेक काल में मिथ्यात्व गुणस्थान मे आवे. ऐसी तरह गुणश्रेणि की रचना जानना,

❀ इति कर्मा रोहण नामक द्वितीय खण्ड ❀





## \* तृत्तिय खण्ड-संसारा रोहण \*

संसारा रोहण के ४१ द्वारोंका अर्थ.

१-३ गतीद्वार जिसमें जीवो गता गत ( जाना आना ) करे सो गति चार हैः  
 —( १ ) "नर्क"—अन्यकार मयस्थान है. सो "नर्कगति" ( २ ) तिर्यच तिरछे बहुत  
 वदे या तिरछे लोक में अधिकांश पावे सो तिर्यच. ( ३ ) मनुष्य मनकी होंग पुरी क-  
 रसकै सो मनुष्य गति. और ( ४ ) "देव" दिव्य प्रकांश वन्त सो देवगति. इन चारो  
 गति में मे किसी एकगति में दुसरे स्थान भे आकर जीवो उत्पन्न होवे सो "आगति  
 उत्पन्न हुवे उसिगति मे स्थिर बने रहे सो " पागति " और मरकर आगे दुसरे स्था  
 न जावे सो " जागति " यह गति आश्रित्य ३ द्वार. ४-६ " जाति द्वार " जिसमे  
 जीवो का स्वपरु जाना जावे सो जाति-५ हैः—( १ ) जिसके फक्त एक स्पर्शेन्द्रिय

चारों गति का स्वरूप गोमटमार ग्रन्थ के जीव कान्ड में ऐमा बताया है.

गाथा—णरमन्ति जदो णिच्चं । दव्व खेतय काल भावेय ॥

अणोण हिय जम्हा । तम्हा ते णारया भणिया ॥१४६॥

अर्थ—जो जीवों को एमा द्रव्य क्षेत्र काल और भाव का संयोग बना हैकि जि-  
 ससे उनका नन रमण नहीं करता है. अमन्योग लगते हैं. और मदा जहां अन्यकार  
 मय स्थान है सो नर्क गति कही जाती है.

गाथा—तिरियंती कुटिल भावं । सुविउल सणाणि गिहःमणाणा,

अचन्त पाव वहला । तम्हा तिरिच्छया भणिया ॥१४७॥

होवेसो—‘एकेन्द्रिय जाति’ (२) जिस के—रसेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय, दोनो होवे सो—वेन्द्रिय जाति. (३) जिसके घ्राणेन्द्रिय, रसेन्द्रिय, और स्पर्शेन्द्रिय, तीनो होवेसो तेन्द्रिय जाति. (४) जिसके—चक्षुरेन्द्रिय, घणेन्द्रिय, रसेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय, चारों इन्द्रिय होवेसो चौरेन्द्रिय जाति. और [५] जिसके श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरेन्द्रिय, घणेन्द्रिय, रसेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय यह पांचोंही इन्द्रिय होवे सो पंचेन्द्रिय जाति. इसके ३ द्वार. ७-१ ‘काया द्वार’—जिस आकार में जीवोंका शरीर परिणमे सो काया ६ है:—[१] जिस का कठिण शरीर हो सो ‘पृथ्वी काय.’ (२) जिसका पतला शरीर हो सो अपकाय. (३) उष्ण शरीर होसो ‘तेजकाय.’ (४) जिस का सूक्ष्म शरीर होवे सो ‘वायु काया.’ (५) जिस का विचित्राकार का शरीर होवे सो वनस्पति काया. और (६) जिस को. वास (दुःख) हुवा प्रत्यक्ष जान ने में आवे सो ‘वस काया.’ जाति मुझव काया के भी ३ द्वार जानने.

१०-१२ दण्डक द्वार—बहुत जीवों का समोह होकर जहां रहे सो दण्डक २४ है:— = सातो नर्क का १ दण्डक, दश भवन पाति देवों के १० दण्डक, पाचों

अर्थ—निर्यंच वक्र (बॉके) स्वभाव वाले. हेय उपादेय ज्ञान राहित. मायावी—फक्त स्वार्थीये पाप कार्य पर प्रीति वन्त. सो तिर्यंच गति जानना.

गाथा—मणान्ति जदोणिच्चं । मणेण णिउणा मणुकूडा ॥

जम्हा मणुझवाय सब्बे । तम्हाते मणुसा भणिया ॥१४८॥

अर्थ—हेय उपादेय पदार्थोंको मनन पूर्वक जाने ऐसा निपुण कला कैशल्यत वन्त. इच्छा होसो कार्य कर सके सो माणुष्य.

गाथा—दिव्वन्ति जदोणिच्चं । गुणेहि अठे हिय दिव्य भावेहिं॥

भासन्त दिव्व काया । तम्हाते भणिया देवा ॥५५०॥

अर्थ—दिव्य—अच्छी क्रिडा सदा करे, अणीमादि अष्टसिद्धीयोंके धारक होवे. महा क्रद्धि वन्त होवे, जिनके शरीर का दिव्य प्रकाश पडता होवे, रोगादि दोष रहित होवे सो देव गति जानना.

= दण्डक द्वारका और सामान्य जीव भेद के द्वारका खुलाशा विशेष जीव के भेद द्वार से जानना.

स्थावर जाति के ५ दण्डक. तीनों विह्वेन्द्रिय जीवों के ३ दण्डक, तिर्यच पचेन्द्रिय का १ दण्ड मनुष्य का १ दण्डक. वाण व्यन्तर देवका १ दण्डक, जोतिपी देवका १ दण्डक, और विमानिक देवका १ दण्डक.

१३ सामान्य ( संक्षेप मे ) जीवके भेद १४ हैं:—१ सूक्ष्म एकेन्द्रिय, २ वादर एकेन्द्रिय, ३ वेन्द्रिय, ४ तेन्द्रिय, ५ चौरिन्द्रिय, ६ असङ्गी पचेन्द्रिय, और ७ सङ्गी पचेन्द्रिय. इन सातों के अपर्याप्ता और पर्याप्ता यों १४ भेद.

१४ विधेय ( विस्तार मे ) जीवों के ५६३ भेद होते ते हैं सो कहते हैं नर्क के १४ भेद:—७ नर्क के नाम [ १ ] घम्मा. [ २ ] वंशा. ( ३ ) शीला ( ४ ) अंजना ( ५ ) रिट्टा. [ ६ ] मया. और [ ७ ] माघवड इन सातों के गोत्र—( १ ) रत्नप्रभा. ( २ ) गर्कर प्रभा. ( ३ ) बालु प्रभा. ( ४ ) पंख प्रभा, ( ५ ) धुम प्रभा ( ६ ) तम प्रभा. ७) तमतमा प्रभा. इन सातों का पर्याप्ता और अपर्याप्ता. यो १४ नर्क के भेद । तिर्यच के ४८ भेद:—प्रयवीकाय, अपकाय, तेडकाय, वायुकाय. इन ४ को सूक्ष्म वादर पर्याप्ता और अपर्याप्ता इन चारों से चौगुने करने से ४+४=१६ भेद हुवे. वनस्पति के ६ भेद:—सूक्ष्म. साधारण, और प्रत्यक्ष. इन तीनों का पर्याप्ता और अपर्याप्ता. यों एकेन्द्रिय तिर्यचक २२ भेद हुवे. । वेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौरिन्द्रिय इन तीनों विह्वेन्द्रिय के पर्याप्ता अपर्याप्ता यों ६ भेद. तिर्यच पचेन्द्रिय. के—जलचर, थलचर, खेचर, उरपर, और भुजपर. यह ५ सङ्गी और ५ असङ्गी यों. १० इन १०, के पर्याप्ता. और १० का. अपर्याप्ता यों २० भेद होते हैं. । सब तिर्यच के ४८ भेद हुवे. ॥ मनुष्य के ३३ भेद करते हैं:—१ भरत. १ ऐरावत, १ महा विदेह. यह तीनों कर्मा भूमी मनुष्य के क्षेत्र जंबु द्वीपमें हैं. २ भरत, २ ऐरावत, २ महाविदेह. यह ६ क्षेत्र कर्मा भूमीके धातकी खण्ड द्वीप में है. और ऐसेही ६ क्षेत्र कर्म भूमीके पूष्करार्थ द्वीपमें हैं. यों १५ क्षेत्र कर्मा भूमीके है. । १ हेमवय. १ एरणवय. १ हरीवास. १ रम्यकवास. १ देवकुरु. १ उत्तरकुरु. यह ६ क्षेत्र अकर्म भूमी ( युगल) मनुष्य के जंबु द्वीपमें हैं. और येही दो दो क्षेत्र यों १२ क्षेत्र धातकी खण्ड द्वीप में है. और ये ही १२ क्षेत्र पुष्करार्थ द्वीप में हैं. यों ३२ क्षेत्र अकर्म भूमी मनुष्य के हैं. और जंबु द्वीपमें भर्त क्षेत्र की मर्यादा का करने वाला चूलहेम वन्त पर्वत, ऐरावत क्षेत्र की मर्यादा का करने वाला शिखरी पर्वत, इन दोनों पर्वतों के दोनों खूनों से दो दो दाढ़ें निकली है. यों दोनों पर्वतों. की ८ दाढ़ें हैं. और एकेक दाढ़ों पर सात द्वीप ( दों-



गरीयों) हैं, यों ५६ द्वीप भी अकर्म भूमी मनुष्य हैं. सब १५+३०+५६+१०१ क्षेत्र मनुष्य के है, इनके पर्याप्ता और अपर्याप्ता यों २०२ भेद, और इनी १०१ मनुष्य के १४ स्थान कों में समुल्लिखित जीव उत्पन्न होवे सो, अपर्याप्ताही मरण पाते हैं १०१ भेद यों ३०३ भेद मनुष्य के ॥ और देवताके १२८ भेदः—१ असुर कुमार २ नाग कुमार, ३ सुवर्ण कुमार, ४ विद्युत कुमार, ५ अग्नि कुमार, ६ उदधी कुमार ७ दिशा कुमार, ८ द्वीप कुमार, ९ पवन कुमार, १० स्थानित कुमार, ( यह १० भवन पति देव ) ११ अम्बे. १२ अम्ब रसे, १३ शाम, १४ सवल, १५ रुदे, १६ महारुदे, १७ काल, १८ महाकाल, १९ अस्सीपत्त, २० धनुष. २१ कुम्भीए, २२ बालु, २३ वेतरणी, २४ खरस्वर. और २५ महाधोप ( यह १५ परमाधामी देवभी भवन पतिकी असुर कुमार जातिमें समावेश होता है. ) २६ पिशाच, २७ भूत, २८ यक्ष, २९ राक्षस, ३० किन्नर, ३१ किंपुरुष, ३२ महोर्ग, ३३ गन्धर्व, ३४ इसीव, ३५ भुइव. ३६ आणपन्नी, ३७ पाणपन्नी, ३८ कन्दिय, ३९ महाकन्दिय, ४० कोहड़, ४१ पदं देव. ( यह १६ वाण व्यन्तर देव ) ४२ आण झमक, ४३ पाण झमक, ४४ लेण झमक, ४५ सेण झमक, ४६ वत्थ झमक, ४७ फल झमक, ४८ फूल झमक, ४९ फल झमक ५० आभि पतिया झमक, ५१ बीज झमक ( यह १० त्रिझमक देवों का भी वाण व्यन्तर देवों में समावेश होता है. ) ५२ चन्द्र, ५३ सूर्य, ५४ ग्रह. ५५ नक्षत्र, ५६ तारा. और ५७—६१ येही ५ स्थिर ( यह १० जोतिषी देव ) ६२ तीन पलिये, ६३ तीन सागरीये, ६४ तेरे सागरीये. ( यह ३ किलविपी देव ) ६५ साइच, ६६ आटित्य, ६७ वरण, ६८ बन्धि, ६९ गदतोय, ७० तुषित, ७१ अरिट, ७२ अगिच्छ, ७३ अव्या बाध. ( यह ९ लोकान्तिक देव ) ७४ सुधर्मा, ७५ इशान, ७६ सनत कुमार ७७ मेहेन्द्र ७८ ब्रह्म, ७९ लान्तक, ८० महेश्वर, ८१ सहसार, ८२ आण ८३ पाण, ८४ अरण, ८५ अचुत, [ यह १२ देवलोक ] ८६ भेदे, ८७ सूभेदे, ८८ सुजाये, ८९ सुमान से, ९० सुदंशण, ९१ प्रियदंशण, ९२ आमोए, ९३ पडीभेदे. ९४ जसोधरे ( यह ९ ग्रीविक ) ९५ विजय, ९६ विजयन्त, ९७ जयन्त, ९८ अपराजित, और ९९ सर्वार्थ सिद्ध. ( यह ५ अनुत्तर विमान ) यों सब ९९ जातिके देवताओं है. इनके पर्याप्ता और अपर्याप्ता यों दुगुने करने से सब १२८ देवताके भेद होते हैं. । और सब मिल ५६३ जीवों के भेद होते हैं. ॥

१५ जीवाणैनी द्वार सो—जिसका वर्ण गन्ध रस स्पर्श एकसा मिलता आ



कमें काजल, की कूपली की तरह ठगे ठस भरे हैं. सो मुक्षम कहे जाते हैं. और जो आंखो देखने में आवे ऐसे बड़े शरीर के धारक छेही काया के जीवों है. सो वादर कहे जाते हैं.

१८ वस स्थावर द्वारः—जो “अण्डय” —अण्डे से उत्पन्न होवे—पक्षी प्रमुख “पोषया”—कोथली में से निकले हाथी प्रमुख. “जराउया” जडसे होवे गौप्रमुख, “रसमा”—रसया उत्पन्न होवे कीड़े प्रमुख, “संसेयया” पक्षीने से उत्पन्न होवे ज्यं प्रमुख, “समुच्छिप्ता”समुच्छिम (सहजही)उत्पन्न होवे मक्खी प्रमुख, “उम्भीया”, जमीन फोडकर निकले तीड प्रमुख, “उववाइया”उत्पन्नही होवे नर्क देव यह सब वस जीवो. इनके लक्षणः—अपने शरीरको—संकोच सत्ते प्रसार सके, रुदन करे. भय भीत होवे, वास पावे. भग जावे, इत्यादि लक्षण जिन्हेके देखने में आवे सो वस जीवों. और जो एकस्थान स्थिर रहे पृथ्वी, पाणी, अधि हवा + वनस्पति, यह पांचों स्थावर जीवो जाणना.

१९ सन्नी असन्नी द्वारः—जिन जीवो का शरीर मात पिता के संयोग से नर्क के बिलों में × और देवता की सैय्या में उत्पन्न होवे सो सन्नी जीव इनके मन (ज्ञान) होता है. और जो समुच्छिम (सहजही) उत्पन्न होवे पांचो स्थावर तीनों विक्लेन्द्रिय और ऐसे पचन्द्रिय तिर्यच ÷ मनुष्य को असन्नी जीवों जानना. इन के मन नहीं होता है.

+ श्री उत्तराध्यायन जी सूत्र के ३६ वे अध्याय मे चालित गुणानुसार तेउ और वायु को भी वस कहे है.

× कोइ नर्क के बिलों में और कोइ नर्क की कुंभीयों में नर्क के जीवों की उत्पत्ति फरमाते है.

— मनुष्यके शरीर से उत्पन्न हुवे—उच्चार-बडीनीत, (विष्टा) पासवण-लघुनीत(मूत्र) खेल-खेकार, सवेण-सेडा (नाकका मेल) उत्ते-उलटी, पित्ते-पित,सूए-राद, पुए-रक्त, सुके-वीर्य, सुके पुगल पडी सारे—वीर्य आदि पुद्रल सूक कर पीछे भीजे उस में. मृत्युक शरीर, स्त्री पुरुष के संयोग, नगर के नाले. और लोक मे रहे सर्व अशुची स्थानों में अन्तर मुहूर्त बाद असह्यात समुच्छिम (असन्नी) मनुष्यो उत्पन्न होते है.

२० भाषक अभाषक द्वारः—जो पर्याप्ति विलेन्द्रिय तिर्यच पचेन्द्रिय मनु-  
प्य नर्क देव बोले है. सो भाषक कहे जाते हैं और सब अभाषक जानना.

२१ आहरक अनाहारक द्वारः—जब जीवों एक शरीर छोड़कर दुमरे श-  
रीर में जाते हैं. तब रस्तमें केवल समुत्थात करती वक्त चौथे पांचवे समयमें और मो-  
क्ष के जीवो तो अनाहारिक ही रहते हैं. वाग्मी के सब जीवो आहारिक ही होते हैं.

२२ ओजादि आहार द्वारः—जो उपजति वक्त में जीवों आपने नजीक  
में रहे हवे शुभा शुभ अहार गृहण करते हैं. जैसे सही मनुष्य तिर्यच माता का रुद्र  
और पिता का शुक्र भोगवे. सो ओज आहार. २ जो शरीर धारी जीवों समय-प्रति वा-  
यु आदि स्पर्शादि होते पदार्थों को गृहण करे. सो रोम आहार. और ३ जो असन पा-  
नादि मुख द्वारा आहार गृहण करे सो कवल आहार किया जाता है. ऐसे तीन प्रका-  
र के आहार होते हैं.

२३ सचित्तादि आहार द्वारः—१ पृष्ण फल धीजादि सजीव वस्तु का अ-  
हार किया जावे सो सचित्त आहार. २ निर्जीव किये हुवे अन्न पाणी आदि भोगनेमें  
आवे सो अचित्त आहार. और ३ कुछ सचित्त कुछ अचित्त ऐसे दोनों प्रकारके मिले  
पदार्थों भोगने (खाने) में आवे सो मिश्र आहार यह भी ३ आहार.

२४ दिशी आहार द्वारः—ऊर्ध्व-ऊंची. अधो-नीची. और चारो तरफ की  
दिशाओं तिरछी. यों भी तीन दिशी गिनी जाती है और पूर्व. पश्चिम. उत्तर. दक्षिण  
ऊंची. और नीची यो ६ दिशी भी गिनी जाती है. इसमें पांचों स्थावरो सूक्ष्म. जो  
सर्व लोक में ठनोठन भरे हैं. उनमें के कितनेक लोक के अन्त में एक कोन में रह है  
वो लोक के तरफ की तीनों दिशामें रहे पुद्गलों का तो आहार गृहण करते हैं परन्तु  
अलोक की तरफ में आहार गृहण नहीं करते हैं. क्योंकि—अलोक में पुद्गल देही नहीं  
इस अपक्षा से जयन्त्य तीन दिशी आहार गृहण करे. और उच्छृष्ट लोकके मध्य रहै  
सर्व संसारी जीवो छेड़ी दिशी का आहार गृहण करते हैं.

२५-२६ पर्याप्ता पर्याप्ति द्वारः—१ प्रथमदी आकर जिनस्थान में जीवों उ-  
त्पन्न होते हैं वो नजीक में रहे शुभा शुभ पुद्गलों को आहार रूप में गृहण करने हैं.  
सो आहार पर्या. २ वो गृहण किया हुआ आहार नेही शरीर का वन्य-आकार होना  
है. सो शरीर पर्या. ३ एकैन्द्रियादि जिन जनि में उत्पन्न हुआ हो उन्गी इन्द्रियों का  
जिनमें आकार अन्ये सो इन्द्रिय पर्या. ४ इन इन्द्रियों के द्वार (छिद्रों) द्वारा जो वा-

यु का आवा गमन होवे सो श्वाशोश्वास पर्या. ५ मुखेन्द्रिय द्वारा व्यक्त अव्यक्त शब्दों चारण की शक्ति सो भाषा पर्या. और ६ विचार शक्ति सो मन पर्या. इन ५ पर्या. में से अहार, शरीर, इन्द्रिय, और श्वाशोश्वास, यह ४ पर्या तो एकेन्द्रियों के होती है, त्रिकेन्द्रिय के और असत्री पचेन्द्रिय तिर्यच के भाषा पर्या अधिक होने से पांच पर्या होती है. और सत्रीपचेन्द्रियके वही पर्या होती है. परन्तु नर्क और देव मन और भाषा का बन्ध साथही करते हैं, इसलिये पांच पर्या कहते हैं, तोभी छेही पर्या पाती है. । इनछे पर्या में से जितनी पर्या जिसमे पाती है, उतनी पूरी नहीं बन्धे वहां तक अपर्याप्ता कहना. जो पर्या बन्धता पूरी पर्या किया बिना अपर्याप्ता ही मरजावे उसे लब्धि पर्याप्ता कहना. और जो पूरी पर्या बान्धले उसे पर्याप्ता कहना. अपर्याप्ता तो फक्त अन्तर मुहूर्तही रहता है. फिर इन्द्रियादि प्रगट नहोवे तो भी सत्ता रूप स-व होजाती है.

२७ प्राण द्वारः—जिसके आधार से जीव रहे उसे प्राण कहते हैं. सो दश प्राण हैं—१ श्रोतेन्द्रिय बलप्राण, २ चक्षुन्द्रिय बलप्राण, ३ घणेन्द्रिय बलप्राण, ४ रसेन्द्रिय बलप्राण, ५ स्पर्शेन्द्रिय बलप्राण, ६ मन बलप्राण, ७ वचन बल प्राण, ८ कायाबल प्राण, ९ श्वाशो श्वास बल प्राण, और १० आयुष्य बलप्राण,

२७ इन्द्रिय द्वारः—१ अगोचरी, २ गोचरी, ३ दुष्मुख, ४ चरपरी, और ५ अनमनि. ( यह पांचों इन्द्रिय के नाम ) और १ श्रोतेन्द्रिय, २ चक्षुन्द्रिय, ३ घणेन्द्रिय ४ रसेन्द्रिय, और ५ स्पर्शेन्द्रिय, ( यह पांचों इन्द्रिय के गोत्र ) [ १. ] जो अगोचर-बिन्देखे पदार्थों के भावको गृहण करे. सो अगोचरी और श्रुतज्ञान की वृद्धि करे या श्रोत्र छिद्ररूप होवे जीवका अजीविका और मिश्र शब्द ग्रहण करे सो श्रोतेन्द्रिय. इसकी अभ्यन्तर अवघेणा अङ्गलके अंतख्यातवे भाग और बाह्य संताग कदम के पुष्प जैसा. इसकी विषय असत्री तिर्यच पचेन्द्रिके ८०० से घटुष्य की, और सत्री तिर्यच पचेन्द्रिय के १२ योजन की अर्थात्-इतनी दूरका शब्द गृहण कर सकते

× प्रथम की तीनों पर्य पुरी किये बिना तो कोड मरताही नहीं, क्यों कि-आहार शरीर और इन्द्रिय पर्या पुरा हुवे बाद ही परभव का आयुष्य बन्ध होत है. और आयुष्य हुवे बाद ही जीव मरता है. इसलिये चौथी पर्यापवन्द तेही अपर्याप्ता मरता है.

हैं । (२) गोवरी जो देखे दुबे पदार्थों को ग्रहण करने में आंखों का नाम गोचरी है। अन्तःकरण लक्ष समुत्पन्न करे सो कृष्ण नील रक्त, पित्त, शुक्ल वर्णको ग्रहण करे सो चक्षुःन्द्रिय गोवहै, इसकी अभ्यन्तर अवयवणा अंगुलके अंश्यान्तर भाग, और बाह्य संस्था न चन्द्रमा व मसूर की ढाल जैसा, यह इन्द्रि चौरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय दोनोंके होती है, जिनमें चौरिन्द्रिय की चक्षुःन्द्रिय की विषय २९५४ धनुष्यकी, अनन्ती पचेन्द्रिय की ९२०८ धनुष्यकी और मक्षीपचेन्द्रिय की ४७२३३ योजनकी, अर्थात् इतनीदुर का रूप ग्रहण करे। [ ३ ] दुग्ध-जिनके दो मुख ( दोसर ) है, इसलिये नाकका नाम दुग्ध है, और जो घ्राण दुग्धच्छा समुत्पन्न होवे सो घ्राणेन्द्रिय गोवहै, यह सुगन्ध दूग्ध जेनोंको ग्रहण करे, इसकी अभ्यन्तर अवयवणा अङ्गुलके अंश्यान्तर भाग, और बाह्य संस्था धमण जैसा यह इन्द्रिय तेन्द्रिय चौरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय के होती है, जिनमें-तेन्द्रिय की घ्राणेन्द्रिय की विषय १०० धनुष्य की चौरिन्द्रिय की २०० धनुष्य, की अनन्ती पचेन्द्रिय की ४०० धनुष्यकी और मक्षीपचेन्द्रियकी १२ योजन की, अर्थात्-इतने दूर में वान ग्रहण कर सकने है । ( ४ ) जो चक्षुः २ चक्षुः सो जवा नका नाम चरपी और कटु मधु तजिण अमर कषित रस को ग्रहण करे सो रसोद्गी-य गोव, इसकी अभ्यन्तर अवयवणा अङ्गुल के अंश्यान्तर भाग, और बाह्य संस्था छरपके (उम्बर ) जैसा, यह इन्द्रिय तेन्द्रिय चौरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय के पा-नी है, इसमें तेन्द्रिय की रसोद्गीन्द्रिय की विषय ६४ धनुष्य की तेन्द्रिय की १२८ धनुष्य, चौरिन्द्रियकी २५६ धनुष्य, अनन्ती पचेन्द्रियकी १०२४ धनुष्य और मक्षीपचेन्द्रियकी १२ योजन की अर्थात् इतनी दूर रहा हुआ पदार्थ का स्वाद ले सकने है । ( ५ ) जि-मके मत नहीं होवे ऐसे गरीर का नाम अन्ननी है, और शीत, उष्ण, शूल, पीडन की मल, कटिज, गुग्गुलुषणों को ग्रहण करनेके लक्षणे स्पर्शेन्द्रिय कहा जाती है, इसका संस्था विविध प्रकार का है, यह इन्द्रिय तेन्द्रिय में लगा पचेन्द्रिय तक मल जी-कों के होती है, इसमें तेन्द्रिय की स्पर्शेन्द्रिय का विषय ४०० धनुष्य, तेन्द्रिय की ८०० धनुष्य, तेन्द्रिय की १६०० धनुष्य चौरिन्द्रिय की ३२०० धनुष्य, अनन्त, पचेन्द्रिय की ६४०० धनुष्य, और मक्षीपचेन्द्रिय की १२ योजन, अर्थात् इतनी दूर का स्पर्श मल्य सकनी है,

२१. इन्द्रि विषय द्वारः—१ श्रोत्रेन्द्रिय की २ ऊर्ध्व इन्द्रि, २ अर्ध इन्द्रि और विधात, ये ३ विषय और इन तीनों को दूर धनुष्य में दूर होकर ३ मल

है, और इन ६ को राग द्वेष से दुगुने करने से १२ बीकार होते हैं. (२) चक्षुर्इन्द्रिय की कृष्ण, हरित, रक्त पित और श्वेत यह ५ विषय. और इन ५ को सचित्त अचित्त मिश्र इन तीनों से तीगुने करने से १५ और इन शुभ अशुभ से दुगुने किये ३० और इन ३० को राग द्वेष से दुगुने किये ६० बीकार होते हैं. (३) घनेन्द्रिय की सुर्भिगन्ध, दुर्भिगन्ध, यह २ विषय. इन २ को सचित्त अचित्त मिश्र इन तीनों से तीन गुने करने से ६, और इन ६ को, रागद्वेष से दुगुने करने से १२ बीकार होते हैं. (४) रसेन्द्रिय की कट्टू मिष्ट, तीक्ष्ण, आम्लन, क्षारा, यह ५ विषय. इनको सचित्त अचित्त और मिश्र से तीगुने करने से १५ और इन १५ को शुभ अशुभ से दुगुने किये ३०, और इन ३० को रागद्वेष से दुगुने करने से ६० बीकार होते हैं. (५) स्पर्शेन्द्रिय की गुरु, लघु, शीत, उष्ण, रुक्ष, चीकन, कठिण, सुकुमाल, यह ८ विषय इन ८ को सचित्त अचित्त मिश्र से तीगुने करने से २४ हुवे, और इन २४ को शुभ अशुभ से दुगुने करने से ४८ हुवे, और इन ४८ को रागद्वेष से दुगुने करने से ९६ बीकार होते हैं, ५ इन्द्रियकी सर्व २३ विषय और २४ बीकार होते हैं.

३० सज्ञा द्वारः—१ आहार सज्ञा-४ कारण से उत्पन्न होवेः—(१) सशक्ति से. (२) क्षुधा वेदनी के उदय, (३) आहार का स्थान देखने से और (४) आहार की बात सुनने चिंतवने से. २ भय सज्ञा ४ कारण से उत्पन्न होवेः—(१) अशक्ति से. (२) भय मोहनीय के उदय, (३) भयके स्थान गये. और (४) भयकी बात सुने चिन्तवने से. ३ मैथुन सज्ञा ४ कारण से उत्पन्न होवेः—(१) रक्त मांस की पुष्टि से, (२) मैथुन मोहनीय के उदय, (३) मैथुन के स्थान गये, और (४) मैथुन की बात सुने चिन्तवने. और ४ परिग्रह सज्ञा ४ कारण होवे—(१) परिग्रह के संग्रह से, (२) परिग्रह मोहनीय के उदय. (३) परिग्रह के स्थान गये. और (४) परिग्रह की बात सुनने चिंतवने से. नर्क में भय सज्ञा अधिक। तिर्यच में आहार सज्ञा अधिक। मनुष्य में मैथुन सज्ञा अधिक और देवता में लोभ सज्ञा अधिक होती है.

३१ वेद द्वारः—१ जिस के योनी कुचादि अङ्गो पाद्म होवे, और जो पुरुष का सङ्गम इच्छे सो स्त्रीवेद. २ जिस के लिङ्ग मूछ आदि अङ्गोपाद्म होवे. और जो स्त्रीके सङ्गम की इच्छा करे सो पुरुष वेद. ३ जिस के स्त्री चिन्ह व पुरुष चिन्ह निर्वीज होवे और, स्त्री पुरुष दोनों के संयोगकी इच्छा करे सो नपुंसक वेद.

३२ कपाय द्वारः—जिन परिणामों द्वार कर्मोंका कप (रस) आवे सो कपाय

चार प्रकार की:—(१) प्रकृति को कसूर बनावे सो क्रोध कषाय. (२) जो प्रकृति को करडी बनावे सो 'मान' कषाय. (३) जो प्रकृति को वक्र (वाँकी) बनावे सो माया कषाय और (४) जो प्रकृति को विस्तारे फैलावे सो 'लोभ' कषाय. ७

३३ लेशा द्वार:—जिन परिणामो कर आत्मा कर्मो कर लेपावे (भरावै) सो लेशा ६ प्रकार की:—(१) कृष्ण वर्ण. दुर्गंध, कदुरस तीक्ष्ण स्पर्श सो द्रव्य कृष्णलेश्या. और पांचो आश्रवो आप सेवन करे. दुसरे के पास सेवावै. तीनों जोगों और पांचों इन्द्रियो को यथेच्छ छुट्टी प्रवर्तने दे. तीव्र परिणामो से आरंभ करे, हिंसा कर्ता अवकाय नहीं. क्षूद्र परिणामी. दोनो लोक के दुःख से डरे नहीं. इत्यादि लक्षण वाले को भाव कृष्ण लेशी जानना. (२) हरावर्ण दुर्गन्ध तीखारस और खरखरा स्पर्श सो द्रव्य नील लेश्या. इषावन्त, दूसरों के गुणोंको सहन कर सके नहीं. आप तपश्चर्या करे नहीं. दूसरों को करने देवे नहीं, तैसे ही ज्ञानाभ्यास भी आप करे नहीं दूसरों को करने देवे नहीं. नीवड कपटी. लज्जा रहित, रस शृद्धि, महा आलसी, फक्त आपहीका सुख चढ़ावै इन लक्षणों युक्त होवे सो भाव नील लेशा वाला जानना, (३) उदावर्ण. दुर्गंध. रस कषायला और स्पर्श कठित सो द्रव्ये कापूत लेश्या, और बाँका बोले. बाँका (स्वेच्छा) चले, अपने दुर्गुणों को ढके, दुसरे के प्रकट करे. कठोर वचनी. चोर. दूसरों की सम्पत्ती देखकर झूरे इन लक्षणों वाले को 'भाव' कपोत लेशी जानना. (४) वर्णरक्त. दुर्गंध. रस खट मिठा, स्पर्श नरम सो द्रव्य तेजु लेश्या और न्याय वन्त, स्मिर स्वभावी, शरल, किंतुहल रहित, विनीत, ज्ञानी, दमित इन्द्रिय, दृढ धर्मी. प्रिय धर्मी, पाप करते हुवे उसके फल भुक्तने का डर रखे सो भाव तेजु लेशी जानना. (५) पीत वर्ण, सुगंध, मठारस और कोमल स्पर्श सो द्रव्य पद्म लेश्या और. चारो कषायों पतली करे सदा उपशांत चित्त रहे. त्रियोगों स्ववश में रखे. थोडा बोले, इन्द्रियों का दमन धर्म मार्ग में करे. सो भावे पद्मलेशी जानना. और (६) शुक्र वर्ण. सुगंध, मधुर, रस और सुकुमाल स्पर्श होय सो द्रव्ये शुक्र लेश्या और. आर्त ध्यान रौद्रध्यान को छोड धर्म ध्यान शुक्र ध्यान को ध्यावे, राग द्वेष को पतले किये या सर्वथा निवृत्ते. इन्द्रियों को स्ववश में कर, समिता समता गुप्ति गुप्ता रहे, सरागी तथा वीतरागी चरित्र वन्त. इन लक्षणों वालों को भावे शुक्र लेशी जानना,

३४ जोग द्वार:—जो दूसरों से संबंध करे—जुड सो जोग तीन प्रकार के है:—१.



जो अंत करण में विचार उत्पन्न होवे सो मान जो वचन बोले सो वचन और जो प्रत्यक्ष में दिखे शरीर रूप होवे सो काया जोग जानना.

३५ शरीर द्वारः—औदारिक शरीर सो—औदर—प्रधान श्रेष्ठ अर्थात्—(१) इस की भव धारणीय शरीर की अवघेणा सब शरीरों से बड़ी है. (२) तथैकर चक्रवर्ति बलदेव वासुदेव घणधर केवल ज्ञानी, साधु श्रावक इत्यादि उत्तम पुरुषों की शरीर में होते हैं. (३) और मोक्ष भी इसी शरीर से पाते हैं. इत्यादि गुण निष्पन्न इसका नाम आदारिक शरीर—उत्तम शरीर दिया है. यह शरीर हाड मांस स्थीर सूत्र में ज नाशे आदि सप्त धातु का पूतला होता है, मनुष्य तिर्यचही इस शरीरके स्वामी होते हैं. (नर्क स्वर्ग के जीवोंके यह शरीर नहीं होता है) यह शरीर के छे संघयण और छेड़ी प्रकार के संस्थान में होता है, इसकी अवघेणा भवधार नी की जवन्य अङ्गल के असंख्यातवे भाग. उत्कृष्ट १००० योजन क्षाजेरी होती है. और उत्तर विक्रम + करे तो जवन्य अङ्गल के संख्यातवे भाग, उत्कृष्ट १००००० योजन की कर सकते हैं. और इस शरीर धारी जीवो है तो सर्व लोक में भरे हुवे परंतु चारण मुनिवरो ते रवे रुचक द्वीप तक जा सकते हैं इसलिये इसकी विषय रुचक द्वीपतक ही गिनी जाती है. और इस का प्रयोजन मोक्ष साधने का है. २ वैक्रिय शरीरः—एक रूप के अनेक रूप और अनेक तरह के रूप बनावे इसलिये इस का नाम वैक्रिय शरीर है. इस शरीर के स्वामी नरक और स्वर्ग के जीवों होते हैं. नरक के जीवों का शरीर दुर्गंधि विद्रूप अशुभ पुद्गलोंका पूतला होता है. और देवता का शरीर महा दिव्य तेजस्वी सुरूप सुगंधि पूतला होता है. यह शरीर = असंघयणी और प्रथम अन्तिम संस्थानी होता है, इसकी भवधारणीय शरीर की अवघेणा जवन्य अङ्गल के असंख्यात भाग, उत्कृष्ट ५०० धनुष्य × की, और उत्तर वैक्रिय करे तो जवन्य अङ्गल के

+जिनको तपादि के प्रभावसे लाव्य उत्पन्न हुई होवे वो मनुष्य तिर्यच वैक्रिय शरीर बना सकते है. जवाचरणा और विचाचरण चारण मुनि दो तरह के होने हैं.

= संघयण हडीयोका होता है, और नरक देव के शरीरमें हड्डियों नहीं होनेसे अमघयणी कहे है. परन्तु है महापरक्रमी. देवताके समचतुरस्र संस्थान और नर्क के हुंड संस्थान है.

× सातमी नरक में ५०० धनुष्य की है.

संख्यातवे भाग उत्कृष्ट १००००० योजनकी इसका विषय असंख्यात द्विप समुद्रों तक है, और इस शरीरका प्रयोजन इच्छित रूप बनानेका है. ३ आहारक शरीरः— यह शरीर आहारिक (आहार करने वाले) जीवों के होता है इसलिये आहारक शरीर कहा जाता है. यह एक हात भरका पुतला प्रथम संस्थानवन्त अत्यन्त सूक्ष्म दिव्य पुद्गलोंका होता है. इसके स्वामी चण्डह पूर्वधारी मुनीराज होते हैं. इसकी विषय अद्विष्टिप प्रमाणों और प्रयोजन सशय छेदन व समव शरण के दर्शनका. ४. तेजस शरीरः— तेज अग्निके जैसा दाहक-पाचक गुणका धारक गृहन किये हुवे आहारादि पदार्थों को पचाकर रस बनाता है इसलिये तेजस शरीर कहा जाता है, इसका प्रयोजन अहार पचानेका है. और ५ कर्मण शरीर तो जिन पुद्गलों का तेजसने रस बनाया है. उन पुद्गलोंको द्रव्य तो धातु अदिका जैसा शरीर होवे उस पणे और भावे ज्ञानावरणी आदि कर्मोंकी प्रकृति पणे परिणमावे-परगमावे-हिस्सा कर बांट देवे सो कारमण शरीर. इनका प्रयोजन संसारमें रलानेका. यह तेजस और कर्मण इनदोनों शरीरके स्वामी सर्व संसारी जीवों हैं. और यह दोनों सूक्ष्म-अन्तरिक शरीर हो नसे इसका बाह्यमे कुछ संवयण संस्थान नहीं होता है. परन्तु इन दोनों शरीरके धारक प्राणीयों छेही संवयण और छेही संस्थानों युक्त होते हैं. इन दोनों की अववेणा जघन्य अङ्गल के असंख्यातवे भाग की उत्कृष्ट सर्व लोक प्रमाणों ÷ और विषय भी सम्पूर्ण लोक प्रमाणें जानना.

३ संवयणद्वार वज्र वृषभ नारच संवयण-जो दोनों हडियोंकी सन्धि स्थिर करने पड़ीये जैसी तीसरी हडी होती है उमे परिचेष्टित पट्ट वज्र कहतेहैं. और उन तीनों हडियोंका कर सन्धिकों दृढ कर ऐसी चौथी हडी कील रूप होवे उसे ऋषभ कहते हैं. और जिस स्थान दोनों हडियों एकेक हडी के साथ आँकडी से आँकडी मिलावे वो फिर किसी उपाव से टूटे नहीं ऐसा दोनों हडियों का आपान में दृढ बन्धन करने वाला म-

÷ केवल समुद्र घात होनी वक्त चौथे समय में केवली भगवन्त सम्पूर्ण लोक व्यापी बनते हैं. तब तेजस और कर्मण दोनों शरीर के धारक होते है. इसलिये दोनों शरीर की अववेणा सम्पूर्ण लोक प्रमाण कही है.

रुकट बन्ध होवे = सो नारच, + ऐसी तरह से जो संयुक्त हड्डियों होती है जिसे संघयण. "सो दोनो तरफ की हड्डियो मरकट बन्ध कर बन्धि होवे, उसपर ऋषभ नाम क हड्डिने वेष्टित किया हो, उस में इन्तीनों हड्डियों भेदी हुई कीली होवे, जिस से सर्व शरीर अत्यन्त स्थिर बलकट मजबूत बंधा हुआ होवे सो वज्र ऋषभ नारच संघयण. २ "ऋषभ नारच संघयण" सो जिस में उपरोक्त सर्व रचना होवे फक्त वज्र की कीली नहीं होवे. ३ "नारच संघयण" सो पटीया और कीली दोनो नहोवे, फक्त मरकट बन्ध से हड्डियों बंधी होवे ४ "अर्थ नारच संघयण" सो आधा-एकही तरफ मरकट बन्ध होवे, और दुसरी तरफ सादी कीली होवे ५ "कीलीक संघयण" फक्त सादी कीलीयों से ही हड्डियों की सन्धि का मिलाप होवे और ६ "छेवट संघयण" सो कीली बिना फक्त एकेक हड्डि के आश्रय में दुसरी हड्डियो रही होवे. धक्का लगतेही छूटल

३२ 'संस्थान द्वार':-जिस आकार में शरीर परिणाम हो उसे संस्थान + हैं सो ६ प्रकार हैं:- १ 'सम चउरस संस्थान' सो सम-चरोवर, चउ-चारो, अर्थात् खोले, अर्थात्-पञ्चासन में बैठे हुये का शरीर दोनो पगों के घुटने का अन्तर दोनो स्कन्धों का अन्तर इन चारों का अन्तर मध्य भाग चरोवर होवे, और सात के शास्त्र के कथनानुसार प्रमाणोपेत उत्तम लक्षण व्यंजन युक्त होवे सो सम चउरस संस्थान २ "न्यग्रोध परि मंडल संस्थान" सो न्यग्रोध नाम वड के झाड के जैसा उपर का सर्वग मंडर प्रति पूर्ण गोभित होवे और नीचे वडवाड्यों छूटने से अशोभनिक दिखे. तैमे कमर के नीचे के शरीर का विभाग विदूष होवे. ३ "सादि संस्थान" सादि-आदि नीचे का शरीर उत्तम प्रमाणोपेत होवे, और कमर के उपर का शरीर अशोभनिक होवे. ४ "कुब्ज संस्थान" कु-खराब, वज-तरह, अर्थात् जिस के हाथ पग पेट ग्रीवा इत्यादि शरीर के अवयव उत्तम होवे, और हृदय पृष्ठ पेट ही न होवे पीठपर छात्ती पर कुब्ज-हड्डिका टेकरा होवे सो कुब्ज संस्थान. ५ 'वायन संस्थान':-६२ अद्वल प्रमाणें टेंगणा शरीर होवे, मध्य का शरीर ठीक होवे और

= जैसे वन्दग का वज्रा वन्दर को फटाग भरती वक्त उस के हृदय को दृढ प्रत्यक्ष कहता है. तैसा ही जिन हड्डियों दृढ बन्धन होवे उनमें मारकट बन्ध कहा जाता है. मरकट नाम वन्दर का है.

+ वज्र-ऋषभ-नारच-यद् तीनो शब्द समय गए हैं जिसका ऐसा अर्थ होता है.

हाथ पांव छोटे होते सो वावत स्थान. और ६ 'हुंड संस्थान' सो जिस के सब अङ्गो पाङ्ग खराब आधे जले मुरेदे जैसे खराब होवै सो हुंड संस्थान.

३० मरण द्वार:-मरती वक्त में आत्म प्रदेश दो तरह से निकल ने हैं;-१ जो कीडीयो की नाल की तरह समय २ धीरे २ थोड़े २ प्रदेशों निकल कर जिस गति में जाना हो वहां का ताना बाना बान्धे. पीछे ने ८ रुचक प्रदेशों के साथ आत्मा गमन करे उसे समयोया कहते हैं. और २ जो बंदूक के भडाकेकी माफिक एकदम सब प्रदेशों साथ ही निकल जावे उसे असमोया मरण कहते हैं.

३१ विग्रह गति द्वार:-मरकर प्रथम शरीर त्याग जीवों दुसरि गति में दो तरह से जाते हैं: १ जो जीव प्रथम शरीर को छोड़े बाद तीयाइ एक समय मात्र में निवृत्ताभेत् गति मे जाकर उत्पन्न हो जावे सो ऋजु गति. और २ जो शरीर छोड़े बाद वे ह्मा भूलकर इधर उधर चल जावे वो जीव जयन्य एक मोड़, मध्यन दो मोड़ और सो कृष्ट तीन मोड़ तक खाता है. जितनी मोड़ खाता है. उतने ही समय अनाहारिक होता है. फिर अनुपूर्वी नानक कर्म उसे खेचकर नियमित गति में ले जाते हैं. उसे नैर्धग्रह गति कहते हैं.

ए ४० स्त्री मर्याद द्वार:-स्त्री (देव लोक) २० है:-१ सुयर्मा, २ इशान, ३ वसन्त कुमार, ४ महेंद्र, ५ ब्रह्म, ६ लान्तक, ७ महाशुक, ८ सहमार, ९ आग, १० पाण, ११ अरण, और १२ अचुत (इन १२ को देवलोक या कल्प कहते हैं. क्योंकि इन में रहने वाले देवताओं के मालक-राजा इन्द्र हैं. उन ने कल्प मर्यादा बन्धी है, उस मर्याद प्रमाणे सर्व देवताओं चलते हैं. इसलिये इन १२ को कल्प भी कहते हैं.) १३ भदे, १४ सुभदे, १५ सुजाये, १६ सुमान ने, १७ सुदंशणे, १८ प्रियदंशणे, १९ आमोह, २० लुपडिभदे, २१ यगोथरे. (इन ९ को ग्रीवेक कहते हैं क्योंकि यह स्थान पुरुषाकार लोक के ग्री-ग्रीवा-गरदन के स्थान हैं) २२ विजय, २३ विजयंत २४ जयन्त, २५ अपराजित, और २६ सर्वार्थ निष्ठ. (इन्हीं को अनुत्तर विमान कहते हैं. क्योंकि यहनव विमाणों मे अनुत्तर-प्रयान-श्रेष्ठ हैं. और उपर के १४ स्वर्ग को कल्पतीत कहते हैं. क्योंकि-यहां देवता के शिरपर कोई मालक-इन्द्र नहीं है. इसलिये यह स्वच्छा चारी हैं परन्तु यहां फक्त जैन लिङ्गी साधू ही उत्पन्न होते हैं इसलिये यह अमर्यादित कृतव्य कदापि नहीं करते हैं.)

रुकट बन्ध होवे = सो नारच, + ऐसी तरह से जो संयुक्त हड्डीयो होती है जिसे संघयण. "सो दोनो तरफ की हड्डीयो मरकट बन्ध कर बन्ध होवे, उसपर ऋषभ नाम क हड्डीने वेष्टित किया हो, उस मे इन्तीनों हड्डीयो भेदी हुई कीली होवे, जिस से स. शरीर अत्यन्त स्थिर बलकट मजबूत बंधा हुआ होवे सो बज्र ऋषभ नारच संघयण. २ "ऋषभ नारच संघयण" सो जिस मे उपरोक्त सर्व रचना होवे फक्त बज्र की कीली नहीं होवे. ३ "नारच संघयण" सो पटीया और कीली दोनो नहोवे, फक्त मरकट बंध से हड्डीयो बंधी होवे ४ "अर्थ नारच संघयण" सो आधा-एकही तरफ मरकट बंध होवे, और दुसरी तरफ सादी कीली होवे ५ "कीलिक संघयण" फक्त सादी कीलीयो से ही हड्डीयो की सन्धि का मिलाप होवे और ६ "छेवट संघयण" सो कीली बिना फक्त एकेक हड्डी के आश्रय मे दुसरी हड्डीयो रही होवे. धक्का लगतेही छूटल

३१ 'संस्थान द्वार':-जिस आकार मे शरीर परिणमा हो उसे संस्थान हैं सो ६ प्रकार हैं.-१ 'सम चउरस संस्थान' सो सम-बरोबर, चउ-चारो, अर्थात् खोले, अर्थात्-पचासन मे बैठे हुये का शरीर दोनों पगों के घुटने का अन्तर दोनो स्कन्धों का अन्तर इन चारों का अन्तर मध्य भाग बरोबर होवे, और साठ के शास्त्र के कथनानुसार प्रमाणोंपेत उत्तम लक्षण व्यंजन युक्त होवे सो सम चउरस संस्थान २ "न्यग्रोध परि मंडल संस्थान" सो न्यग्रोध नाम बड के झाड के जैम उपर का सर्वग मृंदर प्रति पूर्ण गोभिन होवे और नीचे बडवाइयो छूटने मे अशोभनिक दिखे. तैमे कम्मर के नीचे के शरीर का विभाग विद्रूप होवे. ३ "साठि संस्थान" साठि-आठि नीच का शरीर उत्तम प्रमाणोंपेत होवे, और कम्मर के उपर का शरीर अशोभनिक होवे. ४ "कुब्ज संस्थान" कु-खराब, बज्र-तरह, अर्थात् जिस के हाथ पग पेट ग्रीवा इत्यादि शरीर के अवयव उत्तम होवे, और हृदय पृष्ठ पेट ही न होवे पीठपर छाती पर कुब्ज-हड्डीका टेकरा होवे सो कुब्ज संस्थान. ५ 'वायन संस्थान':-५० अद्वल प्रमाणे टेंगणा शरीर होवे, मध्य का शरीर ठीक होवे और

= जैमे बन्दर का बच्चा बन्दर को फन्दाग भरती वक्त उस के हृदय को दृढ प्रमाण जानता है. तैसा ही जिन हड्डीयो दृढ बन्धन होवे उनमे मरकट बन्ध कहा जाता है. मरकट नाम बन्दर का है.

+ बज्र-ऋषभ-नारच-यह तीनों शब्द सम्य भाषा के हैं जिसका ऐसा अर्थ होता है.

हाथ पांव छोटे होवे सो वावत स्थान. और ६ 'हुंड संस्थान' सो जिस के सब अङ्गो पाङ्ग खराब आधे जले मुरदे जैसे खराब होवें सो हुंड संस्थान.

३८ मरण द्वार:-मरती वक्त मे आत्म प्रदेश दो तरह से निकल ने हैं:-१ जो कीडीयो की नाल की तरह समय २ धीरे २ थोड़े २ प्रदेशो निकल कर जिस गति में जाना हो वहां का ताना बाना बान्ये, पीछे से ८ रुक्क प्रदेशो के साथ आत्मा गमन करे उसे समोया कहते हैं. और २ जो बंदूक के भंडाकेकी माफिक एकदम सब प्रदेशों साथ ही निकल जावे उसे असमोया मरण कहते हैं.

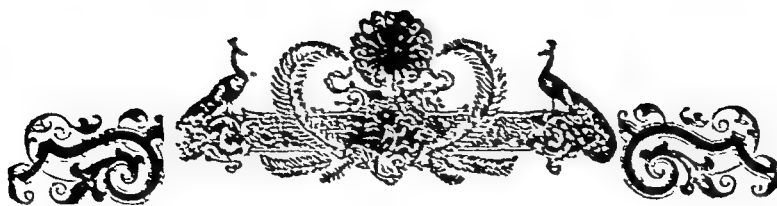
३९ विग्रह गति द्वार:-मरकर प्रथम शरीर त्याग जीवों दुसरि गति में दो तरह से जाते हैं: १ जो जीव प्रथम शरीर को छोड़े बाद सीधा एक समय मात्र में निवृत्त गति में जाकर उत्पन्न हो जावे सो ऋजु गति. और २ जो शरीर छोड़े बाद वे हल भूलकर इधर उधर चल जावे सो जीव जयन्त एक मोड़, मध्यम दो मोड़ और मो छह तीन मोड़ तक खाता है. जितनी मोड़ खाता है, उतने ही समय अनाहारिक नो ता है. फिर अनुपूर्वी नानक कर्म उन्ने खंचकर नियमित गति में ले जाते हैं. उसे नेष्ट्रह गति कहते हैं.

४० स्त्री मर्याद द्वार:-स्त्री (देव लोक) २० हैं:-१ सुवर्णा, २ इगान, ३ पानत कुमार, ४ महेंद्र, ५ ब्रह्म, ६ लान्तक, ७ महाशुक, ८ सहनार, ९ आग, १० पाण, ११ अरण, और १२ अचुन (इन १२ को देवलोक या कल्प कहते हैं, क्योंकि इन में रहने वाले देवताओं के मालक-राजा इन्द्र हैं. उन ने कल्प मर्यादा बन्धी है, उस मर्यादा प्रमाणे सर्व देवताओं चलते हैं. इसलिये इन १२ को कल्प भी कहते हैं.) १३ भदे, १४ सुभदे, १५ सुजाये, १६ सुमान से, १७ सुदेशणे, १८ प्रियदेशणे, १९ आमोह, २० लुपडिभदे, २१ यगोधरे, (इन ९ को ग्रीवक कहते हैं क्योंकि यह स्थान पुरुषाकार लोक के ग्री-ग्रीवा-गरदन के स्थान हैं) २२ विजय, २३ विजयंत, २४ जयन्त, २५ अपराजित, और २६ सर्वार्थ निष्ठ, (इनों को अनुत्तर विमान कहते हैं, क्योंकि यहनव विमाणों में अनुत्तर-प्रयान-श्रेष्ठ हैं. और उपर के १४ स्वर्ग को कल्पतीत कहते हैं, क्योंकि-यहां देवता के गिरपर कोई मालक-इन्द्र नहीं है. इसलिये यह स्वच्छा चारी हैं परन्तु यहां फक्त जैन लिङ्गी मायू ही उत्पन्न होते हैं इसलिये यह अमर्यादित कृतव्य कदापि नहीं करते हैं.)

४१. षटस्थान हानी वृद्धि द्वारः—यथा दृष्टान्त असत्य कल्पना से जैसे-पाव भर गुड, शेर भर शक्कर और मण भर मिश्री. इन पदार्थों में भाग (वजन) की अपेक्षा से गुड संख्यात गुण, शक्कर असंख्यात गुण, और मिश्री की अपेक्षा अनन्त गुणा. ते-साही गुण (मित्रास) में—गुड संख्यात गुण मिष्ट, शक्कर असंख्यात गुण मिष्ट और मिश्री अनन्त गुण मिष्ट. यह ३ बोल भाग आश्रिय और ३ गुण आश्रिय मिलकर ६ बोल वृद्धि आश्रिय की. तेमे ही इन ६ बोलो को उलट गिन ने से ६ हानी के बोल होते हैं. यो बड गुण हानी वृद्धि के १२ बोल जानना

इति संसारा रोहण नामक तृतीय खंड





## चतुर्थ खंड-धर्मा रोहण



धर्मा रोहण के ३३ द्वारोंका अर्थ.



१. मूल उपयोग द्वारः— मूल उपयोग दो हैंः— १ “ साकार बहुता ” सोझान. अर्थात्—अकारादि स्वर और क कारादि व्यंजन में अक्षर श्रूत रूप आकार होवे और जो वस्तुका बाह्य स्वरूप आकार जाने, इस विषेश ज्ञानको साकार बहुता कहते हैं, और १. अनाकार बहुता सो दर्शन. अर्थात् ज्ञानमे जानी हुई वस्तुका सामान्य रूप गुण का जो अन्तःकरण में भाष होवे सो दर्शन निराकार उपयोग है

२. विषेश उपयोग १२ हैं. जिनमें सकार बहुताके ८ भेदः— १ मतिज्ञान सो बुद्धि निर्मल होय । २ श्रुतिज्ञान सो शास्त्र सम्बन्धि ज्ञानपना. ३ अधिज्ञान पर्याप्त प्रमाणें दूरवर्ती पदार्थोंको देखे. ४ मन पर्यवज्ञान अदीदृष्टके अन्दरके जीवोंके मनकी बात जाने. और केवल ज्ञान सो सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भावको जाने (पह ५ ज्ञान) और अवल कहें तीनों ज्ञानोंको मिथ्यामति कर विपरीत भाष होणें लगे इमलिये उन तीनोंको १.मतिअज्ञान, २.श्रुतिअज्ञान, ३. विभ्रज्ज्ञान, कर चोले जाते हैं. यह पांच ज्ञान और तीन अज्ञान मिल सकार बहुता उपयोगके ८ भेद हुवे. ॥ और अनाकार बहुताके चार भेदः— १ आखोंमे देखे हुवे पदार्थके गुण अन्तःकरण में भाष होवे सो ‘चक्षु दर्शन’ २ आखोंविन चारों इन्द्रियोंमे और मनद्वार गृहण किये पदार्थका अन्तःकरण में भाष होवे सो ‘अचक्षु दर्शन’ ३ अधी ज्ञानमे गृहण किये पदार्थोंका





रत्नकी, और १ मोटी पट्टि. इनका स्वरूप:— १ चक्र रत्न सो. छेहो खण्ड साधने का रस्ता बतावे. २ 'छत्ररत्न' १२ योजन में छांहरके शीत ताप पाणी से बचावे. ३ 'दण्डरत्न' वेताड पर्वत की गुफाके कमाड खोले, रस्ता सम करे- ४ 'खड्गरत्न' हजारों कोश दूर रहे शत्रुकी भी घातकरें [यहचारों चक्रवर्तीकी आयुष शाळामें उत्पन्न होते हैं.] ५ 'मणिरत्न' वारह योजनमें चन्द्रमाके जैसा प्रकाश करे. ६ कांगुणिरत्न सोनारके ऐरण के जैसा चारों तरफ चार २ अङ्गुल होता है, इससे तमसे गुफामें और खण्ड प्रापात गुफामें एकेक योजनके अन्तरसे गोलचन्द्रमा जैसे मण्डल अलखते हैं. जिससे चक्रवर्ती जीते रहे, वहांतक उस रस्तमें प्रकाश बना रहता है, और ७ 'चरम-रत्न' गंगा सिन्धु जैते बड़ी छोटी नदीयो में डालनेसे १२ योजनकी नावारूप बन जाता है जिसमें सब सेना युक्त चक्रवर्ती स्नारहो पार हो जाते हैं. तथा खेतरूप बन सर्व पदार्थ निपजा देता है (यह तीनों लक्ष्मी भंडारमें उपजते हैं) (यह ७ एकेन्द्रियरत्न) ८ 'सेनापातिरत्न' भरत क्षेत्र में के बीचमेंके दोनों खण्ड छोडकर बाकीके चारों खण्डों का साधन करे. ९ 'गाथापति' चरम रत्नको खेतस्वरूप बना उसमें अनाज भेजे म-शाले बावे. वो एक प्रहर में सब तैयार हो जावे, उने दुसरे प्रहर में रान्ध कर-पका कर तीसरे प्रहर में सब सेना को जीमा देवे. १० 'बड़ाइ रत्न'-चक्रवर्ती का जहां प-ढाव होवे वहां वारह योजन लम्बा नव योजन चौडा राज मेहल पोष्य शाळा सहित एक मुहुर्त मात्रमें नगर बसा देवे ११ 'पूरोहित रत्न'महूर्त शकुन स्वप्न फल सामुद्रिका दि बता वे. शान्ति पाठ पढे. (यह चारो रत्न चक्रवर्ती की नगरी में उत्पन्न होते हैं.) १२ 'स्त्री रत्न'-श्री देवी-वेताड पर्वत पर उत्तर दिशा की विद्या धरों की श्रेणि में राज कन्या महा दिव्य रूप वन्त परमाणों पेट उत्तम लक्षण व्यजन सम्पन्न होती है, कुमारी का की तरह सदा योवन बन्वि रहती है. १३-१४ अश्व रत्न और गज रत्न दोनों वेताड पर्वत के मुल में उत्पन्न होते हैं. खुद चक्रवर्ती को सवारी में काम आते हैं. (यह ७ पचेन्द्रिय रत्न) (यह १४ ही रत्ना चक्रवर्ती-राजा के होते हैं. इनकी ए-केक के एकेक हजार देव अधिष्टायक होते हैं.) १५ 'तीर्थकर' चारों तीर्थोंके स्थापक सर्व-जगत्के पूज्य महान् धर्म गुरु सर्वज्ञ सर्व दर्शी होते हैं. १६ 'चक्रवर्ती' सपूर्ण भरत क्षेत्र के स्वामी, हजारों देवों के पूज्य. महा क्रुद्धि वन्त महाराजा होते हैं. १७ 'बालदेव' आधे भरत के स्वामी चक्रवर्ती से आधी रुद्धि वाले होते हैं. १८ 'बलदेव' व-लदेव के बडे भाई होते हैं. परन्तु रुद्धि आधीही पाते हैं. (यह ४ उत्तम पुरुष) १९

केवली' सर्वज्ञ सर्व दर्शी, महाज्ञानी महात्मा. २० 'साधु' २७ गुण युक्त. २१ श्रावक २१ गुणयुक्त. २२ 'सम्यक दृष्टि'—शुद्ध श्रद्धावन्त और २३ मंडलिक राजा-एक देश का अधिपति. (यह ९ महा पद्वी.)

१२ आत्मा द्वारः—जो खुद जीव द्रव्य है सो द्रव्यात्मा. २ उसकी क्रोधादि कषाय मय प्रणति परिण में सो कषायात्मा, ३ मनादि जोग में प्रणति परिण में सो जोगात्मा. ४ शुभाशुभ उपयोग में परिण में सो उपयोगात्मा. ५ ज्ञान में परिण में सो ज्ञानात्मा, ६ दर्शन देखने में परिण में सो दर्शनात्मा. ७ चारित्र्य रूप परिणमा परिण में सो चारित्रात्मा. और ८ शुभाशुभ कृत्यों में वीर्य वन्त उद्यम वन्त होवे सो 'वीर्यात्मा.'

१२ ध्यान द्वारः—सो ध्यान ४ प्रकार के होता हैः—१ अर्त ध्यान, २ रौद्र ध्यान (यह दोनों ही खराब हैं. सो छोड़ ने योग्य हैं. और) ३ धर्म ध्यान, ४ शुरु ध्यान (यह दोनों अच्छे हैं सो आदरणीय है.)

१३ ध्यान के पाये द्वारः—चारों ध्यान के १६ पाये होते हैंः प्रथम आर्त ध्यान के ४ पायेः—(१) अनिष्ट के संयोग से, (२) इष्ट के वियोग से, (३) रोग के उद्भव से. और (४) भोग की इच्छा से जो विचार होवे सो आर्त ध्यान +. दुसरा रौद्र ध्यान के ४ पायेः—(१) हिंसा की (२) झूठकी (३) चोरी की और (४) विषय के संसर्ग की इन चारों की अनुमोदना कर ते जो विचार होवे सो रौद्र ध्यान. ×. तीसरे धर्म ध्यान के ४ पायेः—(१) आणा विचयः—जिनाज्ञा में रहने का, (२) अपाय विचय कर्मों के नाश का, (३) विपाक विचय-कर्मों के फल का. और (४) संस्थान विचय-

+ आर्त ध्यान के ४ लक्षण-१. आक्रन्द करे, २ शोक करे, ३ रुदन करे, और ४ विलापन करे.

— रौद्र ध्यान के ४ लक्षण-१ थोड़ा दोष लगावे, २ बहुत दोष लगावे. ३ अज्ञानी, ४ अविचारी.

× धर्म ध्यान के ४ लक्षण-१. जिनाज्ञा आराधने की, शुभ चारित्र्य धर्म आराधने की ३ शास्त्र श्रवण की और ४ उपदेश ग्रहण करने की—इन चारों की रुची बाग होवे। धर्म ध्यानी के ४ आत्मन-१. मृत्नादि धर्म ग्रन्थों का पठन करे, २ संशय निवार ने प्रश्न पूछे. ३ अमंथान्ति करने पर्यटना करे, और ४ धर्म वृद्धि करने धर्म कथा कहे, धर्म ध्यानी की ४

लोक के संस्थान का. वीचार होवे सो धर्म ध्यान - । चौथा शुद्ध ध्यान के ४ पाथे-  
(१) पृथक्त्व वीतर्क-अलग २ पर्यायों को वीतर्क सहित विचारे, (२) एकत्व वीतर्क-एक ही पर्याय को वीतर्क सहित विचारे विचार-पलटे नहीं. (३) सूक्ष्म क्रिया अप्रति पाति फक्त इर्यावही क्रिया. और अपडवाइ होवे. और ४ 'व्युछित्व किरित्त अनिच्छित ध्या-  
ता' सर्व क्रिया रहित मोक्ष मार्ग में अखण्ड प्रवर्तक.

१४ 'द्रव्य द्वार'-द्रव्य ढप्रकर के:- १ धर्मास्ति. २ अधर्मास्ति, ३ आकास्ति, ४ काल. ५ जीवास्ति. और ६ पुद्गलास्ति.

गाथा-परिणाम जीव मुत्ता । सपएसा एग तित्त, किरियाए ॥

णिचं कारण कत्ता । सव्व गइ इयर अपवेसा ॥१॥

अर्थ-छहो द्रव्यों में से 'परिणाम' जीव और पुद्गल अन्य द्रव्यों में परिणम ने से परिणामी हैं. और चारों द्रव्यों निज स्वभाव में ही रहनेसे अपरिणामी हैं. 'जीव जीवतो चेतन्यादि लक्षण युक्त जीव है और पांचों निर्जीव है. 'मुत्ता'-पुद्गल देखने में आते हैं मो मूर्ति है. और पांचो अनूर्ती है. 'सपएसा'-काल है सो अप्रदेशी है और पांचों सप्रदेशी है. जिस में आकास्ति और पुद्गल आस्ति तो अनन्त प्रदेशी है. बाकी तीनों अतुल्यात प्रदेशी हैं. 'एग'-छहो द्रव्यों में-धर्मास्ति अधर्मास्ति और आकाशस्ति यह तीनों एक एक द्रव्य हैं. और काल जीव पुद्गल अनन्त है. 'तित्त'-आकाश तो सब जीवों को अवगता (स्थान) देता है. इसलिये भेद हैं. और पांचों द्रव्य आकाश रूप भेद में रह ने से भेदो हैं. 'किरियाय' जीवके और पुद्गल के संयोग में

अनुप्रेक्ष-१ पुद्गलिक वस्तु अनिय जने. २ संसार का सम्बन्ध अनार जने. ३ आत्मको एकली जने. और ४ संसार को दुख का कारण जने.

→ शुद्ध ध्यानी के ४ लक्षण — १ बाल अन्यन्तर संयोग से मदा अलग रहे. नरुग द्वेष नाग करे वा पनडे करे. ३ तीनों योगों को स्थिरा भूत करे. और ४ मवेदा मोहवा नाश करे. ३ शुद्ध ध्यानी के ४ अखण्डन — १ गान्ध स्वभाव होवे. २ निर्दिष्ट होवे. ३ शरल स्वभाव होवे. और ४ निर्मिनी होवे. । शुद्ध ध्यानी की ४ अनुप्रेक्ष-१ पंचों आश्रय को अश्रय का कारण जने. २ अनन्त संसार की प्रवृत्ति में निवृत्ति. ३ अहम की उत्पत्तिसे दूर रहे. और ४ पुद्गलों के स्वभाव में परिवर्तन नहीं.



जैसे वृद्ध पुंस्व आश्रय निमित्त जैष्टिका [लकडी] गृहण करना हैं परन्तु उमे द्रढ भी गृहण नही कर गत्ता हैं, और छोडताभी नहीं है, तैनेही इस साम्यकत्व वाले तीनों तत्वों की शुद्ध श्रद्धा तो रखते हैं परन्तु इस लोकके सुखार्थ उनका भजन भेवन करें पुइ' लिक सुख की वांछा करे, इनने मिथ्यात्वकी वर्णना उदय में आइ उसका धय किया परन्तु सम्यकत्व मोरूप कुछ अंग रहगया सो धयोपगम सम्यकत्वी. (३) मास्वादन सम्मकत्वी सो - उपरकही हुइ उपगम और धयोपगम सम्यकत्वमें वर्तते अतन्तान वन्यिका उपगम कियाथा उनका पुनः उदय होनेने मिथ्यात्वकी तरफ जीव गमन करें, वो अन्तगल्बनी रहे वडा तक मास्वादन सम्यकत्व रहती है. (४) 'वेदक सम्यकत्व - धयोपगम सम्यकत्व में उपगमाइ हुइ प्रकृतियों सर्वथा धयकर आगे बडे, और धायिक सम्यक्त्व प्राप्त नहीं कर सके उनके दीच में उन मनो प्रकृतियों को क्षपाने के लिये १ समय माद वेद सो वेदक सम्यक्त्व. (५) 'धायक सम्यक्त्व' उपरोक्त मानो प्रकृति का सर्वथा नाश होनेमे सर्व दोषो रहित अन्यन्त विगुह निर्दोष जो गुणही प्राप्ति होवे सो धायिक सम्यक्त्व, यह मादि अनन्त होती है

१९ "भयता भयति द्वारः"—जो मर्य विगति नापु होवे सो भयति जिनके वद न घन होव और कुछ आगर होवे सो श्रावक भयानाभयति, और जिनके कुछ भी घन नहोवे सो अभयति.

२० लिङ्ग द्वारः—जिम भेष को देख लोको को पगतीत होवे सी घट असुक (गृहस्थ या नाथु) पुरुष है. उने लिङ्ग-दिन कहा जाता है. सो तीन प्रकार के होत हैं:—१. जो रजहरण सुपानि आदि जैन मुनिक भेषके धारक सो स्वलिङ्ग, जोदिमरातो-दा भगवे वस्त्र आदि बाधा जोगी भेषके धारक सो अन्य लिङ्ग, और भगदी अङ्ग-वा आदि शुभ्य का भेष सो शुहलिङ्ग.

२१ चान्द्रि द्वारः—चागे गतिने उद्धार कर आत्मा को पञ्चम मोक्षगति में लोपावे तथा चागे बापाय आत्मा में उद्धार कर शान्त शान्त आदि गुण प्रगटोव सो चान्द्रि के ५ प्रकारः—१ सामासिक चान्द्रि—उप्य में मावय (पाप वर्ग) मोरो जी प्रतति और भावने गगरोप मन्त्रो पणिनामो में मुह दुःख के विपनाद गतिन जो न मगण बी प्राप्ति होवे सो सामासिक चान्द्रि, इनके दो प्रकारः— १ प्रथम अंग चान्द्रि यिकरो के स्वीदरो अरन सामासिक चान्द्रि पण्य करेई, जिम इनके प्रथम ५ दिन बाद, बाप्य ४ मतिन बाद, और उहह ३ मतिन बाद उहोमपान-परादि

में आरोपण किये जाते हैं। सो 'इतरीय सामायिक चरित्र' × और (२) मध्यमे २२ तीर्थकरों के साधु जाव जाव पर्यन्त सामायिक चारित्र वन्तही रहते हैं। सो अवकाही य सामायिक चारित्र. २ छेदो स्थापनीय चारित्रसो जैसे छिदे फटे हुवे वस्त्र को जो ड कर (सीकर) बरोबर करते हैं, तैसेही चारित्रीयों दोषित आत्मा को फिर विशुद्ध करे सो छेदोस्थापनीय चारित्र इसके दो भेदः—(१) प्रथम चरम तीर्थकरों के बारेमे के साधुओं मूलगुण पंच महाव्रतों उत्तर गुण समिती गुप्ति प्रत्याख्यानादिमे अना चीर्ण लगाकर धातिक होवे उनको पुनः संयम में स्थापन करने नैवेनिर महाव्रतों का आरोपण करे, जितसे पूर्व पर्याय का विच्छेद होवे सो सअतीचार छेदोस्थापनी. और इतरीये सामायिक चारित्रीये को किसी भी दोष के विन सेवन कियेही ७ वे दिन ४ महीना या ६ महीने मे जो महाव्रतों का आरोपण किया जावे सो तथा तीर्थकरों का सामण का अंक्रमण होते अवस्थित कल्प मे स्थितित कल्प अङ्गिकार करे निर्दोषी को भी छेदोस्थापनी किये जाते हैं. + सो निरती चार छेदोस्थापनी ३ परिहार विशुद्ध चारित्र सो उत्तम तप, उत्तम परिणाम, उत्तम पर्याय मे सदा शुद्ध व्रति रहे मे परिहार विशुद्ध चारित्र, इसके दो भेदः—(१) परिहार विशुद्ध चारित्र में प्रवेश करते मुनिको निरविममान कहते हैं यह और (२) तपमे निवृत्त हुवे मुनिको निरविट्का य कहते हैं, यह परिहार विशुद्ध चारित्र प्रथम और अन्तिम तीर्थकरो की वक्तमे तीर्थकर विराज मान होते हैं उसही वक्त होता है. २२ तीर्थकरों के बारे में महाविदेह क्षेत्र मे या तीर्थकर मोक्ष गये बाद यह चारित्र नहीं होता है. और जिनोने पहिले परिहार विशुद्ध चारित्र अङ्गिकार किया हो उनही के पास दुसरे परिहार विशुद्ध अङ्गिकार कर सक्ते हैं. दुसरे के पास नही यथा दृष्टान्त जैसे १ साधु ओ परिहार विशुद्ध चारित्र पालने प्रवर्त हुवे. उनमे से एक साधुतो कल्पास्थित होवे. उनके समित्य आठों साधु समाचारी का वाहन करे, उन आठ साधुओमे से चार साधु तप करे

× कितनेक आचार्या गृहस्थ की सामायिक को इतरीय सामायिक चारित्र कहते हैं. और साधु की सामायिक का अवकाहीय सामायिक चारित्र कहते हैं.

+ जैसे श्रीमहोदय श्रीवामी के सासन की प्रवर्ति हुवे बाद पार्थ नाथजी के संतानीये केशी श्रमणको गोतम स्वामी ने छे दो स्थापनीय चारित्र दे भेल किये.





पीछे कदापि पडे नहीं तो अपढवाइ यथाख्यात चारित्रि.

२२ नियंठा द्वारः—कर्म रूपी ग्रन्थी-(गॉठ) से छुटने वाले होवे सो निग्रन्थ ६ प्रकार के होते हैं.—१ 'पुलाक निग्रन्थ'—यथा दृष्टान्त—जैसे खेत में से शाली नामक धन्य के वृक्षों को काट कर एकस्थान ढग किया, उस में-धान्य-अनाज तो थोडा और कचरा (घांस) बहुत होता है. जिन में चारित्र के गुण तो अनाज जैसे थोडेही पाते हैं. और दोष बहुत बड पावे हैं. ऐसे निग्रन्थ के दो भेदः—(१) लब्धि पुलाक सो जो पुलाक लब्धि के योग से कोपायमान हुवे चक्र द्यति की सेना का चूर्ण कर डाले, और (२) दुसरे प्रति सेवना पुलाक के दो भेदः—(१) मूल गुण पुलाक सो महा व्रत का भङ्ग करे, और (२) उत्तर गुण पुलाक के ९ भेदः—एक-ज्ञान पुलाक सो ज्ञान की विराधना करे, दुसरे दर्शन पुलाक सो-सम्यक्त्व का भङ्ग करे, तीसरा-चारित्र पुलाक सो-दश पञ्चखाण समिति गुप्तिका भङ्ग करे. चौथा-लिङ्ग पुलाक सो साधु के वेष का पलटा करे, और पांचवा-यथा सूक्ष्म पुलाक सो-अन्तः करण में कषायदि की प्रवलता रहै. २ बुकस नियंठा सो-यथा दृष्टान्त-उस शाली वृक्ष के ढग में से घास-पराल निकाल अलग डाले तब भी उस शाली के ढग में पूर्व की अपेक्षातो कचरा बहुत कम होगया तो भी अनाज से कचरा ज्यादा है, तैसे ही-गुण थोडे और दुर्गुणों की विशेष ता होवे सो बुकस निग्रन्थ-इनके दो भेदः—(१) शरीर बुकस सो हाथ पांव पखाले, शरीर की विभूषा करे. और (२) उपकरण बुकस सो वस्त्र पत्र शुशोभित रखे. और भी बुकस निग्रन्थ के-५ भेदः (१) अभोग बुकस सो-जानके दोष लगावे. (२) आना भोग बुकस सो-अनजान में दोष लगावे (३) सवुड बुकस सो छिपकर दोष लगावे. (४) असवुड बुकस सो-प्रगट दोष लगावे. और (५) यथा सूक्ष्म बुकस सो-अन्तः करण में कषाय की तीव्रता रखे. यों अतीचारो कर संयम गुणों को कावरे बनावे सो बुकस निग्रन्थ जानना. ३ प्रति सेवना निग्रन्थ सो यथा दृष्टान्त—जैसे उस शाल के ढग को खले में डाल वेलोके पग से चगदा हवा में उड़ा-उफण उस में का कचरा दूरकर शाल का एक तरफ ढग करे, उस में किंचित मट्टी, कुछ फोंतरे आदि कचरा होनेसे अनाज की और कचरे की तुल्यता होतीहै, तैसे ही जिन मुनि के गुण अवगुण की तुल्यता होवे सो-प्रति सेवना निग्रन्थ इन के दो भेदः १) प्रति सेवना कुशील सो किंचित दोष सेवन करे, जिसके ५ भेदः—(१) ज्ञान प्रति सेवना सो ज्ञान के १४ अतिचार लगावे. अल्प ज्ञाताके योग से हीनाधिक ५ठन उ-

चारन करे, (२) दर्शन प्रति सेवना सो-स्वपरका मन रखने हिनाधिक परुषणा करे, (३) चारित्र्य प्रति भेवना सो-भ्रमाद के वश उत्तर गुणकी खन्डना करे, (४) लिङ्ग प्रति सेवना सो-लोकीक साध ने बखादि की शोभा करे, और (५) यथा सुक्ष्म प्रति सेवना सो-छत्रस्तता से सुक्ष्म आतिचार लगावे। ४ कषाय कुशील निग्रन्थ सो-यथा दृष्टान्त जैमे-उस ऊफाणे हुवे शाल ध्यान्य को ऊखली में कूटकर उसके फोंतर-छिलटे अलग कर फक्त चांचल ही रखे, उत में धान्य ज्यादा और कचरा थोडा, तैते ही जिनों में गुण ज्यादा और अवगुण थोडे होवे व्यवहार को शुद्ध रख कर स्वपर के सुधारे के लिये क्रोध भी करे, मताभिमान धर्माभिमान भी रखे। शासन के सुधारेके लिये, वादीयोंके विजय के लिये, मायाका भी सेवन करे। शिष्य सम्प्रदाय शास्त्र धर्मोंप करण वृद्धि का लोभ भी करे, इत्यादि निमित्त से दोष लगाने की इच्छा बिना भी दोष लगावेनो कषाय कुशील निग्रन्थ, इन के ५ भेदः—(१) ज्ञान कषाय कुशील, (२) दर्शन कषाय कुशील, (३) चारित्र्य कषाय कुशील, (४) लिङ्ग कषाय कुशील और (५) यथा नृत्त कषाय कुशील, इन पांचों का अर्थ प्रति सेवन नियंठे मे कहा मुजब जान ना। विशेष इतनाही की यह किंचित नंजल के लोभ के वंशहो किंचित दोष सहजही लगाते है, तो भी मद्दा शुभ योगों की प्रव्रती से दोषों से आत्माको बचाने का यत्न करते है, ५ निग्रन्थ नियंठा नो यथा दृष्टान्त जैमे वो ऊखलीमें कूटके माफ किये चांचलों सुंपने इत्तक कंकर वीन शुद्ध करे तब उनमे मेल रूप कचरा तो जरासा रहै, और अज्ञान विशेषधिक होवे, तेमेही निग्रन्थ निग्रन्थ मोहकर्म रूप लाली रहित कर्म ग्रन्थ रहित अकषायो ध्यायिक भावो वीतरागी होवे इनके ५ भेदः—(१) वीतराग भाव प्राप्त हुवे उनी समय पदम समय निग्रन्थ (२) नन्तर अन्तर मुहूर्त तक रहे सो अपदन समय निग्रन्थ (३) इनस्थान की अन्तिम अवस्था सो चरम समय निग्रन्थ (४) इनस्थान के अन्तिम समय के पहिले समय नो अचरम समय निग्रन्थ, और (५) इमुस्थान की सर्वा वप्रती नो यथा सूक्ष्म निग्रन्थ। ६ ज्ञातक निग्रन्थ सो यथा दृष्टान्त जैमे उतनाफ किये चांचलों में से खन्डित चांचलों को अलग कर अवण्ड चांचलों को पाणीमे धोकर रज मेल कलंक रहित शुद्ध पवित्र निर्मल किये, फक्त धान्यही रहै किंचित भी कचरा नही, तैमेही नर्व ध्यातिक कर्मोंके दोष रहित उज्ज्वल परिणामी शुद्ध्या नी होवे सो नानातक निग्रन्थ इनके ५ भेदः—(१) जोगों का निरन्वन कियामो अलसी (२) आतिचार रूप मेल रहित हुवे सो असवल (३) धनधातिक कर्मोंके अंग रहित इ-

वे सो अकर्माश (४) शुद्ध ज्ञान दर्शन के धारक अर्हंत जिनेश्वर केवली हुवे सो संसृद्धि नाण दंसण धरे अरहा जिण केवली और [५] सर्व योगों का निरुध्दहोने से सर्व कर्मों का आना रुक गया सो अपरी सवी हुवे सो निग्रन्थ.

२३ कल्पद्वारः—मर्यादा कायदा सो कल्प ५ प्रकारके होते हैं:—१ स्थिति कल्प सो प्रथम और चरम तीर्थकर के वारे के साधुओंको सामायिक चरित्र की पर्यायका विच्छेदकर छेदोस्थापनिय किये जावे सो स्थिति (मर्यादित) कल्प. २ अस्थिति कल्प सो— बीचके २२ तीर्थ करोंके वारेके साधुओं सदा सामायिक चरित्र में रहे सो. ३. 'जिनकल्प सो' वनवासी साधु, मूढ़ हात कापना और तीन हातका लम्बा रखे, उससे ग्राममे जावे तब गुप्ताङ्ग ढकेलेवे, और ग्रामसे निकले बाद उसे दूर रख दें. एक पात्रा, ओगा, मुहपाति, झोली, गणना, इन सिवाम और उपकरण रखे नहीं. सिं ह. सर्प, कांदा प्रमुख सन्मुख आवे तो आप टले नाही. रोगादिका उपचार करे नहीं. यों ६ माहिने पर्याय पालकर फिर स्थिवरकल्प में जावे' और २ कल्पातीत सो कल्प का करता श्री तीर्थकर जो स्वइच्छा से सर्वोत्तम आचर पालते हैं. सो कल्पतीत सर्व कल्प से रहित होते हैं. ८

२४ परिमहद्वारः— सूत्र "मार्गाच्यवन निर्ज्जरार्थ परिपोढव्याः परिपहाः"

अर्थात्— मंथम धर्म रूप मोक्ष मार्ग में प्रवर्तते उनमें विधन करने जो दूसरों की तरफ मे अर्थात् चार+कर्मों की उदय रूप प्रेरणा होनेसे दुःख सकट आकार पड़े उन्हे

+ २२ परिमह चार कर्म के उदय से होते हैं.—"ज्ञानापरणी" प्रज्ञाज्ञान २० वा प्रज्ञा परिपह, और २१ वा अज्ञान परिपह ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से होवे. "दर्शन मोहन्त राययो दर्शन लभो." मय्यक्ष मोहनीय के उदय २२ वा दंसण परिमह, और अन्तराय कर्म के उदय मे १५ वा अगम परिमह, "चारित्र मोह नाम्ण गति स्त्री निपद्या कोण याचा मन्कार पुग्गका"—चारित्र मोहनीय के उदय मे ६ अचेत्त, ७ वा अगति, ८ वा स्त्री, १० वा निनेर्त्ता, १२ वा अक्रोश, १४ वा याचना, और १८ सकार पुक्कर यह ७ परिमह, "जेणा वैदानिना" और वाक्का र्हेमो—१ क्षुवा, २ तृपा, ३ शीत, ४ उण, ५ देण मन्था, ६ चंगाया, ११ जया, १३ वध, १६ रोग, १७ तृण म्पण, १८ जग्गल, यह ११ परिमह वेदनीय कर्म के उदय से होवे.

अपन धर्म मार्गमें स्थिर और उद्यममें आवे कर्मोंकी निज्जरा करने-अथ करने जो वि-  
कल्प रहित मम भाव मे महना करना उमे परिसह जय कहते हैं. सो परिसह २२ हैं.

मूत्र-क्षुत्पिपासा शीतोष्ण दंशमसक नागन्यारति ॥

स्त्री चर्या निषद्या शय्या क्रोश वधांचा लाभ ॥

रोग तृण स्पर्श मल मत्कार पुरस्कार प्रज्ञा अज्ञान दर्शनानि:-

अर्थ १ क्षुधापरिसह निद्रोप आहारका जोग नहीं मिलनेसे सदोष आहारकी वांछा नहीं करे.  
२ तृणपरिसह अचित पाणी नहीं मिलनेसे सचित पाणीको छीनेकीभी वांछा नहीं करे.  
३ शीतपरिसह:-शीत (ठण्ड) लगनेसे अधिकवस्त्र रखनेकी व तपानेकी वांछा नहीं करे ४  
उष्णपरिसह:- उष्णता (गरमी) लगनेसे शीतोपचार नहीं करे. ५ दंशमसपरिसह -  
डाँद मच्छर पटमल आदि जीवों का दंश ममभाव सहे. उने अलग नहीं करे. ६ अचे-  
ल परिसह-वस्त्र रहित होजावे तोभी सदोष वस्त्र वांछे नहीं. ७ अरति परिसह:-संयम मे  
रंकट पड़े तो आरति चिन्ता नहीं करे. ८ स्त्री आदि को देख विषय वांछा नहीं करे.  
९ चर्या परिसह:-विद्वार (गमन) कर्ता बधाय नहीं १० निस्तिज्जा परिसह:-बैठने वि-  
मम भूमीका मिले तो ह्लेग नहीं करे. ११ शय्या परिसह:-अमन्योग मकान रहने को  
निलने मे खेद नहीं करे. १२ अक्रोश परिसह:-कठिन वचन मुनद्रेष नहीं करे. १३ वन्य  
परिसह:-मत्ताड मम भाव नहे. १४ याचना परिसह:-आहर वस्त्रादि याचता मांगता श-  
रमाय नहीं. १५ अलाभ परिसह:-इच्छित वस्तु नहीं मिले तो द्वेष नहीं करे १६ रोग प-  
रिसह:-रोग उत्पन्न हुवे समाधी भाव रखे मचित औषधी नहीं करे. १७ मृण स्पर्श प-  
रिसह:-तृणाकी शय्या के स्पर्श मे कोचवाय नहीं. १८ जलमल परिसह:-पानी और  
मेल मे बधाय नहीं १९ सत्कार पुत्कार परिसह:-सत्कार सम्मान वांछे नहीं. २० प्रज्ञ  
परिसह:-पण्डित हो प्रश्नोत्तर करते बधाय नहीं. २१ अज्ञान परिसह -विशेष ज्ञानकी  
प्राप्ति नहीं होवेतो खेद नहीं करे. और २२ दंगण परिसह:- मम्यक्त्व में शंका कां-  
खा दी दोष नहीं लगावे.

२५ प्रमाद द्वार:-पर परिणति का मद में आत्मा को परिणमावे मो प्रमाद  
पांच प्रकार के हैं-

गाथा-मद विषय कषाय । निद्रा विगहा पंच भणीया ।

## ए ए पंच पम्माया । जीवा पडन्ति संसारे ॥ १ ॥

अर्थ—१ मयः—मय-मयीग के नशे में मनुष्य वे भान होते हैं तैने ही-(१) ज-  
नि मय, (२) कुल मय, (३) बल मय, (४) रूपमय, (५) तप मय (६) सूत्र मय, (७)  
लाभमय, (८) इश्वरी मय इन मय में से एक मय में छुटा हुआ आत्म वे वश्यही जा  
ता है, तो जो आशंकी मय में छूट जाता है उगुही क्या दशा ! २ विषय जैसे-  
विषय जैसे मान में मागी की अकाल मृत्यु निपजती है, सो (१) श्रुत इन्द्रिय की ३  
विषय (२) अश्रुत इन्द्रिय ५ विषय (३) घणोन्द्रिय की २ विषय (४) रसेन्द्रिय ५ विषय  
(५) स्पर्शोन्द्रिय की ८ विषय (६) इन्द्रियों की २३ विषय में से किसी भी एक भी  
विषय में आत्म होने में अन्त मृणा की अकाल मृत्यु होती है, तो जो २३ ही विषय  
में अपने मय में छूटी क्या दशा ! ३ 'कपाय, जो कर्मा के कप रसकों में चर  
कर के मयों पर लपटों और आत्मा को मरु (मारी) बनाकर भंगार में डूबने  
में अपना नाम प्रसार की है (१) क्रोध, (२) मान (३) माया (४) लोभ, इन चारों  
में से किसी में एक कपाय में रमण करने वाला आत्मा भंगार में डूब जाता है, तो  
जो चारों कपाय में मग्न है, उसही क्या दशा ! ४ निन्दा जो निन्दनीय वस्तु  
को निन्दा में प्रसार करने है (१) निन्दा के वश में आत्मा वे वश होता है, और (२)  
निन्दा द्वारा के प्रमाण वाद बोलने में भी आत्मा मोक्ष में विमुख होता है, ५ नि-  
न्दनीय वस्तु को निन्दा करने (व्यर्थ बातों) चार प्रकार की होती है:- (१) स्त्रीयों के श्रमा-  
न का कथा २ मोक्ष प्रद वस्तु बनावे की म्याद की कथा (३) राजाओं के वैभव पर  
मिद की कथा और (४) देशों के सीमाओं की कथा, इन चारों में से किसी एक  
का कथा करने में जो वक्त कथ वक्त होने का प्रयत्न आता है, तो जो चारों धार-  
ण को दुर्बल क्या दशा ! ५ पात्रों प्रपाद के वश में पद आशक्त शरीर भारी  
मिद के लक्ष्य लक्ष्य होकर है पद पतनशील सूत्र के शतकन उद्वेग में कपामयि-

५५३ अर्थ—१ मयः—मय-मयीग के नशे में मनुष्य वे भान होते हैं तैने ही-(१) ज-  
नि मय, (२) कुल मय, (३) बल मय, (४) रूपमय, (५) तप मय (६) सूत्र मय, (७)  
लाभमय, (८) इश्वरी मय इन मय में से एक मय में छुटा हुआ आत्म वे वश्यही जा  
ता है, तो जो आशंकी मय में छूट जाता है उगुही क्या दशा ! २ विषय जैसे-  
विषय जैसे मान में मागी की अकाल मृत्यु निपजती है, सो (१) श्रुत इन्द्रिय की ३  
विषय (२) अश्रुत इन्द्रिय ५ विषय (३) घणोन्द्रिय की २ विषय (४) रसेन्द्रिय ५ विषय  
(५) स्पर्शोन्द्रिय की ८ विषय (६) इन्द्रियों की २३ विषय में से किसी भी एक भी  
विषय में आत्म होने में अन्त मृणा की अकाल मृत्यु होती है, तो जो २३ ही विषय  
में अपने मय में छूटी क्या दशा ! ३ 'कपाय, जो कर्मा के कप रसकों में चर  
कर के मयों पर लपटों और आत्मा को मरु (मारी) बनाकर भंगार में डूबने  
में अपना नाम प्रसार की है (१) क्रोध, (२) मान (३) माया (४) लोभ, इन चारों  
में से किसी में एक कपाय में रमण करने वाला आत्मा भंगार में डूब जाता है, तो  
जो चारों कपाय में मग्न है, उसही क्या दशा ! ४ निन्दा जो निन्दनीय वस्तु  
को निन्दा में प्रसार करने है (१) निन्दा के वश में आत्मा वे वश होता है, और (२)  
निन्दा द्वारा के प्रमाण वाद बोलने में भी आत्मा मोक्ष में विमुख होता है, ५ नि-  
न्दनीय वस्तु को निन्दा करने (व्यर्थ बातों) चार प्रकार की होती है:- (१) स्त्रीयों के श्रमा-  
न का कथा २ मोक्ष प्रद वस्तु बनावे की म्याद की कथा (३) राजाओं के वैभव पर  
मिद की कथा और (४) देशों के सीमाओं की कथा, इन चारों में से किसी एक  
का कथा करने में जो वक्त कथ वक्त होने का प्रयत्न आता है, तो जो चारों धार-  
ण को दुर्बल क्या दशा ! ५ पात्रों प्रपाद के वश में पद आशक्त शरीर भारी  
मिद के लक्ष्य लक्ष्य होकर है पद पतनशील सूत्र के शतकन उद्वेग में कपामयि-

२७ पडवाइ अपडवाइ द्वार:-जो गुणस्थानरोहण कर (चड) पीछे पड जावै सो पडवाइ, और पडे नहीं सो अपड वाइ जानना.

२८ छद्मस्त केवली द्वार:-जिनके ज्ञानके ज्ञानादि आत्मिक गुण कर्मों कर अच्छादित होवे सो छद्मस्त और (२) जिनो के घन घातिक कर्म रूप अच्छादन (ढक्कन) दर होने से पूर्ण तोर से आत्मीक गुण प्रगट होवे सो केवली.

२९ समुदघात द्वार:-जो आत्म प्रदेशों का मथन हो किन्हीं प्रकार के गुणाव गुणका घात होवे सो समुदघात ७ है:- १ वेदनी समुदघात असाता वेदनीय का उदय होने से जीव हायवाहा करे सो. २ कपाय समुदघात क्रोधादि उत्पन्न हुवे पतलेसे मनुष्य को ५-७ मनुष्य संभाले तो भी संभले नहीं सो. ३ मरणातिक समुदघात सो मरती वक्त आत्म प्रदेशो निकलकर जिस स्थान उत्पन्न होना होवे वहां जमे और फिर आत्मा ८ ऋचक प्रदेश के साथ जावे तब क्रोडा क्रोड गुणी वेदना होवे सो, ४ वैक्रय समुदघात सो एक रूपके अनेक रूप बनाते प्रदेशो का मथन करेनो. ५ तेजस समुदघात, त सो तेजुलेशा प्रगट कर उत्कृष्ट साडी सोल देश वालकर भस्म करेनो, ६ आहारक समुदघात सो चउदे पूर्वके पडे हुवे मुनि राज आहारक लब्धि वन्त मन्देह निवारने या समवसरण की रचना देखने आत्म प्रदेशका पुतला बनाकर तीर्थिकर व केवल ज्ञानी के वहां भेज इच्छा पूर्ण करेनो. और केवल समुदघातसो केवली भगवन्त के आमुष्य कर्म रहे थोडे और वेदनीय कर्म रहे ज्यादा. तब दोनो को बरोबर करनेके वास्ते आठ समयमे समुदघात होती है:- प्रथम समय आत्म प्रदेश का मातवी नर्क कीर्नाचे मे लगा ऊपर मोक्ष तक लम्बा दण्ड रूप होवे दूसरे समय वो दण्ड के पूर्व पश्चिम में कपाट रूप होवे. तीसरे समयमें उन पटीयोंका उत्तर दक्षिणमें मथन चूरा रूप होवे- चोथे समय में सर्वलोक में अन्तर पूरे (तब सर्व जगत् व्यापी बने) पांचवे समय में अन्तर संहार (भेला) कर पुनः मथन रूप बन जावे. छठे समयमें मथन संहार कपाट रूप बनजावे सातवे समयमे कपाट संहार दण्ड रूप बनजावे और आठवे समयमें दण्ड संहार कर मूल रूप (अवल थे वै) बनजावे. उनके बाद कितनेक तो अ इ उ ऋ लृ इन पांचो अक्षरो के ऊचार मे जितनी देर लगे उनने काल बाद मोक्ष पधार जावे और कितनेक उत्कृष्ट ८ महीने बाद तो जम्ही मोक्ष पावे. x

३० देवद्वारः— श्री भगवति सूत्रके शतक उद्देशार्थे ५ प्रकारके देव फरमाये हैं।  
 १. 'भवीद्रव्यदेव'— जो जीवों मनुष्य तिर्यच के भवमें देव गतिका आयुष्य कर बैठे हैं (मरकर देवता होवेंगे) वो भवी द्रव्य देव कहे जाते हैं। यह जुगलिये मनुष्य तिर्यच और सर्वार्थ सिद्धके देवता सिवाय+सर्व स्थानसे आकार उत्पन्न होते हैं। और मरकर देव गति मेंही जाता है। इनकी स्थिति जघन्य अन्तर मुहूर्त की उत्कृष्ट ३३ सागरकी होती है। २ 'नरदेव' चारामा २लक्ष हाथी घोड़े रथ, छिन्न क्रोड पायदल सम्पूर्ण भरत क्षेत्र के महाराज चक्रेर्ती होते हैं, मो नरदेव कहे जाते हैं। यह चारों जातिके देवता और प्रथम नरकसे आकर उत्पन्न होते हैं और मरकर नर्क में जाते हैं।— इनकी स्थिति जघन्य ७०० वर्ष की, उत्कृष्ट ८४ लक्ष पूर्वकी होती है। ३ 'धर्मदेव' पांच महाव्रत के पालक साधुजी महाराज सो धर्म देव कह जाते है, यह छठी मातवी नर्क, मनुष्य तिर्यच युगलिया, तेजवायु इन स्थान सिवाय सर्व स्थानके आये हुवे होते हैं। और मर कर देव लोक में तथा मोक्ष में जाते हैं। इनकी स्थिति जघन्य अन्तर मुहूर्त की उत्कृष्ट क्रोड पूर्वकी होती है। ४ 'देवाधिदेव' जो अनन्त चतुष्टयके धारक सर्व जगत् के पूज्य श्री तीर्थकर भगवन्त सो देवाधिदेव। यह प्रथमकी तीन नर्क और वीमानीक देवता के आकर उत्पन्न होते हैं और मोक्ष पधारते हैं। इनकी स्थिति जघन्य ७२वर्षकी उत्कृष्ट ८४ लक्ष पूर्वकी होती है। ५ 'भावदेव' जो भवनपति, वाणव्यन्तर, जोतिपी, वीमानी, इन चारों जातिके देवों (जो देवता के भाव मे विराजमान हैं उन) को भाव देव कहे जाते हैं। यह सड़ी मनुष्य तिर्यच पंचेन्द्रिय से आकर होते हैं। और मरकर प्राची पाणी वनस्पति मनुष्य तिर्यच में जाते है। इनकी स्थिति जघन्य दशहजर वर्षकी उत्कृष्ट ३३ सागर की। इन पांचो देवों मे से सब से थोड़े नरदेव १२ ही होते हैं। इनसे देवाधिदेव संख्यात गुणें क्योकी २४ होते हैं। इनसे धर्म देव संख्यात गुणा क्योकी उत्कृष्ट नव-

महीनेही बाकी रहा होय उनको केवल ज्ञान की प्राप्ति हेवे, वोही समुद्र घात करतेहैं। अन्य नहीं। परन्तु यह बात मिलती नहीं। क्योंकि तीर्थकर के भी हेता है

— क्योंकि—युगलिया मरकर तो फक्त देवताही होते है। और सर्वार्थ सिद्धके देव मनुष्य हो मोक्ष में ही जाते है।

+ चक्रवर्ती जो समय लेवेतो स्वर्ग मोक्षमें जाते हैं। परन्तु तब नर देव नहीं रहतेहै। धर्म देव या देवाधी देव होते हैं।

हजार क्रोड होते हैं। इनमें भवीद्रव्य असंख्यात गुणों क्योंकि असंख्यात मनुष्य तिर्यच देवायुवन्ध कर रहे हैं। और इनमें भाव देव असंख्यात गुणों क्योंकि चारों जातिके देवता असंख्यात हैं।

३१. जीव परिणामी द्वारः— जिसवत्त जीव निज स्वभाव में परिणमें उसवत्त परिणाम शुद्ध होवे, और परस्वभावमें परिणमें उसवत्त अशुद्ध होवे, जिससे जो भाव जीवोंके उत्पन्न होवे उसे जीव परिणाम है। (यहां कारण को मुख्यतासे कर कार्य का उपचार किया है) इसके भगवती सूत्र में ३९ बोल कहे हैं।

गाथा—गइ इन्द्रिय कपाय । लेसा जोए उव ओगे ॥

णाणा णाण दिट्ठी । चरित्त वेए परिणामि ॥

अर्थ—४ गति, ५ इन्द्रिय, ४ कपाय, ६ लेख्या, ३ जोग, २ उपयोग, ५ ज्ञान, ३ अज्ञान, ३ दृष्टि, ५ चारित्र और ३ वेद।

३२ 'करण द्वार'—जो जीवों के कर्म संयोगों में कारण भूत होने से कारण के भगवती सूत्र में ५९ बोल कहे हैं।

गाथा—दब्ब सररि इन्दि । मण वयण क साय लेसा ॥

समुघाइ सान्ना दिट्ठी । वेय असाव पंच (करणं) ॥

अर्थ—द्रव्य क्षेत्र काल भाव और भव यह ५ द्रव्य, ५ शरीर, ५ इन्द्रिय, ४ मन के योग, ४ वचन के योग, ४ कपाय, ६ लेख्या, ७ समुवात, ४ मज्ञा, ३ दृष्टि, ३ वेद और ५ आश्रव।

३३ निवृत्ति द्वार—जिन वावर्तोंमें आत्मा निवृत्ति भाव को प्राप्त होवे सो निवृत्ति जिसके भगवतीजी सूत्र में ८२ बोल फरमाये हैंः—

गाथा—कम्म सररि इन्दि । भासा मण कसाय वणादि ॥

संठाण सन्ना लेसा । दिट्ठी णाणा णाणे जोग उवोगे ॥

अर्थ—८ कर्म, ५ शरीर, ५ इन्द्रिय, ४ भाषा के योग, ४ मनके योग, ४ कपाय, ५ वर्ण, २ गन्ध, १ रस, ८ स्पर्श, ६ संठाण, ४ मज्ञा, ६ लेखा, ३ दृष्टि, ५ ज्ञान, ३ अज्ञान, ३ जोग और २ उपयोग।



३४ आश्रव द्वारः—जिस रस्ते कर जीवों को कर्म आकर लगे उने आश्रव कहे जाते है, जिस के ४२ भेद फरमाये हैं:—९ अव्रत, ९ इन्द्रियों का अनिग्रह, ४ क पाय की प्रवृत्ति, और २५ क्रिया.

३१ वे, ३२ वे, ३३ वे और ३४ वे द्वारों में कहे हुये सब बोलों का खुलासा पीछे होगया है, इसलिये यहां संक्षेप में ही लिखे हैं,

३५ संवर द्वारः—जो कर्म आने का रस्ता है उसे रोक सो संवर के ५६ बोल सूत्र मे कहे हैं:—१ इयां समिती-रस्त में चलती वक्त आगे १ धनुष्य देखे, रस्ता छोडकर चले नहीं, रात को विन कारण स्थानक के बाहिर जावे नही, पांचों इंद्रिय की विषय का ध्यान, और पांच प्रकार की सज्जाय — करे नहीं. २ भाषा समिति-कर्कस, कठोर, छेदक, भेदक, दुःख कर्ता, सावध, हिंसक, मिश्र इत्यादि वचन बोले नही, पहर रात गये बाद दिन उगे वहां तका जोरसे बोल नहीं. सदा उपयोग युक्त बोले, ३ एपणा समिती. आहार वस्त्र पाव और स्थानक ४२ दोष टाल गृहण करे, आहार दो कोस से ज्यादा लेजाकर भोगवे नहीं. पहिले पेहर में लाया चौथे पेहर में भोगवे नहीं. पांच मण्डल के दोष टाल आहार करे, ४ आदान निक्षेपना समिती-भंड पात्रे उपकरण वस्त्र पाट आदि यत्रासे गृहण करे और यत्रा रखे, गृहस्थ के घर रक्खकर विहार करे नहीं. दोनों वक्त (शुभे शाम) प्रति लेखना (देखा) करे, और ५ 'परिठावणिया' समिती:—विष्ठा पेशाव मेल नख केश शरीर आदि वस्तु यत्रासे परिठावे. दुर्गच्छा निन्दा होवे वहां परिठावे नहीं. दिनको देख के और दिनको देखी भूमि का मे रातको परिठावे. (यह ५ समिती) ६ मन गुप्ति ७ वचन गुप्ति ८ कायागुप्ति (इन वचन काया के योगो को सारम्भ समारम्भ आरम्भसे निवारिसो तीन गुप्ति) ९—३० बाबीस परिसह पीछे कहे सो) ३१ खन्ति-क्षमा, ३२ मुर्ति-निर्लोभता, ३३ अज्ज व-शरलता, ३४ मद्व-निर्भिमान, ३५ लाघव-लघुत्व, ३६ सच्चे-सत्य, ३७ संयम-आत्म गृहण, ३८ तवं-तप, ३९ चेष्ट-ज्ञाना भ्यास, और ४० वंभ-ब्रह्मचर्य. (यह १० याति धर्म) ४१ अनित्य भावना-पुद्गलिक पदार्थ सर्व अनित्य (विनाशीक) जाने. ४२ असरण भावना-इस संसार मे कोई भी शरण दाता नहीं है. ४३ संसार भावना-अनं-

— वाचना, पृथना, फेरना, याद करना, और धर्मोप देश देना. यह ५ सज्जाय.

त संसार परि भ्रमण किया है, ४४ 'एकत्वभावना'-आत्मा सदा एकली है. ४५ अन्य-  
त्व भावना-शरीर से आत्मा अलगे, ४६ 'अशुचि भावना' शरीर अशुची का भंडार  
है. ४७ आश्रव भावना-आश्रव से कर्म आते हैं. ४८ संवर भावना-संवर कर्म को रो-  
कते है. ४९ निर्जरा भावना-निर्जरा से कर्म क्षय होते हैं. ५० लोक भावना-लोक  
मुपइठ पुरुषाकार है. ५१ बोध भावना-बोध बीज सम्यक्त्वकी प्राप्ति होनी दुर्लभ है.  
और ५२ धर्म आवना-धर्म ही तारण शरण है. (यह १२ भावना) और ५३-५७-  
पांच चरित्र (इन का वरणन पीछे होगया है.)

३६-३७ निर्जरा द्वारः—जो श्री वीतरागके आज्ञा बाहिर सूत्र से विधिसे रहि-  
त स्ववश या परवश पणे धर्मार्थ या संसारार्थ कष्ट सहे. उससे अकाम निर्जरा  
होती है. जिसका फल मोली (काष्ठ काट कर बेचने वाले) व्यापारी के जैसा कष्ट तो  
बहुत और लाभ थोडा, तैसा होता है. और २ जो वीतराग की आज्ञा मे रहकर सू-  
त्र विधिके अनुसार निर्वद्य करणी मोक्षार्थ करे जिस से सकाम निर्जरा होवे. जिस  
का फल जोहरी के व्यापार जैसा होता अर्थात् कष्ट थोडा और नफा बहुत. सकाम  
निर्जरा दो तरह से होती है. (१) बाह्य (प्रगट) और (२) अभ्यन्तर. (गुप्त) इस में—  
(१) 'अनसन' आहार के त्याग, (२) ऊगोदरी-आहार उपाधी कम रखे. (३) भि-  
क्षाचरी-गोचरी कर वस्तु ला भोगवे. (४) रस परित्याग-दूध दही घी तेल मीठा के  
त्याग करे. (५) कायाक्लेश-धर्मार्थ कायको कष्ट दे, (६) प्रति सालिना-इन्द्रियो कषा-  
य योग का निरुधन करे. (यह ६ बाह्य तप) और (७) प्रायश्चित्त-पाप निवारने तप  
करे, (८) विनय-सदा नम्र हो रहे, (९) वैयावच-भक्ति करे. (१०) सज्जाय-शास्त्र के  
मूल पाठ की स्वध्याय करे, (११) ध्यान-सूवार्थ का चिन्तन करे. और (१२) कउ  
सग-का युत्तर्ग करे. ( यह ६ अभ्यन्तर तप) यों १२ भेद तपसे निर्जराहोती है.

३८ करणी फल द्वारः—पुन्य रूप मिष्ट फल और पाप रूप कटु फल दो  
नों संसार वृद्धिके कारण है. सो सफल करणी कही जाता है सम्पत्त्व दृष्टि यह चाहते  
नहीं. और मोक्षार्थ जो करणी करते हैं सो अफल गिनी जाती है. सुयगडांग जी सूत्र  
मे फरमाया है.

गाथा—जेय बुद्धा महा भागा । वीराऽसम्मत दंसीणो ॥  
अशुद्धं तेसिं परिकृता । सफल होइ सब्व सो ॥१॥

जेय बुद्धा महा भागा । वीरा सम्मत दंसीणो ॥

सुद्धं तेसिं परिकत्ता । अफल होइ सब्वसो ॥२॥

अर्थ—जो निर्बुद्धी हत भागी कू-कार्य में वीर मिथ्यात्वी हैं उनको अशुद्ध की हुई करणी सर्व सफल होती है. और जो कुद्वि वन्त महा भाग्य मृ-कार्य सूरवीर सम्यक्त्वी सत्पुरुष हैं उनकी की हुई शुद्ध करणी सर्व अफल होती है.

३९ हेय ज्ञेय उपादेय द्वार—हेय-सो त्याग ने-छोड़ने योग्य, ज्ञेय-सो-ज्ञान ने योग्य, और उपादेय सो-आदरने योग्य.

४० तीर्थकर गोत्र वन्ध द्वारः—जो प्राणी बीस बोलों में से किसी भी एक दो चार या अधिक बोलों का आराधन करता है, और उसकी परमोत्कृष्ट रमायण आती है तब तीर्थकर गोत्र की उपार्जना होती है—ऐसा श्री ज्ञाताजी सूत्र में फरमाया है.

गाथा—अरिहन्त सिद्ध पव्वयण । गुरु थेरे वहूसूए तवसीसु ॥

वच्छलाय ते सिं । अभिख नाण मुवगये ॥१॥

दंसण विणय आवसय । सीलवय निरायारो ॥

खिणालव तव चेइए । वेयावच्च समाहीए ॥२॥

अपुव्व नाण गाहणे । सुयभत्ति पव्वणे पभावणीए ॥

एत्थेही कारणे ही । तित्थयरे तं लहे जीवो ॥ ३ ॥

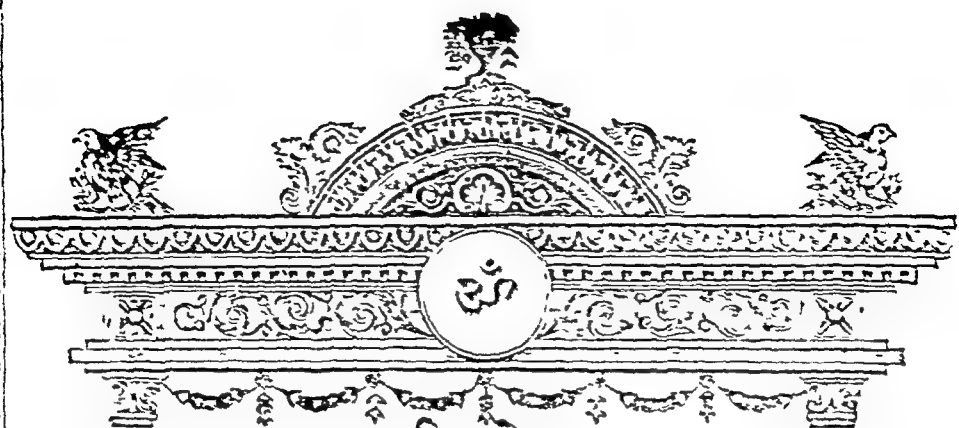
अर्थ—१ अरिहन्त, २ सिद्ध, ३ शास्त्र, ४ गुरु, ५ स्थिवर, ६ बहुसूत्री, ७ तपस्वी-इन सातों के गुणानुवाद करनेसे, ८ ज्ञान में वरम्भार उपयोग लगानेसे, ९ सम्यक्त्व निर्मल पालने से. १० गुरुवादि पूज्य जनोंका विनय करनेसे. ११ सदा दोनों वक्त प्रतिक्रमण करने से, १२ शील आश्रित निरति चार पालने से, १३ सदा निवृत्ति भाव रखनेसे. १४ वारा प्रकार तप करने से, १५-सूपात्र दान देने से, १६ गुरु रोगी तपस्वी नवी दिक्षीत की वैयावच्च करनेसे. १७ क्षमा करने से, १८ अपूर्व ज्ञान पढ़नेसे. १९ जिन वचन बहुमान पूर्वक सुण ने श्रद्धासे और २० जैन धर्म को तन मन धन कर दीपानेसे.

४१. तीर्थकर गुणस्थान स्पर्शनाद्वारः— श्री तीर्थकर भगवान गत भवसे चौ-  
था गुणस्थान सेही आते हैं. इसलिये पादिले के तीन तो यह छुटे. और पंचवा गुण-  
स्थान कायर नरोका है. [जो संयम लेने समर्थ न होसो] इसलिये उत्तम पुरुषों पाच-  
वा गुणस्थान भी स्पर्शते नहीं हैं. और इयारवा गुणस्थान तो पडवाइ होता हैसो स्प-  
र्शत है. श्री तीर्थकर भगवान पडवाइ नहीं होते हैं. इसलिये १-२-३-४-५-१. इन पांचों  
गुणस्थान स्पर्शन की मना है. बाकीके २ गुणस्थान स्पर्शते हैं.

४२. मोक्षद्वारः— चारो बावतो की अनुक्रम मे आगधना करने मे मोक्ष मिल-  
ती हैः— १. प्रथम सम्यक ज्ञान करके जीवोंका यथार्थ स्वरूपका ज्ञान होवे. २. नन्तर  
जीवादि पदार्थों को जैसे जाने है. वैसेही सम्यक दर्शन कर उनके वर्ग श्रद्धे. ( जो  
ज्ञान और दर्शन का जोडा है. अर्थात् यह दोनोंही मा-ही गने हैं ) ३. जो जीवादि  
पदार्थों को सम्यग ज्ञान कर जाने. सम्यग दर्शन कर श्रद्धे उनमेंमे जीव अजीव पुण्य  
तीनोंको जाने पाव अश्रव बन्ध इन तीनोंको सर्वथा त्याग. और भंवर निर्जग मोक्ष इन  
तीनों को पूर्ण पणे समाचारे सो सम्यग चरित. और जैसी तर सम्यग चरित द्रव्य  
तीनों बावतो समाचारी हैं वैसी तरह जावो जीव नावे. उमर तक पूर्ण योग्य आगधे  
पाले स्पर्श सो सम्यग तप. जैमे ज्ञान दर्शन का जोडा है तैमे ही चाग्नि तपका भी  
जोडा है. इन चारो का यथा विधी अनुक्रम मे आगधन पालन स्पर्शन जावो जीवनक  
करने मे आत्मा पमानन्दी परम सुखी होता है.

परम पूज्य श्री कहान जी ऋषिजी महाराज के स-  
 म्रदाय के महन्त मुनिश्री खूवाऋषिजी म-  
 हाराजके शिष्यवर्य आर्य मुनिश्रीचे-  
 न। ऋषिजी महाराजके शिष्य  
 श्री केवल ऋषिजी महाराज  
 के आश्रित बाल ब्रम्हचारी  
 मुनिश्री अमोलख ऋषि  
 जी महाराज रचित  
 मुक्ति सोपान गुणस्थान रोहण  
 अष्टशत द्वारिका प्रथम  
 अर्थ काण्ड





# सुक्ती-सोपान श्री गुणस्थान रोहण अर्दशतद्वारि

द्वितीय-मूल काण्ड.

प्रवक्ष्यामि

गाथा—वंदामि सिरि जिणवर । भणामि विनीय मूल खण्ड ॥

चउदश गुण टणस्स । रोहण अर्दमित द्वाग ॥ १ ॥

अर्थ—श्री जिनेश्वर भगवन्त को नमस्कार कर के "मुक्ति सोपान."—"गुणस्थाना रोहण अर्दशत द्वागि" ग्रन्थका दूसरा मूल खण्ड कहता हूं इस में अर्थ काण्ड में कहे हूवे २५२ ढागों का अव मूल चउदेही गुणस्थानों पर अलग २ संक्षेप में उताव ने हैं प्रथम अर्थ काण्डके पञ्च ने सब ढागों का अर्थ-मतलब समझ में आगया जिसने इन काण्ड में १४ गुणस्थानों पर उतावे हूवे २५२ ढागों की समझ सुलभता ने हो नकेगी.

## प्रथम खण्ड-मूल द्वारा रोहण

### मूल ३२ द्वारों के नाम

१ नाम द्वार, २ अर्थ द्वार, ३ प्रवेश द्वार, ४ लक्षण द्वार, ५ दृष्टान्त द्वार, ६ गुण द्वार, ७ अवघेणा द्वार, ८ उत्पत्ति द्रव्य प्रमाण द्वार, ९ पावति द्रव्य प्रमाण द्वार, १० स्वपति द्रव्य प्रमाण द्वार, ११ क्षेत्र प्रमाण द्वार, १२ क्षेत्र स्पर्शन द्वार, १३ काल प्रमाण (स्थिति) द्वार, १४ काल प्राप्त द्वार, १५ भाव प्रमाण द्वार, १६ निरन्तर गुण द्वार, १७ गति मार्गणा द्वार, १८ अगति मार्गणा द्वार, १९ परस्पर गति मार्गणा द्वार, २० परस्पर अगति मार्गणा द्वार, २१ अवरोह उवरोह द्वार, २२ चडपड गति दृष्टान्त द्वार, २३ अन्तर द्वार, २४ विरह द्वार, २५ शाश्वता श्वत द्वार, २६ पढमापढम द्वार, २७ एक भवाश्रिय स्पर्शना द्वार, २८ बहुत भवाश्रिय स्पर्शना द्वार, २९ परस्पर स्पर्शना द्वार, ३० परभव गमन द्वार, ३१ भव संख्या द्वार, ३२ अल्पा बहुत द्वार.

अब आगे इन तीतीस ही द्वारों का चउदह गुणस्थानोंपर पृथक २ (अलग२) विवेचन (वरणन्-उत्तरा) किया जाता है.

### १ पहिला "नाम द्वार" \*

चउदे ही गुणस्थानों के नाम-१ पहिला-मिथ्यात्व गुणस्था-

\* इस द्वारके खुलामे के लिये देखिये अर्थ काण्डके पृष्ठ १४ वा.

न, २ दुसरा-सा स्वादन गुणस्थान, ३ तीसरा मिश्र गुणस्थान, (अपर नाम) सम मिथ्या गुणस्थान, ४ चौथा-अधिरति-सम्यग दृष्टि गुणस्थान, ५ पांचवा देश विरति (श्रावक का) गुणस्थान, ६ छठा प्रमत्त-संयति (साधु का) गुणस्थान, ७ सातवा अप्रमत्त संयति गुणस्थान, ८ आठवा नियति वादर गुणस्थान, (अपर नाम) अपूर्व करण गुणस्थान. ९ नववा अनियति वादर गुणस्थान (अपर नाम) अनियति कारण गुणस्थान, १० दशवा सूक्ष्म-संपराय गुणस्थान. ११ इग्यास्वा उपशान्त मोहनीय गुणस्थान. १२ बारवा क्षीण मोहनीय गुणस्थान. १३ तेखा संयोगी-केवली गुणस्थान. १४ चउदवा अयोगी केवली गुणस्थान. और इस के आगे अन्तिम नाम मुक्ति-स्थान मोक्षस्थान-सिद्धि स्थान.

## दुसरा-अर्थ द्वार \*

चउदेही गुणस्थानों के नाम का अर्थ:—

१ मिथ्या=लोटि+गुण का+स्थान=ठिकाणा. अर्थात्-जो लोटि गुण (दुर्गुणों) के रहने का निवासस्थान होवे सोही मिथ्यात्व गुण स्थान.

२ सा=प्रथम के+स्व स्थान को+आदन=आवे. अर्थात्-पहिले गुणस्थान को पीछा आने वाला (गन्तागिर) सो नान्दादन गुणस्थानी.

३ मिश्र=दोनों की मिलावट रूप गुणस्थान. अर्थात्-मिथ्यात्व की और नम्यवचकी एकत्रता-मेल भेद होवे सो मिश्र गुण स्थानी.

इन द्वावें गुणों के लिये होवें उरि बाह्य जगत्





सो नियती वादर गुणस्थानी और इसही गुणस्थान का दुसरा नाम अनिवृत्ति-निवृत्ते नहीं-करण-कपाय की मन्दता से अर्थात्-जो कपायों की मन्द (कमी) करने श्रेणी प्रारंभ करी है. उस से पीछे हटे नहीं आगे बढ़ते ही जायें, सो अनिवृत्ति करण गुणस्थानी.

१० सूक्ष्म-बहुत ही थोड़ी-मम्यगय-कपाय. अर्थात् फलसं ज्वलन के लोभ रूप यत्किंचित मात्र-सोभी बहुत पतन्त्री कपायका उदय सो सूक्ष्म संपराय गुणस्थानी.

११ उपशान्त-उपशमाया (दक्का)×मोह-मोहनीय कर्म. अर्थात् मोहनीय कर्म की सर्व २८ ही (कपायों) प्रकृतियों को सर्वथा प्रकार से उपशमन किया-द्वय दिया सो उपशान्त मोह गुणस्थानी.

१२ क्षीण-क्षय किया×मोह-मोहनीय कर्म. अर्थात्-मोहनीय कर्म की २८ ही प्रकृतियों का सर्वथा क्षय-नाश किया सो क्षीण मोह गुणस्थानी.

१३ संयोगी-योग गहित-वेदली-वेदल जानी. अर्थात् मन बचन कायाके शुभ अवलम्बन वन्त वेदल जानी जिनके मन संयोगी वेदली गुणस्थानी.

१४ अयोगी-योग गहित+वेदली वेदल जानी. अर्थात्-मनादि योगों जो कर्म पुद्गल रूप वर्णना को ग्रहण करने कारण मन आत्म प्रदेनों का परिग्रह (चलन) उस ने गहित. और वेदल जान के धारक सो अयोगी वेदली गुणस्थानी.

### ३ तीसरा प्रश्नात्तर द्वार

१ प्रश्न मिथ्यात्व को भी गुणका स्थानक कहने का क्या सबब? उत्तर (१) जो इस जगत में अचैतन्य (जड) पदार्थ हैं. उस से ऊंच पक्ति का अनन्त ज्ञानादि गुण का धारक-अधिक शक्ति वन्त चैतन्य जीव का रहना का यह मूल स्थान है, यह ही इसमें गुण है, (२) बहूत से जीवों इस ही स्थान में रहे हुवे-मिथ्या-ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप का आराधन पालन कर अनेक गुणवन्तों के भी परम पुज्य बनते हैं. यों व्यवहार की भी शुद्धि होनेसे यह गुणका स्थान है. (३) अभव्य जीवों सदा इसही स्थान में रहते हैं वो द्रव्ये ज्ञानादि गुणों का पालन कर नववी ग्रीवेग (२१वे स्वर्ग) तक जाते हैं. यह भी गुण है. (४) और भी कितनेक व्यवहार तो मिथ्यात्वी देखाते हैं. परन्तु अन्तर में मिथ्यात्व मोहनी आदि प्रकृति यों का उपशम होगया सम्यक्त्वादि गुणों का स्पर्श किया है. तो भी मिथ्यात्वी कहे जाते हैं. इत्यादि गुण इस स्थान में पाने से इसे मिथ्यात्व गुणस्थान कहा जाता है.

२ प्रश्न—सास्वादन गुणस्थान वाले तो पडवाइ होते हैं, उसे गुणका स्थान कहने का क्या सबब? उत्तर—इस गुणस्थान का स्पर्श ने वाला जीवने कर्म ग्रन्थी का भेद कर सम्यक्त्व का स्पर्शन किया है इसलिये यह पडवाइ है तो भी उत्कृष्ट अर्ध पुद्गल परावर्तन संसार परि भ्रमण कर निश्चय से सम्यक्त्व का स्पर्शन कर मोक्ष पावेगा. इसलिये यह गुणका स्थान ही—गुणस्थान है.

३ प्रश्न—मिश्र गुणस्थान में मिथ्यात्व का और सम्यक्त्व का

\* मिथ्यात्व गुणस्थान मो खोटे गुणका स्थान ऐसा अर्थ अर्थ धारमे किया है, परन्तु जो मिथ्यात्व गुणस्थान को मिथ्यात्व ही गुणका स्थान ऐसा अर्थ करते हैं, उनके समाधान लिये यह प्रश्नोत्तर है

सेल भेल (गडबड) है उसे गुण का स्थान कैसे कहा जावे? उत्तर क्यों नहीं कहा जावे, जो सत्य को असत्य और असत्य को सत्य जानता था वो सत्य को तो सत्य जान ने लग गया. तो कभी असत्य को असत्य भी जानने लग जायगा.

४ प्रश्न—जो सम्यक् दृष्टि हो व्रतों के फल को जान कुछ व्रत धारे नहीं आविराति सस्यग दृष्टि ही रहे तो उस से क्या फायदा ? उत्तर—जो जानेगा कि इस मकान में उपद्रवी व्यन्तर देव (भूत) रहता है. और उस में कभी जाने का प्रसङ्ग भी आगया तो वां डरेगा. ऐसेही सम्यग दृष्टि भी पाप करते डरेंगे जिससे जिन के चिक्कन कर्म बन्ध नहीं होगा. यथार्थ जानना ही मुशकिल है. कहा हैकि “सद्धा परम दुल्लहा.” जाना येही बड़ा गुन है.

५ प्रश्न—जो संसार सम्बन्धि आरंभ के अनेक कृतव्य कर यदि यत्किंचित व्रत धारण करभी लिया तो उस से क्या फायदा? उत्तर—देश विराति शब्द तो साधुओं के सर्व विस्ती पने की अपेक्षा से है, परन्तु किंचित व्रत नहीं जानना. क्योंकि-इनोंने सर्वलोक के महारंभ महा परिग्रह की क्रिया का निरुंध कर, फक्त यत्किंचित अटकते कार्य को चला ने जितनी ही छुट्टी रखी है, और सो भी सर्वथा त्याग ने अभिलाषी हैं, इसलिये. तथा परिणामों से सर्वथा अव्रत की क्रिया उत्तर गइ है, येही जवरफायदा है. इसलिये यह गुणस्थान है.

६ प्रश्न—जो संयति (साधू) होकर ही प्रमाद का सेवन करे तो फिर क्या फायदा? उत्तर—बड़ा फायदा तो यह हुवा कि-अविरत की क्रिया साफ रुक गइ, और यद्यपि अप्रमादी ही सदा रहने का खप करते हैं. तथापि कर्म की प्रवलता से जो कुछ प्रमाद

मय परिणती परिणमती है। उसे रोककर भी ज्ञान ध्यान तप आदि वृद्धि कर लाभोपार्जन करते हैं, सो फायदा ही है।

७ प्रश्न-जब पांचोंही प्रमादोंका क्षय किया नवसव दुर्गुणाका क्षय हुवा, फिर यहां ही केवल ज्ञान की प्राप्ति क्यों नहीं होती है? उत्तर-इनने बाह्य वृत्ति में पांचों प्रमाद का अभाव करने से अप्रमदी बने हैं। परन्तु अन्तर करण में तो एक मद प्रमाद का तो सर्वथा अभाव हुवा है, और यत्किंचित बने हैं सो भी आगे नाश करने परिब्रत हुवे हैं वो सब नाश होंगे जब ही केवलज्ञान पावेंगे इस से अप्रमदी कहना।

८ प्रश्न-निवृत्ति बादरका क्या अर्थ होता है? उत्तर-बादर(बड़ी) कषायों से निवृत्ति पागये। चपालता का अभाव हुवा।

९ प्रश्न-आठवे का नाम निवृत्ति बादर और नववे का नाम अनिवृत्ति बादर यह भी कैसा आश्चर्य! गुण वृद्धि के बहल उलट गुणहानी के दोषा रोपण होता है। इसका क्या सबब? उत्तर-आठवे गुणस्थान में श्रेणी प्रारंभ होती है, इसलिमे यहां उतेजन देने का संभव है कि अब कषायों से निवृत्ते हो इसलिये शीघ्र आगे बढ़ो, और इस स्थान में सावधान-किया है कि होंशार रहो! जो थोडा भी विषय कपाय का अंश रहा है वह छल नहीं लेवे ! और आठवे गुणस्थान में तो १७ कपाक का नाश किया था यहां २१ का नाश किया है। इसलिये गुणाधिक ही जानना।

१० प्रश्न-सूक्ष्म सम्पराय का क्या अर्थ? उत्तर सब क्रिया २५ हैं, जिस में २४ सम्परायिक क्रिया है सो कर्मों का बन्ध कर ने वाली है, इस गुणस्थानी २३ क्रिया का तो सर्वथा अभाव कर दिया और पेजवती क्रिया है उस के दो भेद (माया और लोभ) जिस में से

मायाका भी नाश कर दिया और लोभ के चार भेद में से फक्त एक अन्तिम संज्वलका ही लोभ रहा सो भी अत्यन्त सूक्ष्म, इसलिये सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान कहा है।

११ प्रश्न-उपशान्त मोह गुणस्थान में मोहकी सर्व २८ ही प्रकृति का उपशम किया. और उन प्रकृतियों का प्रगट होने का भी कारण नहीं है, फिर पडवाइ क्यों होते हैं? उत्तर इस स्थान में प्रकृतियों का क्षय नहीं हुवा है, इसलिये वो अन्दर रही हूइ प्रकृतियों वाष्फकी माफक उछाला देने से और इस स्थान से आगे बढ़ने के रस्ते के अभाव से पडवाइ होते हैं.

१२ प्रश्न-क्षीण मोह गुणस्थान में सर्वथा मोहका क्षय हुवा फिर यहां ही केवल ज्ञान की प्राप्ति क्यों नहीं होती है; उत्तर-कारणसे कार्य निपजता है. इस स्थान घातीये कर्म का नाश होता है तब आगे केवल ज्ञान की प्राप्ति होती है. परन्तु निश्चय नयके मतसे तो यहां ही केवल ज्ञानी गिने जाते हैं.

१३ सजोगी केवली कहे सो केवल ज्ञानीके योग क्या काम आते हैं? उत्तर-अनुत्तर विमान के देवों को प्रश्नका उत्तर देने द्रव्य मन, देशना देने में द्रव्य वचन और जिन पुद्गलों को स्पर्शने वाकी रहे हैं उने स्पर्श ने काया के योगकी प्रवृत्ति होती है. इसलिये सयोगी हैं, परन्तु निश्चय से तो अयोगी समझना-क्योंकि-वो इच्छासे-ऊपत कर योग की प्रवर्ती नहीं करते हैं.

- पांचों अनुत्तर विमान वाली देवों अपने स्थान में ही रहे हुवे माविनय प्रश्न पुछतेहैं. उनको केवल ज्ञानी प्रश्नका उत्तर मनके द्रव्य पणे प्रगभा कर देनहैं. क्योंकि ज्ञान अरूपी हैं उमे अवधी ज्ञानी ग्रहण नहीं सकते हैं. और मन रूपी चो फग्मी हैं. उमे ग्रहण कर लेते हैं.

मय परिणती परिणमती है. उसे रोककर भी ज्ञान ध्यान तप आदि वृद्धि कर लामोपार्जन करते हैं, सो फायदा ही है.

७ प्रश्न-जब पांचोंही प्रमादोंका क्षय किया नवसव दुर्गुणाका क्षय हुवा, फिर यहां ही केवल ज्ञान की प्राप्ति क्यों नहीं होती है? उत्तर-इनने बाह्य वृत्ति में पांचों प्रमाद का अभाव करने से अप्रमदी बने हैं. परन्तु अन्तर करण में तो एक मद प्रमाद का तो सर्वथा अभाव हुवा है, और यत्किंचित बने हैं सो भी आगे नाश करने परिश्रित हुवे हैं वो सब नाश होंगे जब ही केवलज्ञान पावेंगे इस से अप्रमदी कहना.

८ प्रश्न-निवृत्ति बादरका क्या अर्थ होता है? उत्तर-बादर(बड़ी) कषायों से निवृत्ति पागये. चपालता का अभाव हुवा.

९ प्रश्न-आठवे का नाम निवृत्ति बादर और नववे का नाम अनिवृत्ति बादर यह भी कैसा आश्चर्य! गुण वृद्धि के बदल उलट गुणहानी के दोषा रोपण होता है. इसका क्या सबब? उत्तर-आठवे गुणस्थान में श्रेणी प्रारंभ होती है, इसलिये यहां उतेजन देने का संभव है कि अब कषायों से निवृत्ते हो इसलिये शीघ्र आगे बढ़ो, और इस स्थान में सावधान-किया है कि होंशार रहे! जो थोड़ा भी विषय कषाय का अंश रहा है वह छल नहीं लेवे ! और आठवे गुणस्थान में तो १७ कषाक का नाश किया था यहां २१ का नाश किया है. इसलिये गुणाधिक ही जानना.

१० प्रश्न-सूक्ष्म सम्पराय का क्या अर्थ? उत्तर सब क्रिया २५ हैं, जिस में २४ सम्परायिक क्रिया है सो कर्मों का बन्ध करने वाली है, इस गुणस्थानी २३ क्रिया का तो सर्वथा अभाव कर दिया और पेजवती क्रिया है उस के दो भेद (माया और लोभ) जिस में से

मायाका भी नाश कर दिया और लोभ के चार भेद में से फक्त एक अन्तिम संज्वलका ही लोभ रहा सो भी अत्यन्त सूक्ष्म, इसलिये सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान कहा है।

११ प्रश्न-उपशान्त मोह गुणस्थान में मोहकी सर्व २८ ही प्रकृति का उपशम किया। और उन प्रकृतियों का प्रगट होने का भी कारण नहीं है, फिर पडवाइ क्यों होते हैं? उत्तर इस स्थान में प्रकृतियों का क्षय नहीं हुआ है, इसलिये वो अन्दर रही हूइ प्रकृतियों वाष्फकी माफक उछाला देने से और इस स्थान से आगे बढने के रस्ते के अभाव से पडवाइ होते हैं।

१२ प्रश्न-क्षीण मोह गुणस्थान में सर्वथा मोहका क्षय हुआ फिर यहां ही केवल ज्ञान की प्राप्ति क्यों नहीं होती है; उत्तर-कारणसे कार्य निपजता है। इस स्थान घातीये कर्म का नाश होता है तब आगे केवल ज्ञान की प्राप्ति होती है। परन्तु निश्चय नयके मतसे तो यहां ही केवल ज्ञानी गिने जाते हैं।

१३ सजोगी केवली कहे सो केवल ज्ञानीके योग क्या काम आते हैं? उत्तर-अनुत्तर विमान के देवों को प्रश्नका उत्तर देने द्रव्य मन, देशना देने में द्रव्य वचन जौर जिन पुद्गलों को स्पर्शने वाकी रहे हैं उने स्पर्श ने काया के योगकी प्रवृत्ति होती है। इसलिये सयोगी हैं, परन्तु निश्चय से तो अयोगी समझना-क्योंकि-वो इच्छासे-ऊपत कर योग की प्रवर्ती नहीं करते हैं।

— पांचो अनुत्तर विमान वाली देवो अपने स्थान में ही रहे हुवे मारिनय प्रश्न पुछतेहैं। उनको केवल ज्ञानी प्रश्नका उत्तर मनके द्रव्य पणे प्रगमा कर देतहैं। क्योंकि ज्ञान अरूपी है उसे अवयवी ज्ञानी ग्रहण नहीं सकते हैं, और मन रूपी चो फरमी है। उसे ग्रहण कर लेते हैं।



१४ अयोगी गुणस्थान स्पर्शने बाद ही योगों का निरुधन होता है फिर इस स्थान को अयोगी कैसे कहना? उत्तर—भगवन्त का फरमान हैकि—“करे माणे करे” अर्थात् जो काम करना सुरु किया उसे किया ही कहना, वो योगों का निरुधन तुर्त ही कर डालते हैं. और यहां ही योग रहित हो फिर मोक्ष पधारते हैं.

प्रश्न—योग रहित हुवे बाद मोक्ष जाने की क्रिया कैसे कर ते है? उत्तर—पूर्व के प्रयोग से कुम्मार के चक्रवत्, कर्म सङ्ग रहित होने से निर्लेप तुम्बीवत्, प्रति बन्ध छेद होनेसे एरण्ड बीजवत्, और जीवका उर्द्ध गमन के स्वभाव से अग्नि शिखावत् मोक्ष में पधार ते हैं.

प्रश्न—जब जीव का उर्द्ध गमन स्वभाव है तो फिर मोक्ष स्थान के आगे क्यों नहीं जाता है? उत्तर गति में सहायता करने वाली धर्मास्ति काया का आगे अभाव होने से अलोकमें आत्मा गमन नहीं कर सकती है.

## ४ प्रवेश द्वार \*

१ प्रायः सर्व संसारी जीवों का प्रथमस्थ येही स्थान है, और सम्यक्त्व व चारित्र्य से पडे जीवोंभी मिथ्या स्थानमें प्रवेश करते हैं

२ आगे कहेंगे उस चतुस्थान में प्रवृत्त ता हुवा जीव क्षयोपशम तथा उपशम सम्यक्त्व में घुनः लगने से अर्थात् अनन्तान बन्धि कपायों का उदय होनेसे भ्रष्ट हो नीचे पडकर मिथ्यात्वकी तर्फ आने लगा उमके मिथ्यात्व का तो उदय नहीं हुवा, परन्तु

मिथ्यात्व की सह चारिणी (साथ रहने वाली) अनन्तान बन्धि कपाय का उदय हुआ है, सो सास्वादन में प्रवेश करते है।

३ मिथ्यात्व की पर्याय हायमान होती जाती है-घटती जाती है, और सम्यक्त्व की वृद्धमान होती है-बढ़ती जाती है, सो जीव मिश्र गुणस्थान का प्रवेशी जानना।

४ चौथे गुणस्थान में दो तरह से जीवों प्रवेश करते हैं:-

(१) निसर्ग से अर्थात्-स्वभाव से और (२) अधीगम से अर्थात्-गुरु के सद्वोध से. (१) जो भव्य जीवों तन्त्री पचेन्द्रिय पर्यासावस्था की पर्याय को प्राप्त हुआ सो पहिले अनन्तान बन्धि चौकड़ी का प्रथम यथा प्रवृत्ति करण से, फिर दूसरे अपूर्व करण में स्थिति घात-रस घात-गुणश्रेणी-गुण संक्रम और अन्य स्थिति बन्ध से तीसरा अनिवृत्ति करणसे, और चौथा उपशान्त अद्धासे, दर्शन त्रिक-मिथ्यात्वमोहनीय-मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीय युक्त उपशम कर-उपशम सम्यक्त्व-क्षयोपशमकर-क्षयोपशम सम्यक्त्व और क्षयकर क्षायिक सम्यक्त्व, इन तीनोंमेंसे किसी एक सम्यक्त्वकी प्राप्ति करता है, सो अधीगम से प्रवेशी जानना. (२) और निश्चय से तो अधीगम हुवे ही, व्यवहार में-आर्य क्षेत्र-उत्तमकुल-दीर्घायु-पूर्णोन्द्रिय-निरोग्यता-सुखोप जीवी-इत्यादि सुसामग्री युक्त को सदगुरु-निग्रन्थ का संयोग मिलने से सर्वज्ञ प्रणित धर्म श्रवण कर तत्त्वार्थ का श्रद्धान होवे सो निसर्गः से प्रवेशी जानना।

५ पांचवे गुणस्थान में तीन तरह से प्रवेश करते हैं:-चौथे गुणस्थान में अनन्तान बन्धि चौकड़ी और दर्शन त्रिक इन ७ स सम्यक्त्व मोहनीय की प्रकृतियों का क्षयोपशम करने से प्रवेश हुआ, और इस गुण स्थान में सात तो वोही और अप्रत्याख्याना-

वरणीय कषाय की ४ चौकड़ी ( यह ४ चारित्र मोहनीय की प्रकृति) यों ११ प्रकृतियों में सैं—(१) सातों प्रकृतियों का क्षय करे और चारों प्रकृतियों का क्षयोपशम करे, सो क्षायिक प्रवेशी. (२). सातों प्रकृतियों का ओपशम करे और चारों का क्षयोपशम करे, सो ओपशमिक प्रवेशी. (३) और दशों प्रकृतियों का क्षयोपशम करे और एक सम्यक्त्व मोहनीय का उदय रहे सो क्षायोपशमिक प्रवेशी, तथा दशों प्रकृतियों का प्रदेशोदय और सम्यक्त्व मोह का विपाकोदय रहे सो भी क्षयोपशमिक प्रवेशी जानना.

६ छठे गुणस्थान में भी तीन तरह से प्रवेश करते हैं:—उपर कही सो ११ प्रकृतियों और प्रत्याख्यानावरणीय चौकड़ी यों १५ प्रकृतियों में से यथा प्रवृत्ति करण कर—(१) सात सम्यक्त्व मोहनीय की प्रकृतियों का क्षय करे, और ८ चारित्र मोहनीय की प्रकृतियों का क्षयोपशम करे सो क्षायिक प्रवेशी (२) पन्दरेही का उपशम करे सो उपशम प्रवेशी, (३) और ७ का उपशम करे और ८ औदायिक रहे सो क्षायोपशमिक प्रवेशी जानना.

७ सातवे गुणस्थान में भी छठे की तरह ही १५ प्रकृतियों और संज्वलका मान यो १६ प्रकृतियों को (१) क्षय, (२) उपशम, और (३) क्षयोपशम कर तीनों तरह प्रवेश करते हैं. विशेषमें पांच प्रमाद-मद-विषय-कषाय-निन्दा और विकथा इनका त्यागीही इस गुणस्थान का प्रवेशी जानना.

८ आठवे गुणस्थान में दो तरह से प्रवेश होता है:—(१) उपशम श्रेणिगत, और (२) क्षयक श्रेणिगत. (१) उपशम श्रेणि प्रवेशी क सो उपर कही सो १६ प्रकृतियों और संज्वलकी माया यों १७ प्रकृतियों को अपूर्व करण कर उपशमावे, जो बन्ध में नहीं आवे ऐ-

सी अशुभ प्रकृतियों को प्रावृत ( पलटा ) कर अपूर्व गुण संक्रम और अपूर्व करणद्वा का संख्यातवा भाग जाने बाद निद्र और प्रचला यह दोनों दर्शनावरणीय की प्रकृतिका व्यच्छेद होते बहूत स्थिति खण्ड का सहश्रोंका अतिक्रम करते बाकी एकही भाग रहे तब स्थिति खण्ड प्रथक्त्व जावे तब उपशमश्रेणि प्रवेशी जानना. यह इग्यारवें गुणस्थान तक जाकर हायमान परिमाण परिणमने से के तो पडता है. या मरता है, परन्तु आगे नहीं चडता है) और (२) क्षपक श्रेणि प्रवेशिक सो-८ वर्ष से अधिक वयवाला. वज्र वृषभ नारच संघयणी. क्षायिक सम्यक्त्वी. विशुद्ध संयमी, चौदह पूर्व का पाठी शुक्ल ध्यानी होता है, सोही क्षपक श्रेणि में प्रवेश कर सकती है. यह चारोत्र मोहनीय की २१ प्रकृतियों-का क्षय करने का उद्यम यहां से सुरु करता है. (आगे के गुणस्थानों में क्षय करता है.) यथा प्रवृत्ति आदि तीनों करणों को फिर से सुरु करता है, और ऊपर कही १७ ही प्रकृतियों की ऐसी तरह क्षय करता है कि जिसकी स्थिति अनिवृत्ति करण अद्वा के प्रथम समय में ही पल्योपम के असंख्यातवे भाग मात्र रह जाय, सो क्षपक श्रेणि प्रवेशी. (यह वृद्धमान परिणामी अण्डवाइ (पडता नहीं) इग्यारवा गुणस्थान को छोड सीधाही उपर जाता है और निश्चय से मोक्ष पाता है.)

९ नववें गुणस्थान में भी दोनों तरह ही प्रवेश करता है:-

(१) उपशम श्रेणिगत और (२) क्षप श्रेणिगत. आठवें गुणस्थान में कही सो १७ प्रकृतियों और संज्वलका लोभ तथा तीनों वेद-यों २१ प्रकृतियों के अनिवृत्ति करण कर, जिन प्रकृतियों का उदय काल होवे वहा ही से श्रेणि आरंभ कर प्रकृतियों का उदय

तो नहीं है परन्तु बन्ध है उनका अन्त करण दल और जिन का उदय तथा बन्ध दोनों ही नहीं है उनका अन्त करण दल पाहिले की स्थिति में नहीं मिलाते-दुसरी स्थिति में मिलाकर, उपशम श्रेणि वाला तां उपशम के अन्त में अश्वकरणद्धा और किट्टि करण द्वा इन दोनों कर उपशमावे, और क्षपक श्रेणि वाला-अश्वकरण-द्धा किट्टि करणद्धा और किट्टि करण वेदना कर क्षय करे-सो नव-वे गुणस्थान का प्रवेशी जानना.

(आठवे गुणस्थान में जो उपशम श्रेणि करी हो वो यहा भी उपशम श्रेणि करता है और क्षपक श्रेणि करी होसो क्षपक श्रेणि करता है.)

१० दशवे गुणस्थान में भी दो ताह से प्रवेश होता है:—  
(१) उपशम श्रेणिगत, और (२) क्षपक श्रेणिगत. जो उपर कही हूइ २१ मोहनीय की प्रकृतियों और हाँस पटक (हाँस-रति-अरति-भय-शोक-जुगुप्सा) इन २७ प्रकृतियों को सूक्ष्म सम्परांय अद्धकर वेदकर उपशम श्रेणि वाला उपशमावे और क्षपश्रेणि वाला खपावे सो ही दशवे गुणस्थान के प्रवेशी जानना

११ इग्यारवे गुणस्थान में एक ही तरह प्रवेश करता है, दशवे गुणस्थान में कही हूइ २७ प्रकृति यों और संज्वल का लोभ यों सब मोहनीय कर्म की २८ ही प्रकृतियों का सर्वथा प्रकार से उपशम कर ने वाला-ढक ने वाल उपशांत मोह गुणस्थान का प्रवेशी जानना.

१२ बार वे गुणस्थान में एक क्षपक श्रेणी वालाही प्रवेश करता है, इग्यारवे गुणस्थान में कही हूइ मोहनीय की २८ ही प्रकृतियों का सर्वथा क्षय किया फिर बाकी रहे-ज्ञानावर-

णीय, दर्शनावर्णीय, और अन्तराय इन तीनों कर्मोंका स्थिति घात-गुण श्रेणि और गुण संक्रमण कर पहिले की तरह उस क्षीण कषायद्धा के संख्याते भाग जावे वहां लग प्रवृत्ति करेसी क्षीण कषाय गुणस्थान का प्रवेशी जानना.

१३ तेरेवे गुणस्थान मे-चारवे गुणस्थान के प्रथम समय तो सर्वथा मोहका नाश किया, और अन्तिम समय बाकी रहे तीनों घन घातिक कर्मों का नाश किया. यों चारों घातिक कर्मों का नाश होतेही सयोगी केवली गुणस्थान में प्रवेश करते ही सर्वज्ञ सर्व दर्शी होते हैं.

१४ चउदवे गुणस्थान में-तेरेवे गुणस्थान में प्रवृत्ता हूवा सूक्ष्म क्रियना में शुद्ध ध्यान के तीसरे पाये की समाप्ति होते व्युत्पत्ति क्रिया अप्रति पाति नामे चौथा पायकी प्राप्ति होवे अयोगी केवली गुणस्थान में प्रवेश होता है.

और चउदवे गुणस्थान के अन्त में बाकी रहे चारों अघातिय कर्म-वेदनीय-आयु-नाम-और गौत्र का नाश कर शुद्ध-हलकी आत्मा वन-१ धनुष्य-मुक्त वाण वत्-पूर्व संयोगसे, अनिलेप तुम्बीवत असंगी होने से, ३ एरन्ड बीजवत्-बन्धन मुक्त होने से-और ४ अग्नि शिखावत्-स्व स्वभाव से उर्द्ध गमन कर लोकके अन्तिम भाग में जो मुक्ति स्थान है उसमें प्रवेश कर परम परमात्म वन अनन्त काल तक स्थिर रहते हैं.

## पांचवा लक्षण द्वार \*

इस द्वारके सुलभे के लिये देविये अर्ध काण्ड का पृष्ठ ४४ वा.

१ पहिले मिथ्यात्व गुणस्थानी के लक्षणः—१ अव्यक्त मिथ्यात्व, २ व्यक्त मिथ्यात्व, २ अभिग्रह मिथ्यात्व, ४ अनभिग्रह मिथ्यात्व, ५ अभिनिवेशिक मिथ्यात्व, ६ संशयिक मिथ्यात्व, ७ अनाभोग मिथ्यात्व, ८ लोकीक देवगत मिथ्यात्व, ९ लोकीक गुरुगत मिथ्यात्व, १० लोकीक धर्मगत मिथ्यात्व, ११ लोकोत्तर देवगत मिथ्यात्व, १२ लोकोत्तरगुरु मिथ्यात्व, १३ लोकोत्तर धर्मगत मिथ्यात्व, १३ कुप्रावचनी देवगत मिथ्यात्व, १४ कुप्रा वचनी गुरुगत मिथ्यात्व, १५ कुप्रा वचनी धर्मगत मिथ्यात्व, १६ सर्वज्ञ प्रणित सूत्रों से कमी परूपणा मिथ्यात्व, १७ सर्वज्ञ प्रणित सूत्रोंसे अधिक परूपणा मिथ्यात्व, १८ सर्वज्ञ प्रणित सूत्रों से विप्रित परुणा मिथ्यात्व; १८ धम्म अधम्म सन्ना मिथ्यात्व, १९ अधम्म धम्म सन्ना मिथ्यात्व, २० साहु असाहु सन्ना मिथ्यात्व, २१ असाहु साहुसन्ना मिथ्यात्व, २२ जीव अजीवसन्ना मिथ्यात्व, २३ अजीव जीवसन्ना मिथ्यात्व, २४ मग्ग उमग्गसन्ना मिथ्यात्व, २५ उमग्ग मग्गसन्ना मिथ्यात्व, २६ रुवी अरुवी सन्ना मिथ्यात्व, २७ अरुवी रुवी सन्ना मिथ्यात्व, २८ अविनय मिथ्यात्व, २९ असातना मिथ्यात्व, ३० अकिरिया मिथ्यात्व, ३१ अज्ञान मिथ्यात्व, ३२ प्रवर्तन मिथ्यात्व, ३३ परिणाम मिथ्यात्व, और ३४ प्रदेश मिथ्यात्व. इन ३४ मिथ्यात्वों में का किसी भी प्रकार का मिथ्यात्व सेवे सो मिथ्यात्वी.

२ दुसरा सास्वादन गुणस्थान का लक्षण-मोहोदयि, आर्त रौद्रे ध्यानी, हायमान परिणामी, मूर्छित मति, दुर्मति, विषयी, कपयि, प्रमादि, पडवाइ इत्यादि लक्षण का धारक सो सास्वादन गुणस्थानी.

३ तीसरे मिश्र गुणस्थानीके लक्षण-मिश्र गुणस्थानी सर्वज्ञ प्र

णित तत्वोंको भी माने और, अज्ञानीयों कथित बातों को भी माने, दोनोंही के वचनों तत्व रूप माने-आस्तिक्य बने. मिश्र मोह-के उदय कर सत्या सत्य का निर्णय करने की दरकार ही नहीं रखे सो मिश्र गुणस्थानी.

४ चौथा अव्रति सम्यग् दृष्टि गुणस्थानके लक्षण-“तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग दर्शनम्”=अर्थात्- १ जीव, २ अजीव. ३ पुण्य, ४ पाप, ५ आश्रव, ६ संवर, ७ निर्जरा. ८ बन्ध. और ९ मोक्ष. इन नवों ही तत्वों को द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयोंकर तथा निश्चय और व्यवहार के स्वरूप कर सर्वज्ञ प्रणितानुसार द्रव्य क्षेत्र काल भाव से भिन्न २ यथा बुद्धि जानकर श्रद्धान करने वाले.

और व्यवहार सम्यक्त्व के ७७ लक्षण युक्त होते हैं:- १ परमार्थ के जान की संगति करे. २ परमार्थ का जान होवे. ३ सम्यक्त्व-धर्म का वमन किये की संगति नहीं करे और ४ पाण्डित्यों का परिचय नहीं करे. (यह ४ श्रद्धान) ५ विषयानुगर्गा की तरह जिन वचन का अनुगामी होवे. ६ क्षुधतुष्ट भोजन का आदर करे त्यों जिन वचन का आदर करे. और ७ विद्यार्थी की तरह जिन वचन ग्रहण करे (यह ३ लिंग) ८-१७-अग्निहोत्र-मिच्छा-आचार्य उपाध्याय स्थविर-कुल्ल-गर्ग-मैत्रेय-त्वक्षी-और क्रियावन्त-इन दशों का विनय करे (यह १० विनय) १८-२० अर्हत धर्मानुयायियों को-मनने अछे जाने-वचन ने कर्त्तों करे और काया ने

१ बुद्धि वचनले. दूरे सूत्रो-इगले द्योहित इन तीनोंको समझ करे. २ एक गुण के द्योत गिप्पों के समुदाय को दूरे करते. ३ सम्यक्त्व को समझ करे. ४ मातृ-मातृजी-आजीव-आजीवा इन चारों को समझ करते हैं और तत्त्वों को करे हैं:-



१ पहिले मिथ्यात्व गुणस्थानी के लक्षणः—१ अव्यक्त मिथ्यात्व, २ व्यक्त मिथ्यात्व, २ अभिग्रह मिथ्यात्व, ४ अनभिग्रह मिथ्यात्व, ५ अभिनिवेशिक मिथ्यात्व, ६ संशयिक मिथ्यात्व, ७ अनाभोग मिथ्यात्व, ८ लोकीक देवगत मिथ्यात्व, ९ लोकीक गुरुगत मिथ्यात्व, १० लोकीक धर्मगत मिथ्यात्व, ११ लोकोत्तर देवगत मिथ्यात्व, १२ लोकोत्तरगुरु मिथ्यात्व, १३ लोकोत्तर धर्मगत मिथ्यात्व, १३ कुप्रावचनी देवगत मिथ्यात्व, १४ कुप्रावचनी गुरुगत मिथ्यात्व, १५ कुप्रावचनी धर्मगत मिथ्यात्व, १६ सर्वज्ञ प्राणित सूत्रों से कमी परूपणा मिथ्यात्व, १७ सर्वज्ञ प्राणित सूत्रोंसे अधिक परूपणा मिथ्यात्व, १८ सर्वज्ञ प्राणित सूत्रों से विप्रित परूणा मिथ्यात्व; १८ धम्म अधम्म सन्ना मिथ्यात्व, १९ अधम्म धम्म सन्ना मिथ्यात्व, २० साहु असाहु सन्ना मिथ्यात्व, २१ असाहु साहुसन्ना मिथ्यात्व, २२ जीव अजीवसन्ना मिथ्यात्व, २३ अजीव जीवसन्ना मिथ्यात्व, २४ मग्ग उमग्गसन्ना मिथ्यात्व, २५ उमग्ग मग्गसन्ना मिथ्यात्व, २६ रुवी अरुवी सन्ना मिथ्यात्व, २७ अरुवी रुवी सन्ना मिथ्यात्व, २८ अविनय मिथ्यात्व, २९ असातना मिथ्यात्व, ३० अकिरिया मिथ्यात्व, ३१ अज्ञान मिथ्यात्व, ३२ प्रवर्तन मिथ्यात्व, ३३ परिणाम मिथ्यात्व, और ३४ प्रदेश मिथ्यात्व. इन ३४ मिथ्यात्वों में का किसी भी प्रकार का मिथ्यात्व सेवे सो मिथ्यात्वो.

२ दुसरा सास्वादन गुणस्थान का लक्षण-मोहोदयि, आर्त रौद्रे ध्यानी, हायमान परिणामी, मूर्छित मति, दुर्मति, विषयी, कपयि, प्रमादि, पडवाइ इत्यादि लक्षण का धारक सो सास्वादन गुणस्थानी.

३ तीसरे मिश्र गुणस्थानीके लक्षण-मिश्र गुणस्थानी सर्वज्ञ प्र

णित तत्वोंको भी माने और, अज्ञानीयों कथित बातों को भी माने, दोनोंही के वचनों तत्व रूप माने-आस्तिक्य बने. मिश्र मोह-के उदय कर सत्या सत्य का निर्णय करने की दरकार ही नहीं रखे सो मिश्र गुणस्थानी.

४ चौथा अव्रति सम्यग् दृष्टि गुणस्थानके लक्षण-“तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग दर्शनम्”=अर्थात्- १ जीव, २ अजीव, ३ पुण्य, ४ पाप, ५ आश्रव, ६ संवर, ७ निर्जरा, ८ बन्ध. और ९ मोक्ष. इन नवों ही तत्वों को द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयोंकर तथा निश्चय और व्यवहार के स्वरूप कर सर्वज्ञ प्रणितानुसार द्रव्य क्षेत्र काल भाव से भिन्न २ यथा बुद्धि जानकर श्रद्धान करने वाले,

और व्यवहार सम्यक्त्व के ७७ लक्षण युक्त होते हैं:-१ परमार्थ के जान की संगति करे, २ परमार्थ का जान होवे, ३ सम्यक्त्व-धर्म का वमन किये की संगति नहीं करे, और ४ पाखंडियों का परिचय नहीं करे. (यह ४ श्रद्धान) ५ विषयानुरागी की तरह जिन वचन का अनुरागी होवे, ६ शुधातुर इष्ट भोजन का आदर करे त्यों जिन वचन का आदर करे, और ७ विद्यार्थी की तरह जिन वचन ग्रहण करे (यह ३ लिंग) ८-१७-अरिहंत-सिद्ध-आचार्य उपाध्याय स्थविर-कुल-गर्ण-संघ-स्वधर्मी-और क्रियावन्त-इन दशों का विनय करे (यह १० विनय) १८-२० अर्हत धर्मानुयायियों को-मनसे अछे जाने-वचन से कीर्ती करे और काया से

१. वृद्ध वयवाले. वहु मृत्रो-पूगणे दीक्षित इन तीनोंको स्थविर कहते हैं. २ एक गुरु के वहुत शिष्यों के समुदाय को कुल कहते हैं. ३ समुदाय को गण कहते हैं. ४ माधु-माध्वी-श्राविक-श्राविका इन चारों को संघभी कहते हैं और तीर्थ भी कहते हैं:—

सुख उपजावे (यह ३ शुद्धता) २१ समभाव रखे, २२ वराग्य भाव रखे. २३ आरंभ परिग्रह कम करे, २४ दुःखी की अनुकम्पा करे और २५ जिन वचन का पुक्त आस्ति क्या होवे (यह ५ लक्षण) २६ जिन वचन में शंका नहीं करे, २७ परमत की वांछा नहीं करे, २८ कर्णा के कल का सन्देह नहीं करे, २९ पाखण्ड की महिमा नहीं करे, और ३० पागण्डिका संग नहीं करे, (यह ५ दोष टाले) ३१ धर्म वन्त, ३२ धर्माज्ञाति कर्ता, ३३ धर्मात्म का भक्ति वन्त, ३४ चार तीर्थों के गुण का जान, ३५ चारों तीर्थोंकी वृद्धि कर्ता, (यह ५ भूषण) ३६ सर्व शास्त्र का जान, ३७ निशंक बोध कर्ता, ३८ यथार्थ मंवाद कर्ता, ३९ अनुमानादि में त्रिकालत्र होवे, ४० बीकट तपस्वी, ४१ अनेक विद्या (इत्य) का जान, ४२ प्रसिद्ध में व्रत धार, और ४३ कवित्व कर धर्म दीपावे (यह ८ प्रभाव) ४४-४९ गजा-ज्ञाति-मावित्र-गुरु-बलवन्त-और देव इनका दृक्क स धर्म विरुद्ध कार्य का आगारि (यह ६ आगार) ५०-५९ धर्मात्माओंमें एक वक्त बोले-वाग्म्यार बोले, इच्छित वस्तु दे-वन्मान के गुणानुवाद करे, और नमस्कार करे, (यह ६ यत्ना) ६० धर्म वृक्ष का सम्यक् व मूल जान, ६१ धर्मा भूषण की सम्यक् व्यवस्था जान, ६२ धर्म नगर का सम्यक् व्यवस्था जान, ६३ धर्म मंदिर का सम्यक् व्यवस्था जान, ६४ धर्म पदार्थों का सम्यक् व्यवस्था जान, और ६५ धर्म भोजन का सम्यक् भोजन जान, (यह ६ स्थान) ६६ आत्मा की आग्नि माने, ६७ आत्मा आश्रयि माने, ६८ आत्मा को कर्ता माने, ६९ आत्माको ही कर्म भुक्ता माने, ६६ मोक्ष की आग्निमाने, और ७७ ज्ञानादि स्व को मोक्ष का साधन माने (यह ६ मन्त्र) इन ६१ लक्षणों युक्त अविर्गति सम्यग दृष्टि

होते हैं।

और शुद्ध व्यवहारी, चतुर्विध संघकी परम हर्ष भक्ति भावसे वत्सलता के कर्ता, मन तन धन कर धर्मोन्नाति करता, गुण ग्राही-सर्व जीवों के एकान्त सुख शान्ति के इच्छक सो सम्यग दृष्टि गुण स्थानी।

५ पांचवे देश-विरति गुणस्थानी के लक्षण—चौथे गुणस्थान में कहे मुजब सम्यक्स्त्री के गुणयुक्त आगे अनुक्रम से योग्यता प्रमाणे इग्यारे प्रतिमा धारण करते हैं:—१ दर्शन (समाकित) प्रतिमा २ विरत प्रतिमा, ३ सामायिक प्रतिमा, ४ पौषध प्रतिमा, ५ नियम प्रतिमा, ६ ब्रम्हचर्य प्रतिमा, ७ सचित त्याग प्रतिमा, ८ अनारंभ प्रतिमा, ९ पेसारंभ प्रतिमा, १० अदिष्ट कृत प्रतिमा. और ११ समण भूय प्रतिमा. इनको अवलके गुणमें कायम रहते हूवे आगे यथा शक्ति गुणों वृद्धि करत रहें.

यह २१ लक्षण धारी होते हैं:—१अशुद्ध, २ रूपवन्त, ३ शान्त स्वभयी, ४ अक्रूर, ५ भीरु, ६ लोक प्रिय, ७ असठ, ८ विचक्षण, ९ लज्जालु. १० दयाल. ११ मन्यस्त, १२ सुदीर्घदर्शी, १३ गुणानुरागी, १४ सूपक्षी. १५ गम्भीर, १६ विज्ञानी. १७ वृद्धभक्त, १८ विनीत (नम्र), १९ कृतज्ञ. २० परहितकारी, और २१ लब्ध-लक्ष्मी-शास्त्रज्ञ.

और भी २१ लक्षण—१ अल्पच्छा. २ अल्पारंभी. ३ अल्प परिग्रह ही. ४ सुशील. ५ सुविरती. ६ धर्मिष्ठ, ७ धर्म विरती, ८ कल्प उग्र विहारी. ९ महा संवेग विहारी, १० उदासी. ११ वैगम्य. वन्त, १२ एकान्त आर्य. १३ सम्यग मार्गी. १४ सुसाधु. १५ सुपात्र १६ उत्तम. १७ किरियावादी १८ आस्तिक्य. १९ आगाधिक, २०

प्रभावक, २१ अर्हत के शिष्य,

यों सब ५३ लक्षणके धारक होवे सो देश विरति गुणस्थानी  
 ६ छठे प्रमत्त संयति गुणस्थानी के लक्षण—१ अहिंसा, २ सत्ये, ३ दत्त (अचारी,) ४ ब्रम्हचर्य और ५ निष्परिग्रही. (यह ५ महाव्रत) ६-१० श्रोतेन्द्रि-चक्षुरेन्द्रि-घणेन्द्रि-रसेन्द्रि और स्पर्शेन्द्रिय इन पांचों का निग्रह करे. ११-१४ क्रोध-मान-माय लोभ-इन चारों कषाय को जीते, १५-१९ ज्ञानाचार-दर्शनाचार-चारित्राचार-तपाचार और वीर्याचार इन ५ आचार को आराधे, २०-२४ इयार्समति, भाषा समिति-ऐषणा समिति-आदान-निक्षेपना समिति-और परिठावणीया समिति. इन पांच समित युक्त सदा प्रवृत्ते. २५-२७ मन-वचन-और काया इनको स्ववस्य करे. २८-३६ मकान-कथा-आसन-प्रेक्षन-सुणन-स्मरण-सरस अहार-अधिक अहार और सिणगार, यह नव ही कामें. विषय उत्पन्न होवे वैसे त्यागे. यों ३६ लक्षण के धारक होते हैं.

१७ प्रका संयम पाले:—पृथ्वी-पाणी-अग्नि-वायु-वनस्पति बेन्द्रिय तेन्द्रिय-चौरिन्द्रिय-पचेन्द्रिय और अजीव काय, इन दशोंकी यत्ना करे, प्रेक्षना-पमार्जना-उत्प्रेक्षा-और परिठावणीय यह काम यत्ना निमित्त करे, मन वचन और काय को धर्म मार्गमें संलग्न करे.

१२ प्रकार के तप—१ अनसन, ८ ऊणोदरी, भिर्याचरी ४ रसपरि त्याग ५ काया क्लेश, और ६ प्रति सलिनता (यह ६ बाह्य तप) ७ प्रायश्चित्त, ८ विनय ९ वैयावच्च, १० सज्ज्ञाय ११ ध्यान और १२ कायू-त्सर्ग. यह १२ प्रकारका तप सदा करे.

यह ६९ गुण के नाम कहे ऐसे अनेक उत्तम लक्षण के धारक प्रमत्त संयति होते हैं, परन्तु इस गुणस्थान का नाम परमत्त हो-

ने से यहा मद, विषय, कषाय, निन्दा और वीकथा इन पांचों प्रमादोंके निवासस्थान होने के सबब से तथा योगोंकी, दृष्टि की, भाषा की और भावोंकी इन चारोंकी चपलता होनेसबबसे बहुदा कृष्णादि तीनों अशुभ लक्ष्या परिणती में परिणम ने सै मूल गुणों उत्तर गुणों में सुक्ष्म वादर अनेक प्रकार के दोषों लगते हैं उन से बच ने सदा प्रयत्न वन्त रहते हैं, और लगे दोषों से शुद्ध होने सदा प्रति क्रमण प्रायश्चितादि करते रहते हैं सो प्रमत्त संयति गुण स्थानी जानना.

७ सातवे अप्रमत्त संयति गुणस्थान के लक्षण—यहा पाचों प्रमाद का अभाव होने से यह जीवों-मन्दाभिमानी, मन्द विषयी, मन्द कषायी, सदा उद्यमी, अल्प भाषी, गुणानुवादी, गम्भीर्य, ए एकान्त धर्म ध्यानी, ज्ञानी शान्त दान्त आदि उत्तम गुण संयुक्त होवे सो अप्रमत्त संयति गुणस्थानी.

८ आठवे नियति वादर गुणस्थान के लक्षण—यह वादर दुसरे के जान ने में आवे ऐसी क्रोधादि कषायों की प्रणति में नहीं परिणमते हैं, अचपल, स्थिर स्वभावी शुद्ध ध्यानी वन पण्डित वीर्य को अवरण-अच्छा दन करने वाली प्रकृतियों को क्षय करने तीव्र वेगमय परिणामोंकी धारा समय २ प्रति वृद्धि करते हैं, सो अर्द्ध करण गुणस्थानी.

९ नववे निवृत्ति वादर गुणस्थान के लक्षण—इन के सूक्ष्म भी क्रोध मान माय और तीनों वेदों के विकार का अभाव हुवा जिस से-अक्रोधी, अमानी, अमायि, निर्विषयी, अनुभव किये हुवे देखाते सुनाते भोगों की संपूर्ण वांछा रूप संपूर्ण संकल्प विकल्प रहित अपने परयात्म स्वरूप के ध्यान में निश्चल एकाग्र परिणम

से क्षीण में क्षय करने में नहीं आती ये वर्ण तथा अवयव रचना का भेद होनेपर भी जो अनिवृत्ति करणी रहते हैं, सो अनिवृत्ति करणी गुणस्थानी जानना.

१० दशवे सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान के लक्षण—किसी के भी जानने में न आवे ऐसे किञ्चित मात्र स्वभाविक ही लोभ अन्तःकरण में रहने सिवाय बाकी सर्व विषय कषाय नष्ट होने से यह निष्कषायी, निर्लोभी महा गम्भीर्य, महा वैरागी, निश्चिन्त स्वात्म रूप परमात्मा के ध्यान में एकान्त एकाग्रता से निर्मम सर्व प्रकार की बाँछाते निर्मुक्त महा मुनि सो सूक्ष्म सम्परायी गुणस्थानी,

११ इग्यारवे उपशान्त मोह गुणस्थानी के लक्षण—यह कषाय को उपशान्त कर हायमान परिणामी होनेसे पडते हैं, जिसके दो प्रकारः— (१) एकतो भव के क्षय होने से पडते हैं सो, और (१) स्थिति के क्षय होने से पडते हैं सो, (१) जो भव के क्षय होनेसे पडवाइ-पतीत होते हैं सो उन का इग्यारवे गुणस्थान स्पर्श बाद आयुष्य पूर्व होने से उसी वक्त वो मनुष्य भव का क्षय कर मरकर नियमा से पाँचों अनुत्तर विमानों में के किसी भी एक विमान में जाकर उपजते हैं. वहां उस ही समय बन्ध संक्रमण आदि आठों ही कारणों का उद्यम प्रवृत्ति हो इग्यारवे गुणस्थान के पडे हूँ वे सीधे चौथे गुणस्थान मे आकर ठेहरते हैं. बीच में के गुणस्थान किञ्चित मात्र ही स्पर्शा ते नहीं हैं, उपशम सम्यक्त्व से पडते वेदक सम्यक्त्व का स्पर्शन कर क्षायिक सम्यक्त्वी बन जाते हैं, सो भव क्षय पडवाइ जानना (१) और जो जीवों इस गुणस्थान की जघन्य एक समय की उत्कृष्ट अन्तर मूर्द्धत की स्थिति है वो सम्पूर्ण होने से आगे जाने के रस्ते के स्वभाव के अभाव से तुर्त वहां से पीछे गिरते

हैं और जहां जहां उदय उदीरणा प्रकृतियों का व्यव छिन्न पना हुआ हो उनको पीछी आरंभते अर्थात्-जैसी तरह से उपशमाइ थी वैसी ही तरह से पीछी उदय भाव में लाते वो पडते हुवे आठवे गुणस्थान में तो नियमासे आते हैं. उसमें से कितनेक जीवों तो आठवे गुणस्थान में आकर उपशम श्रेणि त्याग कर पीछी क्षपक श्रेणि का प्रारंभ कर नववे दशवे गुणस्थान को स्पर्श वारवे चले जाते हैं. वो निश्चय से उस ही भव में मोक्ष पाते हैं. और कोई क्षायिक सम्यक्त्वी होकर पीछा श्रेणिका आरंभ नहीं करे और आठवे में नहीं संभले वो चौथे में आकर ठेहरते हैं. इस से नीचे नहीं उतरते हैं. और उपशम सम्यक्त्वी आठवे में नहीं संभले तो सातवे छठे पांचवे चौथे आकर ठेरे, और जो कभी चौथे में भी नहीं संभले तो दुसरे होकर पहिले आवे; मिथ्यात्वी बन जावे ÷ परन्तु नियमानहीं. कितनेक नहीं भी आते हैं. ऐसी तरहसे जो गमन गमन करे उनको उपशान्त मोह गुणस्थानी जानना.

१२ वारवे क्षीण मोह गुणस्थानी के लक्षण—इन के सर्व कपाय का क्षय होने से सर्व कर्मों की प्रकृतियों का संख्यातवा भाग में से बाकी एक ही भाग रहे उस वक्त-५ ज्ञानावरणीय, ९ दर्शनावरणीय, ५ अन्तराय, और दो निन्द्रा, इन १६ प्रकृतियों की सत्ता की स्थिति सर्व अपवर्तना से अपवर्त कर (घटाकर) क्षीण कपाय की अद्धा जैसी करे, परन्तु निद्रा द्विक को स्थिति स्वरूप की अपेक्षासे एक समय हीन करे, और सर्व कर्मों रूप से बराबर होवे ज

÷ यह उपशम श्रेणि और क्षपक श्रेणि चारित्र मोहकी प्रकृतियों को उपशमाने स्वपाने से होती है. परन्तु सम्यक्त्व मोहनी की नहीं.



व क्षीण कपायद्धा अनन्तर मुहूर्त प्रमाण रहे. उस वक्त उन १६ प्रकृति का रसघात विराम पावे (दुसरी बाकी रही प्रकृतियों का रस घात अभीतक विराम पाया नहीं है) फिर इन १६ प्रकृतियों को उदय ऊदीरणादि से वेदते २ एक समय अधिक अवलि का मात्र रह वहां तक वेदे, फिर ऊदीरणा से विरामपावे, उस वक्त एक आवलिका मात्र उदय कर वेदे, वो जावत् क्षीण कपाय के द्वी × चरम समय तक वेदे, फिर उस द्वी चरम समय में निद्रा और प्रचला का छद्मस्त पनमें ही घात करे-अर्थात् निद्राद्विक स्वरूप सत्ता की अपेक्षासे क्षय होये फिर ज्ञानावरणीय आदि तीनों कर्मों की १४ प्रकृतिाय का भी घात करे, सो मोह गुणस्थानी.

१३ तेरवे सयोगी केवली गुणस्थानी के लक्षण—यह संजोगी होनेके सबब से इन के बाह्य चलौपकरण—आहार विहारादि कार्यार्थ गमना गमनादि शुभ चेष्टा युक्त होते हैं, और—१ सयोगी २ सशरीरी, ३ शुक्ल लेशी, ४ क्षायिक सम्यक्त्वी, ५ यथाख्यात चारित्रिी, ६ पण्डितवीर्य ७ शुक्लध्यानी, ८ केवल ज्ञानी, ९ केवल दर्शनी और १० शैलशी अवस्था को प्राप्त होते हैं, और जो पहिले तीसरे भव में तीर्थंकर नाम कर्म की उपार्जना करी होतो यहां अष्ट प्रतिहार्य, ३४ अतिशय, ३५ वणीगुण, मुनिन्द्र-नरेन्द्र-सुरेन्द्र के वंदनीय पूज्यनीय होते हैं.

१४ अयोगी केवली गुणस्थानी के लक्षण—यह यांग रहित होने से स्थिति घातादि रहित हुवे हैं, जितनी उदयवति प्रकृतियों है उन्हे वेदते हुवे-क्षय करते हैं, और, जिन प्रकृति का उदय

× अन्तिम समय के पहिले समय को द्वी चरम समय कहते हैं.

नहीं है फक्त सत्ता में रही है उस के दालिक स्तिवुक + संक्रम कर उदयवति प्रकृतियों है उन्हे वेदे, वेदे कर क्षपावे, यों अयोगिक द्वि चरम समय लग करने से चारों ही अघातिक कर्म का यहां नाश होता है, वो अयोगी, अशरीरी, अलेशी, परम शुद्ध ध्यानी पण्डित वीर्य, धायिक सम्यक्त्व, यथाख्यात चारित्र, केवल ज्ञान, केवल दर्शन इन गुणों सहित होते हैं. सो अयोगी केवली गुण-स्थानी जानना.

अन्तिम मुक्ति स्थान के परम परमात्मा के लक्षण केवल ज्ञान केवल दर्शन, निराबाध, धायिक-सम्यक्त्व, अजगमर, अरूप, अगुंरुलघु, अनन्त शक्तिवन्त, येही मिद्धत्व के लक्षण है.

## ६ छद्वा दृष्टान्त द्वार. \*

१ मिथ्यात्व गुणस्थानी-जैसे जन्मान्ध मनुष्य जन्म मात्र से किसी भी वस्तु के दर्शन न होने में उसका स्वप्न यथा तथ्य जान शक्ता नहीं है. तैसे जीवादि नवों पदार्थों को जानने नहीं हैं. और जो कोई जाने तो भी -(२) जैसे धतुग पान करने में या पीलीये के गेग में अच्छा दित हुआ मनुष्य वस्तु को विपरित-अन्य तरह में देखता है. तैसे मिथ्यात्वा जीवों भी नव ही पदार्थों को विपरित, अन्य तरह में श्रद्धते हैं. ३६३ पात्राण्डियों की साक्षिक जानना.\*

इस द्वाराके गुणमें है निचे देखिये अर्ध बाहर का पट्टा ५५३.

-बाह्य-मिथ्यात्वे ना नैह विपरितत्वम् । नन्वा नन्वे ज्ञाने नैह ज्ञानम् ।

विनायकः सुखं विना दन्तु ज्ञाने । नन्वा नन्वे दन्तु ज्ञाने ५५३.

२ सास्वादन गुणस्थानी—(१) जैसे कोई मनुष्य ऊँचे प्रसाद पर चढ़ नीचे देखने से चकर आया सो गिरा, परन्तु जमीन तक पहुँचा नहीं। तैसेही जीव सम्यक्त्व रूप महलपर चढ़ परस्वभाव रूप पृथ्वी का अवलोकन कर्ता कषायोदय रूप चक्र आनेसे पड़ा, परन्तु मिथ्यात्व तक पहुँचा नहीं सो सास्वादनी। (२) जैसे किसी ने खीर सकर का आहार किया और वान्ती (उलटी) होगइ, फिर मुह में थोड़ासा गुलचटा स्वाद बना रहता है, तैसेही सास्वादनी सम्यक्त्व का वमन किया बाद जरा से भाव रहते हैं। (३) जैसे घड़ीयाल पर डंकका मारने से अवल बुलन्द अवाज हो फिर मन्द पड़ता जाता है तैसे सास्वादनी के परिणाम हायमान होते हैं। और (४) जैसे अम्ब वृक्ष से टुटा फल पृथ्वी पर नहीं आया, तैसे जीव रूप अम्ब परिणाम रूप डाल, सम्यक्त्व रूप फल, मोह रूप हवा चलने से टुटा, परन्तु मिथ्यात्व रूप पृथ्वी पर नहीं पड़ा सास्वादनी।

३ मिश्र गुणस्थानी—(१) जैसे दही और सकर दोनों भेले कर खाने से खट्टा और मीठा भिला हुआ दोनों तरहका स्वाद आता है तैसे खट्टे समान मिथ्यात्व का भी स्वाद लेते हैं, और मीठे समान सम्यक्त्व का भी स्वाद लेते हैं। (२) कोई मिश्र दृष्टि मुनि राज के दर्शन करने गया, वहाँ मुनि राज का अभाव होनेसे बाव जोगी फकीर जो मिला उस के ही दर्शन कर उतना ही धर्म मान लिया सो मिश्र दृष्टि जानना।

४ अविरति सम्यग् दृष्टि गुणस्थानी—(१) जैसे नदी में पड़ा हुआ फत्थर पानी के आवा गमन से-अन्य पत्थरों रेतीसे अथवा २ कर-घिसा २ कर स्वभाव से ही गोळ साफ-चिकणा-चमकदार बन जाता है; तैसे यह जीव संसार रूप नदी में, जन्म-मरण रूप आ-

वा गमन से, क्षुधा-तृषा-शीत-ताप-ताडन-भेदन-आदि अनेक कष्टों के सहन करने से, यथा प्रवृत्ति करण कर कोमल बना, अपूर्व करण कर उज्ज्वल बना और अनिवृत्ति करण कर-निर्मल बना. सम्यक्त्वी हुवा. (२) जैसे महा मेघकी घाटा से अच्छा दित हुवा सूर्य वायु के प्रयोग से वो बदल पतले पडने से कुछ तेज का प्रकाश करता है. तैसे अनादि कर्म पटलों से कर्म पडलों कर अच्छा दित हुवा आत्मा का तीनों करण रूप वायु से कर्म पतले पडने से ज्ञानादि ज्योति का कुछ प्रकाश हुवा. जिनमे सर्वज्ञ प्रणिता तत्वों का श्रद्धान हुवा, उन तत्वोंकी प्रभावना कर देव दानव मानव के किये मरणान्तिक संकट से भी सम्यक्त्व से परिणाम चलिता नहीं करे, द्रष्ट धर्मी प्रिय धर्मी होवे कृष्ण बानुदेव श्रणिक गजा आदिवत्

१ देश विरति गुणस्थानी-जैसे अर्णव को जेहर जानना हुवा भी व्यश्र का प्रेरण हुवा कार्य साधन करने प्रमाण युक्त मेवन करता है. तैसे श्रावक भी आरंभ परिग्रह को खोटा जानने हुवे भी कर्म रूप व्यश्र के प्रेरण हुवे. आत्म कार्य नाथ ने मर्यादके अन्दर सदा प्रवृत्ति करते हैं. (२) जैसे धाय माता-दुमरे के बच्चे को स्तनपान कराती-क्रिडा कराती भी उन बच्चे से विग्न भाव रहती है. तैसे श्रावक भी शरीर नञ्जन का पोषण करने विग्न भावी रहते हैं. दशों श्रावकोवत्.

६ प्रमत्त संयति गुणस्थानी-(१) जैसे धनावा शेर अपने प्राण प्यारे देव दत्त पुत्र का धातक विजय चोर के नाथ (एकही खोहे मे) कर्म पाप फल अपना कार्य नाथ ने उद्योगी भाव ने उसे अहार का विभाग दिया. तैसे नाथ भी आत्म गुण के धातक शरीर रूप चोर के लक्ष्य में रह. मोक्षार्थ नाथ ने निर्विघ्न उपवा

र से शरीर पोषते हैं. (२) जैसे लाभार्थी व्यापारी, थोड़ा द्रव्य का व्यय कर बहुत लाभोपार्जन करने खप करते हैं, त्यों साधु अपवाद मार्ग में प्रवृत्ति रूप द्रव्य का व्यय कर, उत्सर्ग मार्ग की प्रवृत्ति रूप लाभोपार्जन की खप करते हैं, धर्म रूचीजी के गुरु धर्म धोष जीवत्, या वृत्तमान साधूओं वत्.

७ अप्रमत्त संयाति गुणस्थानी—(१) जैसे उत्कृष्ट कामार्थि अपने दुसाध्य कार्य को साध ने तत्पर हुवा, उस के मध्य में आते हुवे महा विघानो की दरकार नहीं रखता, महा कष्टों को भी शुभ रूप मान, इष्ट कार्य की तरफ लक्ष विन्दु चौंटा कर कार्य साधता है, तैसे ही अप्रमत्त मुनिराज भी आत्मार्थ साधन में लक्ष विन्दू ए काग्रता से लगा, उपसर्ग परिसर्गों की दरकार नहीं रखते हुवे आत्म मोक्षार्थ का साधन करने में प्रवृत्ति करते हैं, धन्ना अणगार, मेघ कुमर आदि मुनियोंवत्.

८ नियट्टी वादर गुणस्थानी—(१) जैसे अनेक पंथानुगामी (रस्तागिर) अजान रस्ते में भ्रमित हुवे, पुनः रस्ते के जान होते ही उसे उत्सहा से उलंघते हुवे, उन में से जो राज पन्थ धारण करता है सो इष्ट स्थान प्राप्त करता है. और जो छन्डियों (अपूर्ण रस्ते) में पडता है उसे आगे रस्ता न होने से उसी रस्ते पीछा पलटना पडता है, तैसे ही अष्टम गुणस्थान वृत्ति मोक्ष मार्ग में उत्सहासे गमन करते जो क्षपक श्रेणि रूप राज मार्ग धारण करते हैं वो मोक्षस्थान प्राप्त करते हैं, और जो उपशम श्रेणि रूप छन्डि का मार्ग धारण करते है वो पडवाइ होते हैं, प्रसन्न चन्दजी राज ऋषिवत्.

दुहा—जो समदृष्टि भीवडा । करे कुटुम्ब प्रानिपाल ।

अन्तरस्ते न्यारा रहे । ज्यो ध्याय खेलोवेवल ॥१॥

९ अनियट्टी वादर गुणस्थानी—जैसे क्षार के संजोगसे दूध फट जाने से वो घृत से निरांश होता है, फक्त स्वभाविक चिकणास की झलक रहती है, तैसे नववे गुणस्थान वृति महात्मा के अन्तः करण से निवृति करण रूप क्षार कर के, विषय कपाय रूप घृत से निरांश हुवा फक्त स्वभाविक संज्वल के रूप चीकास रही, हरकेशी ऋषिवत्.

१० सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानी—जैसे कासूँवे के रंग से रंगति वस्त्र को क्षारादि से धो साफ किये वाद-श्वेत हुवे वाद भी उस में रंग की कुछ मोतीया झलक रहती है. तैसेही दशवे गुणस्थान वर्त्ती ने आत्म रूप वस्त्र का कपाय रूप रंग को दुर करने चारित्र रूप पाणी. तप रूप अग्नि. और सूक्ष्म करण रूप क्षार (सावन) से धो उज्ज्वल करी है तो भी सूक्ष्म संज्वल लोभ कपाय रूप झलक रहजाती है.

११ उप शान्त मोह गुणस्थानी—(१) जैसे अग्नि के प्रज्वलित अंगारे को राख कर ढक देने से उस का तेज छिप जाता है. परन्तु उसका कुछ नाश नहीं होता है. वायु का प्रयोग होते ही उपर ढकी हुई राख दूर होते ही उस अग्नि का तेज प्रगट होता है, तैसे ही इग्याखे गुणस्थान वृति ने मोह कर्म रूप अंगार को उपशम भाव रूप राख कर ढकी थी, सो संज्वल के रूप वायु का झपटा लग ने से पुनः जरूर ही प्रगट होती है (जिस से वो पडवारह होता है. (२) जैसे चौतरफ मुद्रित कर एक ही दरवज्जे वाली कोटडी में प्रवेश किया हुवा मनुष्य जिस रस्ते से प्रवेश किया था, उसी रस्ते से पीछा बाहिर आना पडता है—सरी तरफ जा नहीं शक्ता है. तैसेही इग्याखे गुणस्थानवर्ति जिन

प्रकृतियों का उपशम कर प्रवेश कियाथा उन्ही प्रकृतियों का पीछा उदय होने से पीछे निकलते हैं. अर्थात् पडवाइ होते हैं. कुंड-रिकवत्.

१२ क्षीण मोह गुणस्थानी—जैसे प्रज्वलित अग्नि अमोघ मेघ धारा की वृष्टि कर शान्त शीतल होजाती है—साफ बुझ जाती है—फिर जिस मे उत्पन्न होने की शक्ति बिलकूलही नहीं रहती हैं. तैसेही बारबे गुणस्थान वर्ती महात्मा ने मोहनीय रूप अग्नि-का परम शान्ति रूप पाणी की अमोघ वृष्टिसे साफ बुझा कर—नि-रांकुर करी. सो पीछी कदापि उत्पन्न नहीं होती है, स्कन्धक मुनि

१३ सयोगी केवली गुणस्थानी—मेघ पटलोंका सर्वथा नाश होनेसे नभ मण्डल में संपूर्ण किरणो कर जाज्वल मान सूर्य का प्रकाश होता है. तैसे ही तेरेवे गुणस्थान वर्ती के घन घातिक कर्म रूप आभ्रपटलों का नाश होते ही अनादि निधान केवल ज्ञान केवल दर्शन रूप सूर्य का महान प्रकाश होता है, श्री महावीर स्वामीवत् व, चौबीसी तीर्थकरोवत्.

१४ अयोगी केवली गुणस्थानी—जैसे सर्व पर्वतों में बड़ा सुदर्शन मेरु पर्वत एक हजार जोजन की जमीन नीव वाला ९९ हजार जोजन का उंचा उसको प्रलय काल होवे ऐसा पवन भी हला नहीं शक्ता है, तैसे चउदवे गुणस्थानी परमात्मा के भी मनादि त्रियोगों निष्क्रिय हो निष्फन्द स्थिरी भूत होजाते हैं वो कदापि चलित नहीं होते हैं. गजसुकुमालवत्.

अन्तिम—मोक्ष स्थानो प्राप्त करने के रीति—जैसे (१) पूर्व प्रयोग से—जैसे धनुश्य रो छुटा हुवा बान पाहिले प्रयोगे-धके कर आगे को जाता है, तैसे आत्मा भी पाहिले मुक्ति प्राप्त होनेके लिये प्र-

योग-उद्यम करता था उस प्रयोग के धके से मुक्ति तक जाता है। (२) असंग से सो-जैसे माट्टि और सण के लेपसे भारी हुवा तुम्बा पाणी में डूबा हुवा था, वो लेप गलकर छूटतेही तुर्त पाणी के उपर आजाता है, तैसे ही आत्मा कर्म वर्गणा के लेप कर संसार में डूब रहाथा, वो लेप गल के छूटने से संसार के अन्तिम विभाग में मोक्ष को प्राप्त होता है। (३) वन्ध छेद से सो-जैसे एरन्ड के फल में बीज बन्धा हुवा था सो फल सूक कर फटने ही बीज ऊंचा उछल पडता है, तैसे ही आत्म कर्म बन्ध से छूटने ही उर्ध्व लोक को गमन करता है। (४) जैसे पवन रहित अग्नि की ज्वाला का स्वभाव से ही उर्ध्व गमन होता है, तैसे ही कर्म रहित आत्मा भी स्वभाव से ऊंची दिशा जाती है (५) जैसे पाँचों ग्यों में से घृत का किसीभी रस में कथन नहीं कर सके (स्वाद नहीं बना मके) त्यों सिद्ध के सुकों का भी वर्णन न होसके।

## ७ सातवा-गुण द्वार.

१ मिथ्यात्व गुणस्थान वाला—मिथ्यात्व बुद्धि-बुद्धि कर अतत्य पदार्थों में नत्य भाव धारण कर, दुःख को सुख रूप मान पुद्गल परिणति में आपा स्थापन कर, अनेक प्रकार की आधि व्याधी उपधीसे पिडित होता है, आगे चागें गति न्य चोहंटे (चो रस्त) में जीव रूप गेन्द को, कर्म न्य दंडाका प्रहार कर मिथ्यात्व रूप खेलाहू नदा परित्रमण कर्ता ही रहेगा, जहां तक इन स्थान में संस्थित रहेगा वहां तक नानाका अन्न कदापि नहीं पा



यगा-परमात्मा नहीं बनेगा.

३ सास्वादन गुणस्थान में आने से कृष्ण पक्षी का शुक्ल पक्षी + हुवा, और आगे उत्कृष्ट अर्ध पुद्गल परावर्तन काल बाद निश्चयसे मोक्ष पावेगा.

३ मिश्र गुणस्थान में आने से मिथ्यात्व कर काला उद्विड ध्यान्य जैसा था, सो परिणामों कि मिश्रिता रूप पाणी से धोवाकर मोगर दाल जैसा उज्ज्वल हुवा, कृष्ण पक्षी का शुक्ल पक्षी हुवा, अनादि से उलटा (मोक्ष की तरफ पृष्ठ और संसार की तरफ मुख) था सो सुलटा होगया. सम्यक्त्व सन्मुख हुवा. आगे शक्ति की वृद्धि कर उत्कृष्ट देश ऊणा (कुछ कम) अर्ध पुद्गल परावर्तनमें मोक्षपावे

४ अविरति गुणस्थान स्पर्श ने वाले-सम्यक्त्व उपार्जन किये पहिले, आयु का बन्ध पड गया हो, वो और सम्यक्त्व का वमन किये बाद भी चारों गति में चला जाता है. तो भी देश ऊणे अर्ध पुद्गल परावर्तन के अन्दर मोक्ष पाता है, और जो पहिले आयुष्यका बन्ध नहीं पडा होवे तो-सम्यक्त्व उपार्जन कियेबाद-१ नरकगति. २ भवनपति देव, ३ व्यन्तर देव, ४ जोतिषी देव, ५ तिर्यचगति, ६ स्त्रीवेद, और ७ नपुंसक वेद, इन सातों स्थानों में उपजने का-मरकर जाने का आयु बन्ध करे नहीं. अर्थात्-सम्यक्त्वी मरकर इन सातों स्थानों में उत्पन्न नहीं होता है. सम्यक्त्वी तो फक्त एक ऊंच जाति के विमानीक देवों में प्रथम स्वर्ग से बारह स्वर्ग तक जाकर उत्पन्न होता है, और जो सम्यक्त्व का वमन नहीं करे तो निश्चय से

+ मिथ्यात्व रूप गडु करके चैतन्य रूप चन्द्रमा अनादि से अज्ज्ञा दिन, रा-या मो इस स्थान में आने से वो राहू जरा दूर हुवा जिम से द्वितीया के चन्द्र जैसा ज्ञानादि आत्म गुणका प्रकाश हुवा.

पन्दरे भवों के अन्दर ही मोक्ष प्राप्त करलेता है.

५ देशव्रति गुणस्थान में आने वाले-संतोष रूप आनन्दके भुक्ता, सर्व जीवों के विश्वासान्वित, मानान्वित, यशःश्री वने, और जो व्रतों का भंग नहीं करे तो-जघन्य पहिले देव लोक में. उपजे, उत्कृष्ट वारेवे देवलोक में उपजे, और जघन्य ३, उत्कृष्ट १५ भवमें मोक्ष प्राप्त करे.

६ प्रमत्त संयति गुणस्थान वाले-सर्व चिन्ता से निर्मुक्त, शलि संतोष दया क्षमा आदि विभुति से भूषित, तपोधन, नरेन्द्र सुरेन्द्र के वंदनीय पूज्यनीय, ज्ञानानन्द के ध्यानानन्द में निर्मग्न रह आयुष्य समाप्ति बाद जघन्य प्रथम स्वर्ग उत्कृष्ट अन्तिम स्वर्ग सर्वार्थ सिद्ध विमान तक जाकर उपजते हैं, और जघन्य ३ उत्कृष्ट १९ भव में मोक्ष पाते हैं.

७-१० अप्रमत्त संयति से सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान में प्रवृत्त तें, अप्रमर्दि निर्विषयी, निःकषायी आत्म ध्यानके परमानन्द में मग्न हूवे, आप्यु के अन्त कल्पतीत देवों में जाकर उत्पन्न होवे. और उत्कृष्ट बीसरे भव मे मोक्षकी प्राप्ति करे.

११ उपशान्त मोह गुणस्थान वाले-वीतरागी-यथाख्यात चारित्री. परम उपशान्त रस मे निर्मग्न, आत्म ज्ञान के सहाजनन्द सुखों में रमण कर्ता, आयुष्य पूर्ण कर अनुत्तर विमान में उपजते हैं. और जघन्य उसी भव में. उत्कृष्ट तीसरे भव में मोक्ष पाते हैं. १२ क्षीणमोह गुणस्थान वाले-क्षपकश्रेणि, क्षायिकभाव क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिक-यथाख्यात चारित्र, करण सत्य, जोग सत्य, भाव सत्य, अमायी. अकषायी. वीतरागी, भावानिग्रन्य. संपूर्ण सम्बुद्ध, सम्पूर्ण भवीतात्मा. महा तपस्वी. महा मुशील. अमोही. अविकारी, महा-

ज्ञानी, महा ध्यानी, बृद्ध मान परिणामी, अपडवाइ उस ही भवमें मोक्ष पाते हैं.

१३ सयोगी केवली गुणस्थान वाले-परमात्मा केवल ज्ञान केवल दर्शन प्रकट होने से सर्वज्ञ सर्व दार्शी बने, अर्थात्-सर्व द्रव्य सर्व क्षेत्र, सर्व काल, सर्व भाव और सर्व भवों की परिपाटीको एक समयमें आविष्टित पने जानने देखने लगे, सर्व जगत् जंतुओंके माननिय वंदनीय पूज्यनीय हूये. और आयुष्य के अन्त निश्चय समोक्ष पावे.

१४ अयोगी केवलगुणस्थानवाले सर्व उत्तमोत्तम गुणोंके सागर सर्वथा कर्म मल रहित, परम पवित्र, अनन्तर, अप्राप्ति पाति, अनिवृति ध्याता, रूपातीत, फक्त पंचलघु अक्षर उच्चारनेमें जितनी देर लगती है उतनी देर बाद में ही मोक्ष प्राप्त करते हैं.

और अन्तिम मोक्ष स्थान को प्राप्त भये हैं. वो परमात्म-जन्म जरा मरण रूप जालम दुःखों सर्व था मुक्त हो आधि व्याधि उपाधी का जड मूल से नाश कर, निराबाध-अक्षय-अनन्त सुख के भुक्तावने, सिद्ध, बुद्ध, परांगत, परम्परागत, सर्व कार्यार्थ साध, कृतकृतार्थ, निष्ठितार्थ, अतुल सुख सागरमें सदा निर्भग्न बने रहते हैं.

## आठवा अवधेणा द्वार \*

मिथ्यात्व-सास्वादन-मिश्र और अविरति इन चारों गुणस्थान में वर्तने वाले जीवों के शरीर की अवधेणा (ऊंचाई) जघन्य (थोड़ीसे थोड़ी) अंगुल के असंख्यातवे भाग जितनी, और उत्कृष्ट

(ज्यादा से ज्यादा) एक हजार जोजन प्रमाणें होती हैं

देशव्रति गुणस्थान वालों की जघन्य ९ अंगुल की, उत्कृष्ट ५०० धनुष्य की अवधेणा होती है।

प्रमत अप्रमत गुणस्थान वालों की जघन्य १ हाथ की उत्कृष्ट पांचसो धनुष्य की अवधेणा होती है।

अपूर्व करण गुणस्थान से लगाकर अयोगी केवली गुणस्थान वालों की जघन्य २ हाथ की उत्कृष्ट ५०० धनुष्य की अवधेणा।

और अन्तिम स्थान मुक्ति में जो परमात्माके शुद्धात्म प्रदेशों हैं उन की जघन्य एक हाथ आठ अंगुल, मध्यम चार हाथ सोल्ले अंगुल और उत्कृष्ट ३३३ धनुष्य ३२ अंगुल की अवधेणा होती है।

## नववा-उत्पत्ति द्रव्य परिमाण द्वार =

एकही समय में जीवो उत्पन्न होवे तो मिथ्यात्व गुणस्थान में जघन्य-१-२-३, उत्कृष्ट संख्याते असंख्याते और अनन्ते जीव।

सास्वादन, मिश्र, अविरति, और देश विरति-इन पांचों गुणस्थान में जघन्य -१-२-३, उत्कृष्ट-संख्याते असंख्याते जीवों पावे।

छट्टे प्रमत गुणस्थानमें जघन्य १-२-३-उत्कृष्ट ÷ प्रत्येक हजार सातवे अप्रमत गुणस्थानमें जघन्य १-२-३, उत्कृष्ट प्रत्येक सो।

अपूर्व करण, अनिष्टी वादर, और मूढम सम्पराय, इन तीनों गुणस्थान में अलग जघन्य १-२-३, उत्कृष्ट दोनों श्रेणि के मिल १६२ जीवों पावे।

इस द्वारके गुलामे के लिये देविये अर्थ कांडका पृष्ठ १०९ वा।

÷ दोसे लगाकर ९ तक की संख्या को 'प्रत्येक' नाम से बोलाते हैं।

उपशान्त मोह गुणस्थानमें जघन्य १-२-३, उत्कृष्ट ५४ जीवो  
औं क्षीण मोह, संयोग केवली अजोगी केवली इन गुण-  
स्थाने में तथा अन्तिम मोक्ष स्थान में जघन्य १-२-३, उत्कृष्ट १०८  
जीवो उपजते हैं:

## दशवा-पावति द्रव्य परिमाण द्वार. \*

हरवक्त-मिथ्यात्व गुणस्थान सें-अनन्तांत जीवों पातेहैं.

सास्वादन और मिश्र गुणस्थान में-जघन्य-१-२-३, उत्कृष्ट  
असंख्याते. अविरति और देशविरति गुणस्थान में-जघन्य थोड़े अ-  
संख्याते उत्कृष्ट बहुत असंख्याते जीव पावे.

प्रमत्त गुणस्थान में जघन्य दो हजार कोड, उत्कृष्ट ९ ह-  
जार कोड. अप्रमत्त गुणस्थानमें-जघन्य दोसो कोड उत्कृष्ट ९सो कोड.

अपूर्व करण, अनिदीवदर और सूक्ष्म सम्पराइ इन तीनों गु-  
णस्थानों में उपशम श्रेणिके ५४ और स्वपक श्रेणिके १०८ दोनों  
मिल १६२. उपशान्त मोह गुणस्थानमें-पूर्व प्रवर्तन आश्रय-जघन्य,  
१-२-३, उत्कृष्ट प्रत्येक, सो वर्तमान प्रवर्तन आश्रिय जघन्य १-२-३  
उत्कृष्ट ५४ जीवों पावे.

क्षीण मोह गुणस्थान में-पूर्व प्रवर्तन आश्रिय जघन्य १-२-३,  
उत्कृष्ट प्रत्येक सो, वर्तमान प्रवर्तन आश्रिय जघन्य १-२-३, उत्कृष्ट  
१०८ जीवों पावे.

संयोगी केवली गुणस्थानमें पूर्व प्रवर्तन आश्रिय जघन्य दो कोड  
उत्कृष्ट नव कोड जीव पावे, वर्तमान प्रवर्तन आश्रिय जघन्य १-२-

✱ इस द्वारके खुलासाके लिये देखिये अर्थ कांडका पृष्ठ १०९ वा.

३. उत्कृष्ट १०८ जीवों पावे.

अयोगी केवली गुणस्थान मे पूर्व प्रवर्तन आश्रिय जघन्य,  
१-२-३. उत्कृष्ट प्रत्येक सो जीव पावे. वर्तमान प्रवृत्तन आश्रिय जघ-  
न्य १-२-३, उत्कृष्ट १०८ जीवों पावे.

अन्तिम सिद्धस्थान में-सदा अनन्तांत जीवोंका निवासहै.=

## इग्यारवा-क्षपति द्रव्य परिमाण द्वार.

एक समय में जीवोंचवे-खपे-में तो-१ मिथ्यात्व गुणस्थानमे  
जघन्य १-२-३. उत्कृष्ट-संख्याते असंख्याते अनन्त.

२-५ सास्वादन से देशविराति गुणस्थान वाले जीवों एक  
समय में चवेतो जघन्य १-२-३ उत्कृष्ट संख्याते असंख्याते.

६-७ प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थान मे-जघन्य १-२-३. उत्कृष्ट प्रत्येक सो.

२०० × इस द्वारके खुलासा के लिये देखिये अर्थ बांटेका पृष्ठ १०० वा.

\* दिगम्बर आमतो के मुह-लगनी ग्रन्थ में गुणस्थानों में जीव द्रव्य का  
परिमाण इससे बताया है:—पारिण गुणस्थान मे-अनन्तान्त जीवों पावे दुमने मे-में  
(१३) प्रोह जीवों पावे. तीसरे मे-२० प्रोह. चौथे मे-५०० सो प्रोह. पांचवें मे-१०८  
प्रोह. छठे मे-५००, ७००, ८००, सातवें मे-२००, १०००, दसवें श्रेणी आश्रिय  
आठवें मे-२००, नववें मे-२००, दसवें मे, और गुणस्थान मे भी २००, सो-१०००  
और अष्टक श्रेणी आश्रिय-आठवें मे-२००, नववें मे २००, दसवें ५०० बरवें मे  
भी ५००, और दसवें मे भी ५०० सद-२०००, और नववें गुणस्थान में-केवल  
शरीर १०, ८००० पावे. सो परिण रोहने के गुणस्थान के सिद्ध ८००००००  
इसके जीव एकरी दल मे पावे है पर दल बहुत ही विचार मे है. है किम ओ-  
शाने निवा है सो दल बने लगे

८-१० अपूर्व करण-अनिटी बाद और सूक्ष्म सम्पराय इन तीनों गुणस्थान में. जघन्य १-२-३, उत्कृष्ट दोनों श्रेणिकें मिल कर १६४ जीवों.

११ उपशान्त मोह में जघन्य १-२-३, उत्कृष्ट ५४ जीवमरे.

१२-१४ क्षीण मोह, संयोगी केवली और अजोगी केवली गुणस्थान में. जघन्य १-२-३ जीवों चवे, उत्कृष्ट-१०८ जीवों एक समयमें मरे, और अन्तिम सिद्धस्थानमें खपति नहीं है-सदा वृद्धिहीन है.

## बारवा-क्षेत्र परिमाण द्वार \*

१ मिथ्यात्व गुणस्थान सर्व लोक में पावे.

१-४ सास्वदन, मिश्र, और अविरति यह तीनों गुणस्थान त्रस नाडी में ही पावे.

५ देशविरति गुणस्थान-तिरछे लोक में और अधोलोक में,

६-१४ प्रमत्त से संयोगी केवली तक के ९ गुणस्थान वाले जीवों अढाई द्वीपमें ही पाते हैं.

## तेरवा-क्षेत्र स्पर्शना द्वार \*

१ मिथ्यात्व गुणस्थान वाले जीवों सर्व लोक स्पर्श.

२ सास्वादनी-नीचे पंडग वन से छठी नरक तक स्पर्श उपर अधोगामिनी विजय से नवश्रिवेक तकका क्षेत्र स्पर्श.

३ मिश्र गुणस्थान वाले-लोक का असंख्यातवा भाग स्पर्श.

४ अविरति गुणस्थानी-ऊपर अधोगामिनी विजय से बारह

देव लोक तक, और नीचे पडंगवनसे छठी नरक तकका क्षेत्रस्पर्श.

५ देश विरति गुणस्थानी-अधो गामिती विजय से १२ दे-  
वलोक तक स्पर्श.

६-११ प्रमत्त गुणस्थानी से लगा, उपशान्त मोह गुणस्थान  
वाले जीवों अधोगामिनी विजय से लगाकर पांच अनुत्तर विमान  
तक स्पर्श.

१२ क्षीण मोह गुणस्थान वाले लोक का असंख्यातवा भा-  
ग स्पर्श.

१३ सयोगी केवली गुणस्थानी-सर्व लोक स्पर्श. =

१४ और अयोगी केवली गुणस्थानी-तथा सिद्ध भगवान  
लोक का असंख्यात वा भाग स्पर्श.



## चउदवा-काल परिमाण (स्थिति) द्वार.\*

१ मिथ्यात्व गुणस्थानकी स्थिति तीन प्रकार की:—(१) अ-  
णाइया अपज्जवसीया” अर्थात्-आदि और अन्तरहित मिथ्यात्व अ-  
भव्य जीवों का होता है. अभव्य कदापि सम्यक्त्व नहीं स्पर्शतेहें.  
(२) “ अणाइया सपज्जवसीया”—अर्थात् आदि तो नहीं परन्तु  
अन्त आता है. ऐसा मिथ्यात्व भव्य जीवोंका होता है, किसीभी  
वक्त मिथ्यात्व गुणस्थान का त्याग कर आगे बढ़ते हैं. (३) मड-  
या सपज्जवसीया” अर्थात्-आदि और अन्त दोनों सहित. ऐमे

✱ इन द्वारके बुझाना के लिये देग्विये अर्थ कांडका पृष्ठ ११९ वा.

= सर्व लोक केवल नमुद वाद करनी वक्त स्पर्शते हैं



मिथ्यात्वी पडवाइ + सम्यग् दृष्टि जीव होते हैं। जिनकी स्थिति जघन्य अन्तर मुहूर्तकी, उत्कृष्ट अर्ध पुद्गल परावर्तन काल जितनी २ सास्वादन गुणस्थान की स्थिति—जघन्य एक समय की और उत्कृष्ट छे आवलि का और सात समय की, फिर मिथ्यात्व में जावे।

३ मिश्र गुणस्थान की स्थिति—जघन्य उत्कृष्ट अंतर ही मुहूर्त की. ÷

४ अविरति सम्यक्दृष्टि गुणस्थानकी स्थिति—जघन्य अन्तर मुहूर्त मुहूर्त की, उत्कृष्ट ६६ छांसट सागरोपम झाजेरे की (कुछ ज्यादा) ×

५-६-१३ देश विरति, गमत संयाति और सयोगी केवली इन तीनों गुण स्थानों की स्थिति—जघन्य अन्त मुहूर्त की, उत्कृष्ट-देश उणा (८ वर्ष कम) क्रोड पूर्व की. ×

+ पडवाइ सम्यक्त्व दृष्टि उसे कहते हैं कि—जो मोहनीय की प्रकृतियोंका उपशम (ढक) कर सम्यक्त्वकी प्राप्तिकरी, और फिर मोहोदय होने से सम्यक्त्व का वमन कर पडा-मिथ्यात्व में गया (यह मिथ्यात्व की आदि हुई) और फिर भी उन प्रकृतियोंका उपशम क्षयोपशम क्षयकर उस गुणस्थान छोड़ ऊपर चडा (यह अन्त हुवा) यों दोनों भांगे पाते हैं।

÷ जितना व्यजनाव ग्रहका काल (पृथक् भाश प्रमाण) होता है, उतनी मिश्र गुणस्थानकी स्थिति है।

× यह ६६ सागरोपम यों होते हैं.—बारवे देवलोक में २२ सागरोपम की स्थिति उत्कृष्टी है। वहां तीन वक्त उपजे, और बीच में तीन भव मनुष्यके करेसो झा, जेरा जानना। क्योंकि देवता मरकर देवता होता नहीं हैं इसलिये बीच में तीन भव मनुष्यके गिजे हैं। यो छांसट सागर तीन पूर्व क्रोडी मनुष्य भव आश्रिय अधिक पूरा कर फिर जो माहोदय होयतो मिथ्यात्व में चलाजाय।

÷ साधू पना और श्रावक पना विज्ञान वय (८ वर्षकी) हुवे बाद ही ग्रहण

७-११-३ प्रपत गुणस्थानसे लगा उपशान्त मोह गुणस्थान तक पांचोंकी अलग २ स्थिति-जघन्य १ समय, उत्कृष्ट अन्तर मुहूर्त की.

१४ अयोगी केवली गुणस्थान की स्थिति पंच लघु अक्षर (अ. इ. उ. ऋ. ल.) इन के उच्चार में वक्त लगे उतनी.

और अन्तिम स्थानी सिद्ध भगवन्त की स्थिति दो प्रकार की—(१) “अणादिया अपञ्जवसिया” सो अन्त सिद्धोंका आदि और अन्त दोनों ही नहीं हैं. क्योंकि अन्त काल बीत गया और बीत जायगा और (२) “सआय अपज्जवसीया” सो कितनेक सिद्धों की आदि तो है जैसे महावीर प्रभू कार्तिक अमवस्य को मोक्ष पधारे परन्तु अन्त नहीं. अमर हैं.



## पन्दरवा-काल प्राप्त द्वार

३—१२-१ तीसरा-मिश्र, बारवा-क्षीण मोह, और तेखा-संयोगी केवली इन तीनोंगुण स्थानों में कोईभी जीव कदापि काल प्राप्त नहीं करता-मरता नहीं है.

१४ अयोगी केवली गुणस्थान में अवस्य काल करता हैं.

१-११ बाकी दश गुणस्थानों में काल करने की ‘भजना’—अर्थात् कोई मरे और कोई नहीं भी मरे. उपर नीचे चला जाय. और सिद्धतो अमर ही हैं.

कर सकते हैं, मो कर्म भूमीही ग्रहण कर सकते हैं. उनकी उत्कृष्ट उम्मेर क्रोड़ों पूर्व की ही होती है.

## सोलवा-भाव परिमाण द्वार.

१—१ मिथ्यात्व गुणस्थान से लगा कर दशवे सूक्ष्म सम्प्राय गुणस्थान तक तीव्र, मन्द, मंदतर, तीव्रतम्ययों असंख्यात स्थान (समय २ पलदा) होते ही रहते हैं. ११—१४ इग्यारवे- उपशान्त मोह गुणस्थान से चउदवे अयोगी केवली गुणस्थान तक कषायोदय नहीं होने के सबब से चारित्र के स्थानमे भेद नहीं होता है, (परंतु निर्ज्जरा के स्थान में अनेक भेद है.) सदा एक से भावरहते हैं.

## सतरवा-निरंतर गुण परिमाण द्वार

१—३ मिथ्यात्व सास्वादन और मिश्र इन तीनों गुणस्थानों में पल्योपम के असंख्यातवे भाग के काल जितनी देर तक निरंतर गुण रहते हैं.

४—५ अविरति और देशविरति गुणस्थान में—आंखलि का असंख्यातवे भाग काल तक निरंतर गुण रहते हैं.

६—१४ प्रमत्त गुणस्थान से लगाकर चउदवे गुणस्थानकाल समय पर्यंत निरंतर गुण रहते हैं.

## अठारवा मार्गणा द्वार

१ मिथ्यात्व गुणस्थान के गति मार्ग चार पाहिले गुणस्थान से—१ तीसरे में जाम, २ चौथे जाय, ३ पांचवे जाय, और ४ सातवे

२ सास्वादन गुणस्थान की गति मार्गणा नहीं, क्योंकि पढ होता है.

३ मिश्र गुणस्थान की गति मार्गणा तीनः—तीसरे गुणस्थान से—१ चौथे गुणस्थान जाय, २ पांचवे गुणस्थान जाय, और ३ सातवे जाये.

४ अविरति गुणस्थानी की गति मार्गणा दोः—चौथे गुणस्थान से (१) पांचवे जाय और (२) सातवे जावे.

५ देशविरति गुणस्थानी की गति मार्गणा एक-सातवे जावे.

६ प्रमत गुणस्थानी की भी गति मार्गणा एक-सातवे जावे.

७ अप्रमत गुणस्थानी की गति मार्गणा एक आठवे जावे.

८ अपूर्व करण गुणस्थानी की गति मार्गणा एक-नववे जावे.

९ नियति वादर गुणस्थानी की गति मार्गणा एक-दशवे जावे.

१० सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान की गति मार्गणा दो इग्यारवे जावे.

११ उत्पशान्त मोह गुणस्थानी की गति मार्गणा नहीं, क्योंकि-पडवाइ होता है,

१२ शीण मोह गुणस्थानी की गति मार्गणा एक-तेरवे जावे.

१३ संयोगी केवली गुणस्थानी की गति मार्गणा एक-चौदवे जावे.

१४ अयोगी केवली गुणस्थानी की गति मार्गणा-मोक्ष जावे मोक्ष स्थान से गति मार्गणा नहीं सदा स्थिर रहते हैं.

## उन्नीसवा उपमार्गणा द्वार

१ मिथ्यात्व गुणस्थान में उपमार्ग नहीं, क्योंकि-पाहिला ही

उत्कृष्ट वैराग्य दिशा प्राप्त होतेही सातवे गुणस्थान में चले जाते हैं, और फिर „देव भेट को जातरा पूरी हुई” इस दृष्टान्तानुसार वो पडकर छठेमें आते है.

२ सास्वादन में उपमार्ग एक-पहिले आवे.

३ मिश्र गुणस्थानी का उपमार्ग एक-पहिले आवे,

४ अविरति गुणस्थानी के उपमार्ग तीन-तीसरे आवे दूसरे आवे, और पहिले आवे.

५ देश विरति गुणस्थानी के उपमार्ग चार-१ चौथे आवे, २ तीसरे आवे, ३ दूसरे आवे, और ४ पहिले आवे.

६ प्रमत गुणस्थानी के उपमार्ग-३ पवे पांचवे आवे चौथे आवे, ३ तीसरे आवे, ४ दूसरे आवे, और ५ पहिले आवे.

७ अप्रमत गुणस्थानी के उपमार्ग दो - १ छठे आवे के २ चौथे आवे.

८ अपूर्व करणी के उपमार्ग दो-(१) सातवे आवेके २ चौथे आवे.

९ नियटि बादरीके उपमार्ग दो-१ आठवे आवेके २ चौथे आवे.

१० सूक्ष्म संपरायिके उपमार्ग दो-१ नववे आवे के २ चौथे आवे.

११ उपशांत मोहीके उपमार्ग दो-१ दशवे आवे के २ चौथे आवे.

१२-१४ क्षीण मोहसे सयोगी केवली तक और सिद्धों के उपमार्ग नहीं पड़ें नहीं.

## २० बीसवा “परस्पर मार्गणा द्वार”

१ मिथ्यात्व गुणस्थान छोड़-चौथे पांचवे और सातवे जावे

२ सास्वादन गुणस्थान छोड़-पहिले ही जावे.

३ मिश्र गुणस्थान छोड़ पड़ेतो पहिले आवे और चंडेतो चौथे जावे.

४ अविरति गुणस्थान छोड़-चंडेतो पांचवे और सातवे जा-

वे और जां पडे तो-पाहिले-दुसरं-और-तीसरे-आवे.

५ देशविरति गुणस्थान छोड चडेतो-सातवें जावें. और प-डेतो पाहिले दूसरे तीसरे और चौथे आवे.

३ प्रमत गुणस्थान छोड-चडेतो सातवे जावे, और पडेतो पाहिले दुसरे तीसरे चौथे और पाचवे आवे.

७ अप्रमत गुणस्थान छोड-चडेतो आठवे जावे, और पडेतो छे आवे, और काल करेतो चौथे आवे.

८ अपूर्व करण गुणस्थान छोड चडेतो नववे जावे, और पडेतो सातवे आवे, और काल करे तो चौथे आवे.

९ नियति वादर गुणस्थान छोड-चडेतो दशवे जावे, और प-डेतो नववे आवे, और काल पूर्ण करेतो चौथे आवे.

१० सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान छोड-चडेतो उपशम श्रेणिवा-ला इग्यारवे जावे. क्षपक श्रेणि वाला बारवे जावे, तथा पडेतो न-ववे आवे और कालपूर्ण करेतो-मेरेतो-चौथे आवे.

११ उपशान्त मोह गुणस्थान छोड-चडे नहीं. पडेतो दशवे और आवे मेरेतो चौथे आवे.

१२ क्षीण मोह गुणस्थान छोड-तेरेवे जावे, पडे नहीं

१३ सयोगी केवली गुणस्थान छोड-चउदवे जावे, पडे नहीं.

१४ अयोगी केवली गुणस्थान छोड-मोक्ष जावे पडे नहीं.

और मोक्ष छुटही नहीं. कही जखेही नहीं सदा वाही बने रहैं.

## इक्कीसवा-परस्पर उपमार्गणा द्वार

१ मिथ्यात्व गुणस्थान में-दुसरे तीसरे चौथे पांचवे और छठे

इन ५ गुणस्थान से आवे.

२ सास्वादन में चौथे पांचवे और सातवे इन ३ गुणस्थान से आवे.

३ मिश्र गुणस्थान में-पहिला चौथा पांचवा और छठा इन ४ गुणस्थान से आवे.

४ अविरति गुणस्थान में पहिला-तीसरा-पांचवा और जावत इग्यारवे गुणस्थान तक के कितनेक परिणाम से और कितनेक कर्म से आते हैं.

५ देशविरति में-पहिला चौथा और छठा इन ३ गुणस्थान से आवे.

६ प्रमत्त गुणस्थान में-फक्त एक सातवे गुणस्थान से ही आवे.

७ अप्रमत्त गुणस्थान में-१ पहिले से, चौथे से पांचवे से, छठे से. और आठवे से. इन ५ गुणस्थान से आवे.

८ अपूर्व करण में-वृद्धमान परिणामी सातवे से और हायमान परिणामी नववे से आवे.

९ नीयति बादर में-वृद्धमान परिणामी आठवे से, और हायमान परिणामी दशवे आवे.

१० मूक्ष्म सम्पगय में-वृद्धमान परिणामी नववे से, और हायमान परिणामी इग्यारवे से आवे.

११ उपशान्त मोह गुणस्थान में फक्त दशवे गुणस्थान से ही आवे.

१२ क्षीण मोह गुणस्थान में फक्त एक दशवे गुणस्थान से ही आवे.

१३ नयोगी केवली गुणस्थान में फक्त एक बारवे गुणस्थान से ही आवे.

१४ अयोगी केवली गुणस्थान में फक्त एक तेगवे गुणस्थान से ही आवे.

और मोक्ष स्थान में फक्त एक चउदवे गुणस्थान से ही आवे.

## बावीसवा-अरोह अवरोह द्वार.

- १ मिथ्यात्व गुणस्थान वाले की एक आरोह-चडती गति.
- २ सास्वादन गुणस्थानी की एक अवरोह-पडति गति.
- ३-१० मिश्र गुणस्थान से लगाकर सूक्ष्म संपराय गुणस्थान वाले-अरोह अवरोह-चडति पडति दोनों प्रकार की गति करें.
- ११ उपशान्त मोह गुणस्थानी की एक-अवरोह गति.
- १२-१४ क्षीण मोहसे संयुगी केवली तक एक-अवरोह गति.
- और सिद्धस्थान में दोनों ही गति नहीं-स्थिर हैं.

## तेवीसवा चडाचड गति दृष्टान्त द्वार

१ दादुर (मिडक,) २ परनाल, ३ ईलड, और ४ उलाल, इन चारों प्रकारकी गति में से.

- १ मिथ्यात्व गुणस्थानी की एक दादुर गति-फदक मारचडे,
- २ सास्वादन गुणस्थानीकी एक परनालगति-परनाल ज्यों पडे,
- ३ मिश्र गुणस्थानी की गति दां तरह-१ ईलड और उलाल.
- ४ अविरति गुणस्थानी चारों प्रकारकी गति करतेहैं.

५ देश विरति गुणस्थानी तीन प्रकारकी गति करे-१ दादुर २ परनाल, और ३ उलाल.

६-९ प्रमत्त गुणस्थान से नियट्टि वादर गुणस्थानवाले तीन प्रकारकी गति करे-१ ईलडगति, २ परनालगति, और ३ उलालगति.

१० सूक्ष्म संपराय गुणस्थानी चारोंही प्रकारकी गति करे

११ उपशान्त मोह गुणस्थानी दो प्रकारगति करे-१ परनाल और २ उलाल.



१२—१४ क्षीण मोह से संयोगी केवली गुणस्थान वाले तक एक डल्लड गति करतेहैं, और सिद्ध परमात्माके एकही प्रकारकी गति न हीं हैं, मदा स्थिर हैं.

## चौवीसावा अन्तर काल द्वार\*=

एक जीव आश्रित-भिव्यात्व गुणस्थान का विरह पड़े तो जयन्त्य अन्तर मुहूर्त का उत्कृष्ट ६६ सागर का अथवा १३२ सागर का = आंजण.

माय्यादन गुणस्थान में लगाकर उपशान्त मोह गुणस्थान तक का विरह पड़ेता जयन्त्य अन्तर मुहूर्त अथवा पत्योपमके अंगल्यातंग भाग जितना क्योंकि इतने काल बिना उपशम श्रेणिक पीछा पड़े नहीं, और उत्कृष्ट अन्तर देश उणा अर्द्ध पूहल प-ग र्त्तन का.

क्षीण मोहसे अजोगी केवली गुणस्थान का अन्तर पड़े नहीं, पीछे अर्द्ध नहीं, और मिहयान का भी कर्मा अन्तर पड़ताही नहीं है.

इस द्वारके सुलोक के लिये देखावे अर्थ काण्डका पृष्ठ १०९ वा

= कल्ले, अर्थ गुणस्थान द्वारके बौकंद के अनुसार दूसरे तीसरे गुणस्थान का अन्तर इतना, अथवा उत्कृष्ट पत्योपम के अंगल्यातंग भाग का, आठवां नरों के लिये गुणस्थान का अन्तर श्रेणिक के ५ वर्ष का, और शपक श्रेणि वाले के ६ वर्ष का, गुणस्थान के फल उत्कृष्ट श्रेणि के ५ वर्ष का, और बारों में अन्तर ६ गुणस्थान के अन्तर ६६ है.

= मिहयान द्वार ६६ गुणस्थान तक लिये गुणस्थान में रें ३३वां अन्तर में रें ३३वां अन्तर = रें ३३ = मिहयान द्वार गुणस्थान में अन्तर ६६ गुणस्थान रें ३३ = मिहयान द्वार के लिये द्वार

## पच्चीसवावा-विरह काल द्वार.

इस लोकमेंसे-१ मिथ्यात्व, ४ अविरति, ५ देश विरति, ६ प्र-  
मत संयति और १२ सयोगी केवली इन पांचों गुणस्थानों का विरह  
कदापि नहीं पडता हैं, यह गुणस्थान लोक में सदाही पाते हैं.

सास्वादन और मिश्र का विरह पडेतो जघन्य एक समय  
का, उत्कृष्ट अन्तर मुहुर्त का.

अपूर्व करण, नियति वादर, सूक्ष्म सम्पराय, उपशान्त मोह  
क्षीण मोह और अयोगी केवली इन गुणस्थान का विरह पडेतो ज  
घन्य अन्तर मुहुर्त का उत्कृष्ट छे महीनेका. फिर तो कोई जीव ज  
रुही गुणस्थान स्पर्श होता है.

## २६वा एक भव आश्रित्य स्पर्शना द्वार.

एकही भव में-१ मिथ्यात्व गुणस्थान जघन्य १ वक्त. उत्कृ-  
ष्ट ९०० वक्त स्पर्श. २ सास्वादन गुणस्थान जघन्य एक वक्त. उत्कृ  
ष्ट दो वक्त स्पर्श.

३-४ मिश्र और अविरति गुणस्थान जघन्य १ वक्त. उत्कृ  
ष्ट प्रत्येक हजार वक्त स्पर्श.

५-७ देशविरति. प्रमत संयती और अप्रमत संयती गुणस्थान  
१ जघन्य वक्त उत्कृष्ट ९०० वक्त स्पर्श.

८-१० अपूर्व करण नियति वाद और सूक्ष्म सम्पराय गुण-  
स्थान जघन्य एक वक्त, उत्कृष्ट चार वक्त स्पर्श.

११ उपशान्त मोह गुणस्थान जघन्य १ वक्त उत्कृष्ट २ वक्त स्पर्श.

१२-१४ क्षीण मोह-सयोगी केवली और अयोगी केवली यह तीनों गुण :

स्थान एक ही वक्त स्पर्शें.

और सिद्ध स्थान भी एक वक्त स्पश बाद छूटता ही नहीं है.

## सतावीसवा—बहुतभव आश्रिय स्पर्शना.

बहुत भवों में-१ मिथ्यात्व गुणस्थान को जघन्य दो वक्त स्पर्शें. उत्कृष्ट-असंख्यात वक्त स्पर्शें.

२सास्वादन गुणस्थान जघन्य दो वक्त, उत्कृष्ट-५वक्तस्पर्शें.

३-४ मिश्र और अविरति गुणस्थान जघन्य-दो वक्त उत्कृष्ट असंख्यात वक्त स्पर्शें.

५ देश विरति गुणस्थान जघन्य-दो वक्त, उत्कृष्ट ९०००वक्त स्पर्शें.

६-७ प्रमत और अप्रमत गुणस्थान जघन्य दो वक्त, उत्कृष्ट ९०० वक्त स्पर्शें.

८-१० अपूर्व कारण नियति वादर और सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान जघन्य दो वक्त स्पर्शें. उत्कृष्ट ९ वक्त स्पर्शें

११ उपशान्त मोह गुणस्थान दो वक्त, उत्कृष्ट ५ वक्त स्पर्शें.

१२-१४ क्षीणमोह सयोगी और अयोगी गुणस्थान एकही वक्त स्पर्शें और सिद्ध स्थान भी एकही वक्त स्पर्शें.

## अठातीसवा-परस्पर स्पर्शना द्वार

१ मिथ्यात्व गुणस्थानी-पहिला गुणस्थान तो नियमाही स्पर्शें, दूसरे गुणस्थानसे अलगकर इग्यारवे गुणस्थान तक स्पर्श ने की भजना. ÷

= कोई स्पर्शें कोई नहीं स्पर्शें उसे भजना कहते हैं. और जरूर ही स्पर्शें उसे नियमा कहते हैं

२ सास्वादन गुणस्थानी-पहिला दुसरा और चौथा यह ती-  
नो तो गुणस्थानतो नियमा से स्पर्शों. और तीसरे पांचवासे जावत  
इग्यारवे तक स्पर्शने की भजना.

३ मिश्र गुणस्थानी-पहिला तीसरा और चौथा तो नियमां  
से स्पर्शों. बाकी दुसरा पांचवा छटा जावत इग्यारवे तक स्पर्श ने  
की भजना.

४ अविरति गुणस्थानी-पहिला और चौथा तो नियमा से  
स्पर्शों. बाकी दुसरा तीसरा पांचवा जावत इग्यारवे तक स्पर्श ने  
की भजना.

५ देश विरति गुणस्थानी-पहिला चौथा और पांचवा तो  
नियमासे स्पर्शों. और दूसरा तीसरा छटा जावत इग्यारवातक स्पर्श  
ने की भजना.

६ प्रमत गुणस्थानी-पहिला चौथा छटा और सातवा यह  
तो नियमा स्पर्शों. और दुसरा तीसरा पांचवा आठवा जावत इग्या  
रवा स्पर्श ने की भजना.

७ अप्रमत गुणस्थानी-पहिला चौथा और सातवा यह ३तो  
नियमा स्पर्शों. और दूसरा तीसरा पांचवा छटा आठवा जावत इ-  
ग्यारवा स्पर्श ने की भजना.

८ अपूर्व करण गुणस्थानी-पहिला चौथा छटा मानवा और आ  
ठवा यह ५तो नियमास स्पर्शों. और दुमग तीसरा पांचवा नववा द-  
शवा और इग्यारवा इन ६ गुणस्थान स्पर्शने की भजना.

९ नियट्टि वादर गुणस्थानी-पहिला चौथा छटा मानवा आठ  
वा और नववा यह ६तो नियमा ने स्पर्शों. और दुमग तीसरा पांच  
वा. दशवा इग्यारवा इन ५ के स्पर्श ने की भजना.

१० सूक्ष्म सम्परायी गुणस्थानी-पहिला चौथा छठा सातवा आठवा नववा और दशवा यह तो नियमासे स्पर्शें. और दुसरा तीसरा पांचवा इग्यारवा की भजना.

११ उपशान्त मोह गुणस्थानी-पहिला चौथा छठा जावत इग्यारवा यह तो नियमासे स्पर्शें, और दुसरे तीसरे पांचवेकी भजना

१२ क्षीण मोह गुणस्थानी-पहिला चौथा छठा सातवा आठवा नववा दशवा बारवा तेरवा और चउदवा यह १०तों नियमाते स्पर्शें. और दुसरा तीसरा पांचवा इग्यारवा इन चारों की स्पर्श ने की भजना-

१३-१४ सयोगी केवली और अयोगी केवली गुणस्थानि-पहिला चौथा छठा सातवा आठवा नववा दशवा बारवा तेरवा और चउदवा यह १० तो नियमा से स्पर्शें और दुसरे तीसरे पांचवा इग्यारवा गुणस्थान स्पर्श ने की भजना.

और सिद्ध परमात्मा के जीवों ने-पहिला चौथा सातवा आठवा नववा दशवा बारवा तेरवा और चउदवा इन ९ गुणस्थानका तो निश्चयसे स्पर्श किया बाकी के ५ गुणस्थान स्पर्शनेकी भजना

## उन्नतीसवा पदम अपदम द्वार

मिथ्यात्व गुणस्थान से उपशान्त मोह गुणस्थान तक पदम अपदम दोनो-अर्थात् इन की पहिले स्पर्श ने वाला भी स्पर्शें और पहिली बार भी स्पर्शें. ऊपर के तीनो गुणस्थान एक-पदम एकही वक्त स्पर्शें.

## ३०वा शाश्वताशाश्वत द्वार

मिथ्यात्व, अविरति, देशविरति, प्रमत्त, कौरसयोगी केवली यह पांचों गुणस्थान शाश्वत-सदा पावे. बाकी के नव गुणस्थान अशाश्वत-किसी वक्त पावे किसी वक्त नहीं भी पावे.

## ३१वा-परभव गमन ऋ.

मिथ्यात्व सास्वादन और अविरति यह तीनों गुणस्थानों तो पर भव में जाते हूँ जीवों के साथ जानें हैं. बाकी के ११ गुणस्थान स्पष्ट होवे वहाँ ही रह जाते हैं.

## वत्सिवा भवसंख्या ऋ.

मिथ्यात्व मिथ्यात्व अनन्तान्त भव तक व साथ बना रहे. सास्वादन में लगाकर देश विरति गुणस्थान जयन्त १-२-३ भवन क लगोलग प्राप्त होवे. उत्कृष्ट मान तथा आठ भव तक लगोलग प्राप्त होवे. और प्रमत्त गुणस्थान में सजोगी, केवली गुणस्थान तक फक्त एक ही भव में ही साथ रहे.

## तेतीसवा-अल्प बहुत ऋ.

मयमे थोड़े इत्यादि उपगान्त मोह गुणस्थानमें प्रवर्तते जीवों-क्योंकि उपगम श्रेणिके आगममें एक समय ५४ जीवों पाते हैं.

इसमें-बाग्वे क्षीण मोह गुणस्थान वाले जीवों संख्यत गुण अधिक. क्योंकि क्षयक श्रेणिके एक समय में १०८ मिलते हैं. इस समयमें इतने लिये नहीं तो इसमें विगीत जीवों पते हैं.

इसमें-इत्यादि उपगान्तमोह-द्वारा मूल संसार-नव-निर्गुण द्वा. और आत्मा अर्धव रूप. इन तीनों गुणस्थान वाले आगममें तो

सम-तुल्य (बरोबर) और बारवे गुणस्थान से संख्यात गुणे अधिक होते हैं, क्योंकि-इन तीनों गुणस्थानों में उपशम और क्षपक दोनों प्रकारकी श्रेणि वाले जीवों एक ही वक्त में पाते हैं। इस लिये उपशम श्रेणिवाले ५४ और क्षपक श्रेणि वाले १०८, यों दोनोंही मिलकर प्रत्येक गुणस्थानमें अलग-अलग उत्कृष्ट पदे १६२जीवों पाते हैं।

इससे-तेरवे सयागी केवली गुणस्थान वाले संख्यात गुणे अधिक, क्योंकि-एक समय में प्रथक क्रोड पाते हैं।

इस से सातवे अप्रमत्त संयति गुणस्थान वाले संख्यात गुण अधिक, क्योंकि-एक समय में प्रथक सो क्रोड पाते हैं।

इस से छठे प्रमत्त संयानि गुणस्थानी संख्यात गुण अधिक, क्योंकि एक समय में प्रत्येक हजार क्रोड पाते हैं। और अप्रमाद के कालसे प्रमादका काल संख्यात गुणा अधिक है।

इस से-पंचवे देश विरति गुणस्थान वाले असंख्यात गुण अधिक, क्योंकि सन्नी तिर्यच पंचेन्द्रिय भी यहां पाते हैं।

इससे दूसरे सास्वादन गुणस्थान वाले असंख्यात गुणे अधिक, क्योंकि-इस गुणस्थान वार्ति जीवों चारों गति में पाते हैं।

इससे-तीसरे मिश्र गुणस्थान वाले असंख्यात गुणे अधिक, क्योंकि—दूसरे गुणस्थान से इस की स्थिति असंख्यात गुणी अधिक है।

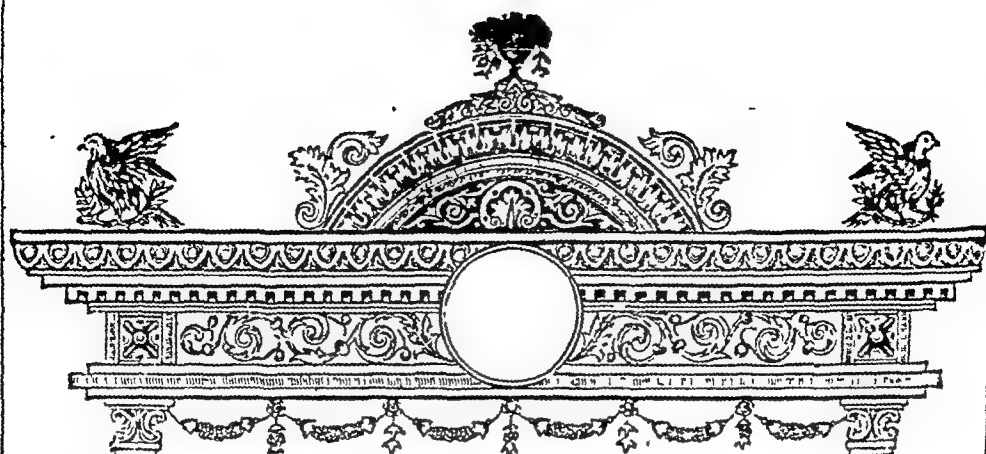
इससे-चौथे अविरति सम्यग दृष्टि गुणस्थान वाले असंख्यात गुणे अधिक, क्योंकि इस की स्थिति बहुत ज्यादा है।

इससे-चउदवं अजोगी केवली गुणस्थानी अनन्त गुणे अधिक, क्योंकि-अयोगी की अपेक्षासे सिद्ध भगवंत भी इसमें लिये, इसमें पाहिले मिथ्यात्व गुणस्थान वाले जीवों अनन्त गुणे

अधिक हैं, क्योंकि-निगोद के जीवों में भी यह गुणस्थान पाताहै.  
 परम पृथ्वी श्री कछानर्जा क्षुब्धर्जा महागजर्जा लम्प  
 दायके बाल दम्बहर्जा गुनि श्री अयोध्व  
 क्षुब्धर्जा महागज विगन्धिन गुणस्थान  
 गेहणअर्द्धमन्त्रार्ति ग्रंथके प्रथम  
 मूल काण्ड का प्रथम  
 मूलद्राग गेहण  
 वृण्ड.







## द्वितीय खण्ड-कर्म द्वारा रोहण.

### प्रथम प्रकरण-कर्मोत्पाति द्वार.

### कर्मोत्पाति के ७ द्वार के नाम

१ किरिया द्वार, २ मूल हेतू द्वार, ३ मिथ्यात्व हेतू द्वार, ४ अविरत हेतू द्वार, ५ कपाय हेतू द्वार, ६ योग हेतू द्वार, और ७ समुच्चय हेतू द्वार.

### ३४, पहिला-किरिया द्वार. =

२५ किरिया के नाम-१ कायिकी, २ अधिकरणी, ३ पाउमिया, ४ पग्तिवणिया, ५ प्राणाइ वाय, ६ आरंभीया, ७ परिगहिया, ८ मायवतिया, ९ अपच्चखाण वतिया, १० मिथ्या दंशण

३४ = इस द्वारके मुद्रामे के लिये देविये अर्थ कांडका पृष्ठ १५५ वा.

वतिया, ११ दिधीया, १२ पुठिया, १३ पाडुचिया, १४ सामंतवाणि  
या, १५ नेसाथिया, १६ सहथिया, १७ अणवणिया, १८ विदारणिया,  
१९ अणव २० अनाभोगा, कंखवतिया, २१ अनापउगी, २२ सामुदाणी, २३  
पेजवतिया, २४ दोषवतिया, २५ इर्यावहीया किरिया. इन २५  
क्रिया में से:

मिथ्यात्व और मिश्र गुणस्थानी के २४ क्रिया लगे, २५  
में से-इर्यावही ठली.

सास्वादनी और अविरति गुणस्थानी के २३ क्रिया लगे,  
२४ मेंसे मिथ्य दंशणवतिया ठली.

देश विरति गुणस्थानी के २२ क्रिया लगे, २३ मेंसे-अपच्च  
खाणिया ठली.

प्रमत संयति के गुणस्थानी २१ क्रिया लगे, २२ मेंसे परि-  
ग्गहीया ठली.

अप्रमत संयति से लगाकर सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानी तक  
के २० क्रिया लगे-उपर २२ कही उससे-आरंभिया क्रिया ठली. ÷

उपशान्त मोह से लगा कर सयोगी केवली गुणस्थान के  
१ इर्यावही लगे.

अयोग केवली गुणस्थानी और सिद्ध भगवन्त के क्रिया  
विलकूलही नहीं लगे.

### ३५ दूसरा-मूल हेतू (कारण) द्वार \*

कर्म बन्धके मूल हेतू कारण ५ हैं:- १ मिथ्यात्व, २ अविर-  
ति, ३ प्रमाद. ४ कषाय. और ५ योग. इनमें से.

❧ \* इस द्वारके खुलावे के लिये देखिये अर्थ कांडका पृष्ठ १९७ वा.

मिथ्यात्व गुणस्थान में पांचोंही कारण पावे.

सास्वादन मिश्र अविरत और देश विरति गुणस्थानी के ४ कारण, ५ मेसे मिथ्यात्व टला.

प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानी में तीन कारण, ४ मे से अविरति टली.

अपूर्व करण, नियती बादर और सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानी में दो कारण प्रमाद टला.

उपशान्त मोह, क्षीण मोह, और सयोगी केवली गुणस्थानी में एक कारण योग.

अयोगी केवली गुणस्थानी में और सिद्ध में कर्म बन्ध का कारण नहीं पावे.

### ३६, तीसरा मिथ्यात्व हेतूद्वार. \*

५ मिथ्यात्व के नाम-१ अविग्रह, २ अनाविग्रह ३ अभिनिर्वेशिक ४ संशयिक और ५ अनाभोग इन में से:—

मिथ्यात्व गुणस्थान में पांचों ही मिथ्यात्व पावे, बाकी सास्वादन से लगाकर चउदवे अयोगी केवली गुणस्थान तक मिथ्यात्व नहीं पाताहै.

### ३७, चौथा-अविरति हेतू द्वार \*

१२ अविरति के नाम-५ पांच इन्द्रियकी, १ मनकी और ६ कायाकी. मिथ्यात्वसे अविरति गुणस्थानतक १२ प्रकारकी अविरति लगे.

\* इस द्वारके खुलासे के लिये देखिये अर्थ कण्डका पृष्ठ १५९ पृष्ठ.

देशविरति गुणस्थान में-त्रसकायकी अविरति विना ११ लगे.  
प्रमत्तसे अजोगी केवली गुणस्थानाके अविरति नहीं लगती है.

### ३८ पांचवा-कषाय हेतु द्वार ÷

२५ कषाय के नाम-४ अनन्तान बन्धि चौकड़ी, ४ अप्रत्याख्यानावरणीय चौकड़ी, ४ प्रत्याख्यानावरणीय चौकड़ी ४ और संज्वलन की चौकड़ी, यों १६, और १ हांस्य २ रति, ३ अरति, भय, ५ शोक, ६ जुगुप्सा, ७ स्त्रीवेद, ८ पुरुष वेद, और ९ नपुंसक वेद. यों सब २५ हुई.

मिथ्यात्य और सास्वादन गुणस्थान में-कषाय पावे २५ ही.

मिश्र और अविरति गुणस्थान में-कषाय पावे २१, अनन्तान बन्धिक चौक टला.

देश विरति गुणस्थानी में-१७ कषाय, २१ मेंसे-अप्रत्याख्यानावरणीका चौकड़ी टली.

प्रमत्त अप्रमत्त और अपूर्व करण गुणस्थानी में १३ कषाय, १७ मेंसे प्रत्याख्यानावरणी चौक टला.

अनियति बादर गुणस्थानी में ७ कषाय. १३ मेंसे-हॉस्यादि ६ प्रकृति टली.

सूक्ष्म सत्पराय गुणस्थान में एक कषाय संज्वलन लोभ.

उपज्ञान्त मोहसे अजोगी केवली गुणस्थान तक और सिद्धों में कषाय नहीं

### ३९ छठा-योग हेतु द्वार. ÷

१५-४ मनके (१) सत्यमन, (२) असत्यमन, (३) मिश्रमन और (४) व्यवहारमन, ४ वचनके (१) सत्यवचन (२) असत्यवचन (३) मिश्रवचन और ४ व्यवहारवचन (४) कायाके (१) औदारिक, (२) औदारिक मिश्र, (३) वैक्रिय (४) वैक्रिय मिश्र (५) आहारक (६) आहारक मिश्र और (७) कर्मण, यों १५ योगोंमेंसे.

मिथ्यात्व सास्वादन और अविशति गुणस्थान में-१३ जोग पावे, १५ में से आहारिक के दोनों घटे. क्योंकि इन में मुनिराज न हीं पाते हैं.

मिश्र गुणस्थान में-४ मनके, ४ वचन के, १ औदारिक, १ वैक्रिय, यह १० योग पावे.

देशविरति गुणस्थानमें-२ आहारकके दो, और १ कर्मणका इन ३ विन १२ योग पावे.

प्रमत्त संयती गुणस्थान में कर्मण विना १४ जोग पावे.

अप्रमत्त संयति गुणस्थानमें-औदारिक मिश्र, वैक्रिय मिश्र, आहारक कर्मण इन ४ विना ११ योग पावे.

अपूर्व करण से क्षीण मोह गुणस्थान तक-४ मनके, ४ वचनके, औदारिक, यह ९ योग पावे

सयोगी केवली में-१ सत्यमन, २ व्यवहारमन, ३ सत्य भाषा, ४ व्यवहार भाषा, ५ औदारिक ६ औदारिक मिश्र, और ८ कर्मण, यह ७ योग पावे.

अयोगी केवली और सिद्धों में एकही योग नहीं पावे.

= आहारक और वैक्रिय मिश्र जोगलब्धि फोडती ब्रह्म पाता है और लब्धि फोडना यह प्रमाद अवस्था है, इसलिये तीनों मिश्र योगों अप्रमत्त गुणस्थानमें नहीं पाते हैं आहारक शरीर निपजे बाद अप्रमत्त हो जाते हैं.

## सातवा समुचय हेतू द्वय.

५ मिथ्यात्व. १२ अविरति, + २५ कषाय. १५ जोग, मिलक  
५७ हेतु सब होते हैं,

१ मिथ्यात्व गुणस्थान में—५ मिथ्यात्व, १२ अविरति, २५ कषाय और १३ जोग यों ओघ (सब जीवों और सर्वाकाल आश्रित्य) ५५ हेतु पाते हैं. इसमें से एक जीव की अपेक्षा से-एक समय में जघन्य १० हेतु पाते हैं:—१ पांचों मिथ्यात्व में का एक मिथ्यात्व. १ छे काया के वध में का एक काया का वध. ३ पांचों इन्द्रियों की विषय में की एक की विषय. ४ तीनों वेदों में का १ वेद, हांस्य और रति शोक और अरति इन दोनों युगलों में का एक युगल, = अप्रत्याख्यानी चौकड़ी में की एक कषाय, < प्रत्याख्यानी चौक में की एक कषाय, ९ संज्वलन चौकड़ी में की एक कषाय, १० और ४ मनके. ४ वचन के ÷ १ औदारिक, १ और वै-

+ मूल हेतु ५ कहे और यहां चारों लिये-प्रमाद नहीं लिया इसका मवव पांच प्रमाद मे से मदका शमावेश तो मान मे होता है. विषयका समावेश अविरत में. कषाय मे. निन्दा विकथा का जोग मे समावेश होता है.

= यहां फक्त तीनों कषाय ही लेने का मवव यह है कि-क्रोडादिक का उदय विरोधी है अर्थात्-बोध के उदय में मानाधि का उदय नहीं होता है इसलिये एकही ली. यह और अनन्तान वन्धि चौकड़ी छोड़नेका मवव यह है कि-उपग्रह श्रैणिक अनन्तान वन्धि की वीन योजना करने उनकी मत्ता टूटती है. वहांमे पड जो यहां आये बाद मिथ्यात्वो दय भये फिर अनन्तान वन्धि का उदय नहीं होता है. इसलिये यहां जघन्य पद में फक्त तीनों कषाय का ही ग्रहण किया है

— मिथ्यात्व गुणस्थान मे अनन्तान वन्धि के उदय बिना मग्न नहीं होता है. इसलिये अपर्याया के अभाव मे औदारिक मिश्र. वैज्रिय मिश्र. और वार्त्तन. यह तीनों जोगों ग्रहण नहीं किये.

क्रिय, इन १० जोगों में का एक जोग, यों १० हेतू पाते हैं. और उत्कृष्ट १८ पाते हैं:—१० तो उपर कहे सोही. और ११ अनन्तान बन्धि चौकडी में की एक कषाय. १२ भय, १३ मत्सर, १८ पांचों काया का बन्ध उत्कृष्ट यह १८ हेतू एक जीव के एक समय में पाते हैं.

२ सास्वादन गुणस्थान में-१२ अव्रत, २५ कषाय और १३ योग. यों ओघसे (सर्व जीवों और सर्व काल आश्रिय) ५० हेतू पाते हैं. और एक जीव के एक समय में जघन्य १० हेतू पावे उपर जो १० हेतू कहे हैं. उस मेंसे १ मिथ्यात्व तो घटाना, और अनन्तान बन्धि चौकडी की १ कषाय बढ़ाना और उत्कृष्ट १७ हेतू पाते हैं:—सां १० तो येही और ५ कायाका बन्ध, तथा भय और मत्सर यों उत्कृष्ट १७ हेतू एक जीव के एक समय में पाते हैं.

३ मिश्र गुणस्थान में-१२ अव्रत, २१ कषाय, और १० जोग, यों ओघमें ४३ हेतू पाते हैं. और एक जीव के एक समय में जघन्य ९. हेतू पावे:—उपर १० कहे, उस में से १ अनन्तान बन्धी की कषाय कर्मा कग्ना. और उत्कृष्ट १६ हेतू पाते हैं उपर कहे सां मोही ७ अधिक यहां जानना.

४ अविर्गति मय्यग दृष्टि गुणस्थान में-२२ अव्रत, २१ कषाय और १३ योगयों ओघमें ४६ हेतू पाते हैं और एक जीव के एक समय में जघन्य ९. और उत्कृष्ट १७ हेतू तीसरे गुणस्थान में कहे मोही यहां पाते हैं.

५ देवविर्गति गुणस्थान में- ११ अव्रत, १७ कषाय और १२ योग यों ओघमें ४० हेतू पावे—और एक जीव के एक समय में जघन्य ९. उत्कृष्ट १७ उपरके हेतू पाते हैं.

६ प्रमत्त संयाति गुणस्थान में—१३ कषाय और १४ जोग यों औघसे २७ हेतु पावे. और एक जीव के एक समय में जघन्य ५:—तीन वेदों में का १ वेद, संज्वल की चौकड़ी में की १ कषाय, दोनों यूगल में का १ युगल, और १३ जोग में का १ जोग, यों, ५ और उत्कृष्ट ७ पावे-आहारक के दोनों योगों वडे.

७ अप्रमत्त गुणस्थानमें-१३ कषाय, और ११ योगों, यों २४ हेतु और से पाते हैं, इस में से एक जीव के एक समय में - ५ पाते हैं. छटे गुणस्थानकी माफिकही. विशेष इतनाही की यहां ७ योग में का योग लेना. और उत्कृष्ट ६ पाते हैं. १ आहारक योग अधिक हूवा.

८ अपूर्व करण गुणस्थान में १३ कषाय और ९ = जोग यों २२ हेतु औघसे पाते हैं. और जघन्य ५ पाते हैं:- अप्रमत्त में कहेसो ही.

९ नीयटि वादर गुणस्थान में-७ कषाय और ९ जोग यों १६हेतुं औघसे पातेहैं. और जघन्य एक जीव की अपेक्षासे दो पाते हैं:-१कषाय और १ योग.

१० सूक्ष्म सन्यराय गुण स्थान में-१ कषाय और ९ जोग यों १० हेतु औघ से पावे. और जघन्य दो-पावे १ जोग. १कषाय.

११-१२ उपशान्त मोह और क्षीण मोह गुणस्थान में-फक्त ९ जोग के ९ हेतूही औघ पाते हैं. और जघन्य फक्त १ जोग ही पाता है.

१३ सयोगी केवली गुणस्थान में फक्त ७ जोग के ७ हेतु

= पक्त औदारिक जोग बालाही श्रेणि प्रारंभ करना है. इत्यदि ये चारों दोनों जोग घट गये.



ही पाते हैं, और जघन्य एक जीव की अपेक्षा-से एक जोगही पाता हैं.

१४ अयोगी केवली गुणस्थान में जोग के अभावसे हेतु ए ही नहीं. पाता है.

❀ इति कर्मोत्पत्ति नामक प्रथम प्रकरणम्. ❀

## द्वितीय प्रकरण कर्म बन्ध द्वार.

कर्म बन्ध के २७ द्वार के नाम.

१ चार बन्ध द्वार, २ समुच्चय मूल कर्म बन्ध द्वार, ३ ज्ञानावर्णीय कर्म बन्ध द्वार, ४ दर्शनावर्णीय कर्म बन्ध द्वार, ५ वेदवर्णीय कर्म बन्ध द्वार, ६ मोहनीय कर्म बन्ध द्वार, ७ आयुष्यकर्म बन्ध द्वार, ८ नाम कर्म बन्ध द्वार, ९ गौत्र कर्म बन्ध द्वार, १० अन्तराय कर्म बन्ध द्वार, ११ ध्रुव कर्म बन्ध द्वार, १२ ध्रुव कर्म प्रकृति बन्ध द्वार, १३ अध्रुव कर्म बन्ध द्वार, १४ अध्रुव कर्म प्रकृति बन्ध द्वार, १५ सर्व घातिक कर्म बन्ध द्वार, १६ सर्व घातिक कर्म प्रकृति बन्ध द्वार, १७ देश घातिक कर्म बन्ध द्वार, १८ देश घातिक कर्म प्रकृति बन्ध द्वार, १९ अघातिक कर्म बन्ध द्वार, २० अघातिक कर्म प्रकृति बन्ध द्वार, २१ शुभ (पुण्य) कर्म बन्ध द्वार, २२ शुभ (पुण्य) कर्म प्रकृति बन्ध द्वार, २३ अशुभ (पाप) कर्म बन्ध द्वार, २४ अशुभ (पाप) कर्म प्रकृति बन्ध द्वार, २५ समुच्चय कर्म प्रकृति बन्ध द्वार, २६ कर्म बन्ध व्यच्छेद द्वार, २७ कर्म प्रकृति बन्ध व्यच्छेद द्वार.

## ४१, प्रथम चार बन्ध द्वार. \*

१ प्रकृति बन्ध, २ स्थिति बन्ध, ३ अनुभाग बन्ध, और ४ प्रदेश बन्ध. ६ इन में १-१० पहिले मिथ्यात्व गुणस्थान से लगाकर, दशवे सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान तक चारों बन्ध पाते हैं.

११-१३ उपशान्त मोह, क्षीण मोह और सयोगी केवली, गुणस्थानमें दो प्रकार के बन्ध, प्रकृतिबन्ध और २प्रदेश बन्ध.

१४ अयोगी केवली गुणस्थानमें बन्ध नहीं.

## ४२, दुसरा-समुच्चय कर्म बन्ध द्वार.

मिथ्यात्व गुणस्थान से लगाकर अप्रमत्त गुणस्थान तक बी चका तीसरा मिश्र गुणस्थान छोड़ कर बाकी के ६ गुणस्थान में आयुष्य कर्म का बन्ध करे तब आठोंही कर्मोंका बन्ध होताहै और आयुष्य नहीं बन्धे उस वक्त सात कर्मों का बन्ध करे.

मिश्र अपूर्व करण, और अनियति वादर इन तीन गुणस्थानों में आयु कर्म का बन्ध नहीं होता है. इसलिये सातही कर्मों बंधतेहैं.

सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान में शुद्ध परिणाम होने से आयुष्य और मोहनीय कर्मका बन्ध नहीं होताहै. इसलिये छेही कर्मोंका बंध करते हैं.

उपशान्त मोह, क्षीण मोह और सयोगी केवली. इन तीनों गुणस्थान में फक्त एक वेदनीय कर्म बन्धतेहैं.

अयोगी केवली गुणस्थान में कर्म बन्ध नहीं करतेहैं.

## ४३ तीसरा-ज्ञानावरणीय कर्म प्रकृति बन्ध द्वार.

१ मतिज्ञानावरणी, २, श्रुतज्ञानावरणी, ३ अवधि ज्ञानावरणी  
४ मनपर्यव ज्ञानवरणी और ५ केवल ज्ञानावरणी. मिथ्यात्व गुणस्था-  
नसे लगाकर सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान तक ज्ञानावरणीय की पांचों  
प्रकृति का बंध होता है, उपर एक ही नहीं बन्धाती है.

## ४४, चौथा-दर्शनावरणीय कर्म प्रकृति बन्ध द्वार

१ चक्षु दर्शनावरणीय, २ अचक्षु दर्शनावरणीय, ३ अत्रावि द  
र्शनावरणीय, ४ केवलदर्शनावरणीय, ५ निद्रा, ६ निद्रानिद्रा, ७ प्रच-  
ला, ८ प्रचला प्रचला, और ९ थिण्दी निद्रा. इन दर्शनावरणीय के  
९ प्रकृतिमें से,

१-२ मिथ्यात्व सास्वादन गुणस्थानमें दर्शनावरणीयकी ९ही  
प्रकृतिका बन्ध होता है.

१-८ मिश्र गुणस्थान से लगाकर आठवे अपूर्व करण गुण-  
स्थान तक थिण्दी त्रिक\*१निद्रानिद्रा, २प्रलचा प्रचला, और ३थीण्दी  
निद्रा इन३का बन्ध नहीं होता है. इसलिये छेही प्रकृति बन्ध होता है.

९-१० नियटि बादर और सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान में-१  
निद्राका और २ प्रचला का बन्ध नहीं होने से चार ही का बन्ध हो-

\* इन तीनों निद्रा का बन्ध अनन्तान बन्धि कपायके उदय मे होता है. औ-  
र यहां इसका उदय नहीं है जिसमे टली है.

ता है, ऊपर इसका बन्ध नहीं होता है।

## ४५, पांचवा-वेदनीय कर्म प्रकृतिबंधद्वारा

वेदनीय कर्म की दो प्रकृतिः—१ सात वेदनीय, और २ असात वेदनीय।

१-६ मिथ्यात्वसे प्रमत गुणस्थान तक दोनों प्रकृति बंधती है।

७-१० अप्रमतसे-सूक्ष्म संपराय तक एक नंज्वलकी कपाय + और सात वेदनीय बन्धाती है।

११-१३ उपशांत मोह से-मयोगी केवली तक ए सात वेदनी ही बन्धाती है।

१४ अयोगी केवली में वेदनीय का बन्ध नहीं होता है।

## ४६, छठा मोहनीय कर्म प्रकृति बंधद्वारा

मोहनीय कर्म की २८ प्रकृतिः—१ अनन्तान बन्धि आदि चारों चौकड़ी की १६ कपाय, हाँस्यादि ९ नो कपाय, और १ मिथ्यात्व मोहनीय, इन २६ में से।

१ मिथ्यात्व गुणस्थान में २६ ही प्रकृति का बन्ध होता है।

२ साम्वादत गुणस्थान-१ मिथ्यात्व मोहनी और नष्टमकवे द इन दो बिना २४ का बंध होता है।

३-४ मिथ्र और अविगति गुणस्थान में-१ अनन्तान बंधि

+ अनाता वेदनीय का बन्ध प्रमादके उदय में होता है, और यहाँ प्रमाद नहीं है, जिनसे छठी

- मोहनीय कर्म की सब २८ प्रकृति है, जिन में से १ मिथ्र मोहनीय, २ और सम्प्रदाय मोहनीय का बन्ध होता है, जिनसे २४ का छठा कर्म यहाँ बंध की २८ ही प्रकृति प्राप्त होती है, मिथ्र मोह का अनात से मिथ्र मोहनी सम्प्रदाय सम्प्रदाय मोहने होता है।

चौकड़ी और स्त्रीवेद विना १९ का बन्ध होता है.

५ देश विरति गुणस्थान में—अप्रत्याख्यानावरणीय की चौकड़ी विना १५ का बन्ध होता है.

६ प्रमत्त गुणस्थान में—प्रत्याख्यानावरणीय चौकड़ी विना ११ प्रकृति का बन्ध होता है.

७-८ अप्रमत्त और अपूर्व करण गुणस्थान में शोक और अरति विना ९ प्रकृतिका बन्ध होता है.

९ नियति बादर गुणस्थान में—हांस्य, रति भय और मत्सर इन ४ विना ५ का बन्ध होता है.

आगे मोहनीय कर्म का बन्ध नहीं होता है.

## सातवा आयुष्य कर्म प्रकृति बंध द्वार

आयुष्य कर्म की ४ प्रकृति-१ नरकायु, १ तिर्यचायु, ३ मनुष्यायु, और ४ देवायु इन ४ मेंसे.

१ मिथ्यात्व गुणस्थान में—चारों गतिके आयुष्यका बंध होता है.

२ सास्वादन गुणस्थान में—नरक विना तीनों गतिका आयुर्बन्ध होता है.

मिश्र गुणस्थान में आयुर्बन्ध नहीं होता है. ÷

४ अविरति गुणस्थान में—१ मनुष्यायु और २ देवायु दोनों का बन्ध होता है.

५-७ देशविरति, प्रमत्त, और अप्रमत्त गुणस्थान में—१ देवा-

÷ मिश्र गुणस्थानी मध्यस्थ परिणामी है. तथा आयुर्बन्ध काल जितनी इनकी स्थिति नहीं है इसलिये यहां आयु बन्ध नहीं है.

युक्ताही बन्ध होता है=

ऊपर आयु बन्ध विलकूल नहीं है.

## ४८, आठवा नाम कर्म प्रकृति बंध द्वार.

नाम कर्म की ६७ प्रकृति बन्धाती है:- ४ गति, ५ जाति, ५ शरीर, ÷ ३ अंगोप्रांग, ६ संघयण, ६ संज्ञाण, ४ × वर्ण चतुष्क, ४ अनुपूर्वी, २ विहायोगति, १ पराघात नाम १ उश्वासनास, १ आताप नाम, १ उद्योत नाम, १ अगुरुलघु नाम, १ तीर्थकर नाम, १ निर्माण नाम, १ उपघात नाम, १ त्रस नाम, १ वादरनाम, १ पर्याप्ता नाम, १ प्रत्येकनाम, १ स्थिर नाम, १ शुभनाम, १ सौभाग्य नाम, १ सुस्वरनाम, १ आदेय नाम, १ यशःकीर्ति नाम, १ स्थावरनाम, १ सूक्ष्म नाम, १ अपर्याप्ता नाम, १ साधारण नाम, १ अस्थिर नाम, १ अशुभ नाम, १ दौर्भाग्य नाम, १ दुस्वर नाम १ अनादेय नाम, १ अयशःकीर्ति नाम. यह ६७ इनमेंसे.

१ मिथ्यात्व गुणस्थान में- २ आहारक द्विक और तीर्थकर

= आयु बन्ध मालम्बीक होता है. ऊपरके गुणस्थानी निरालम्बध्यानी है.

÷ नाम कर्म की सब २२ प्रकृतियों हैं, जिसमेंने बन्ध स्थान में ६७ही प्रकृतियों ग्रहण करी जिसका सबब:- शरीर नाम कर्म में अपना २ बन्धन और संघात यह दोनों अविना भावी हैं. अर्थात्-शरीरके विना यह दोनों नहीं होसकते, इस लिये पांच बन्ध और पांच संघात यह १० प्रकृतिये बन्ध तथा उदय रूप में शरीर के भेली ही गिनी गड है. जुदी नहीं गिनी. और ५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८स्पर्शयह २० प्रकृतियों का भी. १.वर्ण, २ गंध, ३ रस. और ४स्पर्श इन चारों में ही समावेश हुआ है क्योंकि यह अभेदी है इसलिये बीसोंका चारों में ही समावेश होजाता है. यों १० शरीर की और १६ वर्णादिकी मित्र २६ प्रकृतियों २३ मेंसे कमी करनेसे बाकी ६७ प्रकृतियोंका बन्ध की रहती हैं.

नाम इन ३ विना ६४ प्रकृति का बन्ध होता है।

२ सास्वादन गुणस्थान में-३ नरक त्रिक, ४ जाति चतुष्क,  
१ स्थावर नाम, १ सूक्ष्म नाम, १ अपर्याप्ता नाम, १ साधारण नाम  
१ आताप नाम, १ हुंडक संस्थान, और १ छेवटा संघयण इन १४ प्र-  
कृति मिथ्यात्वीही बान्धता है, इसलिये इस में बन्ध नहीं होने से  
बाकी ५० का बन्ध यहां होता है।

३ मिश्र गुणस्थान में-१ तिर्यचः १ तिर्यचानुपूर्वी, १ अशुभ विहायौग  
ति, १ दौर्भाग्य नाम, १ दुस्वर नाम, १ अनादेय नाम, ४ बचिके  
चार संघयण, ४ बचिके ४ संठाण, इन १४ प्रकृति का बन्ध संक्लेश  
अनन्तान बन्ध के उदय में होता है, सो यहां न होने से बाकी  
रही ३६ प्रकृति का बन्ध यहां होता है।

४ अविरति गुणस्थान में:-ऊपरोक्त ३६ और १ जिन  
नाम यों ३७ का बन्ध होता है।

५-६ देश विरति और सर्व विरति गुणस्थान में:-१ मनु-  
ष्य गति, २ मनुष्यानुपूर्वी, ३ औदारिक शरिर, ४ औदारिक आंगे  
पाग, और ५ बज्र वृषभ नारच संघयण, इनके न होता है, क्यों कि  
यह देवायु ही बान्धते है इसलिये इन ५ विना बाकी रही ३२ प्रकृ-  
ति का बन्ध यहां होता है।

७-८ अप्रमत्त और अपूर्व करण गुणस्थान में-अशुभ ना-  
म, १ अस्थिर नाम, और ३ अयशः कीर्ति नाम यह तीन, प्रमाद के  
योग से बन्धाती है सो यहां नहीं होने से यह ३ घटी, तब २९ रही  
और विशुद्ध परिणाम की अधिकता होने से आहारक और आहार-  
क अंगोपांग इन दो का बन्ध बढ़ने से ३१ प्रकृति बन्धते हैं।

९-१० अनीयटी वादर और सूक्ष्म सम्पराय में-यशः कीर्ति

का बन्ध होता है।

ऊपर के गुणस्थानों में नाम कर्म का बन्ध नहीं होता है।

## ४९, नववा-गौत्र कर्म बन्ध द्वार.

गौत्र कर्म की दो प्रकृति-१ उंच गौत्र और नीचे गौत्र. इसमें से:-

१-२ मिथ्यात्व और सास्वादन गुणस्थानों में दोनों गौत्र का बन्ध होता है.

३-१० मिश्र गुणस्थानसे लगा सूक्ष्म सम्परायतक एक ऊंच गौत्रका ही बन्ध होता है.

## ५०, दशवा-अन्तराय कर्म बन्ध द्वार.

अन्तराय कर्मकी पांच प्रकृति-१ दानान्तराय. २ लभान्तराय, ३ भोगान्तराय. ४ उपभोगान्तराय. और ५ वलवीर्यान्तराय, इन ५ अन्तरायमें से:-

मिथ्यात्व गुणस्थान से लगाकर सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानतक पांचों प्रकृतिका बन्ध होता है. ऊपर अन्तराय का बन्ध नहीं.

## ५१, इग्यारवा-ध्रुव कर्म बन्ध द्वार.

ज्ञानावरणीय. दर्शनावरणी. मोहनीय. नाम. और अन्तराय यह ५ कर्म ध्रुव बन्धी हैं:-इनमें से.

मिथ्यात्व गुणस्थान से सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानतक पांचों ही कर्मोंका बंध होता है. ऊपर के गुणस्थानोंमें ध्रुव बन्ध नहीं.

## ५२, बारवा-ध्रुव कर्म प्रकृति बन्ध द्वार.

ध्रुव बन्ध प्रकृति के स्थानोंके लिये देवर्षि अथ वांछका पृष्ठ २०० वा.



ज्ञानावरणीयकी ५, दर्शनावरणीय ९, मोहनीय की १ (चारों कपायकी चौकड़ी, भय, मत्सर और मिथ्यात्व मोहनी) नामकी-४ वर्ण चतुष्क, १ तेजस, १ कर्मण, १ अगुरुलघु, १ निर्माण, १ उद्योत, येह ९ और अन्तराय की ५ यों सब ४७ प्रकृति ध्रुव बन्धी हेता है इस मेंसे.

मिथ्यात्व गुणस्थान में-४७ ही प्रकृतिका बन्ध होता है.

सास्वादन गुणस्थान में-मिथ्यात्व मोहनी विना ४६ प्रकृतिका बन्ध होता है.

मिश्र और अविाति गुणस्थान में-अनन्तान बन्धि चौकड़ी और थीणद्धी त्रिक विना ३९ प्रकृतिका बन्ध होता है.

देशविरति गुणस्थान में-अप्रत्याख्यानी चौकड़ी विना ३५ का बन्ध होता है.

प्रमत और अप्रमत गुणस्थान में प्रत्याख्यानी चौकड़ी विना का ३१ बन्ध होता है.

अपूर्व करण गुणस्थान में-दोनों निद्रा विना २९ का बन्ध होता है.

अनीयटी वादर गुणस्थान में-भय मत्सर और नाम कर्म ९ + प्रकृति विना १८ प्रकृतिका बन्ध होता है.

सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान में- संज्वल की चौकड़ी विना १४ प्रकृति का बन्ध होता है.

उपर के गुणस्थानों में ध्रुव बन्ध नहीं होता है.

अधुव बन्ध कर्म प्रकृति के खुलासे के लिये देखीये अर्थ कांडका पृष्ठ २०१ ना.  
+ वर्ण चतुष्क, ५ तेजस, ६ कर्मण, ७ वर्ण चतुष्क, ८ अगुरु लघु, १ निर्माण

## ५३, तेरवा-अध्रुव कर्म बन्ध द्वार

वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम और गौत्र यह ५ अध्रुव बन्ध कर्म है.

मिथ्यात्व गुणस्थान से लगाकर अप्रमत्त गुणस्थान तक बीच का मिश्र गुणस्थान छोड़ बाकी के ६ गुणस्थानों में ५ ही कर्म बंधते हैं.

मिश्र अपूर्व करण, अनियाटि वादर, इन तीनों गुणस्थानों में आयुष्य कर्म बिना चार कर्मों का बन्ध होता है.

सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान में आयुष्य और मोहनीय बिना तीन कर्म का बन्ध होता है.

उपशान्त मोह, क्षीण मोह और सयोगी केवली इन तीनों गुणस्थान वालों के एक वेदनी का बन्ध होता है.

अयोगी केवली गुणस्थान में बन्ध नहीं.

## ५४, चौदवा-अध्रुव कर्म प्रकृति द्वार.

वेदनीय की २. मोहनीय की छे ३ वेद. १ हांस्य. १ गति. शोक. यह ६. आयुष्य की ४. नाम की १ शरीर ३. अंगोपांग ३. मन्व-यण ६. संशय ६. गति ४. जाति ५. अणुपूर्व ४. विहायोगाति २. श्वाशोश्वास १. आताप १. उद्योत १. पराधान १. त्रमदशका ११. स्थावर दशका १०. तीर्थकर नाम १. यह ५९. और गौत्र की २. यों सब ७३ अध्रुव बंध की प्रकृतियों होती हैं. इसमें से.

मिथ्यात्व गुणस्थान में आहारक द्वाक और तीर्थकर नाम बिना ७० प्रकृति बन्धते हैं.

सात्त्वादन गुणस्थान में ३ नृकत्रिक. ४ जाति चतुष्क. ५ स्थावर. १ सूक्ष्म. १ अपर्याप्त. १ नाशान्न १ आताप. १ छद्वे

संघयण और १ हुंड संस्थान, इन १४ विना बाकी रही ५६ प्रकृति बन्धते हैं.

मिश्र गुणस्थान में-४ आयुष्य की, ४ बीचके चार संघयण ४ बीचके चार संस्थान, १ अशुभ विहायोगति, १ स्त्रीवेद, २ तीर्थच द्वीक, १ दौर्भाग्य, १ दुःस्वर, १ अनादेय, और १ नीच गौत्र इन २० विना ३६ प्रकृति बन्धाती है.

अविरति गुणस्थान में-१ तीर्थकर नाम और मनुष्यायु, १ देवायु, यह ३ प्रकृति बढ़ने से ३९ का बन्ध होता है.

देशविरति और अप्रमत्त गुणस्थान में-१ बज्र ऋषभ नारच संघयण, १ मनुष्यगति, १ मनुष्यानु पूर्वी, १ मनुष्यायु, २ औदारिक द्विक, यह ६ विन २३ बन्धते हैं.

अप्रमत्त गुणस्थान में-१ शोक, १ अरति, १ अस्थिर, १ अशुभ, १ अयशः कीर्ति, इन ५ प्रकृति विना २८ का बन्ध होता है

अपूर्व करण गुणस्थान में-१ देवद्विक, १ पचेन्द्रियजाति, १ शुभविहायगति, १ त्रस दशके मे की यशकीर्ति विना नव, २ वैक्रियद्विक, २ आहारक द्विक, १ सम चउरस संस्थान, १ उश्वास, और १ पराघात इन २० विना, ८ का बन्ध होती है.

अनीयटी बादर में-१ साता वेदनी, २ यशकिर्ती, ३ ऊंच गौत्र और ४ पुरुषवेद यह ४ बन्धेती है.

सूक्ष्म सम्प्राय में-पुरुष वेद विना तीन प्रकृति बन्धती है.

पश्चान्त मोहसे सयोगी केवल गुणस्थानतक-१ साता वेदनी बंधे.

अयोगी केवली गुणस्थान में बन्ध नहीं.

५५, पंद्रवा सर्व घातिक कर्म बन्ध दार

सर्व घातिक ३ कर्म:-१ ज्ञानावरणीय २ दर्शनावरणीय और ३ मोहनीय.

मिथ्यात्व से अप्रमत्त गुणस्थानतक तीनों कर्म बन्धते हैं और अपूर्व करण से मृग्य सम्पराय गुणस्थानतक मोहनी विनादो कर्म बन्धते हैं. उपर सर्व घातिका बन्ध नहीं.

६५,—सोलवा सर्व घातिक कर्म प्रकृति द्वार

१ केवल ज्ञानावरणीय, १ केवल दर्शनावरणीय, १ निद्रा १२ संज्वलकी चौकडी विना तीनों चौकडी की ११ कपाय, और १ मिथ्यात्व मोहनीय. यह २० सर्व घातिक प्रकृति है. इसमें से.

मिथ्यात्व गुणस्थान में २० ही प्रकृति बन्धाती है.

सास्वर्दिन में-१ मिथ्यात्व मोहनीय विना १९ प्रकृति बन्धाती है.

मिश्र औ अविशति गुणस्थान में ४ अनन्तान बन्धि चौकडी और २ धीणदी त्रिक इन ७ विना १२ प्रकृति बन्धाती है.

देशविरति गुणस्थान में-अप्रत्याख्यानी चौकडी विना ८ प्रकृति बन्धती है.

प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान में—१ केवल ज्ञानावरणीय, १ केवल दर्शनावरणीय. और दो निद्रा, यह ४ प्रकृति बन्धती है.

अपूर्व करण गुणस्थान के दूसरे भाग में लगाकर मृग्य सम्पराय गुणस्थानतक- १ केवल ज्ञानावरणीय और २ केवल दर्शनावरणीय २ प्रकृति बन्धाती है.

आगेके गुणस्थानों में सर्व घातिक प्रकृति का बन्ध नहीं.

## ५७. सत्तरवा देशघातिक कर्म बंध द्वार

देशघरातिक ४ कर्म:-ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय.

मिथ्यात्वसे अनीयटी बादर गूणस्थानतक चारोंही कर्म बन्धाते हैं. सूक्ष्म संपरायके आदि भागमें मोहनीय विना तीनोंकर्म बंधाते हैं सूक्ष्म सम्परायके अन्तिम भागसे ऊपर देशघातिक कर्मका बंध नहीं

## ५८ अठारह देशघातिककर्म प्रकृति बंधद्वार

देश घातिक कर्मोंकी २५ प्रकृति-ज्ञानावरणीय की ४, दर्शनावरणीयकी ३, हांस्य पटक, ३ वेदनीय, ४ संज्वलकी चौकड़ी, और अन्तराय की ५, यों २५ में से मिथ्यात्व गूणस्थान में २५ ही प्रकृति का बन्ध होता है.

सास्वादन गूणस्थान में नपुंसक वेद विना २४ बन्धाती है.

भिश्त्रसे प्रमत गूणस्थानतक स्त्रीवेद विना २३ प्रकृति बाधाती है.

अप्रमत और अपुर्व करणमें-शोक अरति विना २१ प्रकृति बंधाती है.

सूक्ष्म सम्पराय में-पुरुषवेद और संज्वलके चौक विना १६ प्रकृति बन्धाती है.

और सूक्ष्म सम्परायके अन्त में १२ ही का क्षय होनेसे आगे बन्ध नहीं होता है.

## ५९ उन्नीसवा—अघातिक कर्मबंध द्वार.

अघातिक कर्म ४ हैं. १ वेदनीय, २ आयूष्य, ३ नाम और ४ गौत्र, इनमेंसे.

मिथ्यात्व गुणस्थान से अप्रमत्त गुणस्थानतक बीच का मि-  
श्र गुणस्थान छोड़ कर बाकीके ६गुणस्थानोंमें चारोंही कर्म बन्धतेहैं।  
मिश्र, अपूर्व करण, से सूक्ष्म सम्परायतक आयुष्यविन ती-  
नों कर्म बन्धते है।

उपशान्त मोहसे सयोगी केवली गुणस्थान तक एक वंद-  
नीय कर्म बन्धता हैं।

आयोगी केवली गुणस्थान में बन्ध नहीं।

## ६०, बीसवा अघातिक कर्म ऽध दार.

अघाति प्रकृति ७५ होती है-२ वंदनीयकी, ४ आयुष्यकी,  
६७ नाम की, २ गौत्रकी, यों ७५ मिथ्यात्व गुणस्थान में आहार-  
क द्विक और जिन नाम विना ७२ का बन्ध होता है।

सास्वादन में ३ नरक त्रिक. ४ जाति चतुष्क. १ स्थावर. १  
सूक्ष्म. १ साधारण. १ अपर्याप्ता. १ आताप १ हृंड मंथान, १ छेव  
टा संघयण. इन १४ विना ५८ बान्धते हैं।

मिश्रमें-४ आयुष्यकी. २ तिर्यचर्दीक. ४ बीचके चार संघयण  
४ बीचके चार संस्थान. १ अशुभ विहायोगति. १ दौर्भाग्य. १ दुः-  
स्वर. १ अनादे और १ नीच गौत्र इन १९ विना बाकी की ३९  
का बन्ध होता है।

अविगति में-१ तीर्थकर नाम. और २ गनिका आयुष्य यह  
३ बन्धने से ४२ बन्धे।

देशाविगति और प्रमत्त के १ वज्र रूपम नाग्व संघयण. मनुष्य त्रि-  
क. और २ औदारिकद्विक. यह ६ बन्धनेसे ३६ का बन्ध होता है।

अप्रमत्तके-१ अन्ध. अशुभ. १ अयशः १ नीच गौत्र यह ३

विना ३२ प्रकृति बान्धते हैं.

अपूर्व करणसे सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानतक-१ यशकीर्ति, १ सत्ता-वेदनीय, और १ उंच गौत्र यह तीनों प्रकृति बन्धाती है.

उपशान्त मोहसे सयोगी केवलीतक-१ सातावेदनीय बन्धाती है अयोगी केवलीके बन्ध नहीं.

## ६१, इक्कीसवा पुण्य कर्म बंध द्वार

पुण्य कर्म ४ हैं:-वेदनीय, आयुष्य, ३ नाम, ४ और गौत्र. इनमेंसे.

मिथ्यात्व गुणस्थान से अप्रमत्त गुणस्थानतक बीचका मिश्र गुण स्थान छोडकर बाकी के ६ गुणस्थानों में-चारों ही कर्मों का बन्ध होता है.

मिश्र, अपूर्व करण, अनियती बादर और सूक्ष्म सम्पराय इन चार, गुणस्थानों में-आयुष्य विना तीन कर्मोंका बन्ध होता है.

उपशान्त मोह क्षीण मोह और सयोगी केवली में १ साता वेदनीय का बन्ध होता है.

अयोगी केवली के बन्ध नहीं.

## ६२, बाविसवा पुण्य कर्म प्राकृति बंध द्वार

पुण्य प्रकृति ४२ होती है. १ साता वेदनीय, ३ नरकविना तीनों गति का आयुष्य, ३ मनुष्यगति, १ मनुष्यानुपूर्वी, देवगति, १ देवानुपूर्वी, १ पचेन्द्रिय जाति, ५ शरीर ३ अंगोपांग, १ प्रथम संघयण, १ प्रथम संस्थान, ४ शुभवर्ण चतुष्क, १० त्रस दशका १ अगुरु लघू, १ पराघात, १ उन्वासा, १ आताप, १ उद्योत १ शुभ विहायगति, १ निर्माण, १ तीर्थन्कर नाम और उंच गौत्र.

- तिर्यच युगलिये होते हैं. इमलिये तिर्यचायु पुण्य प्रकृति में लिया है.

यह ४२ इनमें से.

मिथ्यात्व गुणस्थान में-आहारक द्विक और तीर्थकर नाम विना ३९ बन्धते हैं.

सास्वादनं गुणस्थानमें-आताप नाम विना ३८ प्रकृति बन्धते हैं. मिश्र गुणस्थानमें-तीनों आयुष्य उद्योत नाम विना ३४ बन्धते हैं. अविरतिमें-मनुष्यायू, देवायु, और तीर्थकरन नाम यह ३ बढने से ३७ बन्धते हैं.

देश विरति और प्रमत्त गुणस्थान में-३ मनुष्य त्रिक, औदारिक द्विक, और प्रथम संघयण इन ६ विना ३१ प्रकृति बन्धते हैं. अप्रमत्त गुणस्थानमें-आहारक द्विक बढने से ३२ प्रकृति बन्धते हैं.

अपूर्व करण गुणस्थानके ९ भाग-उसमेंसे पहिले ६ भागों में-देवायु विना ३२ बन्धे, और पीछले तीन भागों में-उंचा गौत्र. ३ सातावेदनीय, और ३ यशःकीर्ति नाम यह तीनों प्रकृति बन्धते हैं.

अनीययी वादर और सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानीके-उपरोक्त तीनों प्रकृति बन्धाती है.

उपशान्त मोहसे सयोगी केवल तक-१ साता वेदनीय बन्धते हैं.

अयोगी केवली गुणस्थान में बन्ध नहीं.

## ६३, तैवीसवा पाप कर्म बंध द्वार

आठोंही पाप कर्म हैं:-उसमेंसे.

मिथ्यात्व और से स्वादन गुणस्थान आठही कर्म बन्धते हैं.

मिश्रसे प्रमत्त गुणस्थानतक आयु और गौत्र विना ६ कर्म बन्धते हैं.

अप्रमत्तसे अनिययी वादरतक वेदनीय विना ५ कर्म बंधे.

सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान में मोहनीय विना ४ कर्म बन्धे.



उपर के गुणस्थानों में पाप कर्म का बन्ध नहीं.

## ६४, चौबीसवा पाप कर्म प्रकृति बंध द्वार

पाप कर्मकी प्रकृति ८२ होती है. ५ ज्ञानावरणीय की. ९ दर्शनावरणीयकी. १ असातावेदनीय, १६ चार चौकड़ी की कषाय, ६ हांस्या दि, ३ वेद, १ मिथ्या मोह, १ नरक का आयुष्य. २ नरक द्विक २ तिर्यच द्विक ४ जाति चतुष्क, ४ वर्ण चतुष्क, ५ प्रथम संघयण विना ५ संघयण, ५ प्रथम संठाण विना ५ संस्थान, १० स्थावर दशका, १ अशुभ विहायगति, १ उपघात नाम १ नीच गौत्र और ५ अन्तराय इन ८२ मेंसे.

मिथ्यात्व गुणस्थान में-८२ ही प्रकृतिका बन्ध है.

सास्वादन गुणस्थान में-३ नरक त्रिक, ४ जाति चतुष्क, ४ स्थावर चतुष्क, १ छेवटा संघयण १ हूँडक संस्थान. २ मिथ्यात्व मोह और १ नपुंसक वेद, इन २५ विना ६७ प्रकृति बन्धते हैं.

मिश्र और अविरति गुणस्थान में- ४ अनन्तान बन्धि चौक, ४ संघयण, ४ संस्थान, २ तिर्यच द्विक, ३ थीणद्वी त्रिक, १ दौर्भाग्य, १ दुःस्वर, १ अनादेय, १ अशुभ विहायगति, १ स्त्रीवेद और १ नीच गौत्र. इन २३ विना ४४ बन्धे.

देशविरति गुणस्थानमें-अप्रत्याख्यानी चौकड़ी विना ४० बन्धते हैं, प्रमत गुणस्थान में-प्रत्याख्यानी चौक विना ३६ प्रकृति बन्धाती है

अप्रमत गुणस्थानमें- शोक, १ अरति, १ अस्थिर, १ अशुभ १ अयशःऔर असाता वेदनीय इन ६प्रकृति विना ३० प्रकृति बन्धती है.

अपूर्व करण गुणस्थान के ९ भागोंमें से-पहिले के दोनों

भागोंमें तो उपरोक्त ३० काही बन्ध होता है. तीसरे से लंगा छे भागतक दो निद्रा विना २८ का बन्ध होता है. और अन्तिम तीनों भागोंमें-४वर्ण चतुष्क और पराघात नाम, इन ५ प्रकृति विना २३ का बन्ध होता है.

अनियटी वादरके ५ भागोंमेंसे पहिले भाग में-१ हांस्य, १ रति, १ भय, और २ मत्सर, इन ५ विना १९ का बन्ध, दुसरे भाग में पुरुष वेद विना १८ का बन्ध, तीसरे में संज्वल के क्रोध विना १७ का बन्ध, चौथे में-संज्वलके मान विना १६ का बन्ध. पांचवे में-संज्वलकी माया विना १५ का बन्ध.

सूक्ष्म सम्पराय में-५ ज्ञानावरणीय, ४ दर्शनावरणीय, और ५ अन्तराय इन १४ प्रकृति का बन्ध होता है.

उपशान्त मोहसे अयोगी केवली गुणस्थानतक पाप प्रकृतिका बन्ध नहीं होता है.

## ६५, पञ्चसिवा-परावर्तमान कर्मबन्ध द्वार

दुसरे के बन्धको और उदय को रोककर अपनाही प्रभाव दर्शावे ऐसे परावर्तमान कर्म ५ हैं:—१. दर्शनावरणीय, १. वेदनीय, १. मोहनीय, १. आयु, १. नाम और १. गौत्र.

मिथ्यात्वसे अप्रमत्त गुणस्थान तक छेही कर्मोंका बन्ध.

अपूर्व करण में—दर्शनावरणीय और आयुष्य विना कर्मों ४ का बन्ध होता है.

अनीयटी वादर में—वेदनी, नाम और गौत्र इन ३ कर्मोंका बन्ध होता है.

परावर्तमान अपरावर्तमान कर्म प्रकृति के सुखासेके लिये देखीये अर्थ काण्डका पृष्ठ २०९ वा.

सूक्ष्म संपरायसे सयोगी केवलीतक-एक वेदनीयकाही बन्ध होता है।  
अयोगी केवली गुणस्थान में परावर्त मान का बन्ध नहीं।

## ६६ छबीसवा परावर्तमान कर्म प्रकृति द्वार

परावर्तमान कर्मोंकी प्रकृति ९१ है:- १ निद्रा, २ वेदनी, ३ वेद, १ हांस्य, १ रति, १ अरति, १ शोक, १६ चारों चौकड़ी की कषाय, ४ आयुष्य, ४ गति, ५ जाति, ३ शरीर, ३ अंगोपांग, ६ संघयण, ६ संस्थान, ४ अनुपूर्वी, २ विहायोगति, १० त्रस दशका १० स्थावर दशका, १३ उद्योत, १ आताप, यों सब ९१।

मिथ्यात्व गुणस्थान में-आहारक द्विक विना ८९ का बन्ध।  
सास्वादन गुणस्थान में-३ नरक त्रिक, ४ जाति चतुष्क, १ स्थावर १ सूक्ष्म, १ अपर्याप्ता, १ साधारण, १ हुंड संस्थान, १ छेवटा संघयण, १ आताप, और १ नष्टसक वेद इन १९ विना ७४ प्रकृति बन्ध।

मिश्र गुणस्थानमें-३ थीणद्वित्रिक, ४ अनन्तान बन्धि चौक, १ स्त्रीवेद २ तिर्यचाद्विक, ४ मध्य के चार संघयण, ४ मध्य के चार संस्थान, १ अशुभ विहायोगति, १ दौर्भाग्य, १ दूस्वर, १ अनादेय, ४ चारों आयु, १ नीच गौत्र, इन २७ विना ४७ का बन्ध।  
अविरति गुणस्थान में-१ मनुष्यायु, १ देवायु, दोनों बढने से ४९ प्रकृति का बन्ध।

देश विरति गुणस्थान में-४ अप्रत्याख्यानी चौक, १ प्रथम संघयण, ३ मनुष्यात्रिक, २ औदारिक द्विक, इन १० विना-३९ प्रकृतिका बन्ध पावे।

प्रमत्त गुणस्थान में-प्रत्याख्यानी वरणिय चौक विना ३५ का बंध

अप्रमत्त गुणस्थान में-१ शोक. १ अराति. १ अस्थिर, १ अशुभ. १ अयश. और १ असाता वेदनीय इन ६ विना २९का बन्ध अपूर्व करण में-१ निद्रा और १ प्रचला विना २७का बन्ध. अनियति वादर में-संज्वलका चौक, १ सातावेदनीय. १ यश कीर्ति. और उंच गौत्र इन ८ का बन्ध

सूक्ष्म सम्पराय में-संज्वल के चौक विना ३ का बन्ध.

उपशान्त मोहसे सयोगी केवलीतक-१ सातावेदनीयका बन्ध.

अयोगी केवली के परावर्तमान प्रकृति का बन्ध नहीं.

**६७ सताविसवा अपरावर्तमान कर्मबन्धद्वार**

अपरावर्तमान ५ कर्म-१ ज्ञानावरणीय. २ दर्शनावरणी. ३ मोहनीय ४ नाम और अंतराय.

मिथ्यात्व गुणस्थान से अपूर्व करण गुणस्थान तक-पांचों कर्मोंका बन्ध.

अनियट वादर और सूक्ष्म सम्पराय में-मोहनीय और नाम विना ३ कर्म का बन्ध.

उपशान्त मोहसे अयोगी केवली गुणस्थानतक-अपरावर्तमान कर्मोंका बन्ध नहीं होता है.

**अठाविसवा अपरावर्तमान कर्म प्रकृति बन्धद्वार**

अपरावर्तमान प्रकृति २९ है:-१ ज्ञानावरणीय, २ दर्शनावरणीय, १ मिथ्यात्व मोहनीय, १ भय, १ मत्सर, ४ वर्ण चतुष्क, १ तेजस. १ कर्मण, १ अगुरु लघु. १ निर्माण, १ उपघात. १ पराघात, १ श्वासोश्वासः १ तीर्थकर नाम, और २ अन्तर्गय.

मिथ्यात्व गुणस्थानमें—जिन नाम विना २८ का बन्ध.

सास्वादन और मिश्रमें मिथ्यात्व मोहनिय विना-२७का बंध  
अविरतिसे अपूर्व करण तक-जिन नाम सहित २८ का बन्ध.

अनियट्टि बादर और सूक्ष्म सम्परायमें-५ ज्ञानावरणीय, ४दर्श  
नावरणीय, और ५ अन्तराय. यों १४ प्रकृतिका बन्ध.

उपशान्त मोह से अयोगी केवलीतक अपरावतमानका बन्ध नहीं.  
६१, **उनतीसवा-भूयस्कार कर्म बन्ध द्वार**

उपशान्त मोह गुणस्थान से पडता हुवा-एक वेदनीय का बन्ध क  
र सूक्ष्म सम्पराय में छे कर्मोंका बन्ध करे सो प्रथम भूयस्कार बन्ध.

सूक्ष्म सम्पराय में छे कर्मोंका बन्ध कर, अनियट्टि बादरमें सात  
कर्मोंका बन्ध करेसो दुसरा भूयस्कार.

अप्रमत्त गुणस्थानमें सात कर्मोंका बन्ध कर प्रमत्तादि गुण  
स्थान में आठ कर्मों का बन्ध करे सो तीसरा भूयस्कार.

## ७०, तीसवा-भूयस्कार कर्म प्रकृति बन्ध द्वार.

सामान्यपने-कर्म प्रकृति के बन्ध स्थान २९ होते हैं.-१ का  
१७ का, १८ का, १९ का, २० का, २१ का, २२ का, २६ का,  
५३ का, ५४ का, ५५ का, ५६ का ५७ का, ५८ का, ५९ का,  
६० का, ६१ का, ६३ का, ६४ का, ६५ का, ६६ का, ६७ का, ६८  
का, ६९ का, ७० का, ७१ का, ७२ का, ७३ का और ७४ का, इन  
२९ स्थानों में से भूयस्कार बन्ध के २८ स्थानक हैं.

॥३॥ भूयस्कारादि चारों बन्धकी कर्म प्रकृतिके खुलासेके लिये देसीये अर्थ कांडका  
पृष्ठ २०८वा.

१ उपशान्त मोह में-१ वेदनीका बन्ध कर, सूक्ष्म सम्परायमें-  
५ ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीकी ४, अन्तराय की ५, ऊंच गौत्र १, य  
शकीर्ती १, यों १७ प्रकृतिका साता वेदनीय के साथ प्रथम समय में  
बन्ध करती वक्त प्रथम भूयस्कार बन्ध.

वहां से पडता अनियट वादर गुणस्थानमें-संज्वल के लोभ  
युक्त १८ प्रकृति का बन्ध करे सो दुसरा भूयस्कार बन्ध. ३ इसी में  
संज्वलकी मायाके साथ १९ का बन्ध करेसो तीसरा भूयस्कार बन्ध.  
४ इसी में संज्वलके मान के साथ २० का बन्ध करेसो चौथा भू-  
यस्कार बन्ध, इसीमें संज्वलके क्रोधके साथ २१ का बन्ध करे सो  
पांचवा भूयस्कार बन्ध, ६ इसीमें पुरुष वेदके साथ २२ का बन्ध  
करे सो छठा भूयस्कार बन्ध, ७ अपूर्व करण के सातवे भाग में हां  
स्य, रति, भय, और मत्सर, इन चारों का बन्ध करे सो सातवा भू  
यस्कार बन्ध. ८ अपूर्व करण के छठे भाग में-देवाप्रायोग २८ प्र-  
कृति का बन्ध करे सो ५३ का आठवा भूयस्कार बन्ध. ९ तीर्थकर  
नामका बन्ध करे सो ५४ का नववा भूयस्कार बन्ध, १० इसमें से-  
आहारक द्विक बन्ध करे सो ऊपरोक्त ५३ दोनों मिलाने से ५५ का  
दशवा भूयस्कार बन्ध, ११ इसमें जिननाम का बन्ध करे सो ५६  
का इग्यारवा भूयस्कार बन्ध, १२ अपूर्व करण के प्रथम भागमें  
तीर्थकर नाम घटाकर निद्रा और प्रचला का बन्ध करे सो ५७ का  
बारवा भूयस्कार बन्ध, १३ इस में तीर्थकर नाम अधिक करनेसे ५८  
का तेरवा भूयस्कार बन्ध. १४ अप्रमत्त गुणस्थान में-देवायु सहित  
५९ का बन्ध करे सो चउदवा भूयस्कार बन्ध, १५ देशविरति गुण-

÷ देव प्रायोग्य बन्ध की प्रकृति २८ है. पण्णु यग कीर्ती नाम ऊपर कह  
देने के सबब से यहां.

स्थान में देवा प्रायोगकी २८ प्रकृति का बन्ध करते-६ ज्ञानावरणीयकी, ६ दर्शनावरणीयकी, १ वेदनीयकी १७ मोहनीयकी, २८ नामकी, १ गौत्रकी, और ५ अन्तराय की यों ६० प्रकृतिका बन्ध करे सो सत्तरवा भूयस्कार बन्ध. १६ तीर्थकर नाम सहित ६१ का बन्ध करे सो सोलवा भूयस्कार बन्ध. १७ अविरति गुणस्थान में आयु अवन्ध वक्त में देव प्रायोग्य नामकी २८ प्रकृतिका बन्ध करते-६ ज्ञानावरणीयकी, ६ दर्शनावरणीयकी, १ वेदनीयकी, १७ मोहनीयकी, २८ नामकी १ गौत्र की, और ५ अंतरायकी यों २३ का बन्ध करे सो सत्तरवा भूयस्कार बन्ध, १८ देवायु सहित ६४ का बन्ध करे सो अठारवा भूयस्कार बन्ध. १९ तीर्थकर नाम सहित ६५ का बन्ध करे सो उन्नीसवा भूयस्कार बन्ध. २० अविरति में-देवता होवे उनके मनुष्य प्रायोग्य ३० प्रकृति का बन्ध करते ६६ का बन्ध होवे सो बीसवा भूयस्कार बन्ध. २१ मिथ्यात्व गुणस्थान में-६ ज्ञानावरणीय, १ दर्शनावरणीय, १ वेदनीय, २२ मोहनीय, १ आयुष्य, २३ नामकी १ गौत्रकी, और ५ अन्तराय की यों ६७ प्रकृति का बन्ध करे सो इक्कीसवा भूयस्कार बन्ध. २२ इसमें नामकी २५ प्रकृति करने से और आयुष्य की १ कमी करने से ६८ का बन्ध होवे सो तेबीसवा भूयस्कार बन्ध, २४ येही नाम कर्म की २६ प्रकृति के साथ ७० का बन्ध होवे सो चौबीसवा भूयस्कार बन्ध, २५ येही आयुष्य रहित और नाम की २८ प्रकृति साथ ७१ का बन्ध करे सो पच्चीसवा भूयस्कार बन्ध. २६ येही २९ नामकी प्रकृति साथ बन्ध करे सो ७२ का छब्बीसवा भूयस्कार बन्ध, २७ येही आयुष्य सहित १३ का बन्ध करे सो सत्तावीसवा भूयस्कार बन्ध और २८ येही नामकी ३० प्रकृति का बन्ध करते-५ ज्ञानावरणीय, १ दर्शनावरणीय, १ वेदनीय, २२ मो

हनीयः १ आयुष्यः ३० नामकी १ गौत्रकी और १ अंतरायकी यों ७४ का बंध करे सो अठावीसवा भूयस्कार बंध.+

## ७१, इकतीसवा अल्पतर कर्म बंध द्वार

प्रथमके गुणस्थानों में आयु कर्म का बन्ध करते सात कर्मों का बन्ध करे सो प्रथम अल्पतर बन्ध.

सात कर्मोंका बन्ध कर दशवे गुणस्थानके प्रथम समय मोहनीय बिना छे कर्मोंका बन्ध करे सो दुसरा अल्पतर बन्ध.

और छे कर्मोंका बन्ध किये बाद आगे उपशान्त मोह क्षीण मोहादि गुणस्थान में एक वेदनीय का बन्ध करे सो तीसरा अल्पतर बन्ध.

## ७२ वत्तीसवा-अल्पतर कर्म प्रकृति बन्धद्वार

जो उपर भूयस्कार बन्ध के २८ स्थान कहे हैं, उन्हींको उलट पढ़ने से अर्थात्-उहेल २८ वा. फिर २७ वा. फिर २६वा. यों-आठईस उलटाकर पढ़ना सो अल्पतर बन्ध के २८ स्थान जानना.

## ७३, तैंतीसवा अवस्थित कर्म बंध द्वार.

प्रथम गुणस्थानोंमें आठों कर्मोंका बन्ध किये बाद आगेके गुणस्थान में सात कर्मोंका बन्ध करे उन वक्त प्रथम समयमें तो अल्पतर बन्ध जानना. और फिर वो बन्ध जितने कालतक वैमही स्वरूप में कायम बना रहे उसे अवस्थित बन्ध कहते हैं.

+ यह २८ भूयस्कार बन्ध जान करे उनके प्रकाशान्त में अन्ध भेद होते हैं सो ब्रह्मदे ने कीजिये.



## ७४, चौतीसवा-अवस्थितकर्म प्रकृतिबंधद्वार

बन्ध के २९ ही स्थानोंमें जिन २ प्रकृतियों के बन्ध करने का स्वरूप भूयस्कार बन्ध में कहा है. वो प्रकृतियों बन्ध किये बाद उतनीही उसही स्वरूपमें कायम रहे. उसे अवस्थिति बन्ध समझना.

## ७५, पैंतीसवा अव्यक्त कर्म बंध द्वार

अव्यक्त बन्ध-सर्व कर्मों से अव्यक्त-निर्मुक्त हो फिर बन्धक रे उसे कहते हैं, सो किसी भी गुणस्थान में नहीं पाता है, क्योंकि सर्व कर्मोंसे निर्मुक्त अयोगी केवली गुणस्थान के बाद होते हैं, और सीधा मोक्ष में चले जाते हैं. परन्तु पडवाइ नहींज होते हैं. इसलिये यह बन्ध नहीं पाता है. एसाही अव्यक्त कर्म प्रकृति के सम्बन्ध में भी जानना.

## ७६, छत्तीसवा-समुच्चय कर्मप्रकृतिबन्धद्वार

१ भित्थात्व गुणस्थान में-ज्ञानावरणीय की ५ दर्शनावरणीयकी ९, वेदनीयकी २, मोहनीयकी २६, आयुष्यकी ४, नामकी ६४, गौत्र की २, और अन्तराय की ५, यों सब ११७ प्रकृति का बन्ध होता है.

२ सास्वादन गुणस्थान में-ज्ञानावरणीयकी ५, दर्शनावरणीयकी ९, वेदनीयकी २, मोहनीयकी २४, आयुष्यकी ३, नामकी ५१, गौत्रकी २, और अंतरायकी ५, योंसब १०१ प्रकृति बन्धाती है.

३ मिश्र गुणस्थान में-ज्ञानावरणीयकी ५, दर्शनावरणीयकी ६, वेदनीयकी २, मोहनीय की १९, नामकी ३६

गौत्रकी १, और अंतराय की ५, यों सब ७४ प्रकृति बन्धाती है.

४ अविरति सन्यग दृष्टि गुणस्थानमें-ज्ञानावरणीयकी ५, दर्शनावरणीय की ६, वेदनीयकी २, मोहनीयकी १९, आयुष्यकी, २, नामकी ३७. गौत्र की १. और अंतरायकी ५, यों सब ७७ प्रकृति बन्धाती है.

५ देशविरति गुणस्थान में-ज्ञानावरणीयकी ५, दर्शनावरणीयकी ६ वेदनीयकी २, मोहनीयकी १९, आयुष्य की १, नामकी ३२, गौत्रकी १. और अंतरायकी ५, यों सब ६७ प्रकृति बन्धाती है.

६ प्रमत संयति गुणस्थान में-ज्ञानावरणीय की ५. दर्शनावरणीय की ६. वेदनीय की २. मोहनीयकी १९. आयुष्य की १. नाम की ३२, गौत्र की १ और अंतरायकी ५. यों सब ६३ प्रकृति बन्धाती हैं.

७ अप्रमत संयति गुणस्थानमें-ज्ञानावरणीय की ५. दर्शनावरणीय की ६ वेदनीयकी १. मोहनीय ९.. आयुष्य की १. नाम की ३१, गौत्रकी १, और अन्तरायकी ५ यों सब ५९ प्रकृति बन्धाती है.

८ अपूर्व करण गुणस्थान के सात भागों में मे-याहिला भाग में ज्ञानावरणीय की ५ दर्शनावरणीय की ६, वेदनीयकी १. मोहनीयकी ९. नामकी ३१. गौत्रकी १. और अंतरायकी ५ यों सब ५८ प्रकृति बन्धाती हैं. और दूसरे भाग से लगाकर छेदु भाग तक मोहनीयकी २ प्रकृति कम होनेसे ५६ प्रकृति बन्धाती हैं. और ना तवे भाग में नामकी ३० बिना २६ बन्धाती है.

९ अनियर्त्ता चादर गुणस्थान के पांच भागों में मे-याहिले भाग में ज्ञानावरणीय की ५. दर्शनावरणीय की ६. वेदनीयकी १. मोहनीयकी ५. नामकी १. गौत्रकी १. और अंतरायकी ५, यों स-

व २२ प्रकृति बन्धाती है, आगे प्रत्येक भाग में एकेक मोहनीय की प्रकृति कमी होनेसे-दुसरे भागमें २१ तीसरेमें २०, चौथे में १९ और पांचवे में-१८ प्रकृति बंधाती है।

१० सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान में-ज्ञानावरणीयकी ५, दर्शनावरणीय की ४, वेदनीय की १ नामकी, १, गौत्रकी १, और अन्तराय की ५ यों १७ प्रकृति बन्धाती है।

११-१३ उपशान्त मोह क्षीण मोह और सयोगी केवली के एक सातावेदनीय का बन्ध होता है।

१४ अयोगी केवली के किसीकाभी बन्ध नहीं होता है।

### ७७, सैंतीसवा-कर्मबन्ध व्युच्छेद द्वार

मिथ्यात्व गुणस्थानसे अप्रमत्त गुणस्थान तक मिश्र गुणस्थान छोड़ बाकी ६ गुणस्थानोंमें कर्म बन्धका व्युच्छेद नहीं आठों ही कर्म बन्धाते हैं।

मिश्र. अपुर्व करण. और अनियंती बादर गुणस्थानों में आयु बन्ध व्युच्छेद.

सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान में आयुव्य और मोहनीय कर्म बंध व्युच्छेद.

उपशान्त मोह, क्षीण मोह और सयोगी केवली इन ३ गुणस्थानों में एक वेदनीय कर्म विना सातों कर्म बन्धन का व्युच्छेद होता है।

और अयोगी केवली गुणस्थानमें सर्व कर्म बंधका व्युच्छेद रहे.

### ७८, अठतीसवा कर्मप्रकृतिबंध व्युच्छेद द्वार

सब बंधकी १२० प्रकृति है. उसमेंसे:-

१ मिथ्यात्व गुणस्थानमें-नाम कर्मकी ३ प्रकृति का बंध व्युच्छेद होता है।

२ सास्वादन गुणस्थानमें-मोहनीय की २, आयुष्यकी १, और नामकी १० यों सब १२ प्रकृतिका बंध व्युच्छेद होता है।

३ मिश्र गुणस्थान में-दर्शनावरणीयकी ३, मोहनीयकी ७ आयुष्यकी ४, नामकी ३१ और गौत्रकी १ यों सब ४६ का बन्ध व्युच्छेद होता है।

४ अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें-दर्शनावरणीयकी ३, मोहनीयकी ७, आयुष्य की २, नामकी ३० और गौत्रकी १ यों सब ४३ का बंध व्युच्छेद होता है।

५ देशविरति गुणस्थान में-दर्शनावरणीय की ३, मोहनीयकी ११, आयुष्य की ३ नाम की ३९, और गौत्र की १, यों सब ५६ का बंध व्युच्छेद होता है।

६ प्रमत्त गुणस्थान में दर्शनावरणीयकी ३ मोहनीयकी १०, आयुष्यकी ३, नामकी ३० और गौत्रकी १ यों सब ५७ का बन्ध व्युच्छेद होता है।

७ अप्रमत्त गुणस्थान में-दर्शनावरणीय ३, वेदनीय १, मोहनीय-१७, आयुष्य की ३, नामकी ३० और गौत्रकी १ यों सब ५९ का बंध व्युच्छेद होता है।

८ अपूर्व करण गुणस्थान के मान भागोंमें ने पहले भागमें दर्शनावरणीय की ३, वेदनीयकी १, मोहनीयकी १७ आयुष्यकी ४, नामकी ३० और गौत्र की १ यों सब ६० का बन्ध व्युच्छेद होता है। दूसरे भाग ने छठे भाग तक-दर्शनावरणीयकी ५ वेदनीयकी १, मोहनीय की १५, आयुष्यकी ४, नामकी ३० और गौत्र की

१, यों सब ६० का बन्ध व्युच्छेद होता है. और सातवे भाग में नाम की ३० प्रकृति का बंध घटने से ९० का बन्ध व्युच्छेद होता है.

१ अनियट्टि बादर गुणस्थानके पांच भागों में से पहिले भाग में—दर्शनावरणीय की ५ वेदनीयकी १, मोहनीयकी २, आयुष्य की ४, नामकी ६०, और गौत्रकी १ यों सब ९८ प्रकृतिका बंध व्युच्छेद होता है, आगे चार भागों में मोहनीय की एकेक बंधाने से—दूसरे भाग में ९९, तीसरे में १००, चौथे में १०१ और पांचवें में १०२ प्रकृतिका बंध व्युच्छेद होता है.

१० सूक्ष्म सम्पराय में—दर्शनावरणीयकी ५, वेदनीयकी १, मोहनीयकी २, आयुष्यकी ४, नामकी ६० और गौत्रकी १, यों सब १०३ का बंध व्युच्छेद होता है.

११-१३ उपशान्त मोह, क्षीण मोह, और सयोगी केवली, इन ३, गुणस्थानों में ज्ञानावरणीय की ५, दर्शनावरणीय की ५, वेदनीय की १, मोहनीयकी २, आयुष्य की ४, नामकी ६० और गौत्रकी २ यों सब ११९ का बंध व्युच्छेद होता है, और अयोगी केवली गुणस्थान में १२० प्रकृति काही बन्ध व्युच्छेद होता है.

इति कर्म बंध नामक द्वितीय प्रकरण  
समाप्तम्.

## तृतीय प्रकरण-कर्मोदय द्वार.

कर्मोदयके-३४ द्वारोंके नाम.

१ समुचय कर्मोदयद्वार, २ ज्ञानावरणीयोदयद्वार, ३ दर्शनावरणीयोदयद्वार, ४ वेदनीयोदयद्वार, ५ मोहनीयोदयद्वार, ६ आयु

दयद्वार, ७ नमोदयद्वार, ८ गौत्रोदयद्वार, ९ अन्तरायोदयद्वार, १० ध्रुवकर्मोदयद्वार, ११ ध्रुवकर्मप्रकृतियोदयद्वार, १२ अध्रुवकर्मोदयद्वार, १३ अध्रुवकर्म प्रकृतियोदयद्वार, १४ पुन्यकर्मोदयद्वार, १५ पुण्य कर्म प्रकृतियोदयद्वार, १६ पाप कर्मोदयद्वार, १७ पापकर्म प्रकृतियोदयद्वार, १८ क्षेत्र विपाक कर्मोदयद्वार, १९ क्षेत्रविपाककर्म-प्रकृतियोदयद्वार, २० भव विपाककर्मोदयद्वार, २१ भवविपाक कर्म प्रकृतियोदयद्वार, २२ जीवविपाक कर्मोदयद्वार, २३ जीव विपाककर्म प्रकृतियोदयद्वार, २४ पुद्गल विपाक कर्मोदयद्वार, २५ पुद्गल विपाक कर्म प्रकृतियोदयद्वार, २६ सर्वघातिक कर्मोदयद्वार, २७ सर्वघातिक कर्म प्रकृतियोदयद्वार, २८ देशघातिक कर्मोदयद्वार, २९ देशघातिक कर्म प्रकृतियोदयद्वार, ३० अघातिक कर्मोदयद्वार, ३१ अघातिक कर्म प्रकृतियोदयद्वार, ३२ समुच्चय कर्म प्रकृतियोदयद्वार, ३३ कर्मोदय व्युच्छेदद्वार और ३४ कर्मप्रकृतियोदय व्युच्छेदद्वार.

### ७९, पृथक्-समुच्चय कर्मोदय द्वार.=

भिव्यात्व गुणस्थान से लगाकर सूक्ष्म सम्पन्न गुणस्थान तक आगेही कर्मोंका उदय पाता है.

उपशान्त मोह और क्षीण मोह गुणस्थानमें मोहनीय विना ७ कर्मोंका उदय पाता है. और सयोगी केवली, अयोगी केवली इन दोनों गुणस्थानोंमें-१ वेदनीय, २ आयुष्य, ३ नाम, और ४ गौत्र इन चार कर्मोंका उदय पाता है.

### ८०, दुसरा-ज्ञानावरणीयोदय द्वार.

क्योंकि धीमती चित्तका उदय नष्ट प्रमादोंके होना है सो यही नहीं है.

उदय द्वारोंके कुलोंके लिये अर्ध बाँटका २१६ का पृष्ठ देखिये

मिथ्यात्व गुणस्थान से क्षीणमोह गुणस्थान तक ज्ञानावरणीय की पांचों प्रकृति का उदय पाता है। उपर ज्ञानावरणीय का उदय नहीं।

## ८१, तीसरा दर्शनावरणीयोदय द्वार.

मिथ्यात्व गुणस्थानसे प्रमत्त गुणस्थान तक दर्शनावरणीकी ९ ही प्रकृति का उदय पावे.

अप्रमत्त से क्षीण मोह के पहिले भाग तक थीणद्धी त्रिक विना ६ प्रकृतिका उदय पावे.

क्षीण मोह के अन्तिम भाग में निद्रा द्विक विना ४ प्रकृति का उदय पावे.

उपरके गुणस्थानों में-दर्शनावरणीय का उदय नहीं पाता है.

## ८२, चौथा वेदनीयोदय द्वार.

अनेक जीवों की अपेक्षा कर प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान से अन्तिम अयोगी केवली गुणस्थान तक वेदनीय की दोनों प्रकृतिका उदय पाता है.+

## ८३, पांचवा मोहनीय उदय द्वार

मिथ्यात्व गुणस्थान में-मिश्र मोह और सम्यक्त्व मोह × विना २६ प्रकृतिका उदय.

सास्वादन गुणस्थान में-मिथ्यात्व मोह विना २५ प्रकृति का उदय पाता है.

+ क्योंकि एक जीव एक समय में दोनो वेदनीय मेंकी एकही वेदनी वेद शक्ता है.

× क्योंकि-मिश्रमोहनीका उदय मिश्रगुणस्थान में पाता है, और सम्यक्त्व मोहनीय का उदय अविरति में पाता है.

मिश्र और अविरति गुणस्थान में-४ अनन्तान वन्धि चौक, १ मिथ्यात्व मोह और १ सम्यक्त्व मोह, इन ६ प्रकृति विना १९ का उदय.

देशविरति गुणस्थान में-अप्रत्याख्यानावरणीय चौक विना १५ का उदय.

प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान में-४ प्रत्याख्यानावरणीय चौक विना ११ का उदय.

अपूर्व करण गुणस्थान में-❀ सम्यक्त्व मोहविना १० प्रकृतिका उदय.

अनियष्टी वादर गुणस्थान में-हाँस्य पटक विना ४ प्रकृति का उदय.

सूक्ष्म संपराय गुणस्थानमें-१ संज्वलके लोभका उदय.

ऊपरके गुणस्थानोंमें-मोहनीय कर्मका उदय नहीं पाता है.

## ८४, छठा आयुष्य कर्मोदय द्वार

मिथ्यात्वसे अविरति गुणस्थानतक-चारोंगतिके आयुष्य का उदय. देशविरति गुणस्थानमें-मनुष्य और तिर्यच इन दोनों आयुष्य का उदय.

प्रमत्तसे अयोगी केवली गुणस्थानतक-१ मनुष्यायु का उदय.

## ८५, सातवा-नामकर्मोदय द्वार.

नाम कर्मकी ९३ प्रकृतिमें से वन्धि की माफिक उदयकर्मा ६७ प्रकृति का उदय होता है.

\* अयोपशम सम्यक्त्व पुद्गलिक होनेसे सबद से सातवे गुणस्थान के आगे न हो पाती है इसलिये सम्यक्त्व मोहनी नहीं है



मिथ्यात्वगुणस्थानमें<sup>१</sup>-आहारकद्विक, और १ तीर्थकर नाम विना ६४ प्रकृतिका उदय पाता है.

सास्वादन गुणस्थानमें-३ सूक्ष्मत्रिक, १ आताप नाम, १ नस्कानुपूर्वी विना ५९ प्रकृति का उदय.

श्रिमगुणस्थानमें-४ जाति चतुष्क, १ स्थावरनाम, ३ अनुपूर्वी विना ५१ का उदय.

अविरति सम्यग्दृष्टिमें-४ चारों गतिकी अनुपूर्वी अधिक होनेसे ५५ प्रकृति का उदय.

देशविरतिमें-१ भूतुष्यानुपूर्वी, १ तिर्यचानुपूर्वी, २ वैर्किय द्विक, २ देवद्विक, २ नरकद्विक, १ दौर्भाग्य, १ अनादेय, १ अय-

क्योकि १ आहारक द्विक उदय तो चउदय पूर्व धारी मुनिके होता है और तीर्थकर नामोदय चौथे गुणस्थान से चौदवे तक होता है.

२ सूक्ष्मादि चारोंका उदय तो निश्चय से मिथ्यात्वीके होता है, और नरकानुपूर्वीका उदय वक्त गति कर नरक में जाने वालेके पाता है और औपशमिक सम्यक्त्वका वमन करते नरक में नहीं जाता है. फक्त मिथ्यात्वके उदय में ही जाता है. सास्वादन वती मनुष्य और तिर्यच जिस वक्त वक्रगति कर नरक में जाता है उसवक्त मनुष्य होवेतो मनुष्यका और तिर्यच होवेतो तिर्यचायु का उदय वर्तता है. फिर सम्यक्त्वका वमन करे बाद नरकानुपूर्वी का उदय होता है. और फिर नरकायुका उदय होता. इसलिये मिथ्यात्वी दोहरा ही नरक में जाता है. फिर नरकमें पर्याप्ता हुये बाद उपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति होती है. फिर उभे वमन करे तब सास्वादन गुणस्थान पाता है. और उभी वक्त नरकायु का उदय पाता है. क्षायिक सम्यक्त्व तो श्रेणिक राजा की तरह सम्यक्त्व सहित नरक में जाता है. और सास्वादन औपशमिक क्षयोपशमिक सम्यक्त्वका वमन कर नरक में जाता है. इसलिये उनका भी अनुदय है.

३ यहां आयु वन्य होनेसे अनुपूर्वीका उदय नहीं पाता है.

४ यहां आयु वन्य होनेसे चारों अनुपूर्वी का उदय पाता है.

५ श्रावक फक्त देवगतिमें ही जाते हैं. इसलिये यहां दोनों अनुपूर्वीका उदय नहीं है.

शः, इन ११ विना ४४ का उदय.

प्रमत्तमें-१ तीर्थचगति और २ उद्योत नाम, यह २ तो घटाना, और २ आहारक द्विक बढ़ाने से ४४ का उदय होता है.

अप्रमत्तके-आहारक द्विक विना ४२ प्रकृति का उदय.

अपूर्व करण से उपशान्त मोहतक-अन्तिम ३ संघयण विना ३९ प्रकृति का उदय.

क्षीण मोह और सयोगी केवली में-१ वृषभ नारच और २ नारच संघयण विना ३७ रही. और १ तीर्थकर नाम अधिक करने से ३८ का उदय पाता है.

और अयोगी केवली गुणस्थान में- ३ त्रसत्रिक, ३ शुभग-  
त्रिक, १ मनुष्यगति, १ पचेन्द्रिय की जाति. और कितनेक जीवों  
के तीर्थकर नाम इन ९ प्रकृतिका उदय रहता है.

## ८६, आठवा-गौत्रकर्मादय द्वार

मिथ्यात्व से देशविरति गुणस्थानतक दोनों गौत्रका उदय पाता है.

६ भव धारणी वैक्रिय शरीर न होनेसे वैक्रिय उदय वर्जा है.

७ देवता और नरक में यह गुणस्थान नहीं पाने में दोनों द्विक वर्जा है.

८ यहां पूर्व घर मुनि होते हैं. जिससे आहारक शरीर पाता है.

९ आहारक लब्धि फोड़ने वाले साधुओं उत्सुकता के वस्य से अवस्य प्रमादी हो  
ते हैं. इसलिये यहां आहारक का उदय नहीं लिया है. परन्तु प्रमत्त साधुओं आहार  
क समुद्र घात किये बाद अप्रमत्त गुणस्थान में जाते हैं. इसलिये किसी आचार्य ने यहां  
इसका उदय गिना है.

१० इन तीनों संघयण वाले श्रेणि पारंभ नहीं करते हैं.

११ इन दोनों संघयण वाला भपक श्रेणि नहीं करता है.

प्रमत्तसे अयोगी केवली गुणस्थानतक एक ऊंच गौत्र का ही उदय रहता है.

## ८७, नववा-अन्तरायकर्मोदय द्वार

मिथ्यात्व से क्षीण मोह गुणस्थानतक पांचों अन्तरायका उदय.

सयोगी केवली और अयोगी केवलीके गुणस्थान में अन्तराय कर्म का उदय नहीं.

## ८८, दशवा-ध्रुव कर्मोदय द्वार

ध्रुवोदयी ५ कर्म:-१ ज्ञानावरणीय २ दर्शनावरणीय, ३ मोहनायि, ४ नाम, और ५ अन्तराय.

मिथ्यात्व गुणस्थान में-पांचोंही कर्मोंका ध्रुवोदय पाता है. सास्वादनसे क्षीणमोहगुणस्थानतक मोहनीय कर्मविना चारों कर्मों का उदय पावे.

सयोगी केवली गुणस्थानमें एक नाम कर्म का ध्रुवोदय पावे. अयोगी केवली गुणस्थानमें ध्रुवोदयतो नहीं फक्त नाम कर्म पाता है.

## ८९, इग्यारवा ध्रुवकर्म प्रकृतियोदय द्वार

ध्रुवोदयी २७ प्रकृति:-ज्ञानावरणीयकी ५, दर्शनावरणीयक ४ (५ निद्रा विना) १ मिथ्यात्व मोहनीय, १ निर्माण, १ स्थिर, १ अस्थिर, १ शुभ, १ अशुभ, ४ वर्ण चतुष्क, १ अगुरुलघु, १ तेजस, १ कार्भण. (यह १२ नामकी) और अन्तरायकी ५, यों २७.

मिथ्यात्व गुणस्थान में २७ ही प्रकृतिका उदय पावे.

ध्रुव अध्रुवोदय द्वारोंके खोलों के लिये अर्थ कांडका २१४ वा पृष्ठ देखिये.

सास्वादन से क्षीण मोह गुणस्थानतक-मिथ्यात्व मोह विना २६ का उदय.

सयोगी केवली गुणस्थानमें नाम कर्मकी १२ प्रकृतिका उदय.

अयोगी केवलीके ध्रुवोदय नहीं. फक्त नामकी १२ प्रकृतिका उदय ही पाता है.

## १०, बारवा अध्रुव कर्मोदय द्वार.

अध्रुवोदयी ६ कर्म-१ दर्शनावरणीय, २ वेदनीय, ३ मोहनीय, ४ आयुष्य, ५ नाम और ६ गौत्र.

मिथ्यात्वसे सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानतक छेही कर्मोंका उदय पाता है. उपशान्तमोह और क्षीणमोहगुणस्थानमें मोहनीय विना पांचों कर्मों के उदय पाता है.

सयोगी केवली और अयोगी केवली गुणस्थान में दर्शनावरणीय विना चार कर्मोंका उदय.

## ११, तेरवा अध्रुव कर्मप्रकृतियोदय द्वार.

अध्रुवोदयी १५ प्रकृति-निद्रा ५, वेदनीय २, मोहनीय २७ (मिथ्यामोह विना) आयुष्य की ४ और नामकी ५५ (६७ में सं १२ ध्रुवोदयकी विन) यों सब ९५ प्रकृतिमेंसे.

मिथ्यात्व गुणस्थान में-२ मोहनीय. २ आहारक द्विक, १ तीर्थकर नाम इन ५ विना ९० का उदय.

सास्वादनमें गुणस्थानमें सूक्ष्म. अपर्याप्ता साधारण, आताप. नरकानुपूर्वी इन ५ विना ८५ का उदय.

मिश्र-गुणस्थानमें ४ अनन्तान बन्धि चाकै. ४ जाति चतुष्क.

मिथ्यात्वसे उपशान्त मोह गुणस्थानतक आठों कर्मोंका उदय पावे  
 क्षीणमोह गुणस्थानमें-मोहनीय विना सातों कर्मों का उदय पावे.  
 सयोगी. अयोगी केवली गुणस्थान में वेदनीय, आयु, नाम, गौत्र  
 इन ४ कर्मोंका उदय पावे.

## ९५, सतरवा पापकर्म प्रकृतियोदयद्वार

पाप कर्मों की ८२ प्रकृतियों में से,

मिथ्यात्व गुणस्थान में-८२ ही प्रकृति का उदय पाता है.

सास्वादन में-४ स्थावर चतुष्क, १ मिथ्यात्व मोहनीय इन  
 ५ विना ७७ का उदय पावे.

मिश्र गुणस्थान में-४ अनन्तान बन्धि चौक, ३ विकेन्द्रिय  
 त्रिक, १ नरकानुपूर्वी, १ तिर्यचानुपूर्वी और १ अपर्याप्ता नाम  
 इन १० विना ६७ प्रकृतिका उदय पावे.

अविरति गुणस्थान में-१ नरकानुपूर्वी, १ तिर्यचानुपूर्वी, इन  
 २ बढ़ने से ६९ का उदय पावे.

देशविरति गुणस्थान में-४ अप्रत्याख्यानावर्णीय चौक, ३  
 नरक त्रिक, १ तिर्यचानुपूर्वी, १ दौर्भाग्य, १ दुःस्वर, और १ अय  
 कीर्ति इन ११ विना ५८ का उदय पावे,

प्रमत्त गुणस्थान में-४ प्रत्याख्यानी चौक, १ तिर्यचंगति, १  
 सयोगी, इन ६ विना ५२ का उदय.

नेसे २९ उदय पावे. इनमें-३ थीणद्धी त्रिक विना ४९ प्रकृतिका उदय.

अयोगी केवली गुणस्थानमें-प्रथमके तीन संघयण विना ४६ का

## ९२, चौद

मिथ्यात्व से अयोगी के-हांस्य पटक विना ४० का उदय पावे.

सूक्ष्म सम्परायमें-३ वेद और संज्वलन त्रिक विना ३४ प्रकृति का उदय पावे.

उयशान्त मोहमें-संज्वलनके लोभ३३ विना का उदय पावे. क्षीण मोहमें-दो संघयण और दो-निद्रा विना २९ का उदय पावे.

सयोगी केवलीके-५ ज्ञानावरणीय, ४ दर्शनावरणीय, और ५ अन्तराय. इन १४ विना १५ उदय पावे.

अयोगी केवलीके-फक्त दोनों वेदनीयोंमेंसे एकका उदय रहता है.

९६, अठारवा क्षेत्रविपाक कर्मोदय द्वार.

क्षेत्र विपाकी फक्त १ नाम कर्म हैसो, मिथ्यात्व सास्वादन, अविरति, तीनोंमें क्षेत्र विपाकी नाम कर्म का उदय है.

मिश्र. देशत्रतिसे जावत् अयोगी केवली गुणस्थान तक क्षेत्र विपाकी कर्मोदय नहीं है.

उन्नीसवा क्षेत्रविपाककर्मप्रकृतियोदय द्वार

क्षेत्र विपाक प्रकृति चार सो-चारोंगतिकी अनुपूर्वी जानना. मिथ्यात्व और अविरति गुणस्थानमें चारों अनुपूर्वीका उदय पावे. सास्वादन गुणस्थानमें-नरकानुपूर्वी विना तीन अनुपूर्वीका उदय.

मिश्र देशत्रतिसे अयोगी केवली गुणस्थानतक क्षेत्र नाम, कर्मकी प्रकृति का उदय नहीं होता है.

१ शक्तीती. १

९८, बीसवा भवविपाक कर्म और १ ऊंच गौत्र

भव विपाकी एक आयुष्य कर्मोदय द्वार मिथ्यात्वसे अयोगी केवली गुणस्थान

## ९९ इक्कीसवा भवविपाक प्रकृतियोदयद्वार

भव विपाककी प्रकृति ४ सो-चारों गतिका आयुष्य जानना.  
मिथ्यात्व अविरति गुणस्थानतक चारों आयुष्य का उदय पावे.

देशविरति गुणस्थान में-मनुष्य और तिर्यंच आयुका उदय पावे.  
प्रमत्त गुणस्थानसे अयोगी केवलीतक-एक मनुष्य आयुका उदय.

## १००, बावीसवा-जीवविपाककर्मोदयद्वार

आयुष्य विना सातोंही कर्मों जीव विपाकी हैं.

मिथ्यात्वसे सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान तक सातोंही कर्मोंका उदय.  
उपशान्त मोह और क्षीणमोह गुणस्थानमें मोहनीय विना छे कर्मों  
का उदय.

सयोगी केवली और अयोगी केवलीके वेदनी, आयू, नाम, और  
गौत्र इन चारों कर्मोंका उदय.

## तेवीसवाजीवविपाककर्मप्रकृतियोदय द्वार

जीव विपाकी प्रकृति ७८ होती है:-५ ज्ञानावरणीय, ९ दर्शनावरणीय, २ वेदनीय, २८ मोहनी, ४ गति, ५ जाति, १ त्रसः, वादरः १ पर्याप्ताः १ स्थावर, १ सूक्ष्म, १ अपर्याप्ता, १ सुभग, १ सुस्वर, १ आदेय, १ यज्ञः, १ दुभग, १ दुस्वर अनादेय, १ अयज्ञः, १ श्वासोश्वास, १ तिर्यंकर, २ खगति, यह २७ नामकी) २ गौत्र की, और ५ अन्तराय की. यों सब ७८ प्रकृतिमेंसे:-

मिथ्यात्व गुणस्थान में-१ सम्यक्त्व मोह, १ मिश्रमोह, और १

जिननाम विना ७५ का उदय.

सास्त्रादन में-१ सूक्ष्म, १ अपर्याप्ता, और १ भिर्यामोह इन ३ विना ७२ का उदय.

भिश्रमें-४ अनन्तान वन्वि चौक, ४ जाति, १ स्थावर नाम यह १३ ही जव ६३ काही उदय रहा. और १ भिश्रमोह वदा तव ६४ प्रकृतिका उदय पावे.

अविरति सज्यगृहाष्टमें-भिश्रमोह घटा, और सम्यक्त्व मोह वदा तव ६४ काही उदय रहा.

देशविरति गुगस्थान में-४ अप्रत्याख्यानी चौक १ नरकगति, १ देवगति, १ दौर्भाग्य १ अनादेय, और १ अयशः कीर्ति इन ५ विना ५५ का उदय पावे.

प्रमत्त गुगस्थान में-४ प्रत्याख्यानी चौक १ और तिर्यंच गति इन ५ विना ५० का उदय पावे.

अप्रमत्त गुगस्थान में-३ क्षीणर्द्धी त्रिक, विना ४७ का उदय पावे. अपूर्व करण गुगस्थान में-सम्यक्त्वमोहनीय विना ४६ का उदय पावे. अनीयदी वादर गुगस्थान में-हांस्य पटक विना ४० का उदय पावे. सूक्ष्म सम्पराय गुगस्थान में-२ वेद और संज्वलन त्रिक इन ६ विना ३४ का उदय पावे.

उपशान्त मोह गुगस्थान में-संज्वलके लोभ विना २३ का उदय पावे.

क्षीणमोह गुगस्थान में-निद्रा और प्रचला विना ३१ का उदय पावे.

सयोगी केवली के-५ ज्ञानावरणी. ९ दर्शनावरणी. ५ अन्नगय इन १४ विना १७ का उदय पावे.

अयोगी केवली के-नाम कर्मकी ११ प्रकृति पहिले कही उनका ही उदय.



## ९९ इक्कीसवा भवविपाक प्रकृतियोदयद्वार

भव विपाककी प्रकृति ४ सो-चारों गतिका आयुष्य जानना.

मिथ्यात्व अविरति गुणस्थानतक चारों आयुष्य का उदय पावे.

देशविरति गुणस्थान में-मनुष्य और तिर्यंच आयुका उदय पावे.  
प्रमत्त गुणस्थानसे अयोगी केवलीतक-एक मनुष्य आयुका उदय.

## १००, बान्नीसवा-जीवविपाकीकर्मोदयद्वार,

आयुष्य विना सातोंही कर्मों जीव विपाकी हैं.

मिथ्यात्वसे सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान तक सातोंही कर्मोंका उदय.  
उपशान्त मोह और क्षीणमोह गुणस्थानमें मोहनीय विना छे कर्मों-  
का उदय.

सयोगी केवली और अयोगी केवलीके वेदनी, आयू, नाम, और  
गौत्र इन चारों कर्मोंका उदय.

## तेवीसवाजीवविपाककर्मप्रकृतियोदय द्वार

जीव विपाकी प्रकृति ७८ होती है:-५ ज्ञानावरणीय, ९ दर्शनावरणीय, २ वेदनीय, २८ मोहनी, ४ गति, ५ जाति, १त्रसः, वादर, १ पर्याप्तः, १स्थावर, १सूक्ष्म, १ अपयर्याप्ता, १ सुभग, १ सुस्वर, १ आदेय, १ यशः, १ दुभग, १ दुस्वर अनादेय, १ अयशः, १ श्वासो-श्वास, १ तिर्यंकर, २ खगति, यह २७ नामकी) २ गौत्र की, और ५ अन्तराय की. यों सब ७८ प्रकृतिमेंसे:-

मिथ्यात्व गुणस्थान में-१ सम्यक्त्व मोह, १मिश्रमोह, और १

जिननाम विना ७५ का उदय.

सास्वादन में-१ सूक्ष्म, १ अपर्याप्ता, और १ भिर्यामोह इन ३ विना ७२ का उदय.

मिश्रमें-४ अनन्तान वन्वि चौक, ४ जाति, १ स्थावर नाम यह १ प्रती जव ६३ काही उदय रहा. और १ मिश्रमोह वदा तव ६४ प्रकृतिका उदय पावे.

अविरति सम्यग्दृष्टिमें-मिश्रमोह घटा, और सम्यक्त्व मोह वदा तव ६४ काही उदय रहा.

देशविरति गुणस्थान में-४ अप्रत्याख्यानी चौक १ नरकगति, १ देवगति, १ दौर्भाग्य १ अनादेय, और १ अयशः कीर्ती इन ९ विना ५५ का उदय पावे.

प्रमत्त गुणस्थान में-४ प्रत्याख्यानी चौक १ और तिर्यंच गति इन ५ विना ५० का उदय पावे.

अप्रमत्त गुणस्थान में-३ क्षीणद्वी त्रिक, विना ४७ का उदय पावे.

अपूर्व करण गुणस्थानमें-सम्पक्त्वमोहनीय विना ४६ का उदय पावे.

अनीयदी वादर गुणस्थान में-हांस्य पटक विना ४० का उदय पावे.

सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानमें-३ वेद और संज्वलन त्रिक इन ६ विना ३४ का उदय पावे.

उपशान्त मोह गुणस्थान में-संज्वलके लोभ विना २३ का उदय पावे.

क्षीणमोह गुणस्थान में-निद्रा और प्रचला विना ३१ का उदय पावे.

सयोगी केवलीके-५ ज्ञानावरणी. ९ दर्शनावरणी. ५ अन्तर्गत इन

१४ विना १७ का उदय पावे.

अयोगी केवली के-नाम कर्मकी ११ प्रकृति पहिले कहा उनका ही उदय.

## १०२, चौबिसवा-पुद्गलविपाकीकर्मोदय द्वार

पुद्गल विपाकी फक्त १ नाम कर्म ही है.

मिथ्यात्वसे अयोगी केवलीतक पुद्गल विपाकी कर्मोदय होता है.

## पच्चीसवा-पुद्गलविपाककर्मप्रकृतियोदयद्वार

पुद्गल विपाकी प्रकृति ३६ होती है:—५ शरीर १. अंगोपांग ६ संघयण, ६ संस्थान, ४ वर्ण चतुष्क, १ निर्माण, १ अस्थिर, १ स्थिर, १ अशुभ १ शुभ, १ अगुरुलघू, १ उपघात, १ पराघात, १ प्रत्येक, १ साधारण यह ३६१ इनमेंसे

मिथ्यात्व गुणस्थान में-आहारक द्विक विना ३४ का उदय पावे.

सास्वादन, मिश्र और अविरतिमें-१ आताप, और १ साधारण नाम इन विना विना ३२ का उदय पावे.

देशविरति में-वैक्रिय द्विक विना ३० का उदय पावे.

प्रमत्त संयतिमें-उद्योत नाम घटनेसे २९ रही और आहारक द्विक बढ़नेसे ३१ का उदय पावे.

अप्रमत्त संयति में-आहारक द्विक विना २९ का उदय पावे.

अपूर्व करणसे उपशान्त मोह गुणस्थानतक-अन्तिम ३ संघयण विना २६ का उदय पावे.

क्षीण मोह और सयोगी केवली के-दोनों संघयण विना २४ का उदय पावे.

अयोगी केवली के शरीर के अभाव से पुद्गल विपाकी प्रकृति का उदय नहीं पाता है.

## १०४ छब्बीसवा सवधातिक कर्मोदयद्वार

भिथ्यात्व से सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानतक सर्व घातिक तीनों कर्मों का उदय पावे.

उपशान्त मोह और क्षीणमोह गुणस्थानमें मोहनीय विना दो कर्मों का उदय.

सयोगी और और अयोगी केवली गुणस्थानमें-घातिक कर्मों का उदय नहीं पाताहै.

**सत्तावीसवा सर्वघातिककर्मप्रकृतियोदयद्वार**

बंधमें कहे मुझवही सर्व घातिक तीनों कर्मोंकी २० प्रकृतिहै, उसमेंसे भिथ्यात्व गुणस्थानमें-२० ही प्रकृति का उदय पावे.

सास्वादन गुणस्थानमें-भिथ्यात्व मोह विना १९ प्रकृतिका उदय पावे भिश्च और अविरति गुणस्थान में-४ अनन्तान बन्धि चौक विना १९ का उदय पावे.

देशविरति गुणस्थानमें-अप्रत्याख्यानी चौक विना ११ का उदय पावे प्रमत संयति गुणस्थानमें-प्रत्याख्यानी चौक विना-७ का उदय पावे. अप्रमतसे उपशान्त मोह गुणस्थानतक-धीगद्दी त्रिक विना ४ का उदय पावे.

क्षीणमोह गुणस्थानमें-निद्रा और प्रचला विना ४ का उदय पावे. सजोगी और अजोगी केवलीमें-सर्व घातिक प्रकृतिका उदय नहीं.

**अठावीसवा देशघातिक कर्मोदय द्वार.**

भिथ्यात्वसे सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानतक देश घातिक चारों कर्मोंका उदय पावे.

उपशान्त मोह और क्षीण मोह गुणस्थान में-मोहनीय विना तीन कर्मोंका उदय पावे.

सयोगी और अयोगी केवलीके देशघातिक कर्मोंका उदय नहीं.

## उन्नतीसवा देशघातिकर्मप्रकृतियोदयद्वारा

बन्धमें कहे मुझवही देशघातिक चारों कर्मोंकी प्रकृति २७ है उसमेंसे मिथ्यात्व, और सास्वादनमें-सम्यक्त्व मोह और मिश्र मोह विना २० का उदय पावे.

मिश्रगुणस्थानमें-मिश्रमोह अधिक होनेसे २६ का उदय पावे.

अविगतिमें-सम्यक्त्व मोह बढनेसे और मिश्रमोह घटनेसे २६ काही उदय रहा-

देशविगतिमें अपूर्व करण गुणस्थानतक-सम्यक्त्व मोह विना २५ का उदय पावे.

अनियत वादर गुणस्थानमें-हांस्य पटक विना १९ का उदय पावे.

गुण मंगलय गुणस्थानमें-३ वेद और संज्वलन त्रिक विना १३ का उदय पावे.

उपशान्त मोह और क्षीण मोह में-मंज्वलन के लोभ विना १२ का उदय पावे

मयोगी और अयोगी केवल गुणस्थानमें घातिक कर्म प्रकृति का उदय नहीं पाता है.

## १०८, तीसवा अघातिक कर्मोदय द्वार.

मिथ्यात्वमें अयोगी केवल गुणस्थानतक अघातिक चारों कर्मोंका उदय पाता है.

## इकतीसवा अघातिककर्म प्रकृतियोंद्वारा

दोनों तरह के घातिक कर्मों की ४७ प्रकृति छोट बाकी १५ की मोह प्रकृति अघातिककर्म की प्रकृति जाननी इनमेंसे मिथ्यात्व गुणस्थान में २ आहम्यदिक और शक्तिनाम विना १३ का उदय.

सास्वादनमें-१सूक्ष्म, १अपर्याप्ता, १साधारण, १आताप, और १नर कानुपूर्वी इन ५ विना ६८ उदय.

भिन्न गुणस्थानमें ४ जातिचतुष्क, ३ अनुपूर्वी १ स्थावर नाम, इन ८ विना ६८ का उदय.

अविरतिमें-चारों अनुपूर्वीका उदय बढ़ने से ६४ उदय.

दोशविरति-३ देवत्रिक, ३ नरकत्रिक, २ वैक्रियद्विक, १ मनुष्यानु-पूर्वी १ तिर्यचानुपूर्वी, १ दौर्भाग्य, १ अनादेय, और १ अयशः कीर्ती इन १३ विना ५१ का उदय.

प्रमतमें-२ तिर्यचद्विक १ उद्योत, १ निच गौत्र इन ४ विना ४७ का उदय. हा और आहारक द्विक बढ़ाने से ४९ का उदय पाता है.

अप्रमतमें-आहारक द्विक विना ४७ का उदय.

अपर्व करण से उपशान्त मोहतक अन्तिम तीनों संघयण विना ४४ का उदय.

क्षीणमोहमें-१ वृषमनारच, और १नारच संघयण विना ४२ का उदय सयोगी केवलीके जिननाम अधिक होनेसे ४३ का उदय.

अयोगी केवली के-पहिले कही सोही नामकर्म की १२ प्रवृत्तिका उदय पाता है.

**वर्त्तिसिवा-समुचय कर्मप्रकृतियोदय द्वार.**

१ मिथ्यात्व में-५ ज्ञानावर्णीय की, ९ दर्शनावर्णीय की. २ वेदनीय की. ३ मोहनीयकी, ४ आयुष्य की, ६ नामकी. २ गोत्रकी और ५ अन्तराय की यों सब ११७ का उदय पावे.

२ सास्वादन में-५ ज्ञानावर्णीयकी. ९ दर्शनावर्णीयकी २

वेदनीयकी २५ मोहणीयकी ६ आयुष्य की ५० नामकी २ गोत्रकी और ९ अन्तरायकी यों १११ उदय पावे.

३ मिश्रमें—५ ज्ञानावरणीयकी, ९ दर्शनावरणीयकी, २ वेदनीयकी, २२ मोहनीयकी ४ आयुष्यकी, ५१ नामकी, २ गोत्रकी और ९ अन्तरायकी यों १०० का उदय पावे.

४ अविरतिमें—५ ज्ञानावरणीयकी, ९ दर्शनावरणीयकी, २ वेदनीयकी २२ मोहनीयकी, ४ आयुष्यकी, ५५ नामकी, २ गोत्रकी और ५ अन्तरायकी यों सब १०४ का उदय पावे.

५ देशविरतिमें—५ ज्ञानावरणीयकी ९ दर्शनावरणीयकी, २ वेदनीयकी, १८ मोहनीयकी, २ आयुष्यकी, ४६ नामकी, २ गोत्रकी और ५ अन्तरायकी यों ८७ का उदय पावे.

६ प्रमत्तमें—५ ज्ञानावरणीयकी, ९ दर्शनावरणीयकी, २ वेदनीयकी, १४ मोहनीयकी, १ आयुष्यकी, ४३ नामकी, २ गोत्रकी, और ५ अन्तरायकी यों सब ८१ का उदय पावे.

७ अप्रमत्तमें—५ ज्ञानावरणीयकी, ६ दर्शनावरणीयकी, २ वेदनीयकी, १४ मोहनीयकी, १ आयुष्यकी, ४२ नामकी, १ गोत्रकी और ५ अन्तरायकी यों सब ७६ का उदय पावे.

८ अर्द्ध कर्ण में ५ ज्ञानावरणीयकी, ६ दर्शनावरणीयकी, २ वेदनीयकी, १३ मोहनीयकी, १ आयुष्यकी, ३९ नामकी, १ गोत्रकी और ५ अन्तरायकी यों सब ५२ का उदय पावे.

९ अनियतृत्वादिमें ५ ज्ञानावरणीयकी ६ दर्शनावरणीयकी, २ वेदनीयकी, १ मोहनीयकी, १ आयुष्यकी, ३५ नामकी, १ गोत्रकी और ५ अन्तरायकी यों सब ६६ का उदय पावे.

१० मृगमन्त्रागमें—५ ज्ञानावरणीयकी ६ दर्शनावरणीयकी

२ वेदनीयकी १ मोहनीयकी १ आयुष्य ३९ नामकी, १ गौत्रकी, और ५ अन्तरायकी यों सब ६० का उदय पावे.

११ उपशान्त मोह गुणस्थानमें-५ ज्ञानावरणीकी, ६ दर्शनावरणीकी, २ वेदनीयकी, १ आयुष्यकी, ३९ नामकी, १ गौत्रकी और ५ अन्तरायकी यों सब ५९ का उदय पावे.

१२ क्षीणमोह गुणस्थानमें-५ ज्ञानावरणीयकी, ४ दर्शनावरणीयकी, २ वेदनीयकी, १ आयुष्यकी, ३१ नामकी, १ गौत्रकी, और ५ अन्तरायकी यों ५७ का उदय पावे.

१३ सयोगीकेवलीके-२ वेदनीय, १ आयु, ३८ नाम, १ गौत्र, यों ४२ का उदय पावे.

१४ अयोगीकेवलीके-१ वेदनीयके, १ आयुकी, ९ नामकी १ गौत्रकी, यों १० का उदय पावे.

**तैत्तिरीय-समुच्चय कर्मोदय व्युच्छतिद्वार**

मिथ्यात्व से सम्म-सम्परायतक व्युच्छति नहीं आठोंका उदय पाताहै

उपशान्त मोह और क्षीण मोह में-मोहनीय कर्म उदय की व्युच्छति, सजोगी और अयोगी केवली केवली ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय इन चारों कर्मोंकी उदयकी व्युच्छति होती है.

**चौत्तीसवा-कर्मप्रकृतियोदय व्युच्छतिद्वार**

१ मिथ्यात्व से २ मोहनीयकी और ३ नामकी यों ५ का विच्छेदहै  
२ सास्वादनमें ३ मोहनीयकी और ८ नामकी यों ११ उदयक विच्छेदहै.  
३ मिश्रमें ६ मोहनीयकी और ६ नामकी यों १२ का उदय विच्छेदहै.  
४ अविरतिमें ७ मोहनीयकी और १ नामकी यों १८ का उदय विच्छेदहै.



५ देशविरतिमें-१० मोहनीय, ३ आयु, २३ नामकी, यों ३० का उदय विच्छेद है.

६ प्रमत्तमें-१४ मोहनीयकी, ३ आयुकी, २४ नामकी, यों ४१ का उदय विच्छेद.

७ अप्रमत्तमें ३ दर्शनावरणीयकी, १४ मोहनीयकी, ३ आयुष्यकी, २५ नामकी, १ गौत्रकी यों सब ४६ का उदय व्युच्छेद है

८ अपूर्व करणमें ३ दर्शनावरणीयकी, १५ मोहनीयकी, ३ आयुष्यकी, २८ नामकी और १ गौत्रकी यों ५० का उदय व्युच्छेद होता है.

९ अनीयट वादरमें ३ दर्शनावरणीयकी, २१ मोहनीयकी, ३ आयुष्यकी, २८ नामकी, १ गौत्रकी, यों ५६ का उदय का व्युच्छेद.

१० सूक्ष्मसम्परायमें ३ दर्शनावरणीयकी, २७ मोहनीयकी, ३ आयुष्यकी, २८ नामकी और १ गौत्रकी यों ६२ का उदय व्युच्छेद.

११ उपशान्त मोहमें-३ दर्शनावरणीयकी, २८ मोहनीयकी, ३ आयुष्य की, २८ नामकी, और १ गौत्रकी, यों ६३ का उदय व्युच्छेद होता है.

१२ क्षीणमोहमें-५ दर्शनावरणीयकी, २८ मोहनीयकी, ३ आयुष्यकी ३० नामकी, और १ गौत्रकी यों ६५ का उदय व्युच्छेद होता है.

१३ सयोगी केवलीमें-१ ज्ञानावरणीय, ९ दर्शनावरणीयकी, २८ मोहनीय की, ३ आयुष्यकी २९ नामकी, १ गौत्रकी, और ५ अन्तरा-की यों सब ८० का उदय व्युच्छेद है.

१४ अयोगी केवली गुणस्थानमें-१ ज्ञानावरणीय की, ९ दर्शनावरणीयकी, १ वेदनीयकी, २८ मोहनीयकी, ३ आयुष्यके, ५८ नाम

की १ गौत्र की, और ५ अन्तरायकी, यों सब ११० प्रकृति के उद-  
य का व्युच्छेद होता है।

इति कर्षोदय नामक तृतीय प्रकरण समाप्तम्,

## चतुर्थ प्रकरण-कसुदीरणा द्वार.\*

कर्म ऊदीरणाके १२ द्वारों के नाम.

१ समुचय कर्म उदीरणा द्वार, २ ज्ञानावरणीय उदीरणा द्वार,  
३ दर्शनावरणीय उदीरणा द्वार, ४ वेदनीय उदीरणा द्वार, ५ मोहनीय उदी-  
रणा द्वार, ६ आयुष्य उदीरणा द्वार, ७ नाम उदीरणा द्वार, ८ गौत्र  
ऊदीरणा द्वार, ९ अन्तराय ऊदीरणा द्वार, १० समुचय कर्म प्रकृति ऊ-  
दीरणा द्वार, ११ कर्म ऊदीरणा व्युच्छेद द्वार, और १२ कर्म प्रकृति  
ऊदीरणा व्युच्छेद द्वार.

## ११२, पहिला-समुचय कर्म उदीरणा द्वार

मिथ्यात्व, सास्वाद, अविरति, देशविरति, और प्रमत्त इन ५  
गुणस्थानोंमें, आयुष्य विना सात कर्मोंकी उदीरणा होती है, और  
कोइक १ आवली मात्र बाकी रहे तब आयुष्य कर्म की उदीरणा  
करतो आठ कर्मोंकी उदीरणा होती है.

मिश्रगुणस्थान में-तो आयुष्य विना तानोंही कर्मोंकी उदीरणा  
है, क्योंकि यहां मरता नहीं है.

अप्रमत्त, अपूर्व कर्म और अनिष्ट वाद, इन तीनों गुणस्थानमें-  
वेदनीय + और आयुष्य विना छः कर्मोंकी उदीरणा होती है.

\* उदीरणाके द्वारों का चुनाव देवीके अर्थ काण्ड का दृष्ट २१५ न

+ वेदनीय कर्मकी उदीरणा में-मग पण्डितान में लेना है और अपने में सुन-

सूक्ष्म सम्यगाय गुणस्थानमें-पहिले तो ऊपरोक्त छेही कर्मकी उद्दीरणा करे फिर एक आवली बाकी रहे तब मोहनीय विन पांच कर्मोंकी उद्दीरणा करे.

उपशान्त मोह गुणस्थान में-उपरोक्त पांचोंही कर्मों की उद्दीरणा होती है.

क्षीण मोहके-पहिले भागमें तो उपरोक्त पांचों कर्मोंकी उद्दीरणा होती है. और फिर ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, और अन्तराय इन तीनों कर्मोंका उदय होजाने से इनकी उद्दीरणा न होते फक्त नाम और गौत्र इन दोनों कर्मोंकी उद्दीरणा होती है.

सयोगी केवली के नाम और गौत्र दोनों ही कर्मोंकी उद्दीरणा है अयोगी केवली गुणस्थानमें उद्दीरणा नहीं. ×

## ११४, दुसरा-ज्ञानावरणीय उद्दीरणाद्वार

मिथ्यात्व से क्षीण मोह गुणस्थान तक ज्ञानावरणीय की पांचों प्रकृति की उद्दीरणा.

सजोगी और असजोगी केवलीके ज्ञानावरणीयकी उद्दीरणा नहीं.

## ११५, तीसरा-दर्शनावरणीय उद्दीरणाद्वार

मिथ्यात्वसे प्रमत्त गुणस्थानतक दर्शनावरणीयकी ९ ही प्रकृति की उद्दीरणा.

स्थान में अध्यात्मिकता प्रकट होनेसे नल्लेश भावन ही रहते हैं. फक्त जो उदयावली में कर्म ला रखते हैं सो उदय में आते हैं.

× यहां करण वीर्यका अभाव है सर्व ग्रास उदय आगया है जो १२ प्रकृति का दल विद्यमानता है. परन्तु आविधा सत्तागत नहीं है कि जिसको आकर्षण कर उसकी उद्दीरणा करनी पड़े.

अप्रमत से क्षीण मोह के प्रथम भागतक थीणद्री त्रिक विना ६ की उदीरणा.

क्षीण मोह गुणस्थान के अन्तिम भाग में निद्रा, प्रचला विना ४ की उदीरणा.

सयोगी और अयोगी केवलीके दर्शनावरणीयकी उदीरणा नहीं होती

### ११६, चौथा-वेदनीय उदीरणा द्वार.

अनेक जीवों की अपेक्षा कर मिथ्यात्व गुणस्थानसे लगा कर प्रमत गुणस्थान तक दोनों वेदनीयकी की उदीरणा होवे.

ऊपर के गुणस्थानोंमें वेदनीयकी उदीरणा नहीं है.

### ११७, पाँचवा-मोहनीयकी उदीरणा द्वार.

मिथ्यात्व गुणस्थानमें सम्यक्त्व मोह और मिश्र मोह विना २६ की उदीरणा होवे.

सास्त्रादन गुणस्थान में मिथ्यात्व मोह विना २५ की उदीरणा होवे

मिश्र और अविरति गुणस्थानमें ४ अनन्तान वन्धि चौक १ सम्यक्त्व मोह और १ मिथ्यात्व विना २२ का उदीरणा पावे.

देशविरति गुणस्थानमें-अप्रत्याख्यानीके चौक विना १८की उदीरणा

प्रमत अप्रमत गुणस्थानमें-प्रत्याख्यानी के चौक विना १४ की उदीरणा होवे.

अपूर्व करण गुणस्थान में सम्यक्त्व मोहनीय विना ११ की उदीरणा होवे.

अनियट्ट वादर गुणस्थान में हांस्य पटक विना ७की उदीरणा होवे

सूक्ष्म सम्पराय में ३ वेद और ३ संज्वलन त्रिक विना १ की उदीरणा होवे.

उपशान्त मोह से अयोगी केवली गुणस्थान तक मोहनीय की उदीरणा नहीं होती है.

## ११८, छठा-आयु उदीरणाद्वार

मिथ्यात्व से अविरति गुणस्थान तक चारों गति के आयुष्य की उदीरणा.

देश विरति में मनुष्य और तिर्यच दोनों आयुष्य की उदीरणा होवे.

प्रमत्त गुणस्थान में एक मनुष्य के आयुष्य उदीरणा होवे.

अप्रमत्त से अजोगी केवली तक आयुष्यकी उदीरणा नहीं. +

## ११९, सातवा-नाम उदीरणा द्वार

मिथ्यात्व में २ आहारक द्विक और १ तीर्थंकर नाम विना ६४ की उदीरणा.

सास्वादन में ३ सूक्ष्म त्रिक, १ आतापनाम, १ नरकानुपूर्वी विना ५९ की उदीरणा.

मिश्र में ४ जातिचतुष्क, ३ अनुपूर्वी, १ स्थावरनाम, इन विना ५१ की उदीरणा.

अविरति में चारों गति की अनुपूर्वी की उदीरणा बढ़ने

+ मनुष्याय की उदीरणा प्रमत्त योग करके होती है, जो बहुत काल में वेदने योग्य है उसे थोड़े काल में वेदकर अप्रवर्तन करण विशेष कर वेदता है, उससे ही सोपक्रम आयुष्य होता है. जिसे अकाल मरण कहते हैं. और अप्रमत्तादि गुणस्थान में अकाल मरण नहीं होता है. और साता वेदनीय असाता वेदनीयकी उदीरणा भी प्रमत्तपनेही होती है, (उदयतो चउदेही गुणस्थानोमे पाता है.) इसलिये पीछे कहीसो २ वेदनीय और यहां कहीसो मनुष्य आयुष्य इन तीनोंकी उदीरणा का सप्तम गुणस्थानसेही व्यच्छेद किया है.

से ५५ की उदीरणा.

देशविरति में १ मनुष्यानुपूर्वी, १ तिर्यंचानुपूर्वी, २ वैक्रियद्विक, २ देवद्विक, २ नरकद्विक, १ दौर्भाग्य, १ अनादेय १ अयशः इन ११ विना ४४ की उदीरणा.

प्रमत्त में १ तिर्यंच गति और १ उद्योतनाम यह दो तो घटाना, और आहारक द्विक बढ़ाना तब ४४ कीही उदीरणा होवे. अप्रमत्त में आहारक द्विक घटाने से ४२ की उदीरणा होवे.

अपूर्व करण से उपशान्त मोह तक धीणद्वी त्रिक विना ३९ की उदीरणा.

धीण मोह और सयोगी केवलीके निद्रा और प्रचलाविना ३७ की उदीरणा.

अयोगी केवली गुणस्थान में नाम कर्म की उदीरणा नहीं होतीहै.

## १२०, आठवा-गौत्र उदीरण द्वार.

भिध्यात्व से देशविरति गुणस्थानतक दोनों गौत्रकी उदीरणा पांच प्रमत्त से सयोगी केवली गुणस्थान तक एक उंच गौत्रकी उदीरणा अयोगी केवली गुणस्थान में गौत्र कर्मकी उदीरणा नहीं होतीहै.

## १२१, नावव-अन्तराय उदीरणा द्वार.

भिध्यात्व से धीण मोह तक अन्तरायकी पांचों प्रकृतिकी उदीरणा सयोगी और अयोगी केवली के अन्तराय की उदीरणा नहीं.

## १२२, दश-समुच्चयकर्मप्रकृति उदीरणा द्वार.

भिध्यात्व में ५ ज्ञानावर्णीय, १ दर्शनावर्णीय, २ वेदनाय, २३ मोहनाय, ४ आयुष्य, ६४ नाम, २ गौत्र, और ५ अन्त-

राय यों सब ११७ प्रकृति की उदीरणा.

सास्वादन में ५ ज्ञानावरणीय, ९ दर्शनावरणीय, २ वेदनीय, २५ मोहनीय, ४ आयुष्य, ५९ नाम, २ गौत्र, और ५ अन्तराय यों १११ की उदीरणा होवे.

मिश्रमें-५ ज्ञानावरणीय, ९ दर्शनावरणीय, २ वेदनीय, २२ मोहनीय, ४ आयुष्य, ५१ नाम, २ गौत्र, और ५ अन्तराय. यों १०० की उदीरणा होवे.

अविरतिमें-५ ज्ञानावरणीय, ९ दर्शनावरणीय, २ वेदनीय, २२ मोहनीय, ४ आयुष्य, ५५ नाम, २ गौत्र, और ५ अन्तराय की यों १०४ की उदीरणा होवे.

देशविरति में-५ ज्ञानावरणीय, ९ दर्शनावरणीय, २ वेदनीय, १८ मोहनीय, २ आयुष्य, ४४ नाम, २ गौत्र, और ५ अन्तराय यों ७८ की उदीरणा होवे.

प्रमत्तमें ५ ज्ञानावरणीय, २ दर्शनावरणीय, ९ वेदनीय, १४ मोहनीय, १ आयुष्य, ४४ नाम, १ गौत्र, और ५ अन्तराय यों ८१ की उदीरणा होवे.

अप्रमत्तमें-५ ज्ञानावरणीय, ६ दर्शनावरणीय, ४१ मोहनीय, ४२ नाम, १ गौत्र और ५ अन्तराय यों सब ७३ प्रकृतिकी उदीरणा होवे.

अपूर्व करणमें-५ ज्ञानावरणीय, ६ दर्शनावरणीय, १३ मोहनीय, ३९ नाम, १ गौत्र, और ५ अन्तराय यों सब ६९ की उदीरणा होवे.

अनियति वादरमें-५ ज्ञानावरणीय, ६ दर्शनावरणीय, ७ मोहनीय, ३९ नाम, १ गौत्र, और ५ अन्तराय यों ६३ की उदीरणा होवे.

सूक्ष्म सम्परायमें-५ ज्ञानावरणीय, ६ दर्शनावरणीय, १ मोहनीय, ३९ नाम, १ गौत्र, और ५ अन्तराय यों सब ५७ की उदीरणा होवे.

उपशान्त मोहमें-५ ज्ञानावरणी. ६ दर्शनावरणीय. ३२ नाम, १गौ-  
त्र और ५ अन्तराम. यों सब ५६ प्रकृतिकी उदीरणा होती है.

क्षीण मोहमे ५ ज्ञानावरणाय, ४ दर्शनावरणीय, ३७ नाम,  
१ गौत्र, और ५ अन्तराय यों सब ५२ प्रकृति की उदीरणा होवे.  
सयोगी केवलीके ३८ नामकी और १ गौत्रकी यों ३९ की उदीरणा  
अयोगी केवली के कर्म प्रकृतियों की उदीरणा नहीं होती है.

### १२३, इत्यावा-उदीरणा व्युत्तिहद्वार

मिथ्यात्वसे प्रमत गुणस्थान तक कर्म उदीरणा की बुच्छिती नहीं.  
अप्रमतसे सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानतक १वेदनी. और १आयु की  
उदीरणाका विच्छेद होती है.

उपशान्त मोह और क्षीण मोह में १ वेदनीय. १ मोहनीय.  
और १ आयुष्या इन तीनों कर्मों की उदीरणा की व्युच्छिती है.  
सयोगी केवली क ज्ञानावरणीय. दर्शनावरणीय. वेदनीय. मोहनीय  
य आयुष्य, और अन्तराय इन ६ कर्मों की उदीरणा की व्युच्छि-  
ति होती है.

अयोगी केवली के आठों कर्मोंकी उदीरणा की व्युच्छिती होनीहै.

### १२४वारवा कर्मप्रकृतिउदीरणव्युत्तिहद्वार

मिथ्यात्व गुणस्थान में-२ मोहनाय की और ३ नामकी यों  
५ प्रकृति का विच्छेद होनी है.

नाम्नादन गुणस्थान में-३ मोहनीय की और ८ नाम की  
यों ११ का विच्छेद.

मिथ्यगुणस्थानमें ६मोहनीयकी. और १३नामकी. यों १९काविच्छेद  
अविरति नम्यबुद्धि गुणस्थान में-३ मोहनीयकी. और १३ नामकी



यों १८ का विच्छेद.

देशविरति में १० मोहनीय, २ आयुष्यकी, और २३ नाम की यों ३५ का विच्छेद.

प्रमत्तमें १४ मोहनीयकी, ३ आयुष्यकी, २३ नामकी, और १ गौत्रकी यों ४१ का विच्छेद.

अप्रमत्तमें ३ दर्शनावरणीयकी, २ वेदनीयकी, १४ मोहनीयकी, ४ आयुष्यकी, २५ नामकी, और १ गौत्रकी, यों सब ४९ प्रकृति का विच्छेद.

अपूर्व करण में ३ दर्शनावरणीयकी, २ वेदनीयकी, १५ मोहनीयकी, ४ आयुष्यकी, २८ नामकी, और १ गौत्रकी यों सब ५३ प्रकृति का विच्छेद.

अनिटी बादरमें ३ दर्शनावरणीयकी, २ वेदनीयकी, २१ मोहनीयकी, ४ आयुष्यकी, २८ नामकी, और १ गौत्रकी, यों सब ५९ का विच्छेद.

सूक्ष्म सप्तराय में ३ दर्शनावरणीयकी, २ वेदनीयकी, २७ मोहनीयकी, ४ आयुष्यकी, २८ नामकी, और १ गौत्रकी, यों सब ६५ का व्युच्छेद.

उपशान्त मोह में ३ दर्शनावरणीयकी, २ वेदनीयकी, २८ मोहनीयकी, ४ आयुष्यकी २८ नामकी और १ गौत्रकी यों सब ६६ का विच्छेद.

क्षीण मोह में ५ दर्शनावरणीयकी, २ वेदनीयकी, २८ मोहनीयकी, ४ आयुष्यकी, ३० नामकी, और १ गौत्रकी, यों सब ७० का व्युच्छेद होता है.

सयोगी केवली में ५ ज्ञानावरणीय, ९ दर्शनावरणीय, २ वे

दनीय, २८ मोहनीय, ४ आयुष्य २९ नामकी. १ गौतमी और  
५ अन्तरायकी यों सब ८ का विच्छेद.

इति कर्म उदीरणा नामक चतुर्थ प्रकरण समाप्तम्

## पञ्चम प्रकरण कर्मसत्ता द्वार.

समुचय कर्म सत्ताद्वार, २ ज्ञानावरणीय सत्ताद्वार, ३ दर्श-  
नावरणीय सत्ताद्वार, ४ वेदनीय सत्ताद्वार, ५ मोहनीय सत्ताद्वार, ६  
आयुष्य सत्ताद्वार, ७ नाम सत्ताद्वार, ८ गौत्र सत्ताद्वार, ९ अन्त-  
राय सत्ताद्वार, १० ध्रुव कर्म सत्ताद्वार, ११ ध्रुव कर्म प्रकृति सत्ता-  
द्वार, १२ अध्रुव कर्म सत्ताद्वार, १३ अध्रुव कर्म प्रकृति सत्ताद्वार,  
१४ सर्व घातिक कर्म सत्ताद्वार, १५ सर्व घातिक कर्म प्रकृति सत्ता  
द्वार, १६ देश घातिक कर्म सत्ताद्वार, १७ देश घातिक कर्म प्रकृति  
सत्ताद्वार, १८ अघातिक कर्म सत्ताद्वार, १९ अघातिक कर्म प्रकृति  
सत्ताद्वार, २० समुचय कर्म प्रकृति सत्ताद्वार, २१ कर्म सत्ता व्युच्छि-  
तिद्वार, और २२ कर्म प्रकृति सत्ता व्युच्छिति द्वार.

## १२५. पहिला-समुचय सत्ता द्वार

मिथ्यात्वसे उपशान्तमोह गुणस्थानतक आगेही कर्मोंकी सत्ता पांच  
क्षीणमोह गुणस्थानमें मोहनीय बिना नाम कर्मोंकी सत्ता.

सयोगी और अयोगी केवली के वेदनी, आयु, नाम और  
गौत्र व. इन कर्मोंकी की सत्ता.

## १२६. दूसरा ज्ञानावरणीय द्वार.

मिथ्यात्व से क्षीण मोह गुणस्थान तक इनमें आगेही की  
पांचों प्रकृति की सत्ता.

सयोगी और अयोगी केवली की ज्ञानावरणीय की सत्ता नहीं.

## १२७, तिसरा-दर्शनावरणीय द्वार

मिथ्यात्वसे उपशान्त मोह गुणस्थान तक उपशम श्रेणिवाले के ९ प्रकृति की ही सत्ता.

अविरति से अनियट वादर गुणस्थान के पहिले भाग तक क्षपक श्रेणि वाले के ९ की ही सत्ता.

अनियट वादर के दूसरे भागसे क्षीण मोह गुणस्थान के पहिले भाग तक थीणद्वी त्रिक विना ६ प्रकृति की सत्ता पातीहै.

क्षीण मोह के दूसरे भागमें दौनों निद्रा विना ४ की सत्ता. और क्षीण मोह के अन्ति भागसे ऊपर के गुणस्थान में दर्शनावरणीयकी सत्ता नहीं है.

## १२८, चौथा-वेदनीय सत्ता द्वार.

मिथ्यात्वसे अयोगी केवलीके प्रथमभाग तक दोनों वेदनीयकी सत्ता अयोगी केवलीके अन्तिम भागमें दोनोंमेसे एक वेदनीयकी सत्ता

## १२९, पांचवा-मोहनीय सत्ता द्वार.

मिथ्यात्वसे उपशान्त मोह गुणस्थान तक उपशमसम्यक्त्व और उपशम चारित्रवाले के मोहकी २८ ही प्रकृति सत्ता ❀

अविरति गुणस्थान से उपशान्त मोह गुणस्थान तक क्षायिक सम्यक्त्व और उपशम श्रेणिवाले के अनन्तान बान्धि चौक

\* क्योंकि उपशम श्रेणिवाला पडवाइ होकर पीछा मिथ्यात्व गुणस्थानमें आताहै

और दर्शनत्रिक इन ७ विना २१ की सत्ता. x

और क्षपक श्रेणिवाले के ÷ नववे गुणस्थान के पहिले भागमें उपरोक्त २१ की ही सत्ता, दूसरे भागमें ४ अप्रत्याख्यानी चौक, और ४ प्रत्याख्यानी चौक, यों ८ प्रकृति टलनेसे १२ की सत्ता. तीसरे भागमें नपुसक वेदविना १२ की सत्ता, चौथे भाग में स्त्री वेदविना ११ की सत्ता, पांचवे भागमें ह्यस्य पटक विना ६ की सत्ता. छठे भागमें पुरुष वेद विना ५ की सत्ता. सातवें भागमें सज्जलन क्रोध विना ४ की सत्ता. आठवें भागमें सज्जलन मान विना ३ की सत्ता. नववे भागमें सज्जलन की माया विना २ की सत्ता और सूक्ष्म सम्परायमें १ सज्जलन के लोभ की सत्ता. उपर मोह की सत्ता नहीं.

## १२९, छठा-आयुष्य सत्ता बार.

भिख्यात्व से उपशान्त मोह गुणस्थान तक जो पहिले आयुष्य किया हो तो चारों गतिके आयुष्य की सत्ता. + और आयुष्य न करे तो ? मनुष्याय की सत्ता.

अविगीत से अयोगी केवली गुणस्थान तक क्षपक श्रेणिवाले के ? मनुष्याय की सत्ता.

x उपरान्त भाग में मोहनीयता उदय हो नीचे है परन्तु मनुष्य नहीं है

- उपरान्त और क्षपक श्रेणिवाले आठवें गुणस्थान में ही मोहनीयता होती है. इसलिये यहाँ ७वें गुणस्थान में ही उपाय किया है

- पाठान्त आठवें गुणस्थान की विमोहनीयता उदय हो प्रकृति विमोहनीयता का पिर दण्ड बनता. होती है तब नववायु का विमोहनीयता विमोहनीयता होती है. तब ही उपरान्त मोहनीयता उदय होती है. इसलिये उपरान्त मोहनीयता उदय हो ११ इन चारों गुणस्थानों में ही आयुष्य सत्ता की सत्ता है. तब ही मोहनीयता उदय होती है

## १३१, सातवा-नाम सत्ता द्वार

मिथ्यात्व से उपशान्त मोह गुणस्थान तक उपशम श्रेणि-वालेके ९३ ❀ की ही सत्ता.

अविरति गुणस्थान से अनियट बादर के पहिले भाग तक ९३ प्रकृति की सत्ता.

अनियट बादर के दूसरे भागसे सयोगी केवली गुणस्थान तक १ नरकगति, १ नरकानुपूर्वी, १ तिर्यचगति, १ तिर्यचानुपूर्वी, ४ जातिचतुष्क, १ स्थावर, १ सूक्ष्म, १ आताप, १ उद्योत, और १ साधारण इन १३ विना ८० की सत्ता.

अयोगी केवली के अन्तिम भागमें १ मनुष्यगति, १ पचेन्द्रियकी जाति, १ त्रस, १ बादर, १ पर्याप्ता, १ यशःकीर्ती, १ आदेय, और १ सोभाग्य. इन ९ की प्रकृति सत्ता रहती है.

## १३२, आठवा-गौत्र सत्ता द्वार.

मिथ्यात्व से अयोगी केवली गुणस्थान के पहिले भागतक दोनों गौत्र की सत्ता.

अयोगी केवली गुणस्थानके अन्तिम भागमें १ उंच गौत्र की सत्ता.

## १३३, नववा-अन्तराय सत्ता द्वार.

— तीर्थकर नाम कर्म की सत्ता वाला जीव दुसरा तीसरा गुणस्थान नहीं स्प-ता है. और मिथ्यात्व गुणस्थान में तीर्थकर नाम, कर्म की सत्ता फक्त अन्तर मूर्द्धत पर्यन्त ही पाने का संभव है. क्योंकि किसी क्षयोपशम सम्यक्त्वीने पाईले मिथ्यात्व अवस्था में नरकायुका बन्ध किया फिर सम्यक्त्व प्राप्तकर तीर्थकर नामकी उपार्जन करी, वो मरण समयमें सम्यक्त्वका वमन करके मिथ्यात्वमें जावे. (परन्तु दुसरा ती-सरा गुणस्थान स्पर्श नहीं.) वहां अन्तर मूर्द्धत रहकर फिर सम्यक्त्व प्राप्त करे इस-लिये मिथ्यात्व गुणस्थान में तीर्थकर नाम की सत्ता पातीहै.

मिथ्यात्वसे क्षीण मोह गुणस्थानतक अन्तराय की पांचों प्रकृति की सत्ता.

सयोगी अयोगी केवली के अन्तराय की सत्ता नहीं.

## १३४, दशवा-ध्रुव कर्म सत्ता द्वार.

आयुष्य विना सत्तों कर्म ध्रुवसत्ता वाले हैं.

मिथ्यात्व से क्षीण मोह गुणस्थान तक सातों कर्मों की सत्ता.

सयोगी और केवली के वेदनी नाम और अन्तराय तीनोंकी सत्ता.

## १३५, इग्यारवा ध्रुव कर्म प्रकृति सत्ता द्वार

ध्रुवसत्ता की २६ प्रकृति—५ ज्ञानावरणीयकी, ९ दर्शनावरणीयकी २ वेदनीयकी, २६ मोहनीयकी, ( मिश्र मोह और सम्यक्त्व मोह विना) १ तिर्यचगति, १ तिर्यचानुपूर्वी, ५ जाति. १ औदारिक शरीर, १ तेजस शरीर, १ कर्मण शरीर, १ औदारिकका अंगोपांग, ३ वंवन. ३ संघातन, ६ संघयण, ६ संठाण, २० वर्णादि, २ विहायोगति १ पराघात, १ उद्योत, १ आताप, १ उश्वास, १ अगुरुलघु, १ आपघात, १० त्रसदशका. १० स्थावर दशका, १० १ निर्माण नाम, (यों नामकी ७८) १ नीच गौत्र, ५ अन्तरायये १२६ मिथ्यात्व से उपशान्त मोह गुणस्थानतक उपशम श्रेणीवाले के १२६ कीही सत्ता.

अविरतिसे अनियंती वादर के पहले भागतक क्षपक श्रेणिवाले के भी १२६ कीही सत्ता.

अनियंति वादरके दूसरे भागमें ३ क्षीणद्वीत्रिक, १ स्थावर १ सूक्ष्म १ आताप, १ उद्योत १ साधारण. १ तिर्यचगति. १ तिर्यचानुपूर्वी. और जाति चतुष्क, इन १४ विना ११२ की सत्ता. तीसरे भा-

गमें-४ अप्रत्याख्यानी चौक, और ४ प्रत्याख्यानी चौक विना १०४ की सत्ता, चौथे भाग में नपुंसक वेद विना १० की सत्ता पांचवे भाग में स्त्रीवेद विना १०२ की सत्ता, छठे भाग में-हांस्य षट्क विना ९६ की सत्ता, सातवे भाग में-पुरुषवेद विना ९५ की सत्ता, आठवे भाग में-संज्वलन क्रोधविना, ९४ की और नववे भाग में-संज्वल मान विना. ९३ की सत्ता.

सूक्ष्म संपरायमें, संज्वलनके लोभ विना ९२ की सत्ता.

क्षीण मोह गुणस्थानके द्वि चरम-समय संज्वलके-लोभ विना ९१ की सत्ता, और अन्तिम समय में निद्रा और प्रचला विना ८९ की सत्ता.

सजोगी केवली जौर अयोगी केवलीके-५ ज्ञानावरणीय, ४ दर्शनावरणीय, ५ अंतराय इन १४ प्रकृति विना ७५ की सत्ता. अयोगी केवलीके अन्तिम समय १ पचेन्द्रिय की जाति, १ वेदनी इन २ की सत्ता रहती.

**१३६, बारवा-अध्रुव कर्मसत्ता द्वार**

अध्रुव सत्ताके ४ कर्म:-१ मोहनीय, १ आयुष्य, १ नाम, और १ गौत्र. मिथ्यात्वसे उपशान्त मोह गुणस्थानतक उपशम श्रेणीवालेके चारों कर्मोंकी सत्ता.

अविरति रहे अयोगी केवलीतक क्षपक श्रेणीवाले के मोहनीय विना तीनों की सत्ता.

**१३७, तैरवा-अध्रुव कर्मप्रकृतिसत्ता द्वार**

ध्रुव सत्तामें कही उनसे बाकी रही अध्रुव सत्ताकी २२ प्रकृति:-मिश्रमोहनीय, १ सम्यक्त्व मोहनीय, चारों गतिका आयु-

प्य. ३ तिर्यंवातुपूर्वी विन तर्नीं अनुपूर्वी, १ आहारक शरीर, १ आहारक अंगोपांग, १ आहारक बन्धन, १ आहारक संघातन, १ वैक्रिय शरीर, १ वैक्रिय अंगोपांग, १ वैक्रिय बन्धन, १ वैक्रिय संघातन, १ तीर्थकर नाम, ३ गति, १ ऊंच गौत्र, यह २२.

मिथ्यात्वसे उपशांत मोह गुणस्थानतक २२ कीही सत्ता.

क्षीण मोहसे अयोगी केवलीतक १ मनुज्यायु, १ जिननाम, १ और ऊंचगौत्र, इन ३ की सत्ता.

**१३८, चउदा सर्वघातिक कर्मसत्ता द्वार**

मिथ्यात्वसे उपशांत मोह गुणस्थानतक-सर्व घातिक तीनों कर्मोंकी सत्ता.

क्षीणमोह गुणस्थानमें मोहनीय विना-दो कर्मोंकी सत्ता.

सयोगी अयोगी केवली के सर्व घातिक कर्मोंकी सत्ता नहीं.

**पंदरवा-सर्वघातिक कर्मप्रकृतिसत्ता द्वार.**

मिथ्यात्व से उपशांत मोहगुणस्थानतक उपशम श्रेणीमें सर्व घातिक २० ही प्रकृति की सत्ता.

क्षपक श्रेणीसे अनियत वादर गुणस्थान के पहिले भागतक तो २० ही प्रकृति की सत्ता.

अनिट वादर के दूसरे भागसे सूक्ष्म सम्पगय गुणस्थानतक ३ धीणद्धी त्रिक और १ मिथ्यात्व मोह विना १६ की सत्ता.

क्षीणमोह गुणस्थान के अन्त में-दो निद्रा विना १४ की सत्ता.

सयोगी और अयोगी केवलीके सर्व घातिक की मत्ता नहीं.

**१४०, सालवा-देश घातिककर्म सत्ता द्वार**



यकी २१ मोहनीय, २ आयुष्यकी १३ नामकी, २ गौत्रकी और ५ अन्तरायकी यों १३१ प्रकृतिकी सत्ता.

अविसति से अप्रमत्त गुणस्थानतक क्षपक श्रेणिगत क्षयोप-  
शम सम्यक्त्विके ५ ज्ञानावरणीय की, ९ दर्शनावरणीयकी, २ वेद  
नीय की, २८ मोहनीय की १०४ आयुष्यकी, १३ नामकी, गौत्रकी  
और ५ अन्तरायकी यों १४५ की सत्ता.

अविरति से अनियत बादर के पहिले भागतक-क्षपक श्रेणि  
गत क्षायिक सम्यक्त्विके-५ ज्ञानावरणीय की, ९ दर्शनावरणीयकी,  
२ वेदनीय की, २१ मोहनीय की, १ आयुष्यकी, १३ नामकी, २ गौत्र  
५ अन्तरायकी, १३८ की सत्ता.

अनियत बादर के-दुसरे भागमें ५ ज्ञानावरणीय की ६ दर्शना-  
वरणीयकी, २ वेदनीयकी, २१ मोहनीयकी, १ आयुष्यकी ८० नाम  
की, २ गौत्र की और ५ अन्तरायकी यों १२२ की सत्ता, तीसरे भा-  
गमें मोहनीयकी १३ प्रकृति होनेसे ११४ की सत्ता, चौथे भागमें-मोह-  
नीयकी १२ प्रकृति होनेसे ११३ की सत्ता पांचवे भाग में-मोहनी-  
यकी ११ प्रकृति होनेसे ११२ की सत्ता. छठे भाग में-मोहनीयकी  
प्रकृति होनेसे १०६ की सत्ता, सातवे भागमें मोहनीय की ५ प्रकृ-  
ति होनेसे १०५ की सत्ता.. आठवे भाग में मोहनीयकी ३ प्रकृ-  
ति होनेसे १०४ की सत्ता, और नववे भाग में मोहनीय की २ प्र-  
कृति होनेसे १०३ की सत्ता.

सुक्ष्म सम्पराय में-५ ज्ञानावरणीय की, ९ दर्शनावरणीयकी  
२ वेदनीयकी १ मोहनीयकी १ आयुष्यकी, ८० नामकी २ गौत्र

क्षपक श्रेणि करने वाला निश्चयमे चरम गरीरी होता है. उसने तीनों व-  
निका आयुष्यका क्षय किया फल १ मनुष्यायु सत्ता में है.

की और ५ अन्तरायकी १०२ की सत्ता.

क्षीण मोहमे के प्रथम भाग में—५ ज्ञानावरणीय की ६ दर्शनावरणीय की, १ वेदनीय की, १ आयुष्यकी, ८० नामकी, २ गौत्रकाँ और ५ अन्तरायकी यों १०१ की सत्ता. और दूसरे भागमें—दर्शनावरणीयकी ४ ही प्रकृति पाने से ९९ की सत्ता

सयोगी केवलीमें—२ वेदनीय. १ आयुष्य. ८० नाम. २ गौत्र की यों ८५ की सत्ता.

अयोगी केवली के आद्य भागमें तो उपरोक्त ८५ की ही सत्ता. मध्य भाग में २ वेदनीयकी, आयुष्यकी, और ९ नामकी यों १३ की सत्ता. और अन्तिय भाग में—१ वेदनीयकी १ आयुष्यकी १ नामकी, १ गौत्र की यों १२ की सत्ता.

### १४५, इक्कासवा कर्म व्युच्छति द्वार

मिथ्यात्वसे, उपशान्त मोह गुणस्थानतक कर्मोंकी व्युच्छति नहीं.

क्षीण मोह गुणस्थान में मोहनीय कर्मकी व्युच्छति होती है. सयोगी आयोगी केवली गुणस्थानमें—४ घातिक कर्मकी व्युच्छति

### १४६, बावीसवा-कर्म प्रकृति व्युच्छति द्वार

मिथ्यात्व गुणस्थानमें कर्म प्रकृतिकी व्युच्छति नहीं.

सास्वादन और मिश्रमें—फक्त १ तीर्थकर नाम कर्मकी व्युच्छति. अविरति से अप्रमत्त गुणस्थानतक उपशम श्रेणिगत. उपशम और धयोपशम सम्यक्त्वी के कर्म प्रकृति की व्युच्छति नहीं क्योंकि (पड़ता है.)

अविरति से अप्रमत्त गुणस्थानतक उपशम श्रेणिगत नायि-

क सम्यक्वाची मोहनीय कर्मकी ७ प्रकृति की व्युच्छति और अपूर्व करण से उपशान्त मोहतक ७ मोहनीय की और २ आयुष्य की यों ९ प्रकृति की व्युच्छति होती है।

अविरतिमे अप्रमत्ततक चरम शरीरके ३ आयुष्य की व्युच्छति।

अविरति से अप्रमत्ततक क्षयिक सम्यक्वाची चरम शरीरके-७ मोहनीयकी और ३ आयुष्य की यों १० प्रकृति व्युच्छति।

क्षयक श्रेणिगत-अपूर्व करण और अनियत वादर के प्रथम भागतक उपरोक्तही १० प्रकृति की व्युच्छति। अनियत वादर के दुसरे भाग में-३ दर्शनावर्णीय, ७ मोहनीय, ३ आयुष्य, और १३ नामकी यों २६ की व्युच्छति। तीसरे भागमें मोहनीय की १९ प्रकृति की व्युच्छति होनेसे २४ की व्युच्छति, चौथे भाग में-मोहनीयकी १६ व्युच्छति होनेसे ३९ व्युच्छति, पांचवे भागे मोहनीयकी १७ व्युच्छति होनेसे ३६ की व्युच्छति, छठे भागमें मोहनी-२३ व्युच्छति होनेमें ४० की व्युच्छति सातवे भाग में- मोहनीयकी २४ की व्युच्छति होनेमें ४३ की व्युच्छति, आठवे भागमें मोहनीय की २५ की व्युच्छति होनेमें ४४ की व्युच्छति और नववे भाग में-मोहनीयकी-२६ की व्युच्छति होनेसे ४० की व्युच्छति।

क्षयक श्रेणिगत सूक्ष्म सम्पगयमें ३ दर्शनावर्णीय, २७ मोहनीय, ३ आयुष्य, और १३ नामकी यों ४६ की व्युच्छति।

श्रेणि मोहके प्रथम भागमें ३ दर्शनावर्णीय, २८ मोहनीय ३ आयुष्य, १३ नामकी यों ४७ की व्युच्छति, और दूसरे भाग में दर्शनावर्णीयकी ५ की व्युच्छति होनेमें ४९ की व्युच्छति।

मयोर्गी केवर्लीके ५ ज्ञानावर्णीय, ९ दर्शनावर्णीय, २८ मोहनीय, ३ आयुष्य १३ नाम, और ५ अन्नगय यों ६३ की

व्युच्छति.

७

अयोगी केवलीकी प्रथम भागमें तो उपरोक्त ६३ कीही व्युच्छति मध्य भागमें ५ ज्ञानावरणीय, ९ दर्शनावरणीय, २८ मोहनीय, ३ आयुष्य, ८४ नाम और ५ अन्तराय यों १३४ की व्युच्छति और अन्तिम भागमें ५ ज्ञानावरणीय, १ वेदनीय, २८ मोहनीय, ८४ नामकी १ गौत्रकी और ५ अन्तरायकी यों १३० की व्युच्छति होती है.

फिर बाकी रही १३ ही प्रकृति यों को शुक्लध्यान के चौथे पाये रूप प्रबल ज्वाला में भस्मी भूत कर अर्थात् सर्व कर्मोंकी सर्व प्रकृतियों का सर्वथा प्रकारसे सर्वांश क्षय कर साकार उपयोग युक्त सहजानन्द अवस्था को प्राप्त होते हैं.

इति कर्मसत्ता नामक पञ्चम प्रकरण समाप्तम्

## षष्ठम् प्रकरणम् - कर्मभङ्ग द्वार.

१ समुचयकर्म भङ्गद्वार, २ ज्ञानावरणीय भङ्गद्वार, ३ दर्शनावरणीय भङ्गद्वार, ४ वेदनीय भङ्गद्वार, ५ मोहनीय भङ्गद्वार, ६ आयुष्य भङ्गद्वार, ७ नाम भङ्गद्वार, ८ गौत्र भङ्गद्वार, ९ अन्तराय भङ्गद्वार, १० बन्धिके भङ्गद्वार, और ११ इर्यावही भंगद्वार.

## १४७, पहिला समुचय कर्म भंग द्वार

मिथ्यात्व, सास्वदन, अविरति, देशविरति, प्रमत्त इन ६ गुणस्थानोंमें १ आयुबन्ध के वक्त तो ८ कर्मोंका बन्ध, ८ हीका उदय और ८ हीकी सत्ता. यह भांगा पाता हैं (२) और आयुबन्ध न होवे उसवक्त ७ कर्मोंका बन्ध ८ का उदय और ८ की सत्ता.



सयोगी और अयोगी केवली के ज्ञानावरणीय का बन्ध, उदय, सत्ता, तीनोंही नहीं.

## १४९ तीसरा-दर्शनावरणीय कर्मभंगद्वार

मिथ्यात्व और सास्वादन गुणस्थानमें (१) एकाकबन्ध, ४ का उदय, और ९ की सत्ता. (२) ९ का बन्ध, ५ का उदय और ९ की सत्ता यह दो भाङ्गे पाते हैं.

मिश्र गुणस्थान से अनियत वादर के प्रथम भाग तक (१) धीणद्धीत्रिक विना, ६ का बन्ध, ४ का उदय, और ९ की सत्ता. और (२) ६ का बन्ध, ५ का उदय और ९ की सत्ता यह दो भाङ्गे पाते हैं.

अनियत वादर के आठों भागमें और सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानमें उपशम श्रेणीमें निद्रा प्रचला का बन्ध विना (१) ४ का बन्ध, ४ उदय और ९ की सत्ता. (२) ४ का बन्ध, ५ का उदय, और ९ की सत्ता यह दो भाङ्गे पाते हैं.

अनियत वादर और सूक्ष्म सम्पराय के क्षपक श्रेणि में ४ का बन्ध, ४ का उदय, और ६ की सत्ता यह १ भङ्गा पावे.

उपशान्त मोह गुणस्थान में बन्ध के अभाव से (१) चार का उदय, और ९ की सत्ता, तथा ५ का उदय, और ९ की सत्ता यह दो भाङ्गे पावे.

क्षीण मोह गुणस्थान के द्वी चरम समय में ४ का उदय और ६ की सत्ता और अन्तिम समयमें दोनों निद्राकी सत्ता टलनेसे ४ का उदय, और ४ कीही सत्ता यह २ भाङ्गे.

सयोगी और अयोगी केवली के दर्शनावरणीय का बन्ध,



मिश्र गुणस्थानमें १७ का बन्धस्थान है, जिसके भांगे दो होते हैं. और ७ का, ८ का, और ९ का यह तीन उदयस्थान हैं. जिसके भाङ्गे की चौबीसी ५ होती है.

अविरति गुणस्थानमें १७ का बन्धस्थान है. जिसके भाङ्गे २ होते हैं, और ६ का, ७ का, ८ का ९ का यह चार उदयस्थान है, जिसके भाङ्गे की चौबीसी ४ होती है.

देशविरति गुणस्थानमें १३ का बन्धस्थान है, जिसके भाङ्गे दो होते हैं. और ५ का, ६ का, ७ का, और ८ का. यह ४ उदय स्थान है. जिसके भाङ्गे की चौबीसी ८ होती है.

प्रमत्त गुणस्थानमें ९ का बन्धस्थान है. जिसके भाङ्गे दो होते हैं. और ४ का, ५ का, ६ का, और ७ का, यह ४ उदय स्थान हैं. जिसके भाङ्गे की चौबीसी ८ होती है.

अप्रमत्त गुणस्थानमें-३ का बन्ध स्थान. जिसका भाङ्गा १ होता है. और ४ का, ५ का, ६ का, और ७ का यह ४ उदय स्थान, है जिसके भांगे की चौबीसी ८ होती है.

अपूर्व करण गुणस्थानमें-३ का बन्ध स्थान. जिसका भाङ्गा १ और ४ का, ५ का, ६ का यह तीन उदयस्थान जिसके भांगे चौबीसी ४ होती है.

अनियत वादर गुणस्थानमें-४ का, ४ का, ३ का, २ का, और

× चौबीसी बनानेकी नीति रीति-होम्स और रतिके युगल में नीनों वेदके तीन भाङ्गे, तैमही शोक अरति के युगल में तीन वेदके तीन भाङ्गे करने में ३ भाङ्गे होते हैं. यह ६ जोधने, ६ मानने, ६ मारने, और ६ लोभने. यों २४ भाङ्गे होवे सो १ चौबीसी विगेष जुलाना अर्थ बाँट में देखावे.

+ यहाँ में आगे अगति और शोक इन युगल का अभाव होता है. इनलिये १ ही भांग पाना है.



१ का यों ५ बन्ध स्थान होते हैं. जिसके ५ भांगे अलग अलग होते हैं. और १ का, तथा २ का, यह दो उदय स्थान हैं, जिसमें संज्वलकी चारों कषायोंमें की १ कषाय, और तीनों वेदों में का १ वेद, इन दोनों का उदय होता है. यों चारों कषायों को तीनों वेदों से ती गुणे करने से १२ भांगे होते हैं. और फिर वेद का उदय टलने से एक का उदय स्थान रहता है. सो चौ विध, त्रिविध द्विविध, और एक विध, यों १० उदयके भांगे होते हैं. तोभी यहां सा मान्य विविक्षासे-४-३-२ और १ इन चारों बन्ध स्थानकी अपेक्षासे एकेक ही भांगा गिननेसे चारही भांगे कहने, यों यहां १६ भांगे होते हैं.

सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान में-मोहनीय कर्म का बन्ध नहीं होता है फक्त एक कीटीकृत संज्वल का लोभही का उदय है, जिसका एक ही भांगा पाता है.

उपशांत मोहसे अयोगी केवलीतक मोहका लवलेशही नहीं है.

मोहनीयके सर्व भाङ्गों की संख्या:-मिथ्यात्व, अविरति, देशविरति, प्रमत्त और अप्रमत्त, इन पांचों गुणस्थानों में-भाङ्गों की आठ आठ चौबीसी हैं, और सास्वादन, मिश्र और अपूर्व करण इन तीनों गुणस्थानों में चार चार चौबीसी हैं, सब १२ चौबीसी हूँ जिसके भाङ्ग ५२ × २४ = १२४८ होते हैं. और अनियत बादरके १६ भाङ्ग, सूक्ष्म सम्परायका एक भाङ्गा यह १७ और पहलेके १२४८ मिलकर १२६५ मोहनी के भांगे होते हैं.

## १५२, छठा आयुष्य कर्म भंग द्वार

आयुष्य कर्मके भाङ्गोंके खुलासेके लिये देखीये अर्थ कांडका पृष्ठ २४१ वा.

आयुष्य कर्म के २८ भांगे:—' नरकायुका बन्ध, नरकायुका, उदय. २ तिर्यंचायुका बन्ध, नरकायुका उदय, ३ मनुष्यायुका बन्ध नरकायुका उदय, ४ नरकायुका उदय, और नरक तिर्यंचायुकी सत्ता. ५ नरकायुका उदय और नरक मनुष्यकी सत्ता.

ऊपर जिस तरह नरकायु के ५ भांगे किये, तैसे ही देवायु के भी ५ भांगे जानना. विशेष इतनाही की नरकायु के स्थान देवायु कहना. यों दोनों गति के १० भाङ्गे हूँ.

१ तिर्यंचायुका उदय, और तिर्यंचायुकी सत्ता. २ तिर्यंचायुका बन्ध तिर्यंचायुकी सत्ता, ३ मनुष्यायुका बन्ध, तिर्यंचायुका उदय, ४ देवायुका बन्ध, तिर्यंचायुका उदय, ५ नरकायु का बन्ध, तिर्यंचायुका उदय और नरकायु. तिर्यंचायु दोनों की सत्ता. ६ एक तिर्यंचायुका उदय, और दो तिर्यंचायुकी सत्ता. ७ तिर्यंचायु का उदय और तिर्यंचायु मनुष्यायु की सत्ता. ८ तिर्यंचायुका उदय. और तिर्यंचायु देवायु की सत्ता. और ९ तिर्यंचायुका उदय और तिर्यंचायु नरकायु की सत्ता.

ऐसे ९ ही भांगे मनुष्यायुके कहना. यों सब २८ भांगे आयुष्य के होते हैं.

मिव्यात्व गुणस्थान में २८ ही भांगे पाते हैं. क्योंकि चारोंही गति में मिव्यात्व गुणस्थान पाता है. और मिव्यात्वा चारों ही गति के आयुष्य का बन्ध करता है.

सास्वादत गुणस्थान में नरकायु बन्ध न होनेसे तिर्यंच तथा मनुष्य के आयुर्वन्ध काल अवस्थाके दो भांगे बिना २६ भांगे पाते हैं. भिन्न गुणस्थान में यहाँ किन्हींभी गतिको आयुर्वन्ध न होनेके नववसे-बन्ध काल अवस्थाके देवता के दो. नरक के दो. मनुष्यके चार



और अपूर्व करण से अयोगी केवली गुणस्थान तक क्षपक श्रेणिवाले के मनुष्यका उदय, मनुष्यायु की सत्ता यह १ ही भां-  
गा पाता है.

## १५३, सातवा नाम कर्म भंग द्वार

मिथ्यात्व गुणस्थान में बन्धस्थान ६ जिसके भांगे १३९२६  
उदयस्थान ९ जिसके भांगे ७७७३ सत्ताके स्थान ६ जिसके स्था-  
न २१२.

सास्वादन गुणस्थान में बन्धस्थान ३ जिसके भांगे ९६०८  
उदयस्थान ७ जिसके भांगे ४०९७, और सत्ताके स्थान २ जिस-  
के स्थान १८ होते हैं.

प्रिश्र गुणस्थान में बन्धस्थान २, जिसके भांगे १६, उदय  
स्थान ८ जिसके भांगे ४०९७, और सत्तास्थान २, जिसके स्थान  
६ होते हैं.

अविरति सम्यक दृष्टि गुणस्थान में बन्धस्थान ३, जिसके  
भांगे ३२, उदयस्थान ८ जिसके भांगे ५२, और सत्तास्थान ४ जिस-  
के स्थान ५४ होते हैं.

देशविरति गुणस्थान में बन्धस्थान २ जिसके भांगे १६, उ-  
दयस्थान ६ जिसके भांगे ५९, और सत्तास्थान ४ जिसके स्थान  
२२ होते हैं.

प्रमत्त गुणस्थान में बन्धस्थान २ जिसके भांगे १६, उदय  
रते हैं. आयुबन्ध वाले क्षपक श्रेणी नहीं करते हैं क्योंकि वो निश्चयम में मोक्ष गाभी  
ही होते हैं.

६५३ नाम कर्म के भाङ्गे के खुल्लोते के लिये देखीये अर्थ काण्डका पृष्ठ २४३ वे भे-  
तया पृष्ठ २६२ वेमे.

स्थान ६ जिसके भांगे ३१६ और सत्तास्थान ४ जिसके स्थान २० होते हैं।

अप्रमत्त गुणस्थानमें बन्धस्थान २ जिसके भांगे ४ उदयस्थान ४ जिसके भांगे ०९० और सत्तास्थान ४ जिसके स्थान ८ होते हैं।

अपर्व करण में बन्धस्थान १, जिसके भांगे ८, उदयस्थान १ जिसके भांगे ३६० और सत्तास्थान ४ जिसके स्थान ८ होते हैं।

अनियद्ग वादरमें बन्धस्थान १ जिसके भांगे १, उदयस्थान १ जिसके भांगे ९६ और सत्तास्थान ८ जिसके स्थान ४ होते हैं।

मध्य मम्पगयमें बन्धस्थान १ जिसके भांगे १, उदयस्थान १ जिसके भांगे ९६ और सत्तास्थान ८ जिसके स्थान ४ होते हैं।

उपस्थान मोहमें बन्ध स्थान नहीं, उदय स्थान १ जिसके भांगे ७०, और सत्ता स्थान ४, जिसके स्थान ४ होते हैं।

क्षीण मोहमें बन्ध नहीं, उदय स्थान १, जिसके भांगे २४ और सत्ता स्थान ४, जिसके स्थान ४ होते हैं।

मयांगी केवल्याके बन्ध नहीं, उदय स्थान ८, जिसके भांगे ६०० और सत्ता स्थान ४, जिसके स्थान ४ होते हैं।

अयांगी केवल्याके बन्ध नहीं, उदयस्थान २, जिसके भांगे ० और सत्ता स्थान ८, जिसके भांगे ३ होते हैं। ॥

## ॥ आठवा-गौत्र कर्मभङ्ग बार.

स्मृत्यान्वये-(१) नीच गौत्र का बन्ध, नीच का उदय, और नीचकी सत्ता. (२) नीचका बन्ध, और नीच ऊँच दोनों की

॥ इति नारद उवाच ॥ सर्वं जगत्कर्म फलदायकं ॥ सर्वं कर्म यत् सिद्धयै न हि ॥

॥ इति नारद उवाच ॥ सर्वं जगत्कर्म फलदायकं ॥ सर्वं कर्म यत् सिद्धयै न हि ॥

सत्ता. (३) नीचका बन्ध, ऊंचका उदय, और दोनों की सत्ता. (४) ऊंचका बन्ध, नीचका उदय, और दोनों की सत्ता. (५) ऊंचका बन्ध, ऊंचका उदय, और दोनों की सत्ता. यह पांच भांगे पाते हैं.

सास्वादनमें-ऊपरोक्त पांच भांगमें से प्रथम भांगा छोड़कर ॥वाकी के ४ भांगे पाते हैं.

मिश्र अविरति. और देशविरति इन तीनों गुणस्थानमें नीच गौत्रके बन्धके अभावसे चौथा और पांचवा दोनों भांगे पाते हैं.

प्रमतसे सूक्ष्म सम्परायतक-(१) ऊंचका बन्ध. ऊंचका उदय और दोनों की सत्ता यह एकही भांगा पाता है.

उपशान्त मोहसे सयोगी केवलीतक-बन्धके अभावसे-ऊंचका उदय. और दोनों की सत्ता यह छठा भांगा पाता है.

अयोगी केवली गुणस्थानमें-(१) ऊंच का उदय और दोनों की सत्ता यह छठा भांगा द्विचरम समय पर्यंत पाता है. (२) और ऊंचका उदय ऊंचकी सत्ता यह सातवा भांगा चरम समय में पाता है.

## १५५, नववा-अन्तराय कर्मभङ्ग द्वार.

मिथ्यात्व से लगाकर सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानतक अन्तरायकी पांचों प्रकृतिका बन्ध. पांचों का उदय. और पांचों की सत्ता. ये १ भांगा पाता है.

\* नीचका बन्ध. नीच का उदय और नीचकी मत्ता फल तेज काय और वायुका यमें होती है. और तेज वायुमें चनेवाड़ दुनरे स्थान अवतरते किननेक काल तक पाता है. और तेज वायु में मन्थकत्व देही नहीं तो पडवाड़ होवे कशमें डमलिये यह पहिला भांगा नहीं पाता है.

\* अन्तराय कर्मके भांगके खुलानेके लिये देखीये अर्थ कांड का पृष्ठ २८१ वा

उपशान्त मोह और क्षीण मोह गुणस्थान में-बन्ध के अभावसे-पाँचोंका, उदय, और पाँचोंकी सत्ता. यह १ भांगा पाता है.

सयोगी अयोगी केवलके अन्तराय का बन्ध उदय सत्ता तीनों नहीं.

## १५६, दशवा-बन्धीके भंग द्वार

बन्धी के भंग चारः-बन्धी, बन्धति बन्धेति, २ बन्धि, बन्धन्ति, नबन्धेति, ३ वस्वि, नबन्धे, नबन्धेति, और ४ नबन्धि, नबन्धे, नबन्धेति.

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, नाम गौत्र, और अन्तराय इन ५ कर्तों आश्रिय.

मिथ्यात्वसे मृग्य सम्पराय गुणस्थानतक-पहिला और दूसरा दो भागे पावे, उपशान्त मोहमेंपडवाइ होता है इसलिये तीसरा भांगा पावे. और उपशान्त मोहसे अयोगी केवलीतक एक चौथा भांगा पाता है.

वेदनीय कर्मा आश्रिय-मिथ्यात्वसे सयोगी केवली गुण स्थानतक पहिलेके दो भागे पावे, और अयोगी केवली के-१ चौथा भांगा पाता है.

मोहनीय कर्म आश्रिय-मिथ्यात्वसे अनियत बादर गुणस्थानतक पहिलेके दो भागे पावे, मृग्य सम्पराय में-उपशान्त श्रेणि वालों के नामग, और क्षयक श्रेणिवाले के चौथा भांगा पावे, उपशान्त

= बन्धी-गये काल में बन्धन किया. बन्धन्ति वर्तमान में बन्धे मो, बन्धेति भूतकाल में बन्धे मो.

बन्धिके भाइके मृग्यमेके श्रिये देदीये अर्थ कांटका पृष्ठ ८१ वा

मोहमें पडवाइ होता है सो तीसरा भांगा पावे. और क्षीण मोहसे अयोगी केवलीतक १ चौथा भांगा पाता है.

आयुष्य कर्म आश्रित्य-मिथ्यात्व, सास्वादन, अविरति, देशविरति, और प्रसन्न इन ५ गुणस्थानों में-चारों ही भांगे पावे. मिश्र में-आयु बन्ध के अभावसे तीसरा और चौथा भांगा पावे. अप्रसन्न से उपशान्त मोहतक-तीसरा और चौथा दो भांगे पावे. क्षीण मोह से अयोगी केवलीतक-एक चौथा भांगा पावे.

### १५७. इर्यारवा इर्यावहीके भंग द्वार

इर्यावहीके भांगे ८:-१ वन्धि. वन्धन्ति. वन्धेति. २ वन्धि. वन्धन्ति. नवन्धेति. ३ वन्धि. नवन्धन्ति. वन्धेति ४ वन्धि. नवन्धन्ति. नवन्धेति. ५ नवन्धि. वन्धन्ति. वन्धेति. ६ नवन्धि. वन्धन्ति. नवन्धेति. ७ नवन्धि. वन्धन्ति. वन्धेति. और ८ नवन्धि. नवन्धन्ति. नवन्धेति-इनमें से:-

मिथ्यात्व गुणस्थानमें-तीसरा. सातवा. और आठवा भांगा पावे. सास्वादनमें सुषम संप्रगयतक-तीसरा और सातवा भांगा पावे. उपशान्त मोह गुणस्थान में-पाहिला और पांचवा भांगा पावे. क्षीण मोह और सयोगी केवली में-एक द्वादश भांगा पावे. और अयोगी केवली गुणस्थान में-एक चौथा भांगा पावे.

इति कर्म भंग नामक-पट्टन प्रकरण नामक समाप्त.



## सप्तम प्रकरणम भावादि द्वार\*

भावादि १३ द्वारों के नाम.

१ मूल भावद्वार, २ औदयिक भावद्वार, ३ उपशमिक भावद्वार. ४ क्षयोपशमिक भावद्वार, ५ क्षायिक भावद्वार, ६ परिणामिक भावद्वार, ७ सन्नीवाइ भावद्वार, ८ समुचय भावद्वार, ९ श्रेणि द्वार, १० कर्मवेदे द्वार. ११ कर्मनिर्ज्जरा द्वार, १२ दशकरण द्वार, और १३ निर्ज्जरा वृद्धिद्वार.

### १५८, पहिला मूल भाव द्वार

मूल भाव ५ हैं:—१ औदयिक, २ उपशमिक, ३ क्षयोपशमिक, ४ क्षायिक, और ५ परिणामिक इनमें से.

मिथ्यात्व, सास्वादून और मिश्र इन तीन गुणस्थानों में १ औदयिक, २ क्षयोपशमिक, और ३ परिणामिक. यह ३ भाव पाते हैं. अविरति से अप्रमत्त गुणस्थानतक क्षयोपशमिक सम्यक्त्वी में १ औदयिक, २ क्षयोपशमिक, और ३ परिणामिक, यह ३ भाव पाते हैं. क्षायिक सम्यक्त्वी में-क्षायिक भाव बढ़ने से चार भाव पावे. और उपशमि सम्यक्त्वीमें भी चारही भाव पावे फक्त क्षायिके स्थान उपशम कहना.

अपूर्व करण गुणस्थान में-क्षायिक सम्यक्त्वी के-उपशमिक विना चार भाव पावे, उपशम सम्यक्त्वी के-क्षायिक विना चार भाव पावे और सर्व जीवों आश्रित पांचों भाव पाते हैं.

अनियट वादर से उपशान्त मोह गुणस्थान तक-उपशम स

पांच भाव के खुलासे के लिये देखीये अर्थ कांडका पृष्ठ २७२ वा

म्यक्त्विके क्षायिक विना चार भाव पावे. और क्षायिक सम्यक्त्विके पांचों भाव पावे.

क्षीण मोह गुणस्थानमें-उपशमिक विना चार भाव पावे. सयोगी और अजोगी केवली गुणस्थान में-१ औदयिक, २ क्षायिक. और ३ परिणामिक यह ३ भाव पावे.

सिद्ध भगवंत में क्षायिक और परिणामिक दो भाव पावे

### १५२. दुसरा औदयिक भाव द्वार

औदयिक भाव के २१ भेद:-४ गति, ४ कपाय, ३ लेश्या, ३ वेद, १ भिष्यात्व, १ अविरति, १ अज्ञान, और १ असिद्ध.

भिष्यात्व गुणस्थान में-औदयिक भाव के २१ ही भेद पावे.

सास्वादन गुणस्थान में-भिष्यात्व और अज्ञान विना १२ भेद पावे.

मिश्र गुणस्थान में-भिष्यात्व विना २० भेद पावे.

अविरति गुणस्थान में-अविरत विना २१ भेद पावे.

देशविरति गुणस्थानमें-१ देवगति, १ नरकगति विना १७ भेद पावे

प्रमत में-१ तिर्यचगति. १ असंयम विना १९ भेद पावे.

अप्रमत में-३ तीनों अशुभ लेश्या विना १२ भेद पावे.

अपूर्व करण और अनियट वादरमें-१ तेजु, १ पद्म लेश्या विना १० भेद पावे.

सूक्ष्म सम्पराय में-३ वेद ३ कपाय विना ४ भेद पावे.

ऊपशान्त मोहसे सयोगी केवलीतक-लोभ विना ३ भेद पावे.

अयोगी केवली गुणस्थान में-शुद्ध लेश्या विना २ भेद पावे.

### १६०. तीसरा उपशमिक भाव द्वार

उपशमिक भावके २ भेद:-१ उपशम सम्यक्त्व और उपशम चारित्र मिथ्यात्वसे मिश्र गुणस्थानतक उपशमिक भाव नहीं.

अविरति और देशविरति गुणस्थानमें-एक उपशम सम्यक्त्व.

प्रमत्तमे उपशान्त मोह गुणस्थान तक दोनों भेद पाते हैं.

धीण मोहमे अयोगी केवली गुणस्थानतक-उपशम भाव नहीं.

## १६१. चौथा क्षयोपशमिक भाव द्वार

क्षयोपशमिक भावके १८-भेद-४ ज्ञान, ३ अज्ञान, ३ दर्शन, ५ अन्नगाय. १ क्षयोपशम सम्यक्त्व और १ क्षयोपशम चारित्र. १ संयमा संयम.

मिथ्यात्व और मिश्र गुणस्थानमें-५ लब्धि, ३ ज्ञान, ३ दर्शन, यह ११ भेद पावे.

साम्यादन गुणस्थान में-५ लब्धि, ३ दर्शन यह ११ भेद पावे.

अविरति गुणस्थान में १ क्षयोपशम सम्यक्त्व बढ़ने में १२ भेद पावे.

देशविरति गुणस्थान में संयमा संयम बढ़नेमें १३ भेद पावे.

प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थान में संयमा संयम बढ़ाना और १ मतपर्यवज्ञान तथा क्षयोपशम चारित्र बढ़ानेमें १४ भेद पावे.

अपूर्व कर्म से उपशान्त मोह गुणस्थान तक १ क्षयोपशम सम्यक्त्व और क्षयोपशम चारित्र इन दो बिना १२ भेद पावे.

धीणमोह मे अयोगी केवली तक क्षयोपशम भाव नहीं है.

## १६२. पांचवा-क्षायिक भाव द्वार.

क्षायिक भाव के ११ भेद १ क्षायिक लब्धि, १ केवल ज्ञान, १ केवल दर्शन, १ क्षायिक सम्यक्त्व और १ क्षायिक यथस्थान चारित्र

मिथ्यात्व से मिश्र गुणस्थान तक क्षायिक भाव नहीं। अव्र-  
ति से उपशान्त मोह गुणस्थान तक १ क्षायिक सम्यक्त्व क्षीणमो-  
ह गुणस्थान में १ क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक चरित्र २ भेद पावे।

सयोगी केवली और अयोगी केवली गुणस्थान में ९ ही  
भेद पाते हैं।

सिद्ध भगवन्त में १ केवल ज्ञान, २ केवल दर्शन, और ३  
क्षायिक सम्यक्त्व यह ३ भेद ३ पावे।

### १६३, छठा परिणामिक भाव द्वार.

परिणामिक भावके ३ भेद १ जीवत्व, १ भव्यत्व, १ अभव्यत्व  
मिथ्यात्व गुणस्थान में तीनों भेद पाते हैं।

सास्वादन से अयोगी केवली तक १ जीवत्व, १ भव्यत्व,  
यह २ भेद पावे।

### १६४, सातवा सत्री पातिक भाव द्वार

मिथ्यात्व सास्वाद और मिश्र गुणस्थानों में उदयिक अयो-  
पशमिक और परिणामिक यह त्रिसंयोगीक मूल १ भागा पाताहै।  
और इसको अलग २ चारों गति में गिनने से उत्तर सत्रीपातिक  
भांगे चार होते हैं।

अविरति गुणस्थान में (१) उदयिक, अयोपशमिक, परि-  
णामिक. यह १ त्रि संयोगी (२) उदयिक. उपशमिक, अयोपशमि  
परिणामिक यह १ चतु संयोगी (३) उदयिक. अयोपशमिक, परि  
णामिक. यह चतु संयोगी. यों मूल तीन भांगे पाते हैं. और इन  
तीनों को चारों गति से चौगुने करने से उत्तर भांगे १० होते हैं.

= ९वे और १०वे गुणस्थानमें-आयिक चारित्र किननेक आचार्य नहीं भी मानतेहैं-

देशविरति गुणस्थान में अविरति गुणस्थान के जैसेही मूल भांगे तो तीनों पाते ही हैं. और इन तिर्यच मनुष्य गतिसे दुगुने करते उत्तर भांगे ६ होते हैं.

प्रमत और अप्रमत गुणस्थान में एक मनुष्य गति आश्रय तीनों भांगे पाते हैं.

अपूर्व करण से उपशान्त मोह तक उपशम श्रेणिवाले के (१) उदयिक, उपशमिक, क्षयोपशमिक, परिणामिक, यह १ चतुसंयोगी भांगा पाता है. और क्षपक श्रेणिवाले के (१) उदयिक, क्षयोपशमिक, क्षायिक, परिणामिक, यह १ चतुसंयोगी भांगा. और समुचय सर्व जीवों आश्रय, उदयिक, उपशमिक, क्षयोपशमिक क्षायिक, और परिणामिक यह १ पंच संयोगी भांगा पाता है.

और क्षीण मोह से अयोगी केवली तक उदयिक, क्षायिक परिणामिक, यह १ त्रि संयोगी भांगा पाता है.

१ मिथ्यात्व गुणस्थान में १ ओदयिक भावके २१ भेद, २ क्षयोपशमिक भाव के ११ भेद, और ३ परिणामिक भावके ३ भेद, यों तीनों भावों के ३५ भेद पावे.

२ माम्बादन गुणस्थान में १ ओदयिक भावके १० भेद, २ क्षयोपशमिक भावके ११ भेद, ३ और परिणामिक भावके २ भेद, यों तीनों भावों के ३२ भेद पावे.

३ मिथ्र गुणस्थान में-१ ओदयिक भाव के-२० भेद, २ क्षयोपशमिक भावके ११ भेद, ३ परिणामिक भावके-२ भेद. यों तीनों भावोंके ३३ भेद पावे.

४ अविरति गुणस्थान में-१ ओदयिक भाव के १० भेद, २ ओपशमिक भाव का १ भेद, ३ क्षायिक भावका १ भेद, ४ क्षयो-

पशुभिक भावके १२ भेद, और ५ परिणामिक भाव के दो भेद, यों पांचों भाव के ३५ भेद पावे.

५ देशविरति गुणस्थानमें-१ औदयिक भावके १७ भेद, २ ओपशुभिक भावका १ भेद, ३ क्षायिक भावका १ भेद, ४ क्षयोपशुभिक भावके १३ भेद, और ५ परिणामिक भावके २ भेद, यों पांचों भावके ३४ भेद पावे.

६ प्रमत्त संयति गुणस्थानमें-१ औदयिक भावके १५ भेद, २ औपशुभिक भावके २ भेद, ३ क्षायिक भावका १ भेद, ४ क्षयोपशुभिक भावके, ११ भेद, और ५ परिणामिक भाव के २ भेद, यों पांचों भावोंके ३४ भेद पावे.

७ अप्रमत्त संयति गुणस्थान में-१ औदयिक भावके १२ भेद, २ उपशुभिक भावके २ भेद, ३ क्षायिक भावका-१ भेद, ४ क्षयोपशुभिक भावके १२ भेद, और ५ परिणामिक भावके २ भेद यों पांचों भावोंके-३० भेद पावे.

८ अपूर्व करण गुणस्थान में-१ औदयिक भावके १० भेद, २ ओपशुभिक भावके २ भेद, ३ क्षायिक भावका १ भेद, ४ क्षयोपशुभिक भावके १२ भेद और ५ परिणामिक भावके २ भेद, यों पांचों भावोंके २७ भेद पावे.

९ अनियत वादर गुणस्थान में-१ औदयिक भावके १० भेद, २ ओपशुभिक भाव के २ भेद, ३ क्षायिक भावका १ भेद, ४ क्षयोपशुभिक भाव के १२ भेद और ५ परिणामिक भाव के २ भेद यों पांचों भावोंके-२७ भेद पावे.

१० सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानमें-१ औदयिक भाव के ४ भेद, २ उपशुभिक भावके २ भेद, ३ क्षयोपशुभिक भाव के १२ भेद, ४

क्षायिक भावका १ भेद, और ५ परिणामिक भाव के २ भेद यों पाँचों भावोंके २१ भेद पावे.

११ उपशान्त मोह गुणस्थान में-१ औदायिक भाव के-३ भेद, २ ओपशमिक भावके २ भेद, ३ क्षयोपशम शामिक भाव के १२ भेद, ४ क्षायिक भावका १ भेद, और ५ परिणामिक भाव के २ भेद यों पाँचों भावोंके २० भेद पावे.

१२ क्षीण मोह गुणस्थान में-१ औदायिक भाव के ३ भेद, २ क्षायिक भावके २ भेद, ३ क्षयोपशमिक भावके १२ भेद, और ४ परिणामिक भावके दो भेद यों चारों भावोंके १९ भेद पावे.

१३ सयोगी केवली गुणस्थान में-१ औदायिक भावके ३ भेद, २ क्षायिक भाव के ९ भेद, ३ परिणामिक भावके २ भेद, यों तीन भावके १४ भेद पावे.

१४ अयोगी केवली गुणस्थान में १ औदायिक भावके २ भेद, २ क्षायिक भावके ९ भेद, ३ परिणामिक भावके २ भेद, यों तीनों भावके १३ भेद पावे.

## १६६, नववा श्रेणि द्वार

श्रेणी दो-१ उपशम श्रेणी, और २ क्षपक श्रेणी.

भिथ्यात्व गुणस्थान से अप्रमत गुणस्थानतक क्षयोपशम सम्यक्त्व होनेसे श्रेणी नहीं करते हैं.

अपूर्व करण सुक्ष्म सम्पराय गुणस्थानतक दोनों श्रेणी करते हैं.

उपशान्त मोह गुणस्थान में-१ उपशम श्रेणी.

क्षीण मोह गुणस्थान में-१ क्षपक श्रेणी.

= कितनेक स्थान सयोगी अयोगी केवली गुणस्थान में भव्यत्व पणा नही लिया  
 १३३ श्रेणिद्वार के खुलासेके लिये देखीये अर्थ कांड का पृष्ठ १६ वा-

सयोगी अयोगी केवली गुणस्थान में-श्रेणी नहीं है.

## १६७, दसवा कर्म वेदे द्वार

मिथ्यात्वसे सूक्ष्म सप्तराय गुणस्थानतक आठोंही कर्म वेदतेहैं.  
उपशान्त मोह और क्षीण मो गुणस्थानमें-मोहनीय विना ७कर्म वेदे  
सयोगी और अयोगी केवली गुणस्थानमें, १ वेदनीय, २ अगुण्य  
= नाम. और ४ गौत. इन चारों कर्मोंको वेदते हैं.

## १६८. इग्यारवा कर्म निज्जरा द्वार

मिथ्यात्वसे उपशान्त मोह गुणस्थानतक आठों कर्मोंकी निज्जराहै  
क्षीणमोह गुणस्थानमें-मोहनीय विना सात कर्मोंकी निज्जरा.  
सयोगी अयोगी केवली गुणस्थानमें-अपरोक्त चारों कर्मोंकी निज्जरा

## १६९, बाखा-दशकरण द्वार.

दश करणके नाम-१ वन्ध करण, २ उत्कर्ष करण, ३ संक्र-  
मण करण, ४ अपकर्षण करण, ५ उदीरणा करण, ६ सत्ता करण  
७ उदय करण, ८ उपशान्त करण, ९ निधित करण, और १०नि-  
कचित करण.

मिथ्यात्व गुणस्थानसे-अपूर्व करण गुणस्थानतक-१०ही करण पावे.  
अनियद्व वादर और सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानमें-पाहिलेके ७करण पावे  
उपशान्त मोहसे अयोगी केवलीतक-सत्ता और उदय यह दो करणपावे

## १७०, तेखा-गुण श्रेणी द्वारा

१ आयु कर्म विना सात कर्मोंकी निज्जरा-मिथ्यात्व और मिश्रसे



अविरति सम्यक्त्वीके असंख्यात गुण अधिक होती है.

२ इनसे देशविरतिके असंख्यात गुण अधिक निर्ज्जरा.

३ इनसे-प्रमत संयतिके असंख्यात गुण अधिक थिर्ज्जरा.

४ इनसे-अनन्तालबन्धि चौक बिसं जोजी जीवके असंख्यात गुणी निर्ज्जरा.

५ इनमे-क्षाधिक सम्यक्त्वी के असंख्यात गुणी निर्ज्जरा.

६ इनमे-उपशम श्रेणी वालेके असंख्यात गुणी निर्ज्जरा.

७ इनमे-उपशान्त कपाय वालेके असंख्यात गुणी निर्ज्जरा.

८ इनमे-अपक श्रेणी वाले के असंख्यात गुणी निर्ज्जरा.

९ इनमे-क्षीण कपाय वालेके असंख्यात गुणी निर्ज्जरा.

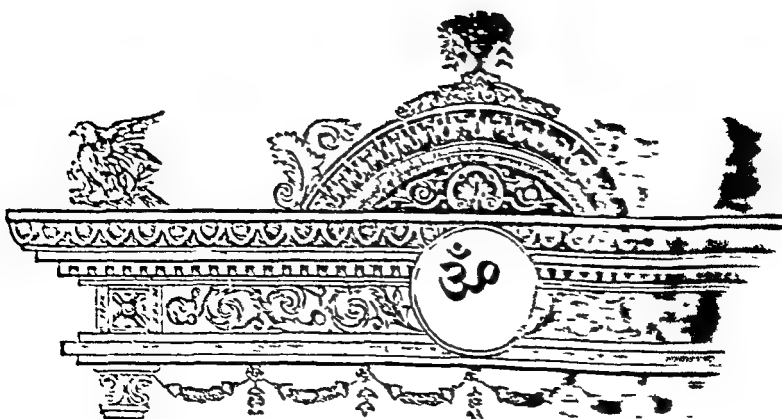
१० इनमे-मयोंगी केवली के असंख्यात गुणी निर्ज्जरा.

और ११ इनमे-अयोंगी केवलीके असंख्यात गुण अधिक निर्ज्जरा.

पुनः पुनः श्री कहानजी कृपिजी महाराजकी सम्प्रदायके बाल ब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलब कृपिजी महाराज विरचित गुणस्थान रोहण अदीशतद्वारी ग्रन्थके प्रथम मूल काण्डका कर्णद्वारा रोहण नामक द्वितीय खण्ड.

समाप्त





## तृतीय खण्ड-संसार इन्द्र

संसार रोहण खण्डके २१ द्वार

१ आगतिद्वार, २ जागतिद्वार, ३

द्वार, ५ पाजातिद्वार, ६ जाजातिद्वार

द्वार, ९ जाकायाद्वार, १० आदंडकद्वार

दंडकद्वार, १३ सामन्य जीव भेदद्वार

जीवयोनिद्वार, १६ कुलकोडी द्वार

स्यवा द्वार, १९ सन्निअसन्नि द्वार

हारका नाहारकद्वार, २२ ओजाद्वार

हार द्वार, २४ दिगी आहारद्वार

२७ प्रणद्वार, २८ इन्द्रियद्वार

३१ वेदद्वार, ३२, कपायद्वार

रीर द्वार, ३६ संघयण द्वार

अधिग्रहगति द्वार, ४० स्वांग

१७१ प्रथम

गति के तीनों द्वारोंका

एक त्रस का

चारोंही गतिके जीवों मनुष्यगतिमें आकर चउदेही गुणस्थानों स्पर्श सकते हैं.

## १७२, दुसरा पागति द्वार.

मिथ्यात्वसे अविरति गुणस्थान पर्यन्त चारों गतिके जीव पाते हैं. देशविरति गुणस्थानमें-मनुष्य और तिर्यन यह दो गति ही पाते हैं प्रमत्त संयातिसे अयोगी केवलीतक-एक मनुष्यगति पावे हैं.

## १७३, तीसरा जा गति द्वार

मिथ्यात्वा गुणस्थान वाले-मरकर चारों गति में जाते हैं. सास्वादन गुणस्थानवाले नरक बिना तीनों गति में जावे. मिश्र गुणस्थान वाले मरते ही नहीं है.

अविरति गुणस्थानवाले-मनुष्य और देव दोनों गतिमें जावे. देशविरति से उपशान्त मोह गुणस्थानवाले एक देवगतिमें जावे. क्षीण मोह और सयोगी केवली गुणस्थान वाले मरतेही नहीं है. अयोगी केवली गुणस्थानवाले एक मोक्ष में जावे.

## १७४, चौथा-आजाति द्वार

जाति ५ है-१ एकेन्द्रिय, २ बेन्द्रिय, ३ तेन्द्रिय, ४ चौरिन्द्रिय, और ५ पचेन्द्रिय.

मिथ्यात्वा गुणस्थानसे प्रमत्त गुणस्थानतक पांचों जज्ञतिका आवै-अप्रमत्तसे अयोगी केवली गुणस्थान तक एकेन्द्रिय और पचेन्द्रिय दो जाति का आवे.

## १७५, पांचवा-पाजाति द्वार

जातिके तीनों द्वारोंका खुलासेके लिये देखीये अर्थ कांडका पृष्ठ २९६ वा.

मिथ्यात् गुणस्थान में पांचों जाति पावे.

सास्वादन गुणस्थानमें-एकेन्द्रिय विना चारों जाति पावे.

मिश्रसे क्षीण मोह गुणस्थान तक-एक पचेन्द्रियकी जाति पावे.

सयोगी अयोगी केवली गुणस्थानमें जाति नहीं-नो इन्द्रिय हैं.

## १७६, छठा जा जाति द्वार

मिथ्यात्व गुणस्थान वाला पांचों जाति में जावे.

सास्वादन गुणस्थान वाला एकेन्द्रियविना चार जाति में जावे.

मिश्र, क्षीणमोह, सयोगी केवली, इन तीनों गुणस्थान वाले मरेनही

अविरति से उपशान्त मोह गुणस्थान वाले एक पचेन्द्रियमें जावे.

अयोगी केवली गुणस्थान वर्ती १ मोक्ष में ही पधारते हैं.

## १७७, साववा-आ काया द्वार.

काया ६ हैं:-१ पृथ्वीकाय, २ अपकाय, ३ तेजकाय, ४ वायुकाय, ५ वनस्पतिकाय, और ६ त्रसकाय.

मिथ्यात्व सास्वादन और मिश्र इन तीनों गुणस्थानों में ६ काया के जीवों आते हैं.

अविरति से अयोगी केवली तक तेज वायु छोड़कर चार काया के जीव आते हैं.

## १७८ आठवा पा काया द्वार

मिथ्यात्व गुणस्थान में छेही काया के जीव पाते हैं.

सास्वादन से अयोगी केवली गुणस्थान तक एक त्रस काया केही जीव पाते हैं.

## १९७, नववा-जा काया द्वार.

मिथ्यात्व गुणस्थान वाला छेही काया मे मर कर जावे.

सास्वादन गुणस्थान वाला एक त्रस काया में जावे.

मिश्र क्षीणमोह सयोगी केवली इन तीनों गुणस्थान वाले मेरनही. अविरति से उपशान्त मोह गुणस्थान तक के एक त्रस कायमे जावे और अयोगी केवली गुणस्थान वाले एक मोक्ष में जावे.

## १८०, दसवा आ दंडक द्वार

दंडक २४ हैं:- १ सातों नरक का एक दंडक, १० दशोभव नपाति देवके दश दंडक, ५ पांचों स्वाथर के पांच दंडक, ३ तीनों विक्केन्द्रिय के तीन दंडक, १ तिर्यच पचेन्द्रिय का, १ मनुष्यका, १ वाणव्यन्तर का, १ जोतिपी का और १ विमाणीक देवोंका यों २४-

मिथ्यात्व गुणस्थान में चौबीस ही दंडक के जीवों आतेहैं सास्वादन से अप्रमत गुणस्थान तक तेउवायु विना २२ दंडक के जीव आवे.

अपूर्व करण से अयोगी केवली तक तीन विक्केन्द्रिय विना १९ दंडक के जीव आवे.

## १८१, इग्यारवा पा दंडक द्वार

मिथ्यात्व गुणस्थान में चौबीस ही दंडक पावे.

सास्वादन मिश्र में पांच स्थावर विना १९ दंडक पावे.

अविरति गुणस्थान में तीन विक्केन्द्रिय विना १६ दंडक पावे.

देशविरति गुणस्थान मे १ मनुष्यका और तिर्यचका २ दंडक पावे

दंडक के तीनों द्वारके खुलासे के लिये देखीये अर्थ कांड पृष्ठ २०८ वा.

प्रमत से अयोगी केवली गुणस्थान तक एक मनुष्यका दंडक पावे

## १८२ बाबा-जादंडक द्वार.

मिथ्यात्व गुणस्थान वाले चौबीस दंडक में जाते हैं.

सास्वादन गुणस्थान वाले ५ स्थावर विना १९ दंडक में जाते हैं.

मिश्र. क्षीण मोह, सयोगी केवली इन तीनों गुणस्थानवाले मरेनही

अविरति गुणस्थानी पांच स्थार तीन विह्वेन्द्रिय विना १६ दंडक में जावे.

देशविरति से उपशान्त मोह गुणस्थान वाले एक विमानी क देव में जावे.

अयोगी केवली गुणस्थानी मोक्ष में ही पधारते हैं.

## १८३, तेखा-सामान्य जीव भेद द्वार

सामान्य जीवोंके १४ भेदः— १ सूक्ष्म एकेन्द्रिय, २ वादर एकेन्द्रिय, ३ वेन्द्रिय, ४ तेन्द्रिय, ५ चौरिन्द्रिय, ६ असन्नी पचेन्द्रिय, और ७ सन्नी पचेन्द्रिय, इन ७ के अपर्याप्ता और ७ के पर्याप्ता यों १४ भेद होते हैं.

मिथ्यात्व गुणस्थान में जीवके भेद १४ ही पावे.

सास्वादन गुणस्थान में १ वेन्द्रिय. १ तेन्द्रिय. १ चौरिन्द्रिय और १ असन्नी पचेन्द्रिय, इन ४ का अपर्याप्ता और ५ सन्नी पचेन्द्रियका पर्याप्ता और ६ अपर्याप्ता दोनों यों ६ जीवको भेद पावे.

श्रु मीगुणस्थानमें-१ जीवका भेद सन्नीका पर्याप्ताही पावे.

जीवके भेदके दोनों द्वारोंका गुणस्थानके लिये देखीये अर्थ बांडका पृष्ठ ११२ वा यहाँ ९ लोकान्तिक देव अधिपति बोधी ब्रह्म किये हैं. नाकि उनके पन्निवागको.

अविरति गुणस्थानमें-सत्रीका पर्याप्ता अपर्याप्ता दोनों भेद पावे।  
देशविरति से अयोगी केवली गुणस्थानतक-१ सत्रीका पर्याप्ता पावे

## चउदवा-विशेष जीव भेद द्वार

विशेष ५६३ जीवके भेद-१४ नरकके, ४८ तिर्यच के, ३०३ मनुष्य के, और ११८ देवता के यों ५६३ जीव के भेद होते हैं।

मिथ्यात्व गुणस्थान में-५ पांच अनुत्तर विमान और ९ लोकान्तिक देव इन १४ का पर्याप्ता अपर्याप्ता यों २८ विना १७० भेद पावे।  
सास्वादन गुणस्थान में-७ नरक के पर्याप्ता, + ३ विक्लेन्द्रिय, ५ असत्री तिर्यच पचेन्द्रिय इन ८ के अपर्याप्ता, और ५ पांच सत्री तिर्यच पचेन्द्रिय के पर्याप्ता अपर्याप्ता दोनों, यों १८ तिर्यचके, १०१ समुत्थिम मनुष्यविना २०२ मनुष्य के और ऊपरोक्त १७० देवता के यों ३१७ जीवके भेद पावे।

मिश्र गुणस्थान में-७ नरकके पर्याप्ता, ८ सत्री तिर्यचके पर्याप्ता-१०१ सत्री मनुष्य के पर्याप्ता। ऊपरोक्त १७० देवताके भेदों में से ८५ भेदोंमें से ८५ भेद अपर्याप्ता के कमी करने से ८५ भेद देवताके यों सब १९८ जीवके भेद पावे।

अविरति गुणस्थान में-सातवी नरकके अपर्याप्ता विना = नरकके १३ भेद, १० सत्री तिर्यच पचेन्द्रिय के, १५ कर्म भूमी, ५ देव कुरु, ५ उत्तर कुरु २५ के पर्याप्ता, अपर्याप्ता ५० मनुष्य के, और १५ परमाधामी, ३ किलाविपी इन १८ देवताके पर्याप्ता अपर्याप्ता यों ३६ भेद कमी करने से-१०२ देवता के, यों सब २३५ जीवके भेद पाते हैं।

+ नरकानुपूर्विका उदय सास्वादन में न होनेसे अपर्याप्ता अवस्था में नहीं पाता है।  
= सम्यक दृष्टि मातृमीमें जाता नहीं। परन्तु वहां वेदना अनुभवसे समदृष्टि होजाताहै।

देशविरति गुणस्थान में-१ सन्नितिर्यंच के और १५ कर्मा भूमी मनुष्य के यों २० भेद पावे.

प्रमत्तसे अयोगी केवली गुणस्थानतक फक्त-११ कर्मा भूमी मनुष्य के ही भेद पाते हैं.

## १८५, पंदखा-जीव योनी द्वार

पृथ्वी-अप-तेउ-वाउ इन चारों की ७-७ लाख यों ७×४ २८, वन-स्याति की २४ लाख, वेन्द्रिय-तेन्द्रिय चौरिन्द्रिय इन तीनों की २-२ लाख यों २×३६ लाख, पचेन्द्रिय तिर्यंचकी ४ लाख, नरक की ४ लाख, देवताकी ४ लाख, और मनुष्यके १४ लाख, यों सब ८४ लाख जीवोंकी योनी इसमें से.

भित्थात्व गुणस्थानमें ८४ लाख ही जीवा योनी पावे.

सास्वदन गुणस्थानमें-पांचों स्थावरों की १२ लाख विना ३२ लाख पावे.

मिश्र और अविरति में-तीनों विह्वेन्द्रियकी ६ लाख विना २३ लाख पावे.

देशविरति में-४ लाख तिर्यंच पचेन्द्रियकी और १४ लाख मनुष्यकी यों १८ लाख पावे.

प्रमत्त से अयोगी केवली गुणस्थानतक-१४ लाख मनुष्य की ही पावे.

## १८६ सोलवा-कुलकोडी द्वार.

प्रथवी कायके १२ लाख क्रोड, अपकायके ७ लाख क्रोड

जीवयोनी द्वारोंका खुलाने के लिये देखीये अर्थ कांडका पृष्ठ ३०० वा

.. कुल कोडी द्वारका खुलाना देखीये अर्थ कांडका पृष्ठ ३०१ वा.



तेउ कायके ३ लाख क्रोड वायु कायके ७ लाख क्रोड, वनस्पतिके २८ लाख क्रोड, बेन्द्रियके ७ लाख क्रोड, तेन्द्रियके ८ लाख क्रोड चौरिन्द्रिय ९ लाख क्रोड, जलचरके १२॥ लाख क्रोड, स्थल चरके १० लाख क्रोड, खेचरके १२ लाख क्रोड. उरपरके १० लाख क्रोड, भुजपरके ९ लाख क्रोड, नरकके २५ लाख क्रोड देवताके २६ लाख क्रोड, और मनुष्य के १२ लाख क्रोड, यों सब १ एक क्रोड साडी संताणवे लाख क्रोड कुल होते है इसमेंसे.

मिथ्यात्व गुणस्थान में-१ क्रोड ९७॥ लाख क्रोडही कुल पाते हैं. सास्वादन में-५७ लाख क्रोड पांचों स्थावरके विना-१ क्रोड ४०॥ लाख क्रोड कुल पावे.

मिश्र और अविरतिमें-२४ लाख क्रोड बिक्हेन्द्रिय विना-१ क्रोड १६॥ लाख क्रोड कुल पावे.

देशविरतिमें-५३॥ लाख क्रोड तिर्यच पचेन्द्रियके, और १२ लाख क्रोड मनुष्य के दोनों मिल ६५॥ लाख क्रोड कुल पावे.

प्रमतसे अयोगी केवलीतक-१२ लाख क्रोड मनुष्यकेही कुल पावे.

### १८७, सतरवा-सूक्ष्मबादर द्वार

मिथ्यात्व गुणस्थान में सूक्ष्म बादर दोनों तरह के जीवों पावे. सास्वादनसे अयोगी केवली गुणस्थानतक-एक बादर जीव पावे.

### १८८, अठारवा त्रस स्तावर द्वार

मिथ्यात्व गुणस्थान में-त्रस और स्थावर दोनों तरहके जीव पावे. सास्वादनसे अयोगी केवली गुणस्थानतक-एक त्रस जीव पावे.

### १८९, उन्नीसवा सन्निअसन्नि द्वार

ॐ सूक्ष्म बादर द्वारका खुलामा देखीये अर्थ कांडका पृष्ठ ३०१ वा.

.. वन स्थावर और मन्त्री अमन्त्री द्वारका खुलामा देखीये अर्थ कांडका पृष्ठ ३०२ वा

मिथ्यात्व और सास्वादन दोनों गुणस्थानमें-सन्नि असन्नि दोनों पावे मिश्रसे क्षीणमोह गुणस्थानतक-एक सन्निही जीव पाते हैं.

सयोगी अयोगी केवली गुणस्थान वाले नो सन्नि नोअसन्नि.

### १२०, बीसवा भाषक अभाषक द्वार

मिथ्यात्व, सास्वादन, अविरति, और सयोगी केवली इन चारों गुणस्थानोंमें भाषक अभाषक दोनों प्रकार के जीवों पावे.

मिश्र, देशविरति से क्षीण मोह गुणस्थानतक-एक भाषकही होते हैं अयोगी केवली गुणस्थानी-अभाषक होते हैं.

### १२१, इक्कीसवा आहारक अनाहारक द्वार

मिथ्यात्व, सास्वादन, अविरति और सयोगी केवली × इन चारों गुणस्थानोंमें आहारक अनाहारक दोनों प्रकारके जीवों पाते हैं.

मिश्र, देशविरतिसे जावत क्षीणमोह गुणस्थानतक-एक आहारक ही जीव पाते हैं.

अयोगी केवली गुणस्थान वाले-एक अनाहारक होते हैं.

### १२२, बावीसवा-आजादि आहार द्वार.

आहार ३ प्रकार का. १ ओज. २ रोम. ३ कवल.

मिथ्यात्व, सास्वादन और अविरति इन तीनों गुणस्थानोवाले. तीनों प्रकार का आहारलेते हैं.

मिश्र. देशव्रति से जावत सयोगी केवली गुणस्थान वर्ती जीवों

भाषक अभाषक द्वारका खुलाना देखीये अर्थ कांडका पृष्ठ ३०३ वा.

अहारके तीनों द्वारका खुलाना देखीये अर्थ कांडका पृष्ठ ३०३ वा.

×सयोगी केवली केवल नमुदयान करी वक्त बीचके समय में अनाहारक होते हैं.

तेज कायके ३ लाख क्रोड वायु कायके ७ लाख क्रोड, वनस्पतिके २८ लाख क्रोड, बेन्द्रियके ७ लाख क्रोड, तेन्द्रियके ८ लाख क्रोड चौरिन्द्रिय ९ लाख क्रोड, जलचरके १२॥ लाख क्रोड, स्थल चरके १० लाख क्रोड, खेचरके १२ लाख क्रोड. उरपरके १० लाख क्रोड, भुजपरके ९ लाख क्रोड, नरकके २५ लाख क्रोड देवताके २६ लाख क्रोड, और मनुष्य के १२ लाख क्रोड, यों सब १ एक क्रोड साडी संताणवे लाख क्रोड कुल होते है इसमेंसे.

मिथ्यात्व गुणस्थान में-१ क्रोड ९७॥ लाख क्रोडही कुल पाते हैं. सास्वादन में-५७ लाख क्रोड पांचों स्थावरके विना-१ क्रोड ४०॥ लाख क्रोड कुल पावे.

मिश्र और अविरतिमें-२४ लाख क्रोड विक्लेन्द्रिय विना-१ क्रोड १६॥ लाख क्रोड कुल पावे.

देशविरतिमें-५३॥ लाख क्रोड तिर्यच पचेन्द्रियके, और १२ लाख क्रोड मनुष्य के दोनों मिल ६५॥ लाख क्रोड कुल पावे.

प्रमतसे अयोगी केवलीतक-१२ लाख क्रोड मनुष्यकेही कुल पावे.

### १८७, सतरवा-सूक्ष्मबादर द्वार

मिथ्यात्व गुणस्थान में सूक्ष्म बादर दोनों तरह के जीवों पावे.

सास्वादनसे अयोगी केवली गुणस्थानतक-एक बादर जीव पावे.

### १८८, अठारवा त्रस स्तावर द्वार

मिथ्यात्व गुणस्थान में-त्रस और स्थावर दोनों तरहके जीव पावे.

सास्वादनसे अयोगी केवली गुणस्थानतक-एक त्रस जीव पावे.

### १८९ उन्नीसवा सन्निअसन्नि द्वार

सूक्ष्म बादर द्वारका खुलासा देखीये अर्थ कांडका पृष्ठ ३०१ वा.

॥ वस स्थावर और सन्नी अमन्नी द्वारका खुलासा देखीये अर्थ कांडका पृष्ठ ३०२ वा.

## २०१, इकतिसवा वेद द्वार

वेद ३ हैं:-१ स्त्री. २ पुरुष. और २ नपुंसक.

मिव्यात्व से अनयिट्ट वादर गुणस्थान तक तीनों वेदो पावे.  
सूक्ष्म सम्पराय से अयोगी केवली गुणस्थान तक अवेदी हैं.

## २०२, बत्तीसवा-कषाय द्वार

कषाय ४ हैं:-१ क्रोध. २ मान. ३ माया. और ४ लोभ.

मिव्यात्व से अनयिट्ट वादर गुणस्थान तक चारों कषाय पावे.  
सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान में एक लोभ कषाय.

उपशान्त मोह से अयोगी केवली गुणस्थान तक अकषायी.

## २०३, तैंतीसवा लेश द्वार

लेशा ६ हैं:-१ कण्ण. २ नील, ३ कापोत. ४ तेजु. ५ पद्म. और ६ शुक्र.

मिव्यात्व से प्रमत्त गुणस्थान तक ६ ही लेश्या.

अप्रमत्त गुणस्थान में उपरकी शुभ तीनों लेश्या पावे.

अपूर्ण करण से सयोगी केवली गुणस्थान तक १ शुक्र लेश्या पावे.

अयोगी केवली गुणस्थान वर्ती अलेशी होते हैं.

## २०४, चौतीसवा योग द्वार

योग तीन १ मन, २ वचन. और ३ काया

मिव्यात्व से स्वादन गुणस्थान में जघन्य १, मध्यम २. उत्कृष्ट ३,  
ही जोग पावे

मज्ञावेद.काषाय.मन तीनों द्वारोंका सुलभमेके द्विरे देखीसे अर्थ बांटेका पृष्ठ ३०८वा.

और योगद्वार लेश्या. द्वारका सुलभाना देखीसे अर्थ बांटेका पृष्ठ ३०७ वा

मिश्रसे सयोगी केवली गुणस्थान तक तीनों जोग पावे.  
अयोगी केवली गुणस्थान वर्ती तो अजोगी ही होंतेहैं.

### २०५, पेंतीसवा-शरीर द्वार

शरीर ५ है:-१ ओदारिक २ वैक्रिय, ३ अहारक, ४ तेजस  
और ५ कर्मण

भिव्यात्व से अविरति गुणस्थान तक आहारक विन ४ शरीर पावे  
प्रमत और अप्रमत गुणस्थान में पांचों शरीर पावे.

अपूर्व करणसे अजोगी केवलीतक वैक्रिय आहारक विना ३ शरीर पावे.

### २०६, छत्तीसवा-संघयण द्वार.

संघयण ६ हैं:-१ वज्र वृषभ नारच, २ वृषभ नारच, ३ नारच, ४  
अर्ध नारच, ५ किलिक, और ६ छेवटा.

भिव्यात्वसे अप्रमत गुणस्थानतक, ६ ही संघयण पावे.

अपूर्व करणसे अयोगी केवली गुणस्थानतक-१ वज्र वृषभ नारच  
संघयण.

### २०७, सैंतीसवा-संस्थान द्वार.

संस्थान ६ हैं. १ समचतुरस्र, २ निग्रोद परिसंडल, ३ साधिक, ४ वाव  
न, ५ कुब्ज, और ६ हूँड.

भिव्यात्वसे अयोगी केवली गुणस्थानतक, ६ ही संस्थान पावे.

### अडतीसवा-मरण द्वार

॥ शरीर द्वार के खुलामेके लिये देखीये अर्थ कांड का पृष्ठ ३०८ वा.

संघयण द्वारोंके खुलामेकेलिये देखीये अर्थ कांडका पृष्ठ ३०९ वा.

संस्थान द्वारका खुलामा देखीये अर्थ कांडका पृष्ठ ३१० वा.

मरण २ प्रकार के-समोया, और २ असमोया.

मिथ्यात्व, सास्वादन अविरतिसे अनियत वादरतक-दोनों माणपावे. मिश्र क्षीण मोह सजोगी केवली. इन तीनों गुणस्थानोंमें मरण नहीं. सूक्ष्म संपराय और उपशान्त मोह में और अयोगी केवली गुणस्थान में-१ असमोहा मरण पाता है.

## उनचालीसवा विग्रहगति द्वार

मरण नन्तर गति २ तरह की-१ विग्रह (वक्र). और ऋजु नारल. मिथ्यात्व, सास्वादन अविरतिसे उपशान्त मोहतक-दोनों गति करे मिश्र, क्षीण मोह सयोगी केवली यह तीनों गुणस्थानी मरे नहीं. अयोगी केवली गुणस्थान वर्ती-१ ऋजु गति ही करे.

## चालीसवा मरण द्वार

स्वर्ग २६ हैं-१२ देवलोक, ९ ग्रीविक, ५ अनुत्तर विमान.

मिथ्यात्व गुणस्थान वाले-५ अनुत्तरविमान विना-१२ स्वर्गतक जावे सास्वादन, अविरति और देशविरति. तीनों गुणस्थानी १२ स्वर्ग तक जावे.

मिश्र. क्षीण मोह और सयोगी केवली मरेही नहीं.

प्रमत्तसे अनियत वादर गुणस्थानतक-२६ ही स्वर्गमें जावे

सूक्ष्म संपराय और उपशान्त मोहवाले पांचों अनुत्तर विमानमें जावे और अयोगी केवलीतो मोक्षमें ही पधारते हैं.

## २११, एकचालीसवा-षष्ठस्थान वृद्धि द्वार

मरण विग्रहगति और स्वर्गकी मर्याद इन तीनों द्वारका खुलामा देखीये अर्थ काण्डका पृष्ठ ३११ वा

षष्ठस्थान हानी वृद्धि द्वारोंका खुलामके लिये देखीये अर्थ काण्डका पृष्ठ २१२ वा

पदस्थान-१संख्यातगुण, २असंख्यात, ३अनन्त गुण, ४संख्यात भाग, ५असंख्यात भाग और ६अनन्त भाग.

मिथ्यात्व से अपूर्व करण तक-आपसमें छे स्थान बढ़ीये होते हैं। अनियत वादर से अयोगी केवलीतक-आपस में तुल्य होते हैं.

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराजके सम्प्रदायके बाल  
ब्रम्हचारी मुनि श्री अमोलख ऋषिजी महाराज रचित  
गुणस्थान रोहण अदीशत द्वारी ग्रन्थका प्रथम मूल काण्ड  
का संसारा रोहण द्वार नामक तीसरा खंड



ॐ

## चतुर्थ खण्ड-धर्म रोहण

धर्मा रोहणके ४१ द्वारोंके नाम.

१ मुल उपयोगद्वार २ अज्ञानद्वार ३ ज्ञानद्वार, ४ दर्शनद्वार  
५ समुच्चय उपयोगद्वार, ६ दृष्टिद्वार, ७ भव्याभव्यद्वार, ८ चरमा-  
चरमद्वार, ९ परितापरितद्वार, १० पद्मीद्वार, ११ आत्माद्वार, १२ ध्या-  
नद्वार, १३ ध्यानके पयेद्वार, १४ द्रव्यद्वार, १५ परिणामद्वार, १६  
वीर्यद्वार, १७ तीर्थातीर्थद्वार, १८ सम्यक्त्वद्वार, १९ संजाता संजा-  
तिद्वार, २० लिंगद्वार, २१ चारित्र्यद्वार, २२ नियंत्रणद्वार, २३ कल्प-  
द्वार, २४ परिसहद्वार, २५ प्रमादद्वार, २६ सरागी वीतरागीद्वार,  
२७ पडवाइ अपडवाइद्वार, २८ छद्मस्तकेवलीद्वार, २९ समुदघातद्वार  
३० पांचदेवद्वार ३१ परिणामीद्वार, ३२ करणद्वार, ३३ निवृत्तिद्वार,  
३४ आश्रवद्वार, ३५ संवरद्वार ३६ निज्जराद्वार, ३७ निज्जराभेदद्वार,  
३८ करणीफलद्वार ३९ तीर्थंकर गात्रापार्जनद्वार, ४० तीर्थंकर  
गुणस्थान स्पर्शनद्वार, और ४१ मोक्षद्वार.

२१२, प्रथम-मूल उपयोग द्वार.

मूल उपयोग दो- साकर बहुत और अनाकार बहुत.

उपयोग द्वारका खुलाना देवीपे अर्थ कांडका पृष्ठ ३१३ वा.



मिथ्यात्वसे अनियत वादर गुणस्थानतक-दोनों उपयोग पावे.  
सत्य सम्प्रदाय गुणस्थानमें-एक साकर बहूता उपयोग पावे.\*  
उग्रान्त मोहसे अयोगी केवली गुणस्थानतक-दोनों उपयोग पावे

२१३. दुसरा अज्ञान द्वार.

अज्ञान २ द्वै-१ मति अज्ञान-२ श्रुति अज्ञान-३ विभंग ज्ञान.  
अज्ञान और मिश्र गुणस्थानमें-तीनों अज्ञान पावे.  
तभी में तर्कित गुणस्थानमें-अज्ञान नहीं पावे.

२१४. तीमरा-लान अ

१. ज्ञान २. हेतुमार्ग ३. श्रुति ४. अवधि ५. मनः पर्यव, और केवल.  
 नि. ज्ञान और मिश्र गुणस्थान में-ज्ञान नहीं.  
 म. म. ज्ञान अविर्गल और हेतुविर्गल गुणस्थानमें पहिले तीनों ज्ञान  
 प्रभवने तीन मोट गुणस्थाननक-केवल विना नाम ज्ञान.  
 म. ज्ञान और अवधि केवल गुणस्थानों में-एक केवल ज्ञान.

२५ चौथा-दर्शन का

दर्शन के अन्तर्गत अन्तर्गत अवधि और केवल  
निष्कर्षों की ओर ध्यानपूर्वक केवल विना तीनों दर्शन में  
नये ही अन्तर्गत केवल ध्यानपूर्वक केवल दर्शन में

२६. पांचवा मसूचय उपबोधार्थ

ה'תשנ"ב י"ג כסלו  
ה'תשנ"ב י"ג כסלו

सास्वादन. अविरति. और देशविरतिमें-ज्ञान. ३ दर्शन यह ६ उपयोग प्रमत्तसे क्षीण यह गुणस्थानतक ४ ज्ञान. ३ दर्शन यह ७ उपयोग. सयोगी और अयोगी केवलीके-१ केवल ज्ञान, और २ केवल दर्शन

## २१७. छठा, दृष्टि द्वार

दृष्टि है-१ समदृष्टि. २ मिथ्यादृष्टि. और ३ सममिथ्यादृष्टि. मिथ्यात्व गुणस्थानमें-१ मिथ्यादृष्टि. मिश्र गुणस्थानमें-१ मिश्र दृष्टि. सास्वादन. अविरतिसे अयोगी केवलीतक-एक समदृष्टि.

## २१८. सातवा भव्याभव्य द्वार

मिथ्यात्व गुणस्थानमें-भव्य अभव्य दोनों तरह के जीवों हैं. सास्वादनसे अयोगी केवली गुणस्थानतक-एक भव्य जीवों.

## २१९. आठवा चरमाचरम द्वार

मिथ्यात्व गुणस्थान में-चरम अचरम दोनों तरह के जीवों. सास्वादनसे अयोगी केवली गुणस्थानतक-एक चरम जीवों.

## २२०. नववा परितापरित द्वार

मिथ्यात्व गुणस्थानमें-परित अपरित दोनों तरह के जीवों. सास्वादनसे अयोगी केवली गुणस्थानतक-एक परत संसारी जीवों.

## २२१. दसवा पद्मी द्वार

पद्मी २३ है-७ एकेंद्रियरत्न, ७ पंचेन्द्रियरत्न, और ९ बड़ी पद्मी. मिथ्यात्व गुणस्थान में-७ एकेंद्रियरत्न, ७ पंचेन्द्रियरत्न. मंडलिक यों १५ पद्मी पावे.

सास्वदन और मिश्र गुणस्थान में १ मांडलिकराजकी परि पावे.

अविरति में तीर्थकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, मंडलिक, राजा, समदृष्टि, यह ६ पावे.

देवविगति में १ श्रावककी और २ समदृष्टिकी यह २ पक्षी पावे.

प्रमत्त में गु.ग. सम्परागतक तीर्थकर, साधु, समदृष्टि यह ३ पक्षी पावे.

अपमान मोह में १ समदृष्टि, और २ साधुकी यह २ पक्षी पावे.

अंगमात्र में तीर्थकर, साधु, और समदृष्टि यह ३ पक्षी पावे.

गुणोमी और अगुणी केवली में तीर्थकर, केवली, साधु, समदृष्टि यह ४ पक्षी पावे.

## ७७७ हुग्याग्या आत्मा द्वार

आत्मा द्वार १ ज्ञानात्मा, २ कर्मात्मा, ३ ज्ञानात्मा, ४ उपयोगात्मा, ५ ज्ञानात्मा, ६ दर्शनात्मा, ७ चित्रात्मा और ८ योगात्मा.

जिनका १ आत्मा मिश्र गुणस्थान में ज्ञानात्मा, चित्रात्मा, विना ६ उपयोगात्मा.

सास्वदन और अविरति गुणस्थानमें चित्रात्मा विना ७ आत्मा पावे.

देवविगति गुणस्थान में चित्रात्मा विना ८ आत्मा पावे.

प्रमत्त में गु.ग. सम्परागतक आत्मा द्वार ८ आत्मा पावे.

अपमान मोह में समदृष्टि, साधु, और समदृष्टि विना ७ आत्मा पावे.

अंगमात्र में तीर्थकर, साधु, और समदृष्टि विना ८ आत्मा पावे.

## ७७८ याग्या ध्यान द्वार

याग्या द्वार १ ध्यान, २ ध्यान, ३ ध्यान, और ४ ध्यान.

१ ध्यान, २ ध्यान, ३ ध्यान, ४ ध्यान, ५ ध्यान, ६ ध्यान, ७ ध्यान, ८ ध्यान.

मिथ्यात्व गुणस्थान में १ आर्त और २ रौद्र ध्यान पावे.  
सास्वादन और मिश्र गुणस्थान में निश्चयमें २ और व्यवहारमें ३  
अविरति और देशविरति गुणस्थान में शुक्लविना ३ ध्यान.  
प्रमत्त गुणस्थान में आर्तध्यान और धर्मध्यान २ ध्यान.  
अप्रमत्त गुणस्थान में एक धर्म ध्यान.  
अपूर्व करण से सूक्ष्म सम्पराय तक धर्म और २ शुक्ल ध्यान  
उपशान्त मोह से अयोगी केवली तक एक शुक्ल ध्यान. ×

## २१३, तेरवा ध्यान पाये द्वार.

ध्यानके १६ पाये-आर्तके ४, रौद्रके ४ धर्मके ४, और शु-  
क्लके ४ यों १६ पायेचा ध्यानके

मिथ्यात्व गुणस्थान में आर्तके ४ और रौद्रके ४ यों ८ पाये पावे.  
सास्वादन और मिश्र में धर्मध्यान का १ पाया बढने से ९ पावे.  
अविरति गुणस्थान में धर्मध्यानके २ पाये होनेसे १० पावे.  
देशविरति गुणस्थान में धर्मध्यानके ३ पाये होनेसे ११ पावे.  
प्रमत्त गुणस्थान में आर्तध्यानके ४ और धर्मध्यानके ४ यों ८ पावे  
अप्रमत्त गुणस्थानमें धर्मध्यानके ४ ही पावे.

अपूर्व करण से सूक्ष्म सम्पराय तक धर्मध्यानके ४ और शु-  
क्लध्यान १ यों ५ पाये पावे.

उपशान्त मोह गुणस्थान में शुक्लध्यान का एक पहला पाया.  
क्षीणमोह गुणस्थान में शुक्लध्यानका एक दूसरा माया.  
सयोगी केवली गुणस्थान में शुक्लध्यानका एक तीसरा पाया.

+ कितनेक स्थान लिखा है नि-साधु विना धर्म ध्यान की नास्ति होनेसे पाहिलेके  
पांचों गुणस्थान में पाहिले दो ध्यान ही पातेहे. तैने ही आठवे गुणस्थान में ऊपर ए-  
क शुक्ल ध्यान ही पाता है. और ऐसे ही पाये आश्रित भी पाठान्तर है.

अयोगी केवली गुणस्थान में शुद्धध्यानका एक चौथा पाया.

### २२५, चऊदवा-द्रव्य द्वार

द्रव्य ६ हैं धर्मास्ति, अर्थमास्ति, आकास्ति, काल, जीवास्ति, और पुद्गलास्ति.

मिथ्यात्व गुणस्थान से अयोगी केवली गुणस्थान तक छेही द्रव्य पावे.

### २२६, पंदरवा-परिणाम द्वार.

परिणाम ३ है-१ हायमान, २ वृद्धिमान, और ३ अवस्थित.

मिथ्यात्व गुणस्थानमें तीनों तरह के परिणाम.

सास्वादन गुणस्थानमें एक हायमान परिणाम.

मिश्रगुणस्थानमें-हायमान और वृद्धमान दोनों परिणाम.

अविरतिसे अनियट बादर गुणस्थानतक-तीनों तरहके परिणाम.

सुक्ष्म सम्पराय गुणस्थान में-हायमान वृद्धमान दोनों परिणाम.

उपशान्त मोह गुणस्थान में-एक अवस्थित परिणाम.

क्षीणमोहसे अयोगी केवली गुणस्थानतक एक वृद्धिमान परिणाम

### २२७, सोलवा-वीर्य द्वार.

वीर्य ३ प्रकारके-१ बालवीर्य, २ बाल पंडितवीर्य, और ३ पंडित वीर्य

मिथ्यात्वमे अविरति गुणस्थान पर्यन्त एक बाल वीर्य.

देशविरति गुणस्थान में-एक बाल पंडित वीर्य.

प्रमत्तसे अयोगी केवली गुणस्थानतक-एक पंडित वीर्य.

द्रव्य द्वारका सुल्लामा देखीये अर्थ कांडका पृष्ठ ३१७ वा.

परिणाम-वीर्य-तीर्थ-आगमम्यक्त्व द्वारोंका सुल्लामेकेलिये देखीये अर्थकांडका पृष्ठ १८

## २२८, सतखा तीर्थातीर्थ द्वार

मिथ्यात्व सास्वादन, और मिश्र यह तीनों गुणस्थान अतीर्थ में.  
अविरति से-सयोगी केवली गुणस्थानतक-तीर्थ में.  
अयोगी केवली गुणस्थान-तीर्थ तीर्था है.

## २२९, अठाशव-सम्यक्त्व द्वार

सम्यक्त्व ६है:-सास्वादन, मिश्र, उपशम, अयोपशम, वेदक और  
आयिक.

मिथ्यात्व गुणस्थानमें-सम्यक्त्व नहीं.

सास्वादन गुणस्थानमें-एक सास्वादन सम्यक्त्व.

मिश्र गुणस्थान में-एक मिश्र सम्यक्त्व.

अविरतिसे अप्रमत्त गुणस्थानतक-उपरोक्त २ विना ४ सम्यक्त्वपावे  
अपूर्व करण और अनियत वादर में-वेदक विना ३ सम्यक्त्व पावे  
सूक्ष्मसम्पराय और उपशान्तमोहमें-उपशम, आयिक २ सम्यक्त्वपावे.  
धीणमोहमें अयोगी केवली गुणस्थानतक-एक आयिक सम्यक्त्व.

## २३०, उनसिवा संयतासंयती द्वार

मिथ्यात्वसे अविरति गुणस्थानतक-एक असंयति हैं.

देशविरति गुणस्थानवाले-एक संयतामंयति हैं.

प्रमत्तसे अयोगी केवली गुणस्थानतक एक मंयति ही हैं.

## २३१, वसिवा-लिंग द्वार,

लिंग = है. १ स्वलिंग. २ अन्यलिंग, और = ग्रहलिंग.

मंयति. लिङ्ग. और चाग्विके गुणस्थानके लिये अर्थ कांडका ३१९ वा पृष्ठ देखिये.

अयोगी केवली गुणस्थान में शुद्धध्यानका एक चौथा पाया.

### २२५, चऊदवा-द्रव्य द्वार

द्रव्य ६ हैं धर्मास्ति, अर्थमास्ति, आकास्ति, काल, जीवस्ति, और पुद्गलास्ति.

मिथ्यात्व गुणस्थान से अयोगी केवली गुणस्थान तक छेही द्रव्य पावे.

### २२६, पंदरवा-परिणाम द्वार.

परिणाम ३ है-१ हायमान, २ वृद्धिमान, और ३ अवस्थित. मिथ्यात्व गुणस्थानमें तीनों तरह के परिणाम.

सास्वादन गुणस्थानमें एक हायमान परिणाम.

मिश्रगुणस्थानमें-हायमान और वृद्धमान दोनों परिणाम.

अविरतिसे अनियत बादर गुणस्थानतक-तीनों तरहके परिणाम.

सुक्ष्म सम्पराय गुणस्थान में-हायमान वृद्धमान दोनों परिणाम.

उपशान्त मोह गुणस्थान में-एक अवस्थित परिणाम.

क्षीणमोहसे अयोगी केवली गुणस्थानतक एक वृद्धिमान परिणाम

### २२७, सोलवा-वीर्य द्वार.

वीर्य ३ प्रकारके-१ बालवीर्य, २ बाल पंडितवीर्य, और ३ पंडित वीर्य. मिथ्यात्वमे अविरति गुणस्थान पर्यन्त एक बाल वीर्य.

देशाविरति गुणस्थान में-एक बाल पंडित वीर्य.

प्रमत्तसे अयोगी केवली गुणस्थानतक-एक पंडित वीर्य.

द्रव्य द्वारका सुल्लामा देवीये अर्थ कांडका पृष्ठ ३१७ वा.

परिणाम-वीर्य, तीर्थ, और सम्यक्त्व द्वारोंका सुल्लामेकेलिये देवीये अर्थकांडका पृष्ठ ३१८

## २२८, सतखा तीर्थातीर्थ बार

मिथ्यात्व सास्वादन, और मिश्र यह तीनों गुणस्थान अतीर्थ में.  
अविरति से-सयोगी केवली गुणस्थानतक-तीर्थ में.  
अयोगी केवली गुणस्थान-तीर्थ तीर्था है.

## २२९, अठाशव-सम्यक्त्व बार

सम्यक्त्व ६है:-सास्वादन, मिश्र, उपशम, अयोपशम. वेदक और  
धार्मिक.

मिथ्यात्व गुणस्थानमें-सम्यक्त्व नहीं.

सास्वादन गुणस्थानमें-एक सास्वादन सम्यक्त्व.

मिश्र गुणस्थान में-एक मिश्र सम्यक्त्व.

अविरतिसे अप्रमत्त गुणस्थानतक-उपरोक्त २ विना ४ सम्यक्त्वपावे  
अपूर्व करण और अनियत बादर में-वेदक विना ३ सम्यक्त्व पावे  
सूक्ष्मसम्पराय और उपशान्तमोहमें-उपशम. धार्मिक २ सम्यक्त्वपावे.  
क्षीणमोहमें अयोगी केवली गुणस्थानतक-एक धार्मिक सम्यक्त्व.

## २३०, उनसिवा संयतासंयती बार

मिथ्यात्वसे अविरति गुणस्थानतक-एक असंयति है.

देशविरति गुणस्थानवाले-एक संयतासंयति है.

प्रमत्तसे अयोगी केवली गुणस्थानतक एक संयति ही है.

## २३१, वसिवा-लिंग द्वार

लिंग = है. १ स्वलिंग. २ अन्यलिंग. और = ग्रहलिंग.

वसति. लिङ्ग. और चागिर्वे गुणस्थानके लिये अर्थ बाँटना ३१२ वा पृष्ठ देखिये.



अयोगी केवली गुणस्थान में शुक्लध्यानका एक चौथा पाया.

### २२५, चऊदवा-द्रव्य द्वार

द्रव्य ६ हैं धर्मास्ति, अर्धमास्ति, आकास्ति, काल, जीवस्ति, और पुद्गलास्ति.

मिथ्यात्व गुणस्थान से अयोगी केवली गुणस्थान तक छेही द्रव्य, पावे.

### २२६, पंदरवा-परिणाम द्वार.

परिणाम ३ है-१ हायमान, २ वृद्धिमान, और ३ अवस्थित.

मिथ्यात्व गुणस्थानमें तीनों तरह के परिणाम.

सास्वादन गुणस्थानमें एक हायमान परिणाम.

मिश्रगुणस्थानमें-हायमान और वृद्धमान दोनों परिणाम.

अविरतिसे अनियत बादर गुणस्थानतक-तीनों तरहके परिणाम.

सुक्ष्म सम्पराय गुणस्थान में-हायमान वृद्धमान दोनों परिणाम.

उपशान्त मोह गुणस्थान में-एक अवस्थित परिणाम.

क्षीणमोहसे अयोगी केवली गुणस्थानतक एक वृद्धिमान परिणाम

### २२७, सोलवा-वीर्य द्वार.

वीर्य ३ प्रकारके-१ बालवीर्य, २ बाल पंडितवीर्य, और ३ पंडित वीर्य

मिथ्यात्वसे अविरति गुणस्थान पर्यन्त एक बाल वीर्य.

देशविरति गुणस्थान में-एक बाल पंडित वीर्य.

प्रमत्तसे अयोगी केवली गुणस्थानतक-एक पंडित वीर्य.

द्रव्य द्वारका खुलासा देखीये अर्थ कांडका पृष्ठ ३१७ वा.

परिणाम, वीर्य, तीर्थ, और सम्यक्त्व द्वारोंका खुलासेकेलिये देखीये अर्थकांडका पृष्ठ १८

## २२८, सतखा तीर्थातीर्थ बार

मिथ्यात्व सास्वादन, और मिश्र यह तीनों गुणस्थान अतीर्थ में.  
अविरति से-सयोगी केवली गुणस्थानतक-तीर्थ में.  
अयोगी केवली गुणस्थान-तीर्थ तीर्था है.

## २२९, अठाशव-सम्यक्त्व बार

सम्यक्त्व है:-सास्वादन, मिश्र, उपशम, अयोपशम, वेदक और  
आधिक.

मिथ्यात्व गुणस्थानमें-सम्यक्त्व नहीं.

सास्वादन गुणस्थानमें-एक सास्वादन सम्यक्त्व.

मिश्र गुणस्थान में-एक मिश्र सम्यक्त्व.

अविरतिसे अप्रमत्त गुणस्थानतक-उपरोक्त २ विना ४ सम्यक्त्वपावे  
अपूर्व करण और अनियत वादर में-वेदक विना ३ सम्यक्त्व पावे  
सूक्ष्मसम्पराय और उपशान्तमोहमें-उपशम, आधिक २ सम्यक्त्वपावे.  
क्षीणमोहमें अयोगी केवली गुणस्थानतक-एक आधिक सम्यक्त्व.

## २३०, उनसिवा संयतासंयती बार

मिथ्यात्वसे अविरति गुणस्थानतक-एक असंयति है.

देशविरति गुणस्थानवाले-एक संयतासंयति है.

प्रमत्तसे अयोगी केवली गुणस्थानतक एक संयति ही है

## २३१, वसिवा-लिंग द्वार

लिंग = है. १ स्वलिंग. २ अन्यलिंग. और = प्रलिंग.

निरति, निद्रा, और आशुविषे सुप्ता-के लिये प्रद कोटका ३११ का पृष्ठ देखिये.

अयोगी केवली गुणस्थान में शुक्लध्यानका एक चौथा पाया.

### २२५, चऊदवा-द्रव्य द्वार

द्रव्य ६ हैं धर्मास्ति, अर्थमास्ति, आकास्ति, काल, जीवस्ति और पुद्गलास्ति.

मिथ्यात्व गुणस्थान से अयोगी केवली गुणस्थान तक छेही द्रव्य पावे.

### २२६, पंदरवा-परिणाम द्वार.

परिणाम ३ है-१ हायमान, २ वृद्धिमान, और ३ अवस्थित.

मिथ्यात्व गुणस्थानमें तीनों तरह के परिणाम.

सास्वादन गुणस्थानमें एक हायमान परिणाम.

मिश्रगुणस्थानमें-हायमान और वृद्धमान दोनों परिणाम.

अविरतिसे अनियत बादर गुणस्थानतक-तीनों तरहके परिणाम

सुख संस्पर्श गुणस्थान में-हायमान वृद्धमान दोनों परिणाम.

उपशान्त मोह गुणस्थान में-एक अवस्थित परिणाम.

क्षीणमोहसे अयोगी केवली गुणस्थानतक एक वृद्धिमान परिणाम

### २२७, सोलवा-वीर्य द्वार.

वीर्य ३ प्रकारके-१ बालवीर्य, २ बाल पंडितवीर्य, और ३ पंडित वीर्य.

मिथ्यात्वसे अविरति गुणस्थान पर्यन्त एक बाल वीर्य.

देशविरति गुणस्थान में-एक बाल पंडित वीर्य.

प्रमत्तसे अयोगी केवली गुणस्थानतक-एक पंडित वीर्य.

द्रव्य द्वारका खुलासा देखीये अर्थ कांडका पृष्ठ ३१७ वा.

परिणाम, वीर्य, तीर्थ, और सम्यक्त्व द्वारोंका खुलासेकेलिये देखीये अर्थकांडका पृष्ठ ३

## २३९ अठावीसवा छद्मस्त केवली द्वार

मिथ्यात्व गुणस्थान से क्षीणमोह गुणस्थान तक छद्मस्त.  
सयोगी और अयोगी केवली गुणस्थान वाले केवली हैं.

## २४०, उन्नतीसवा समुद्रघात द्वार

समुद्रघात ७ हैं १ वेदनीय, २ कषाय, ३ मरणांतिक, ४ वैक्रिय, ५ तेजस, ६ आहारक. और ७ केवली इनमें से—  
मिथ्यात्व से अविरति गुणस्थान तक पहिली ५ समुद्रघात पावे  
देशविरति और प्रमत्त गुणस्थान में पहिली ६ समुद्रघात पावे.  
अप्रमत्त से क्षीण मोह गुणस्थान तक समुद्रघात नहीं होती है.  
सयोगी केवली गुणस्थान में एक केवल समुद्रघात होवे  
अयोगी केवली गुणस्थान में समुद्रघात नहीं होता है.

## २४१ तिसवा देव द्वार

देव ५ हैं:—१ भव्य द्रव्य देव. २ नग्देव. ३ धर्मदेव ४ देवा  
धीदेव. और ५ भावदेव.

मिथ्यात्व से मिथ्र गुणस्थान तक १ धर्मदेव. और २ देवा  
धीदेव. विना ३ देव पावे.

अविरति गुणस्थान में धर्मदेव विना ४ देव पावे.

देशविरति गुणस्थान में एक भव्य द्रव्य देव पावे.

प्रमत्त से मूढ मन्मगय गुणस्थान तक नग्देव. भाव  
देव विना ३ देव पावे.

उपज्ञान मोह गुणस्थान में १ भव्यद्रव्यदेव. और २ धर्मदेव  
यह २ देव पावे.

देव द्वारका सुनाता अर्थात् द्वारके अन्तर्गत वे लक्ष्य हैं

क्षीणमोह गुणस्थानसे अजोगी केवली गुणस्थान तक धर्म देव और देवाधिदेव यह २ देव पावे

## २४२, एकतीसवा-परिणामी द्वार

परिणामिके ४२ बोल ४ गति, ५ इन्द्रिय, ४ कषाय, ६ लेश्या, ३ जोग, २ उपयोग, ५ ज्ञान, ३ अज्ञान, ३ दृष्टि, ५ चारित्रि और ३ वेद यों ४२ इनमेंसे.

मिथ्यात्व गुणस्थानमें ४ गति, ५ इन्द्रिय, ४ कषाय, ३ जोग, ६ लेश्या, २ उपयोग, ३ अज्ञान, १ मिथ्यात्व दृष्टि, और ३ वेद यों ३१ बोल पावे.

सास्वादन गुणस्थान में ४ गति, ५ इन्द्रिय, ४ कषाय, ३ जोग, ६ लेश्या, २ उपयोग, ३ ज्ञान, १ समदृष्टि और ३ वेद, यों ३१ बोल पावे

मिश्र गुणस्थान में ४ गति, ५ इन्द्रिय, ४ कषाय, ३ जोग, ६ लेश्या, २ उपयोग, ३ अज्ञान, १ मिश्रदृष्टि, और ३ वेद यों ३१ बोल पावे.

अविरति गुणस्थान में ४ गति, ५ इन्द्रिय, ४ कषाय, ३ जोग, ६ लेश्या, २ उपयोग, ३ ज्ञान, १ समदृष्टि, और तीन वेद यों ३१ बोल पावे.

देशविरति गुणस्थान में-२ गति ५ इन्द्रिय ४ कषाय ३ जोग ६ लेश्या २ उपयोग, ३ ज्ञान, १ समदृष्टि और तीन वेद यों २९ बोल पावे

प्रमत्त गुणस्थान में-१ मनुष्यागति ५ इन्द्रिय ४ कषाय, ३ जीव परिणामी कर्ण और निष्ठाति द्वारका की गाथा अर्थ काव्यके ३२९ प्रष्टमें है.

जोग, ६ लेख्या, २ उपयोग, ४ ज्ञान. १ दृष्टि, ३ वेद, ३ चारित्र्यों ३२ बोल पावे.

अप्रमत्त गुणस्थान में-१ गति, ५ इन्द्रिय ४ कषाय, ३ जोग. ३ लेख्या, २ उपयोग, ४ ज्ञान. १ दृष्टि, ३ वेद और ३ चारित्र. यों २९ बोल पावे.

अपूर्व करण और अनियत वादर गुणस्थानमें-१ गति. ५ इन्द्रिय, ४ कषाय, ३ जोग, १ लेख्या, २ उपयोग, ४ ज्ञान, १ दृष्टि. ३ वेद, और ३ चारित्र. यों २७ बोल पावे.

सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानमें-१ गति, ५ इन्द्रिय, ३ जोग, १ लेख्या २ उपयोग, ४ ज्ञान. १ दृष्टि १ सूक्ष्म सम्पराय चरित्र. यों १८ बोल पावे.

उपशान्त मोह और क्षीण मोह गुणस्थानमें १ गति, ५ इन्द्रिय, ३ जोग. १ लेख्या, २ उपयोग. ४ ज्ञान. १ दृष्टि. १ यथाख्यात चारित्र यों १८ बोल पावे.

सयोगी केवली गुणस्थानमें-१ गति. ३ जोग. १ लेख्या, २ उपयोग १ केवल ज्ञान. १ दृष्टि. १ यथाख्यात चरित्र यों १८ बोल पावे.

अयोगी केवली गुणस्थानमें-१ गति, २ उपयोग. १ केवलज्ञान, १ दृष्टि. १ यथाख्यात चारित्र. यों ६ बोल पावे.

## २४३, तीसरा करण द्वार.

करणके ५५ बोल-५ द्रव्य ५ शरीर, ५ इन्द्रिय. ४ मन. ४ वचन. ४ कषाय. ६ लेख्या. ७ समुत्थात. ४ सज्ञा. ३ दृष्टि वेद और ५ आश्रव. यिध्यात्व गुणस्थानमें-५ द्रव्य. ४ शरीर. ५ इन्द्रिय. ४ मनके, ४ वचनके. ४ कषाय. ६ लेख्या. ५ समुत्थात पाहिली, ४ सज्ञा. १ मि

ध्यात्व, ३ वेदे और ५ आश्रव यों ५० बोल पावे.

सास्वादन गुणस्थान में-उपरोक्त ५० बोलही पाते हैं फरक फक्त मिथ्यात्व दृष्टिके स्थान सम्यक दृष्टि कहना.

मिश्र गुणस्थानमें भी उसोक्त ५० बोल, मिश्र दृष्टि कहना.

अविरति और देशविरति में-सास्वादन मुञ्जवही ५० बोल पावे.

प्रमत गुणस्थानमें-५ द्रव्य, ५ शरीर, ५ इन्द्रिय, ४ मन, ४ वचन, ४ कषाय, ६ लेश्या, ३ समुदघात (केवल विना) ४ सज्ञा, १ दृष्टि, ३ वेद यों. ४७ बोल पावे.

अप्रमत गुणस्थानमें-५ द्रव्य, ५ शरीर, ५ इन्द्रिय, ४ मन, ४ वचन, ४ कषाय, ३ शुभलेश्या. ३ समुदघात, १ दृष्टि और ३ वेद यों ३७ बोल पावे.

अपूर्व करण और अनियट वादर में-५ द्रव्य ३ शरीर, ५ इन्द्रिय, ४ मन, ४ वचन, ४ कषाय, १ लेश्या, ३ समुदघात, और ३ वेद यों ३३ बोल पावे.

सुक्ष्म सम्पराय गुणस्थानमें-५ द्रव्य ३ शरीर ५ इन्द्रिय, ४ मन, ४ वचन, १ कषाय, १ लेश्या, और १ दृष्टि. यों २४ बोल पावे.

उपशान्त मोह और क्षीण मोह गुणस्थानमें-१ कषाय विन २३ बोल पावे.

सयोगी केवली गुणस्थानमें-५ द्रव्य, ३ शरीर, २ मन, २ वचन, १ लेश्या, १ समुदघात, और १ दृष्टि यों बोल १५ पावे.

अयोगी केवली गुणस्थानमें-५ द्रव्य, ३ शरीर, १ दृष्टि यों ९ बोल पावे.

## तैंतीसवा-निवृत्ति द्वार

निवृत्ति के ८२ बोले-८ कर्म, ५ शरीर, ५ इन्द्रिय, ४ भाषा, ४ मन

४ कषाय, ५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श, ६ संठाण, ४ सज्ञा, ६  
लेख्या ३ दृष्टि, ५ ज्ञान, ३ अज्ञान, ३ जोग और उपयोग सब ८२  
मिथ्यात्व मिश्र गुणस्थान में-१ शरीर, ५ ज्ञान, २ दृष्टि इन ८ विना  
७४ बोल पावे.

सास्वादन अविरति और देशविरति गुणस्थानमें-१ शरीर २ ज्ञान  
३ अज्ञान और २ दृष्टि इन ८ विना ७४ बोल पावे.

प्रमत्त गुणस्थानमें-२ दृष्टि, १ ज्ञान, ३ अज्ञान इन ६ विना ७६  
बोल पावे.

अप्रमत्त गुणस्थान में- ३ अशुभ लेख्या, ४ सज्ञा इन ७ विना ६९  
बोल पावे.

अपूर्व करण और अनियत वादर में-शरीर, २ लेख्या इन ४ विना  
६५ बोल पावे.

सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानमें-३ कषाय, १ उपयोग इन ४ विना ६१ पावे.  
उपशान्त मोहमें-१ कषायघटी, और १ उपयोग बढनेसे ६१ ही पावे,  
क्षीणमोहमें-१ मोहनीय कर्म विना ६० बोल पावे.

सयोगी केवलीमें ४ कर्म, ३ शरीर, २ भाषा, २ मन, २० वर्णादि,  
३ संठाण, १ शुक्ल लेख्या, १ केवल ज्ञान ३ जोग, २ उपयोग, यों  
४५ बोल पावे.

अयोगी केवली में ४ कर्म, ३ शरीर २० वर्णादि, ६ संठाण, १ दृष्टि, १  
ज्ञान, और २ उपयोग यों ३७ बोल पावे.

## २४४, चौतिसिवा आश्रव द्वार.

आश्रवके ४२ भेद:-५ अव्रत, ५ इन्द्रियोका अनिग्रह, ४ कषाय.

आश्रव और संवर द्वारका खुलासा देखीये अर्थ काण्डका पृष्ठ ३३० वा.



और २५ क्रिया. यों ४२ में से.

मिथ्यात्वसे मिश्रगुणस्थानतक-इर्यावही क्रिया विना ४१ भेद पावे.

अविरति गुणस्थानमें-मिथ्यात्वी क्रिया विना ४० भेद पावे.

देशविरति गुणस्थानमें-अविरति क्रिया विना ३९ भेद पावे.

प्रमत्त गुणस्थानमें-५ अव्रत, प्रणाति पात-परिग्रही अनापउगी, पाडु ची, सामन्तवणी, नेसर्त्थी, साहर्त्थी, आणवणी, समुदाणी \*इन १४ विना २९ भेद पावे.

अप्रमत्त गुणस्थान में-५ इन्द्रियके आश्राव, और १ आरंभ क्रिया, इन ६ विना. १९ भेद पावे.

अपूर्व करण और अनियट बादर में-मायाविति क्रिया विना १८ भेद पावे.

सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान में-१ पेजवती क्रिया ही पाती है.

उपशान्त मोहसे सयोगी केवलीतक-एक इर्यावही क्रियाही पावे.

अयोगी केवली गुणस्थान में आश्रव नहीं.

## २४५, पेंतीसवा-संवर द्वार

संवरके ५७ भेद:-५ समिति, ३ गुप्ति, २२ परिसिह, १० याति धर्म १२ भावना और ५ चारित्र. यों ५७ भेद इसमें से:-

मिथ्यात्वसे मिश्रगुणस्थानतक-संवर नहीं.

अविरति गुणस्थान में-१ सम्यक्त्व और १२ भावना यों १३ भेदपावे देशविरति गुणस्थानमें-१ व्रत और २२ परिग्रह अधिक होनेसे ३५.

\* और कितनेक स्थान पांचों इन्द्रिय के ५ आश्रव भी यहां कमी करते है. कितने क स्थान प्रमत्त गुणस्थान में और भी आरं मायावतीया फक्त दोही क्रिया कहीये तत्व केवली गम्य.

भेद पावे.

प्रमत और अप्रमत गुणस्थानमें-१ सुक्ष्म सम्पराय और २ यथाख्या त चारित्रि विना ५५ भेद पावे.

अपुर्व करण और अनियत वादर गुणस्थान में-परिहार विशुद्ध चारित्रि विना ५४ भेद पावे.

सुक्ष्म सम्पराय गुणस्थानमें-सूक्ष्म सम्परायविना ४ चारित्रि, और ८ परिसह इन १२ विना ४५ भेद पावे.

उपशान्त मोह और क्षीण मोह गुणस्थानमें-यथाख्यात विना ४ चारित्रि और ८ परिसह विना ४५ भेद पावे.

सयोगी और अयोगी केवली गुणस्थान में-पहिला ४ चारित्रि और ११ परिसह विना ४२ भेद संवरके पावे.

## २४७ छत्तीसवा-निर्जरा द्वार.

मिथ्यात्व, सास्त्रादन और मिश्र गुणस्थान में-अकाम निर्जरा. अविरति से अजोगी केवली गुणस्थानतक-सकाम निर्जरा.

## २४८ सैंतीसवा निर्जरा द्वार

निर्जराके १२ भेद:-१ अणसण २ ऊणोदरी, ३ भिन्नाचरी, ४ रसपरित्याग, ५ कायाक्लेश, ६ प्रतिसलेना, ७ प्रायाश्चित, ८ विनय, ९ वैयावच्च, १० सञ्जाय, ११ ध्यान, और १२ का उसगग.

मिथ्यात्वसे अविरति गुणस्थानतक-निर्जराके भेद नहीं पावे.

देशविरतिसे क्षीण मोह गुणस्थानतक निर्जराके १२ ही भेद पावे.

सयोगी और अयोगी केवली गुणस्थानमें-१ शुद्ध ध्यान पावे.

## २४९, अडतीसवा-कारणीफल द्वार

निर्जरा और करणी फलद्वारोंका सुखानके लिये देखीये अर्थ काण्डकापृष्ठ ३१.

मिथ्यात्व सास्वादन, और मिश्र गुणस्थानकी सफल करणी-  
अविरतिसे अयोगी केवली गुणस्थानतक निष्फल करणी.

२५०, चालीसवा-तीर्थकर गौत्रोपार्जनद्वार

अविरति, देशविरति, प्रमत्त, और अप्रमत्त इन चारों गुणस्थानोंमें रहे  
जीवों २० बोलोंमेंके बोलोंका आगधन कर तीर्थकर गौत्र उपार्जतेहैं.

२५१, एकचालीसवा-तीर्थकर स्पर्शनाद्वार

अविरति, प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्व करण, अनियद्वी वादर, सूक्ष्म संप  
राय, क्षीण मोह, सयोगी केवली, और अयोगी केवली इन ९ गुण  
स्थानोंको तीर्थकर महाराज स्पर्शते हैं.

२५२ बेंतालीसवा-मोक्ष द्वार

मोक्ष ४ कारण से होवे-१ ज्ञान, २ दर्शन, ३ चारित्र और ४ तप.  
मिथ्यात्व गुणस्थानमें मुक्तिका कारण नहीं.

सास्वादन और मिश्र गुणस्थानमें व्यवहारमें मुक्तिका कारण नहीं.  
निश्चयसे सत्ता मात्र फक्त ज्ञान दर्शन.

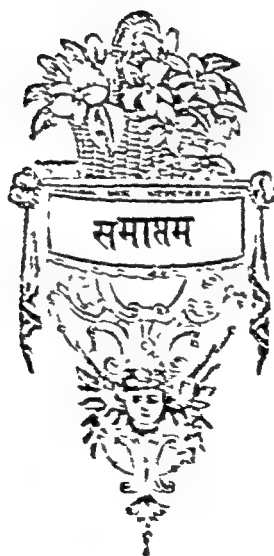
अविरति गुणस्थानमें मुक्तिके कारण-ज्ञान और दर्शन दो हैं.  
देशविरतिसे अयोगी केवलतक-मुक्ति के कारण चारोंही पावे.

१५५ तीर्थ गौत्र उपार्जनके २० बोल अर्थ काण्डके ३३२ वे पृष्ठ मे है.

१५६ तीर्थकर गुणस्थान स्पर्शन द्वारमे और मोक्ष द्वारके खुलासेके लिये देखीये अर्थ  
कांड का पृष्ठ ३३३ वा.

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराजके सम्प्रदाय के  
वाल ब्रम्हचारि मुनि श्री अमोलख ऋषिजी महाराज  
रचित “ गुणस्थानरोहण अद्विशत द्वारी”, ग्रंथ  
का चौथा धर्मा रोहन खण्ड  
समाप्तम्.

श्री गुणस्थाना रोहण-अद्विशतद्वारीका  
द्वितीय-मूल काण्ड-समाप्तम्.





---

॥ श्री ॥

मुक्ती -- सोपान

---

श्री गुणस्थान रोहण अदीशतद्वारी  
का संक्षिपित यन्त्र

---

	१	२	३	४	५
१ नाम द्वार	मिथ्यात्व	मात्मादन	मिश्र	अवृत्ति ममादृष्टि	देश विरति
२ अर्थ द्वार	सत्यमे असत्यश्च	पडवाड़	मिश्रित	समाकित	श्रावक
३ प्रश्नोत्तर द्वार	क्या गुण? प्रीतिक तक जावे	धर्म "स्पर्श"	समझ "लगा"	तत्त्वज्ञ "हुवा"	अत्रतरोकी
४ प्रवेश द्वार	गूलस्थान	धर्म भृष्ट	हानी वृद्धि	निसर्ग आधिगम	७ प्रकृति क्षयोपशमी
५ लक्षण द्वार	३४ मिथ्या त्व सेव	आर्त-रौद्र ध्यानी	शंकासील	ज्ञानी ६७ लक्षण	धर्मोत्साही ५३ लक्षण
६ दृष्टान्त द्वार	३६३ पाखण्डी	प्रसाद-अ म्व घडी वमन	सिकरण मोलाजीव	नदीकाटोल अम्र सूर्य	विषयव्यथी १० श्रावक
७ गुण द्वार	अनन्त संसारि	अर्थ पुद्गल संसारि	शुद्ध पक्षी	७ बोलका अवन्ध	ज३-उ-१५ बारवा स्वर्ग
८ अवघेणा द्वार	अंगु० असं० १००० यो	"	"	"	ज० ९ उ० ५०० धनु.
९ उत्पत्ति द्रव्य प्रमाण	अनन्त	असंख्याते	"	"	"

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
प्रमत संय- ती	अप्रमत संयती	अपूर्व करण	अनिव्रति वादर	मुष्म सम्पराय	उपशान्त मोह	शीणमोह	सयोगी केवली	अयोगी केवली
सदोष साधुनिर्दोषसाधू		उत्ताहा ही	निर्विषयी	फक्त सूक्ष्म लोभी	दृक्कदिया मोह	अवकिया मोह	योगयुक्त केवल ज्ञानी	योग रहि त केवल ज्ञानी
सर्व विरति हुवे	प्रमाददृष्ट	वडी क पाय से निवृत्ते	विषयने भीनिवृत्ते	अकपायी हुवे	क्यों पडे मोह उड्ड वने से	क्यागुण भाव के वली	द्रव्य के वली	मोक्ष गा- मी
११ प्रकृति	१५ प्र०	१६ प्र०	२१ प्र.	२७ प्र.	२८ प्र.	२८ प्र.	यातिरुम ..	आक्रिय
६५ लक्षण	धर्मोद्यनी	शिर वीर	पूर्णगीत	पूर्ण भेनोपी	शान्त स्वभावी	परम शा न्त	सर्वज्ञ	मोक्षान्मा
धना शेष व्योपारी	उत्कृष्टाभी धना अण- गार	पंथानु गामी प्रमत्त चन्द्र	फत्रदुग्ध हरकेमी	निरंग दृक्की अ- खि गोतन नि कुंड- स्वानी	वृजि अ- दि कुंड- गिक	निर्मल नृ- दि स्कंध मुनि	मैरु पर्वत मण्ड वीर	मैरु पर्वत मण्ड
कल्पातीत गनी	कल्पातीत गनी	..	..	..	३ भव अदुर्गाभी	३भी भव मोह	..	..
ज० १ हाथ ५१० धनुष	..	जो हाथ ५०० ध.	..	..	..	..	..	..
प्रत्येक हजार	मन्त्रे नो	१६२	..	..	६४	१०८	..	..



		१	२	३	४	५
१०	पावती द्रव्य प्रमाण	अनन्त	असंख्याते	"	"	"
११	खपती द्रव्य प्रमाण	अनन्त	असंख्याते	"	"	"
१२	क्षेत्र प्रमाण द्वार	सर्व लोक	त्रस नाडी	"	"	आधो और तिरछालोक
१३	क्षेत्र स्पर्शना द्वार	सर्व लोक	छठी नर्कसे ग्रीवेक	लोक का असंख्यात वा भाग	छठी नर्क १२वा स्वर्ग	अधोवीज १२वा स्वर्ग
१४	काल प्रमाण (स्थिति)	३ प्रकारकी	६ आंवली ७ समय	अन्तर मुहुर्त	ज अन्त ६ सागर	ज० अन्त ऊणा क्रोड पूर्व
१५	काल प्राप्त द्वार	मेरे	"	नही मेरे	मेरे	"
१६	भाव प्रमाण द्वार	असंख्य स्थान	"	"	"	"
१७	निरंतर गुण द्वार	प्रत्येक असंख्यात वे भाग	"	"	अत्रालियाके असंख्यात वे भाग	"
१८	मार्गणा द्वार	४	०	३	२	१
१९	उपमार्गणा द्वार	०	१	१	३	४



		१	२	३	४	५
२०	परस्पर मार्गणा	३	१	२	५	५
२१	परस्पर उपमार्गणा	५	३	४	१	३
२२	अरोह उवरोह	१.उवरोह	१.अवरोह	२	२	२
२३	चडाचड गति	१	१	२	४	३
२४	अन्तर काल द्वार	अन्तर मु. ६६ सा०	१ पल्याका अ संख्यात भाग अर्ध पुद्गल	॥ ॥	॥ ॥	॥ ॥
२५	विरह काल द्वार	०	एक समय अंतर मुहूर्त	॥	०	०
२६	एकभव में स्पर्शना	१ ९००	१ २	१ प्रत्येकहजार	॥	१ ९००
२७	बहुत भव में स्पर्शना	२ असंख्यात	२ ५	२ असंख्यात	॥	२ ९०००
२८	परस्पर स्पर्शना	१ नियमा १० भजना	३ नियमा ८ भजन	३ नियमा ८ भजन	२ नियमा ९ भजन	३ नियमा ८ भजन
२९	पढमा पढम द्वार	२	२	२	२	२
३०	शाश्वता शाश्वत	शाश्वत	अशाश्वत	॥	शाश्वत	॥

.....

.

.

.

.

.

.....

.....

		१	२	३	४	५
३१	परभव गमन द्वार	साथ जावे	"	नहीं जावे	साथ जावे	नहीं जावे
३२	भव संख्या द्वार	अनन्त	१ ७-८	"	"	"
३३	अल्या बहुत द्वार	१२ अनंत गुणे	८ असंख्याते	९ असंख्याते	१० असंख्याते	७ असंख्याते
३४	किरिपा द्वार	२४	२३	२४	२३	२२
३५	मूल हेतु (कारण)द्वार	५	४	४	४	४
३६	मिथ्यात्व हेतु द्वार	५	०	०	०	०
३७	अविराति हेतु द्वार	१२	१२	१२	१२	११
३८	कषाय हेतु द्वार	२५	२५	२१	२१	१७
३९	योग हेतु द्वार	१३	१३	१०	१३	१२
४०	समुचय हेतु द्वार	५५	५०	४३	४६	४०
४१	चार बन्ध द्वार	४	४	४	४	४
४२	समुचय कर्म बन्ध	८	८	७	८	८

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
"	"	"	"	"	"	"	"	"
१	१	१	१	१	१	१	१	१
६ संख्याते	५ संख्याते	३ यहतीनो	३ आपन्मे तुल्य	३ संख्याते	१ सत्रने थोडे	२ संख्यात गुण	४ संख्याते	११ अनन्ते
२१	२०	२०	२०	२०	१	१	१	०
३	३	२	२	२	१	१	१	०
०	०	०	०	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०	०	०	०
१३	१३	१२	७	१	०	०	०	०
१४	११	९	९	९	९	९	७	०
२७	२४	२२	१६	१०	९	९	७	०
४	४	४	४	४	२	२	२	०
८	८	७	७	६	१	१	१	०

	१	२	३	४	५
४३ ज्ञानावरणीय बन्ध द्वार	५	५	५	५	५
४४ दर्शनावरणी बन्ध द्वार	९	९	६	६	६
४५ वेदनीय बंध द्वार	२	२	२	२	२
४६ मोहनीय बंध द्वार	२६	२४	१९	१९	१५
४७ आयु बंध द्वार	४	३	०	२	१
४८ नाम बन्ध द्वार	६४	५०	३६	३७	३२
४९ गोत्र बन्ध द्वार	२	२	१	१	१
५० अन्तराय बन्ध द्वार	५	५	५	५	५
५१ ध्रुव कर्म बन्ध द्वार	५	५	५	५	५
५२ ध्रुव कर्म प्रकृति बन्ध	४७	४६	३९	३९	३५
५३ अध्रुव कर्म बन्ध द्वार	५	५	४	५	५
५४ अध्रुव कर्म प्रकृति बंध	७०	५६	३६	३९	३३

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
५	५	५	५	५	०	०	०	०
६	६	६	४	४	०	०	०	०
२	१	१	१	१	१	१	१	०
११	९	९	५	०	०	०	०	०
१	१	०	०	०	०	०	०	०
३२	३१	३१	१	१	०	०	०	०
१	१	१	१	१	०	०	०	०
५	५	५	५	५	०	०	०	०
५	५	५	५	५	०	०	०	०
३१	३१	२९	१८	१४	०	०	०	०
५	५	४	४	३	१	१	१	०
३३	२८	८	४	३	१	१	१	०



		१	२	३	४	५
५५	सर्व घाति कर्म बन्ध	३	३	३	३	३
५६	सर्व घातिकर्म प्रकृति बंध	२०	१९	१२	१२	८
५७	देश घातिक कर्म बन्ध	४	४	४	४	४
५८	देश घातिक कर्म प्रकृति बंध द्वार	२५	२४	२३	२३	२३
५९	अघाति कर्म बंध द्वार	४	४	३	४	४
६०	अघाति कर्म प्रकृति बन्ध	७२	५८	३२	४२	३६
६१	पुण्य कर्म बंध द्वार	४	४	३	४	४
६२	पुण्य कर्म प्रकृति बंध	३९	३८	३४	३७	३१
६३	पाप कर्म बन्ध द्वार	८	८	६	६	६
६४	पाप कर्म प्रकृति बन्ध	८२	६७	४४	४४	४०
६५	परावर्तमान कर्म बन्ध	६	६	६	६	६
६६	परावर्तमान कर्म प्रकृति बन्ध	८९	७४	४७	४९	३९

श्री गुणस्थान रोहण अदीगतद्वारीका संक्षेपी यन्त्र

१३

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
३	३	२	२	२	०	०	०	०
४	४	२	२	२	०	०	०	०
४	४	४	४	३	०	०	०	०
२३	२१	२१	१७	१२	०	०	०	०
४	४	३	३	३	१	१	१	०
३०	३२	३	३	३	१	१	१	०
४	४	३	३	३	१	१	१	०
३१	३३	३२-३	३	३	१	१	१	०
६	६	५	५	४	०	०	०	०
३०	३०	३०-३३	१२-१५	१५	०	०	०	०
६	६	४	२	१	१	१	१	०
३०	३२	२७	८	३	१	१	१	०

		१	२	३	४	५
६७	अपरावर्तमान कर्म बन्ध	५	५	५	५	५
६८	अपरावर्तमान कर्म प्रकृति बन्ध द्वार	२८	२७	२७	२८	२८
६९	भूयस्कार कर्म बन्ध	१	१	१	१	१
७०	भूयस्कार कर्म प्रकृति बन्ध	८	०	०	४	२
७१	अल्पतर कर्म बन्ध	१	१	१	१	१
७२	अल्पतर कर्म प्रकृति बन्ध द्वार	जो ऊपर	भूयस्कार	बन्ध के	स्थान	कहे हैं,
७३	अवस्थित कर्म बन्ध	जो भूयस्कार	बन्ध	पअल तर	बन्ध के	प्रथम समय
७४	अवस्थित कर्म प्रकृति बन्ध द्वार	भूयस्कार	बन्ध के २९	स्थान या	अल्पतर के	२८ स्थान का
७५	अन्यव कर्म बन्ध	०	०	०	०	०
७६	समुचय कर्म प्र० बन्ध	११७	१०१	७४	७७	६७
७७	कर्म बन्ध व्यछेद	०	०	१	०	०
७८	कर्म प्र० बन्ध व्यछेद	३	१९	४६	४३	५३

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
६	६	६	३	३	०	०	०	०
२८	२८	२८	१४	१४	०	०	०	०
१	१	१	१	१	१	०	०	०
१	१	७	७	७	१	०	०	०
१	१	१	१	१	१	१	१	१
इनकोडलेष्ट	पदने मे	अल्पतर	वर्म	मवति	रन्ध के	गन्ध	होने	है
बन्धा	बोबन्ध	जितने	बाल	नव मे	उमे अन्धियन	कन्ध	कान्ध	कान्ध
रन्ध विधि बाग पिर दो	रन्ध जितने	बाल	नोले	अन्धियन	बन्ध	कान्ध	कान्ध	कान्ध
०	०	०	०	०	०	०	०	०
६६	६६	६६	३८	३८	१	१	१	१
०	०	१	१	१	१	१	१	१
६६	६६	६६	३८	३८	३३६	३३६	३३६	३३६

		१	२	३	४	५
७९	समुच्चय कर्मोदय द्वार	८	८	८	८	८
८०	ज्ञानावरणी उदय द्वार	५	५	५	५	५
८१	दर्शनावरणी उदय द्वार	९	९	९	९	९
८२	वेदनीय कर्मोदय द्वार	२	२	२	२	२
८३	मोहनीय कर्मोदय द्वार	२६	२५	१९	१९	१९
८४	आयु कर्मोदय द्वार	४	४	४	४	२
८५	नाम कर्मोदय द्वार	६४	५९	५१	५५	५५
८६	गोत्र कर्मोदय द्वार	अनन्त	२	२	२	२
८७	अन्तराय कर्मोदय	२	५	५	५	५
८८	ध्रुव कर्मोदय द्वार	५	४	४	४	४
८९	ध्रुव कर्म प्रकृति उदय	२७	२६	२६	२६	२६
९०	अध्रुव कर्मोदय	६	६	६	६	६

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
८	८	८	८	८	७	७	४	४
९	९	९	९	९	९	९	०	०
९	६	६	६	६	६	६	०	०
२	२	२	२	२	२	२	२	२
११	११	१०	४	१	०	०	०	०
१	१	१	१	१	१	१	१	१
४४	४२	३२	३२	३२	३२	३७	३७	९
१	१	१	१	१	१	१	१	१
९	९	९	९	९	९	९	०	०
४	४	४	४	४	४	४	१	०
२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	१२	०
६	६	६	६	६	९	०	४	४

		१	२	३	४	५
९१	अध्रुव कर्म प्रकृति	१०	८५	७४	७८	६१
९२	पुण्य कर्मोदयद्वार	४	४	४	४	४
९३	पुण्य कर्म प्रकृतिर्योदय	३२	३८	३६	३८	३२
९४	पाप कर्मोदय द्वार	८	८	८	८	८
९५	पाप कर्म प्रकृतिर्योदय	८२	७७	६७	६२	५८
९६	क्षेत्र विपाक कर्मोदय	१	१	०	१	०
९७	क्षेत्र विपाक कर्मप्रकृति	४	३	०	४	०
९८	भव विपाक कर्मोदय	१	१	१	१	१
९९	भव विपाक कर्मप्रकृति	४	४	४	४	२
१००	जीवत्व पाक कर्मोदय	७	७	७	७	७
१०१	जीवविपाक कर्मप्रकृति	७५	७२	६४	६४	५५
१०२	पुद्गल विपाकी कर्मोदय	१	१	१	१	१





	१	२	३	४	५
१०३ पृथ्वी कर्मप्रकृतिप्रोदय	३४	३२	३२	३२	३०
१०४ सर्व घाती कर्मोदय	३	३	३	३	३
१०५ सर्वधानिक कर्मप्रकृतिप्रोदय	२०	१२	१५	१५	११
१०६ देश घाति कर्मोदय	४	४	४	४	४
१०७ द. धा. कर्मप्रकृतियो	२५	२५	२६	२६	२५
१०८ अधाति कर्मोदय	४	४	४	४	४
१०९ अ. धा. कर्मप्रकृतियो	७३	६८	६०	६४	५१
११० समुचेकर्म प्रकृतिप्रोदय	११७	१११	१००	१०४	८७
१११ कर्मोदय व्यच्छेद द्वार	५	११	२२	१८	३५
११२ कर्म प्र.उदयवाच्छेद्वार	०	०	०	०	०
११३ समुचय कर्म उदीणाद्वार	८	८	७	८	८
११४ ज्ञानावरण विउदरिण	५	५	५	५	५



	૧	૨	૩	૪	૫
૧૧૫ દર્શના વરણી ઝડીરણા	૧	૧	૧	૧	૧
૧૧૬ વેદનીય કર્મ ઝડીરણા	૨	૨	૨	૨	૨
૧૧૭ મોહનીય ઝડીરણા	૨૬	૨૬	૨૨	૨૨	૧૮
૧૧૮ આયુર્કર્મ ઝડીરણા	૪	૪	૪	૪	૨
૧૧૯ નામકર્મ ઝડીરણા	૬૪	૫૨	૫૧	૫૫	૪૪
૧૨૦ ગોત્રકર્મ ઝડીરણા	૨	૨	૨	૨	૨
૨૨૧ અન્તરાય ઝડીરણા	૫	૫	૫	૫	૫
૧૨૨ સમુચયકર્મપ્ર. ઝડીરણા	૧૧૭	૧૧૧	૧૦૦	૧૦૪	૮૭
૧૨૩ કર્મોઝડીરણા યુચ્છેદ	૦	૦	૦	૦	૦
૧૨૪ કર્મપ્ર. ઝડીરણા વ્યુચ્છેદ	૫	૧૧	૨૨	૧૮	૩૫
૧૨૫ સમુચય કર્મ સત્ત્વદ્વાર	૮	૮	૮	૮	૮
૧૨૬ જ્ઞાના વરણી કર્મસત્તા	૫	૫	૫	૫	૫

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
१	६	६	६	६	६	६	०	०
२	०	०	०	०	०	०	०	०
१४	१४	११	७	१	०	०	०	०
१	०	०	०	०	०	०	०	०
४४	४२	३२	३२	३२	३२	३७	३७	०
१	१	१	१	१	१	१	१	०
५	५	५	५	५	५	५	०	०
८१	७३	६२	६३	५७	५६	५२	३८	०
०	२	२	२	२	३	३	६	०
४१	४२	५३	५२	६२	६६	७०	८३	०
८	८	८	८	८	८	७	४	४
५	८	५	५	५	५	५	०	०

	१	२	३	४	५
१२७ दर्शना वरणी कर्मसत्ता	९	९	९	९	९
१२८ वेदनयि कर्मसत्ता	२	२	२	२	२
१२९ मोहनीय कर्मसत्ता	२८	२८	२८	२८-२९	२८-२९
१३० आयुर्कर्म सत्ताद्वार	४	४	४	४-९	४-९
१३१ नाम कर्म सत्ताद्वार	९३	९३	९३	९३	९३
१३२ गोत्र कर्म सत्ताद्वार	२	२	२	२	२
१३३ अन्तराय कर्मसत्ता	५	५	५	५	५
१३४ ध्रुव कर्म सत्ताद्वार	७	७	७	७	७
१३५ ध्रुव कर्म प्रकृति सत्ता	१२६	१२२	१२६	१२६	१२६
१३६ अध्रुव कर्म सत्ताद्वार	४	४	४	४	४
१३७ अ. कर्म प्रकृति सत्ता	२२	२२	२२	२२	२२
१३८ सर्व घाती कर्म सत्ताद्वार	३	३	३	३	३

❀ श्री भक्ति मायान ❀

22

[illegible]

	१	२	३	४	५
१३२ स.घा. कर्मप्रकृति सत्ता	२०	२०	२०	२०	२०
१४० देशघाति कर्मसत्ता	४	४	४	४	४
१४१ दे. घा. कर्मप्रकृतिसत्ता	२७	२७	२७	२७	२७
१४२ अघाति कर्म सत्ताद्वार	४	४	४	४	४
१४३ अघा. कर्मप्रकृतिसत्ता	१०१	१००	१००	१०१ २७	१०१ ७७
१४४ समुचयकर्मप्रकृतिसत्ता	१४८	१४७	१४७	१४८	१४८
१४५ कर्म व्युच्छतिद्वार	०	०	०	०	०
१४६ कर्मप्रकृतिव्युच्छतिद्वार	०	१	७-१० सायिक	७-१० "	७-१० "
१४७ समुचय कर्मभद्रद्वार	२	२	१	२	२
१४८ ज्ञानावगणी भद्रद्वार	१	१	१	१	१
१४९ दर्श - रणयिभद्रद्वार	२	२	२	२	२
१५० वेद - रणयिभद्रद्वार	४	४	४	४	४

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
२०	२०	२०	२० १६	२० १६	२०	१४	०	०
४	४	४	४	४	४	३	०	०
२७	२७	२७	२७ १४	२७ १३	२७	१२	०	०
४	४	४	४	४	४	४	४	४
१०१ ९७	१०१ ९७	१०१ ९७	१०१ ९७	१०१ ८४	१०१	८४	८३	८४ १३
१४८	१४८	१४८ १४२	१४८ १४२	१४८ १४२	१४८ १४२	१०१ २२	८२	८३ १३ ८३
०	०	०	०	०	०	१	१	४
७-१० १	९-१०	९-१०	९-१० ४६	९ ४६	९	४७ ४१	३३	३३ १३४ ३३
२	२	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	०	०
२	२	२	२	१	२	०	०	०
४	२	२	२	०	२	२	२	४



# श्री मुक्ति सोपान

२८

	१	२	३	४	५
	६चौ, ६भां	४चौ, ४भां	४चौ, २भां	८चौ, २भां	८चौ, २भां
१५१ मोहनीय भङ्गद्वार					
	२८	२६	१६	२०	१२
१५२ आयु भङ्गद्वार					
	१३२२३	१६०८	१६	३२	१६
	१११३	४०१७	४०१७	५२	५९१
	२१२	१८	६	५४	३३
१५३ नामभङ्गद्वार					
	५	४	२	२	२
१५४ गोत्र भङ्गद्वार					
	१	१	१	१	१
१५५ अन्तराय भङ्गद्वार					
	१०	१०	८	१०	१०
१५६ वन्धीके भीङ्गे					
	३	२	२	२	२
१५७ इयावही भङ्गद्वार					
	३	३	३	३	३
१५८ मूल भावद्वार					
	२१	१९	२०	१९	१७
१५९ ओदधिक भावद्वार					
	०	०	०	१	१
१६० उपशमिक भावद्वार					
	११	११	११	१२	१
१६१ अयोपशमिक भाव द्वार					
	०	०	०	१	१
१६२ आर्यिक भावद्वार					



	१	२	३	४	५
१६३ परिणामिक भावद्वार	३	२	२	२	२
१६४ सन्निपातिभावद्वार	१ ४	१ ४	१ ४	३ १२	३ ६
१६५ समुच्चयभावभेदद्वार	३५	३२	३३	३५	३४
१६६ श्रेणिद्वार	०	०	०	०	०
१६७ कर्मवेदद्वार	८	८	८	८	८
१६८ कर्मनिर्जराद्वार	८	८	८	८	८
१६९ दशकरणद्वार	१०	१०	१०	१०	१०
१७० गुणश्रेणिद्वार	सकाम निर्जरा नही	"	"	तीसरे सं ख्यात गुणी	चौथे सं अं संख्या
१७१ आगतिद्वार	४	४	४	४	४
१७२ वागतिद्वार	४	४	४	४	२
१७३ जागतिद्वार	४	३	०	२	१
१७४ आजगतिद्वार	५	५	५	५	८

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
२	२	२	२	२	२	२	२	२
३	३	३	३	३	३	१	१	१
३४	३१	२७	२७	२१	२०	१२	१४	१३
०	०	२	२	२	१	१	०	०
८	८	८	८	८	७	७	४	४
८	८	८	८	८	८	७	४	४
१०	१०	१०	७	७	२	२	२	२
पांचवेसे अंशख्या	छेवनेअ संख्यागुणी	सातवेसे अंशख्या	आठवेसे अंशख्या	नववेसे अंशख्या	दशवेसे अंशख्या	ग्यारवेसे अंशख्या	बारवेसे अंशख्या	तेरवेसे अंशख्या
४	४	४	४	४	४	४	४	४
१	१	१	१	१	१	१	१	२
१	१	१	१	१	१	०	२	२
६	२	२	२	२	२	२	२	२

		१	२	३	४	५
१७५	पाजाति द्वार	५	४	१	१	१
१७६	जाजाति द्वार	५	४	०	१	१
१७७	आकाया द्वार	६	६	६	४	४
१७८	पाकाया द्वार	६	१	१	१	१
१७९	आकाया द्वार	६	१	०	१	१
१८०	आदण्डक द्वार	२४	२२	२२	२२	२२
१८१	पादण्डक द्वार	२४	१२	१६	१६	२
१८२	जादण्डक द्वार	२४	१९	०	१६	१
१८३	सामान्य जीवभेद द्वार	१४	६	१	२	१
१८४	विशेष जीवभेद द्वार	१७०	३९७	१९८	२३५	२०
१८५	जीवायोनी द्वार	८४ लक्ष	३२ लक्ष	२६ लक्ष	२६ लक्ष	१८ लक्ष
१८६	कुल कोडी द्वार	१ क्रोड ९७॥ लक्ष क्रोड	१ क्रोड ४०॥ लक्ष क्रोड	१ क्रोड १६॥॥ क्रोड क्रोड	६५॥ लक्ष क्रोड	१२ लक्ष क्रोड



	૧	૨	૩	૪	૫
૧૮૬ બુધ્ધિવાન દામ	૨	૧	૧	૧	૧
૧૮૭ બુધ્ધિવાન દામ	૨	૧	૧	૧	૧
૧૮૮ અમલી અમલી દામ	૦	૦	૧	૧	૧
૧૮૯ ગામલ અમલક	૦	૦	૧	૨	૧
૧૯૦ ગામલ અમલક	૦	૦	૧	૦	૧
૧૯૧ મેલકીદામ	૩	૩	૦	૩	૦
૧૯૨ મેલકીદામ	૩	૩	૩	૩	૩
૧૯૩ મેલકીદામ	૩	૬	૬	૬	૬
૧૯૪ મેલકીદામ	૦	૦	૧	૦	૧
૧૯૫ મેલકીદામ	૬	૬	૬	૬	૬
૧૯૬ મેલકીદામ	૦	૦	૧	૦	૧
૧૯૭ મેલકીદામ	૬	૬	૬	૬	૬
૧૯૮ મેલકીદામ	૬	૬	૬	૬	૬
૧૯૯ મેલકીદામ	૬	૬	૬	૬	૬
૨૦૦ મેલકીદામ	૬	૬	૬	૬	૬





	१	२	३	४	५
१९९ इन्द्रिय विषयद्वार	८ से २३	१३ से २३	२३	२३	२३
२०० सनाद्वार	४	४	४	४	४
२०१ वेदद्वार	३	३	३	३	३
२०२ कपायद्वार	४	४	४	४	४
२०३ लेशाद्वार	६	६	६	६	६
२०४ योगद्वार	३	३	३	३	३
२०५ शरीरद्वार	४	४	४	४	५
२०६ मन्त्रयणद्वार	६	६	६	६	६
२०७ मन्त्राणद्वार	६	६	६	६	६
२०८ मरणद्वार	२	२	०	२	२
२०९ विग्रहगतिद्वार	२	२	०	२	२
२१० स्वर्ग मर्यादद्वार	२१	१०	०	१०	१०

श्री मुक्ति सोपान

३७

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	०	०
४	०	०	०	०	०	०	०	०
३	३	३	३	०	०	०	०	०
४	४	४	४	१	०	०	०	०
६	३	१	१	१	१	१	१	०
३	३	३	३	३	३	३	३	०
६	३	३	३	३	३	३	३	३
६	६	१	१	१	१	१	१	१
६	६	६	६	६	६	६	६	६
२	२	२	२	१	१	०	०	१
२	२	२	२	२	२	०	०	१
२६	२६	२६	२६	६	६	०	०	मोक्ष

	१	२	३	४	५
२११ पदस्थानहानीद्वारे द्वार	२	२	२	२	२
२१२ मूलउपयोगद्वार	२	२	२	२	२
२१३ अज्ञानद्वार	३	०	३	०	०
२१४ ज्ञानद्वार	०	३	०	३	३
२१५ दर्शनद्वार	३	३	३	३	३
२१६ समुचय उपयोगद्वार	६	६	६	६	६
२१७ दष्टिद्वार	१	१	१	१	१
२१८ भव्याभवयद्वार	२	१	१	१	१
२१९ चरमाचरमद्वार	२	१	१	१	१
२२० परितापरितद्वार	२	१	१	१	१
२२१ पद्धिद्वार	१५	१	१	६	२
२२२ आत्माद्वार	६	६	६	७	७

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
२	२	२	तुल्य	॥	॥	॥	॥	॥
२	२	२	२	१	२	२	२	२
०	०	०	०	०	०	०	०	०
४	४	४	४	४	४	४	१	१
॥	॥	॥	॥	॥	॥	॥	१	१
७	७	७	७	७	७	७	२	२
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
॥	॥	॥	॥	॥	॥	॥	४	४
८	८	८	८	८	७	७	७	६

		१	२	३	४	५
२३५	परिसहद्वार	०	०	०	०	२२
२३६	प्रमादद्वार	५	५	५	५	५
२३७	सारागी वीतरागी द्वार	सरागी	"	"	"	"
२३८	पडवाइ अपडवाइ द्वार	अपडवाइ	पडवाइ	२	२	२
२३९	छमस्त केवली	छमस्त	"	"	"	"
२४०	समुत्वातद्वार	५	५	५	५	६
२४१	देवद्वार	३	३	३	४	१
२४२	परिणामीद्वार	३१	३१	३१	३१	२१
२४३	करणद्वार	५०	५०	५०	५०	५०
२४४	निवृत्तिद्वार	७४	७४	७४	७४	७४
२४५	आश्रवद्वार	४१	४१	४१	४०	३१
२४६	संवरद्वार	०	०	०	१३	३५

६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
२२	२२	२२	२२	१४	१४	१४	११	११
५	०	०	०	०	०	०	०	०
"	"	"	"	"	उपशम राना	वितरागी	"	"
२	२	२	२	२	पडवाइ	अपडवाइ	"	"
"	"	"	"	"	"	"	केवली	केवली
६	०	०	०	०	०	०	१	०
३	३	३	३	३	०	०	०	०
३२	२९	२९	२९	१८	१८	१८	१८	३
४७	३७	३३	३३	२४	२३	२३	१८	०
७६	६९	६९	६९	६९	६९	६९	४८	३७
२८	१९	१८	१८	१	१	१	१	१
५८	५८	५८	५८	८८	८८	४८	४८	८८



